श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी

कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप
श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध १-१२ (१८ खण्ड)
श्रीचैतन्य-चरितामृत (७ खण्ड)
भगवान् चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत
श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु
श्रीउपदेशामृत
श्रीईशोपनिषद्
अन्य लोकों की सुगम यात्रा
कृष्णभावनामृत सर्वोत्तम योगपद्धति
लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण
पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर
द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद : पाश्चात्य दर्शन का वैदिक दृष्टिकोण
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत
प्रह्लाद महाराज की दिव्य शिक्षा
रसराज श्रीकृष्ण
जीवन का स्रोत जीवन
योग की पूर्णता
जन्म-मृत्यु से परे
श्रीकृष्ण की ओर
कृष्णभक्ति की अनुपम भेंट
राजविद्या
कृष्णभावनामृत की प्राप्ति
पुनरागमन : पुनर्जन्म का विज्ञान
गीतार गान (बंगला)
भगवत् दर्शन (मासिक पत्रिका) : संस्थापक

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट,
'हरे कृष्ण धाम', जुहू, बम्बई-४०० ०४९

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

आदि लीला
(द्वितीय खण्ड: अध्याय ८-१७)

मूल बंगला पाठ,
अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति
श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

के द्वारा

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

लॉस एंजिलिस • लंदन • स्टॉकहोम • सिडनी • हाँग काँग • बम्बई

इस ग्रंथ की विषयवस्तु के जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं:

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
'हरे कृष्ण धाम',
जुहू, बम्बई-४०० ०४९

अनुवादक
(अंग्रेजी-हिन्दी)
डॉ. शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी अनुवाद संपादक
श्रीनिवास आचार्य दास
डॉ. संकटाप्रसाद उपाध्याय

पहला अंग्रेजी संस्करण, १९७४
पहला हिन्दी संस्करण, फरवरी, १९९४, २,००० प्रतियाँ

© १९७४-१९९४ भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, सर्वाधिकार सुरक्षित

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट के लिए श्रील गोपालकृष्ण गोस्वामी द्वारा 'हरे कृष्ण धाम', जुहू बम्बई-४०० ०४९ से प्रकाशित

Printed by, R.N. Kothari
Sanman & Co., 113, Shivshakti Ind. Estate,
Marol Naka, Andheri (E), Bombay - 400 059.

विषय सूची

आमुख
भूमिका

अध्याय ८	...	लेखक अधिकारियों से आदेश प्राप्त करते हैं	१
अध्याय ९	...	भक्ति का वृक्ष	४९
अध्याय १०	...	श्री चैतन्य वृक्ष का मूल, तना, इसकी शाखाएँ और उपशाखाएँ	८३
अध्याय ११	...	भगवान नित्यानन्द का विस्तार	१६७
अध्याय १२	...	अद्वैत आचार्य और गदाधर पंडित के विस्तार	१९७
अध्याय १३	...	चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव	२३७
अध्याय १४	...	भगवान् चैतन्य की बाललीलाएँ	२९१
अध्याय १५	...	भगवान् की पौगण्ड लीला	३३१
अध्याय १६	...	भगवान् की बाल एवं कैशोर लीलाएँ	३४३
अध्याय १७	...	भगवान् चैतन्य महाप्रभु की कैशोर लीलाएँ	३७९

परिशिष्ट

लेखक परिचय ५०३
बंगला उच्चारण ५०७

प्रस्तावना

"हरे कृष्ण" विश्व भर के शहरों, कस्बों तथा गाँवों की जीभ पर बस गया है, जिससे लगभग ५०० वर्ष पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई भविष्यवाणी पूरी हुई है। लॉस ऐंजिलिस से लन्दन तक, बम्बई से ब्यूनास आयर्स तक, पिट्सबर्ग तथा मेलबोर्न से पेरिस तथा मास्को तक सभी आयु, रंग, जाति तथा मतों के लोग "कृष्णभावनामृत" नामक गत्यात्मक योग प्रणाली के आनन्द का अनुभव कर रहे हैं।

यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन लगभग ५०० वर्ष पूर्व पूरे जोर-शोर से शुरू हुआ जब कृष्ण (ईश्वर) के अवतार श्री चैतन्य महाप्रभु ने भारत उपमहाद्वीप को हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन से आप्लावित कर दिया। सच्चे प्रेम के रहस्य को प्रकट करने के लिए पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण अपने ही भक्त के वेश में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में इस धरा पर आए। उन्होंने नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास नामक अपने प्रमुख पार्षदोंसहित यह शिक्षा दी कि किस तरह हरे कृष्ण कीर्तन करके तथा भाव में नृत्य करके भगवत्प्रेम उत्पन्न किया जाता है।

श्रीचैतन्य-चरितामृत की रचना महान सन्त कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के तिरोधान के तुरन्त पश्चात् की जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की आनन्दमयी लीलाओं का वर्णन हुआ है और उनके प्रखर आध्यात्मिक दर्शन की गम्भीरतापूर्वक जाँच पड़ताल की गई है।

इसका अनुवाद तथा श्लोकों के तात्पर्य स्वामी प्रभुपाद द्वारा दिए गए हैं जिन्होंने *भगवद्गीता यथारूप*, *भक्तिरसामृतसिन्धु*, *भगवान् कृष्ण* तथा *योग* विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

आदि-लीला

अध्याय ८

श्रीचैतन्य-चरितामृत के आठवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत *अमृत-प्रभा-भाष्य* में मिलता है। इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द की महिमा का वर्णन हुआ है और यह भी बतलाया गया है कि यदि कोई हरे-कृष्ण-मन्त्र के कीर्तन में अपराध करता है तो उसे वर्षों तक कीर्तन करते रहने पर भी भगवत्प्रेम प्राप्त नहीं हो पाता। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर *अष्ट-सात्विक-विकार* नामक शारीरिक लक्षणों के कृत्रिम प्रदर्शन के प्रति सबों को आगाह करते हैं क्योंकि यह भी अन्य अपराध है। मनुष्य को चाहिए कि *श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द* नामक पञ्चतत्त्व का गम्भीरता एवं निष्ठा के साथ कीर्तन करे। तभी वे आचार्य किसी भक्त को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान करेंगे और क्रमश: उसके हृदय को शुद्ध बनायेंगे। जब वह वास्तव में शुद्ध हो जायेगा तो उसे स्वत: ही हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में आह्लाद का अनुभव होगा। *चैतन्य-चरितामृत* की रचना के पूर्व श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने *श्रीचैतन्य-भागवत* नामक एक पुस्तक लिखी थी। कृष्णदास कविराज ने केवल उन्हीं विषयों को *श्रीचैतन्य-चरितामृत* में अंकित किया है जिनकी व्याख्या उस ग्रंथ में नहीं हो पाई है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी अपनी वृद्धावस्था में वृन्दावन गये और श्री मदनमोहनजी के आदेश पर उन्होंने *श्रीचैतन्य-चरितामृत* की रचना की। इस तरह अब हम इसके दिव्य आनन्द का रसास्वादन कर सकते हैं।

वन्दे चैतन्यदेवं तं भगवन्तं यदिच्छया।
प्रसभं नर्त्यते चित्रं लेखरङ्गे जडोऽप्ययम्॥१॥

अनुवाद

मैं उन भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करता हूँ जिनकी इच्छा

से मैं नाचता हुआ कुत्ता बना हुआ हूँ और मूर्ख होते हुए भी मैंने सहसा *श्रीचैतन्य-चरितामृत* लिखने का कार्य अपने हाथों में लिया है।

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य गौरचन्द्र।
जय जय परमानन्द जय नित्यानन्द।।२।।

अनुवाद

मैं गौरसुन्दर नाम से विख्यात श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं सदैव प्रसन्न रहने वाले नित्यानन्द प्रभु को भी सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जयाद्वैत आचार्य कृपामय।
जय जय गदाधर पण्डित महाशय।।३।।

अनुवाद

मैं अद्वैत आचार्य को सादर नमस्कार करता हूँ, जो अत्यन्त कृपालु हैं। साथ ही मैं महापुरुष गदाधर पण्डित को भी नमस्कार करता हूँ।

जय जय श्रीवासादि ग्रत भक्तगण।
प्रणत हइया वन्दों सबार चरण।।४।।

अनुवाद

मैं श्रीवास ठाकुर तथा महाप्रभु के अन्य सारे भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं उनके सामने गिर कर प्रणाम करता हूँ और उनके चरणकमलों की पूजा करता हूँ।

तात्पर्य

कृष्णदास कविराज गोस्वामी सर्वप्रथम हमें पञ्चतत्त्व श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु, गदाधर प्रभु और श्रीवास एवं अन्य भक्तों को नमस्कार करने की शिक्षा देते हैं। हमें चाहिए कि *श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द* मन्त्र में साररूप में बताये गये पंचतत्त्व को नमस्कार करने के सिद्धान्त का कड़ाई से पालन करें। हमें किसी भी प्रचार-उत्सव के पूर्व—यथा हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के पूर्व पञ्चतत्त्व के नामों का उच्चारण करना चाहिए और उनको नमस्कार करना चाहिए।

मूक कवित्व करे य़ाँ-सबार स्मरणे
पङ्गु गिरि लङ्घे, अन्ध देखे तारागणे॥५॥

अनुवाद

पञ्चतत्त्व के चरणकमलों का स्मरण करने से गूंगा व्यक्ति कवि बन सकता है, लंगड़ा पर्वत पार कर सकता है और अंधा व्यक्ति आकाश के तारे देख सकता है।

तात्पर्य

वैष्णव दर्शन में सिद्धि के तीन मार्ग हैं—*साधनसिद्ध, नित्यसिद्ध* तथा *कृपासिद्ध*। विधि-विधान के अनुसार सम्पन्न की गई भक्ति से प्राप्त होने वाली सिद्धि साधनसिद्ध है, कृष्ण को एक भी क्षण विस्मरण न करने से प्राप्त शाश्वत सिद्धि नित्यसिद्ध है और गुरु या वैष्णव की कृपा से प्राप्त सिद्धि कृपासिद्ध है। यहाँ पर कविराज गोस्वामी कृपासिद्धि पर बल दे रहे हैं। यह कृपा भक्त की योग्यता पर आश्रित नहीं होती। ऐसी कृपा से यदि भक्त गूंगा हो तो वह बोलने लगता है या भगवान् की महिमा का गान करने लगता है, यदि लँगड़ा भी रहे तो वह पर्वत को लाँघ जाता है तथा अंधा होकर भी आकाश के तारे देख सकता है।

ए-सब ना मान य़ेइ पण्डित सकल।
ता-सबार विद्या-पाठ भेक-कोलाहाल॥६॥

अनुवाद

ऐसे तथाकथित पण्डित, जो चैतन्य-चरितामृत के इन कथनों पर विश्वास नहीं करते, उनके द्वारा अनुशीलित शिक्षा मेढ़कों की टर्र-टर्र के समान है।

तात्पर्य

वर्षाऋतु में मेढ़कों की टर्र-टर्र की आवाज जंगल में तेजी से गूँजती है जिसके फलस्वरूप सर्प उस अंधेरे में उनके निकट जाकर उन्हें निगल जाते हैं। इसी प्रकार विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों की तथाकथित शैक्षिक ध्वनियाँ इन टर्र-टर्र करते मेढ़कों के समान होती हैं, यदि उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता।

एइ सब ना माने ग्रेबा करे कृष्णभक्ति।
कृष्ण-कृपा नाहि तारे, नाहि तार गति॥७॥

अनुवाद

जो पञ्चत्त्व की महिमा को स्वीकार नहीं करता और फिर भी कृष्णभक्ति का दिखावा करता है, उसे न तो कृष्ण की कृपा प्राप्त होती है, न वह अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है।

तात्पर्य

यदि कोई सचमुच कृष्णभावनामृत कार्यों में रुचि रखता है तो उसे आचार्यों द्वारा बनाये गये विधि-विधानों का पालन करने के लिए तैयार रहना चाहिए और उनके परिणामों से अवगत होना चाहिए। शास्त्र कहते हैं—*धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गत: स पन्था:* (महाभारत, वन पर्व ३१३.११७)। यद्यपि कृष्णभावनामृत के रहस्य को समझ पाना अत्यन्त कठिन है किन्तु जो व्यक्ति पूर्ववर्ती आचार्यों के आदेशों के अनुसार अग्रसर होता है और परम्परा से चले आ रहे पूर्वजों के पदचिह्नों पर चलता है, उसे सफलता अवश्य मिलेगी। अन्यों को नहीं। इस सम्बन्ध में श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*छाडिया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा*—गुरु तथा आचार्यों की सेवा किये बिना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती। अन्यत्र वे कहते हैं—

एइ छय गोसाञि ग्राँर—मुइ ताँर दास।
ताँ-सबार पद-रेणु मोर पञ्च-ग्रास॥

"मैं तो उस व्यक्ति को ही मानता हूँ जो षड् गोस्वामियों के पदचिह्नों पर चलता है और ऐसे व्यक्ति की चरण-धूलि मेरा खाद्य है।"

पूर्वे ग्रैछे जरासन्ध-आदि राजगण।
वेद धर्म करि' करे विष्णुर पूजन॥८॥

अनुवाद

प्राचीनकाल में जरासंध (कंस का श्वसुर) जैसे राजाओं ने वैदिक अनुष्ठानों का पालन किया और इस तरह विष्णु की पूजा की।

तात्पर्य

इन श्लोकों में *चैतन्य-चरितामृत* के प्रणेता कृष्णदास कविराज गोस्वामी पञ्चतत्त्व

की पूजा की महत्ता पर गम्भीता से विचार कर रहे हैं। यदि कोई गौरसुन्दर या कृष्ण का भक्त बन जाता है किन्तु पञ्चतत्त्व *श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द*) को महत्त्व प्रदान नहीं करता तो उसके कार्यकलाप अपराध माने जाते हैं। अथवा रूप गोस्वामी के शब्दों में उन्हें *उत्पात* कहा जायेगा। अतएव भगवान् कृष्ण या गौरसुन्दर का भक्त बनने के पूर्व पञ्चतत्त्व को सम्मान देने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।

कृष्ण नाहि माने, ताते दैत्य करि' मानि।
चैतन्य ना मानिले तैछे दैत्य तार जानि॥९॥

अनुवाद

जो कृष्ण को भगवान् नहीं मानता, वह निश्चय ही असुर है। इसी तरह जो श्री चैतन्य महाप्रभु को उन्हीं भगवान् कृष्ण के रूप में नहीं मानता, उसे भी असुर ही समझना चाहिए।

तात्पर्य

प्राचीनकाल में जरासन्ध जैसे राजा हुए हैं जो वैदिक अनुष्ठान का पालन करते थे, दानी, कुशल क्षत्रियों जैसा कार्य करते थे, समस्त क्षत्रिय गुणों से सम्पन्न होते थे और ब्राह्मण-संस्कृति के भी अनुयायी हुआ करते थे, किन्तु कृष्ण को भगवान् करके नहीं मानते थे। जरासन्ध ने कृष्ण पर कई बार आक्रमण किया किन्तु हर बार पराजित होता रहा। अत: जरासन्ध जैसा कोई भी व्यक्ति, जो कृष्ण को भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं करता, असुर समझा जाना चाहिए। इसी तरह जो व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु को साक्षात् कृष्ण नहीं मानता वह भी असुर है। प्रामाणिक शास्त्रों का यही निष्कर्ष है। अतएव कृष्ण की भक्ति वे बिना गौरसुन्दर की तथाकथित भक्ति और गौरसुन्दर की भक्ति के बिना कृष्ण की तथाकथित भक्ति विहीन कार्यकलाप हैं। जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत के पथ पर सफल होना चाहता है, उसे गौरसुन्दर तथा कृष्ण दोनों के व्यक्तित्व का पूरा-पूरा भान होना चाहिए। गौरसुन्दर के व्यक्तित्व को जानने का अर्थ है *श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द* को जानना। *चैतन्य-चरितामृत* का प्रणेता इन महापुरुषों का अनुगामी होने के कारण कृष्णभावनामृत में सिद्धि-लाभ के लिए इस सिद्धान्त पर बल दे रहा है।

मोरे ना मानिले सब लोक हबे नाश।
इथि लागि' कृपार्द्र प्रभु करिल संन्यास।।१०।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने विचार किया कि जब तक लोग मुझे स्वीकार नहीं करेंगे, वे विनष्ट होते रहेंगे। इसलिए उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में (१२.३.५१) कहा गया है—*कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्त-सङ्ग: परं व्रजेत्*—हरे कृष्ण मन्त्र या कृष्ण- नाम का कीर्तन करने से ही मनुष्य मुक्त हो जाता है और भगवद्धाम को जाता है। यह कृष्णभावनामृत चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ही प्राप्त किया जाना चाहिए। जब तक वह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों को सफलता का एकमात्र साधन नहीं स्वीकार करता तब तक उसे पूर्ण कृष्णभावनामृत की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी विचार से महाप्रभु ने संन्यास स्वीकार किया क्योंकि तब लोग उनका सम्मान करेंगे और शीघ्र ही कृष्णभावनामृत के स्तर तक उठ सकेंगे। चूँकि साक्षात् कृष्ण-रूप चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णभावनामृत आन्दोलन का सूत्रपात किया, अतएव उनकी कृपा के बिना कोई भी व्यक्ति कृष्णभावनामृत के दिव्य स्तर को प्राप्त नहीं हो सकता।

संन्यासि-बुद्ध्ये मोरे करिबे नमस्कार।
तथापि खण्डिबे दु:ख, पाइबे निस्तार।।११।।

अनुवाद

यदि कोई पुरुष चैतन्य महाप्रभु को एक सामान्य संन्यासी भी मान कर उन्हें नमस्कार करता है तो उसके सांसारिक दुख घट जाते हैं और अन्तत: उसे मुक्ति प्राप्त होती है।

तात्पर्य

कृष्ण इतने दयालु हैं कि वे सदैव बद्धजीवों को भौतिक जगत से मुक्त करने के विषय में ही सोचा करते हैं। इसीलिए कृष्ण अवतार ग्रहण करते हैं जैसा कि *भगवद्गीता* से स्पष्ट सूचित है (४.७)—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"हे भरतवंशी! जब जब धर्म की हानि होती है, और अधर्म की प्रधानता होने लगती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ।" कृष्ण सदा ही जीवों की कई प्रकार से रक्षा करते हैं। वे स्वयं आते हैं, वे अपने विश्वस्त भक्तों को भेजते हैं और अपने पीछे *भगवद्गीता* जैसे शास्त्र छोड़ते जाते हैं। ऐसा क्यों? इसलिए जिससे कि लोग माया के चंगुल से मुक्त होने के आशीर्वाद का लाभ उठा सकें। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसीलिए संन्यास ग्रहण किया जिससे उन्हें सामान्य संन्यासी मानने वाला मूर्ख भी उनका सम्मान करे तो उसका भौतिक दुख घट सके और वह माया के बन्धन से छूट सके। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती इंगित करते हैं कि चैतन्य महाप्रभु श्री राधा और कृष्ण के संयुक्त रूप हैं (*महाप्रभु श्रीचैतन्य, राधा-कृष्ण—नहे अन्य*। अतएव जब मूर्खों ने महाप्रभु को सामान्य व्यक्ति समझ कर उनके साथ अनादर का बर्ताव करना शुरू किया तो कृपालु महाप्रभु ने इन अपराधकर्ताओं का उद्धार करने के लिए संन्यास ले लिया जिससे ये लोग उन्हें संन्यासी मान कर उनको नमस्कार करें। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सामान्य लोगों पर अपनी महान् कृपा प्रदान करने के लिए संन्यास ग्रहण किया जो उन्हें राधा तथा कृष्ण रूप में नहीं समझ सकते।

हेन कृपामय चैतन्य ना भजे ग्रेइ जन।
सर्वोत्तम हइलेओ तारे असुरे गणन॥१२॥

अनुवाद

जो व्यक्ति कृपामय चैतन्य महाप्रभु के प्रति सम्मान प्रदर्शित नहीं करता या उनकी पूजा नहीं करता, उसे असुर समझना चाहिए, भले ही वह मानव समाज में उच्च स्थान क्यों न ग्रहण करता हो।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज कहते हैं, "हे जीवो! तुम केवल कृष्णभावनामृत में लगो। यही श्री चैतन्य महाप्रभु का संदेश है।" महाप्रभु ने अपने *शिक्षाष्टक* में कृष्णभावनामृत के दर्शन का ही उपदेश दिया है और कहा है—*इहा हैते सर्व सिद्धि हैबे तोमार*—हरे कृष्ण महामन्त्र का

कीर्तन करने से मनुष्य को जीवन की सारी सिद्धियाँ मिल जायेंगी। अतएव जो उनका सम्मान नहीं करता या इन समस्त करुणामय संकेतों के बावजूद उनकी कृपा को नहीं समझता वह असुर है या कि भगवान् विष्णु की प्रामाणिक भक्ति का विरोधी है, भले ही उसे मानव समाज में उच्च स्थान क्यों न प्राप्त हो। असुर ऐसे व्यक्ति का द्योतक है जो भगवान् विष्णु की भक्ति का विरोध करता है। यह ध्यान देने की बात है कि श्री चैतन्य महाप्रभु की आराधना किये बिना कृष्ण-भक्त बनना व्यर्थ है और यदि कृष्ण की पूजा नहीं की जाती तो श्री चैतन्य महाप्रभु का भी भक्त बनना व्यर्थ है। ऐसी भक्ति को कलियुगी भक्ति मानना चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि नास्तिक स्मार्त या पाँच देवों के पूजक थोड़ी-सी भौतिक सफलता के लिए भगवान् विष्णु की पूजा तो करते हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति सम्मान प्रदर्शित नहीं करते। वे उन्हें सामान्य व्यक्ति मानते हुए गौरसुन्दर तथा श्रीकृष्ण में भेदभाव बरतते हैं। ऐसी भावना भी आसुरी है और आचार्यों के निर्णय के विरुद्ध है। ऐसा निर्णय कलियुगी है।

अतएव पुनः कहों ऊर्ध्वबाहु हञा।
चैतन्य-नित्यानन्द भज कुतर्क छाड़िया॥१३॥

अनुवाद

इसलिए मैं अपनी भुजाएँ उठाकर फिर कहता हूँ कि झूठे तर्कों को छोड़ कर श्री चैतन्य तथा नित्यानन्द की पूजा करो।

तात्पर्य

चूँकि यदि कोई पुरुष कृष्ण-भक्ति करता है किन्तु श्रीकृष्ण चैतन्य तथा नित्यानन्द प्रभु को नहीं जानता तो वह अपना समय व्यर्थ गँवाता है। इसलिए कृष्णदास कविराज गोस्वामी हर एक से प्रार्थना करते हैं कि वे श्री चैतन्य तथा नित्यानन्द और पंचतत्त्व की पूजा करें। वे विश्वास दिलाते हैं कि जो भी व्यक्ति ऐसा करेगा वह कृष्णभावनामृत में अवश्य सफल होगा।

यदि वा तार्किक कहे,—तर्क से प्रमाण।
तर्कशास्त्रे सिद्ध ग्रेइ, सेइ सेव्यमान॥१४॥

अनुवाद

तर्कशास्त्री कहते हैं, "जब तक तर्क के द्वारा ज्ञान प्राप्त न कर लिया जाय, तब तक भला कोई आराध्य देव का निश्चय कैसे कर सकता है?"

श्रीकृष्णचैतन्य-दया करह विचार।
विचार करिले चित्ते पाबे चमत्कार॥१५॥

अनुवाद

यदि आप सचमुच तर्क में रुचि रखते हैं तो इसका प्रयोग श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा पर कीजिये। यदि आप ऐसे करेंगे तो पायेंगे कि यह अत्यन्त अद्भुत है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की टीका है कि सामान्य लोग संकुचित विचारधारा के कारण अनेक प्रकार के मानवोपयोगी कार्य करते हैं किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा चलाये जाने वाले मानव कल्याण कार्य भिन्न हैं। उन तर्क शास्त्रियों के लिए जो तर्कसम्मत तथ्य को ही स्वीकारते हैं, तर्क के बिना परम सत्य को स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। दुर्भाग्यवश जब ऐसे तर्कशास्त्री श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा के बिना ऐसे मार्ग पर प्रवृत्त होते हैं तो वे तर्क के स्तर पर ही रह जाते हैं और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति नहीं कर पाते। किन्तु यदि कोई तर्कशास्त्री इतना बुद्धिमान होता है कि अपने तर्कों का प्रयोग मूल आध्यात्मिक वस्तु को समझने के लिए करता है तो उसकी समझ में यह आयेगा कि तर्क के आधार पर प्राप्त ज्ञान-भण्डार से वह उन परम सत्य को नहीं जान सकता जो कि अपूर्ण इन्द्रियों की पहुँच के बाहर है। इसीलिए *महाभारत* में कहा गया है—*अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्* (महाभारत, भीष्म पर्व ५.२२)। जो सांसारिक प्राणियों की कल्पना या चिन्तनशक्ति के परे है, भला उस तक केवल तर्क द्वारा कैसे पहुँचा जा सकता है? तर्क की आध्याशक्ति बहुत कम होती है और आध्यात्मिक ज्ञान में इसका प्रयोग करने पर यह सदैव अपूर्ण रहती है। सांसारिक तर्क प्रस्तुत करने पर प्रायः परम सत्य के विषय में गलत निष्कर्ष निकलते हैं और ऐसे निष्कर्षों के फलस्वरूप मनुष्य शृगाल की योनि को प्राप्त होता है।

इतना होने पर भी जो तर्क द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन को समझने के इच्छुक हैं, उनका स्वागत है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी उन्हें इस प्रकार सम्बोधित करते हैं, "आप महाप्रभु की कृपा की अग्नि-परीक्षा कीजिये और यदि आप सचमुच तर्कशास्त्री हैं, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि चैतन्य महाप्रभु से अधिक कृपालु अन्य कोई व्यक्ति नहीं है।" तर्कशास्त्रियों को चाहिए कि वे अन्य मानव कल्याणकारी कार्यों की तुलना चैतन्य महाप्रभु के कृपामय कार्यों से करें। यदि उनका निर्णय निष्पक्ष है, तो वे यह समझ जायेंगे कि श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यों से बढ़ कर कोई अन्य मानव-कल्याणकारी कार्य नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति शरीर के अनुसार जन-कल्याण कार्यों में लगा हुआ है किन्तु *भगवद्गीता* से (२.१८) पता चलता है *अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः*—भौतिक शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा शाश्वत है। श्री चैतन्य महाप्रभु के उपचारी कार्य शाश्वत आत्मा के निमित्त किये जाते हैं। किन्तु यदि कोई शरीर को लाभ पहुँचाना चाहता है तो वह तो नश्वर है और मनुष्य को अपने वर्तमान कार्यों के अनुसार दूसरा शरीर ग्रहण करना होगा। अतएव जो व्यक्ति देहान्तरण के इस विज्ञान को नहीं समझता और शरीर को ही सर्वेसर्वा मानता है, उसकी बुद्धि अधिक उन्नत नहीं होती। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शरीर की आवश्यकताओं की उपेक्षा किये बिना आध्यात्मिक प्रगति प्रदान की जिससे मानवता का शुद्धिकरण हो सका। अतएव यदि तर्कशास्त्री निष्पक्ष निर्णय करें तो वे पायेंगे कि चैतन्य महाप्रभु *महावदान्यावतार* हैं। यहाँ तक कि वे कृष्ण से भी अधिक वदान्य हैं। भगवान् कृष्ण की यह अपेक्षा थी कि लोग उनकी शरण में आयें किन्तु उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के समान भगवत्प्रेम का वितरण नहीं किया। इसीलिए श्रील रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को इन शब्दों में नमस्कार किया है—*नमो महावदान्याय कृष्णप्रेम प्रदाय ते कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः*। भगवान् कृष्ण ने एकमात्र *भगवद्गीता* प्रदान की जिससे कृष्ण को यथारूप समझा जा सकता है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने, जो साक्षात् कृष्ण भी हैं, लोगों को बिना किसी भेदभाव के कृष्ण-प्रेम प्रदान किया।

बहु जन्म करे यदि श्रवण, कीर्तन।
तबु त' ना पाय कृष्णपदे प्रेमधन॥१६॥

अनुवाद

यदि कोई हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में दस अपराधों से पूर्ण रहता है तो वह चाहे अनेक जन्मों तक पवित्र नाम का कीर्तन करने का प्रयास क्यों न करे, उसे वह भगवत्प्रेम प्राप्त नहीं हो सकेगा जो इस कीर्तन का चरम लक्ष्य है।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु को स्वीकार किये बिना कोई व्यक्ति चाहे अनेकानेक वर्षों तक हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन क्यों नहीं करे, उसे भक्ति-पद प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि श्री चैतन्य द्वारा *शिक्षाष्टक* में दिये गये आदेश का दृढ़ता से पालन करे—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीय: सदा हरि:॥

''मनुष्य को चाहिए कि अपने को तिनके से भी नीच सोचते हुए विनीत भाव से भगवन्नाम का कीर्तन करे। उसे वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु होना चाहिए, मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना से रहित होना चाहिए और अन्यों को सम्मान देने के लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसी मानसिक अवस्था में मनुष्य भगवन्नाम का निरन्तर कीर्तन कर सकता है।'' (शिक्षाष्टक ३)। जो इस निर्देश का पालन करता है, वह दस प्रकार के अपराधों से मुक्त होकर कृष्णभावनामृत में सफल होता है और भगवद्भक्ति पद को प्राप्त होता है।

मनुष्य को यह जान लेना चाहिए कि भगवन्नाम तथा साक्षात् भगवान् अभिन्न हैं। पवित्र नाम के कीर्तन में अपराधविहीन हुए बिना इस निष्कर्ष तक नहीं पहुँचा जा सकता। हम अपनी भौतिक गणना के अनुसार नाम तथा वस्तु में अन्तर देखते हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत में परमतत्त्व सदैव परम होता है, परमतत्त्व का नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ साक्षात् परमतत्त्व के समान होती हैं। इस तरह यदि कोई अपने को पवित्र नाम का नित्यदास मानता है और इसी भाव से पवित्र नाम का वितरण सारे संसार में करता है तो उसे भगवान् का नित्यदास माना जाता है। जो इस भाव से, बिना अपराध के, कीर्तन करता है, वह निश्चय ही इस ज्ञान को प्राप्त कर लेता

है कि भगवन्नाम तथा भगवान् अभिन्न हैं। पवित्र नाम की संगति करना और पवित्र नाम का कीर्तन करना भगवान् से प्रत्यक्ष संगति करना है। *भक्तिरसामृत सिन्धु* में स्पष्ट कहा गया है—*सेवान्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।* जब मनुष्य पवित्र नाम की सेवा में लगता है तो पवित्र नाम प्रकट होता है। विनीत भाव से युक्त ऐसी सेवा जीभ से चालू होती है। *सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ*—मनुष्य को चाहिए कि जीभ को पवित्र नाम की सेवा में लगाये। हमारा कृष्णभावनामृत-आन्दोलन इसी सिद्धान्त पर आधारित है। हम कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के सारे सदस्यों को पवित्र नाम की सेवा में लगाने का यत्न करते हैं। चूँकि पवित्र नाम तथा कृष्ण अभिन्न हैं, इसलिए कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के सदस्य न केवल निरपराध भाव से भगवन्नाम का कीर्तन करते हैं अपितु वे अपनी जीभों को कोई ऐसी वस्तु नहीं खाने देते जो भगवान् को अर्पित न हुई हो। भगवान् कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

"यदि कोई प्रेम तथा भक्तिपूर्वक मुझे एक पत्ती, फूल, फल या जल अर्पित करता है तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ (भगवद्गीता ९.२६)। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के विश्व-भर में अनेक मन्दिर हैं और प्रत्येक मन्दिर में भगवान् को भोजन अर्पित किया जाता है। भगवान् की इच्छापूर्ति के लिए भक्तगण निरपराध भाव से भगवन्नाम का कीर्तन करते हैं और वे भगवान् को अर्पित किये बिना कोई वस्तु नहीं खाते। भक्ति में जीभ का कार्य है हरे कृष्ण महामन्त्र का उच्चारण करना और भगवान् को अर्पित किये गये प्रसाद को खाना।

ज्ञानतः सुलभा मुक्तिर्भुक्तिर्यज्ञपुण्यतः।
सेयं साधनसाहस्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा॥१७॥

अनुवाद

"दार्शनिक ज्ञान के अनुशीलन से मनुष्य अपनी आध्यात्मिक स्थिति को समझ कर मुक्त हो सकता है; यज्ञ तथा पुण्यकर्मों को सम्पन्न करके मनुष्य स्वर्गलोक में इन्द्रियतृप्ति प्राप्त कर सकता है, लेकिन भगवद्भक्ति इतनी विरल है कि ऐसे हजारों यज्ञ करके भी इसे प्राप्त नहीं किया

जा सकता।

तात्पर्य

प्रह्लाद महाराज उपदेश देते हैं—

मतिर्न कृष्णे परत: स्वतो वा
मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्
(भागवत ७.५.३०)

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रि
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थ:।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत॥
(भागवत ७.५.३२)

इन श्लोकों की व्याख्या की जानी चाहिए। इनका तात्पर्य है कि वैदिक कर्मकाण्ड करने से किसी को *कृष्णभक्ति* प्राप्त नहीं हो सकती। उसे शुद्ध भक्त के पास जाना होता है। नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है—*छाड़िया वैष्णवसेवा निस्तार पायेछे केबा*—शुद्ध वैष्णव की सेवा किये बिना भला किसका विस्तार हुआ है? यह प्रह्लाद महाराज का कथन है कि जब तक शुद्ध वैष्णव के पाँवों की धूलि को मस्तक पर धारण नहीं किया जाता, तब तक भक्ति प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं है। यही रहस्य है। उपर्युक्त *तन्त्रवचन*, जो कि *भक्तिरसामृत सिन्धु* से उद्धत है इस सम्बन्ध में हमारा मार्गदर्शक है।

कृष्ण यदि छुटे भक्ते भुक्ति मुक्ति दिया।
कभु प्रेमभक्ति ना देन राखेन लुकाइया॥१८॥

अनुवाद

यदि कोई भौतिक इन्द्रियतृप्ति या मुक्ति चाहता है तो कृष्ण उसे तुरन्त प्रदान करते हैं, किन्तु वे भक्ति को छिपाकर रखते हैं।

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः।

अस्त्वेवमंग भगवान् भजतां मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्मन भक्तियोगम्॥१९॥

अनुवाद

"महर्षि नारद ने कहा—"हे महाराज युधिष्ठिर! भगवान् कृष्ण आपकी सेवा के लिए सदा तत्पर रहते हैं। ये आप के स्वामी, गुरु, ईश्वर, प्रिय मित्र तथा आपके परिवार के मुखिया हैं। फिर भी ये कभी-कभी आपके दास या आज्ञापालक का कार्य करते हैं। आप अत्यन्त भाग्यशाली हैं क्योंकि यह सम्बन्ध भक्तियोग द्वारा ही सम्भव हो पाता है। भगवान् मुक्ति तो सरलता से देते हैं, किन्तु वे किसी को भक्तियोग नहीं प्रदान करते क्योंकि वे उसी से भक्त से बँधे हुए हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (५.६.१८) उद्धृत है। शुकदेव गोस्वामी ने ऋषभदेव के चरित्र का वर्णन करते समय भक्तियोग तथा मुक्ति में अन्तर बताने के लिए यह श्लोक पढ़ा था। यदुओं तथा पांडवों से सम्बन्धित होने के कारण कभी कृष्ण उनके स्वामी की तरह कार्य करते थे, कभी उनके सलाहकार, कभी मित्र, कभी परिवार के मुखिया और कभी उनके सेवक की भी तरह कार्य करते थे। एक बार उन्हें युधिष्ठिर द्वारा शान्ति समझौते के विषय में लिखा गया पत्र दुर्योधन के पास ले जाना पड़ा था। इसी प्रकार वे अर्जुन के सारथी बने थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भक्तियोग में भगवान् और भक्त के बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यह सम्बन्ध दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस के रूप में स्थापित होता है। यदि भक्त मात्र मुक्ति चाहता है तो भगवान् उसे सहज ही दे देते हैं जैसा कि बिल्वमंगल ठाकुर ने पुष्टि की है। *मुक्तिः स्वयं मुकुलितांजलि सेवतेऽस्मान*—भक्त के लिए मुक्ति उतनी महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि वह तो सदैव उसके द्वार पर सेवा करने के लिए हाथ जोड़े खड़ी रहती है। अतएव भक्त को वृन्दावनवासियों के आचरण से आकृष्ट होना चाहिए क्योंकि वे कृष्ण के संग रहते हैं। वहाँ का स्थल, जल, गाएँ, वृक्ष तथा फल शान्त रस में कृष्ण की सेवा करते हैं, कृष्ण के दास दास्य भाव में और कृष्ण के गोपमित्र सख्य भाव में सेवा करते हैं। इसी प्रकार वयोवृद्ध गोपियाँ तथा गोप-माता, पिता, चाचा आदि के रूप में कृष्ण की सेवा करते हैं तथा तरुणी गोपियाँ माधुर्य रस

में कृष्ण की सेवा करती हैं।

भक्ति करते समय मनुष्य को चाहिए कि इन दिव्य सम्बन्धों में से किसी एक में कृष्ण की सेवा करने में उन्मुख हो। यही जीवन की असली सफलता है। भक्त के लिए मुक्ति पा लेना कठिन नहीं है। यहाँ तक कि जो कृष्ण से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता वह भी ब्रह्मतेज में तदाकार होकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यह *सायुज्य मुक्ति* कहलाती है। वैष्णवजन सायुज्य मुक्ति को नहीं ही स्वीकार करते, भले ही वे मुक्ति के अन्य रूपों को—यथा सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य तथा सार्ष्टि को स्वीकार कर लें। किन्तु शुद्ध भक्त किसी प्रकार की मुक्ति स्वीकार नहीं करता। वह तो दिव्य सम्बन्ध में कृष्ण की ही सेवा करना चाहता है। वह आध्यात्मिक जीवन की सिद्ध अवस्था है। मायावादी दार्शनिक ब्रह्मतेज में लीन होना चाहते हैं जबकि भक्तगण मुक्ति के इस पक्ष की अवहेलना करते हैं। इस प्रकार की मुक्ति, जिसे *कैवल्य* कहा जाता है, श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ठाकुर ने—*कैवल्यं नरकायते*—ब्रह्म से एकाकार होना नरक जाने के तुल्य बतलाया है। इसीलिए मायावादी दर्शन, जो ब्रह्म से एकाकार होना है, भक्त के लिए नरकतुल्य है। वह उसे कभी नहीं स्वीकार करता। मायावादी दार्शनिक यह नहीं जानते कि यदि वे ब्रह्मतेज में लीन भी हो लें तो इससे उन्हें परम विश्राम नहीं मिलेगा। आत्मा कभी भी ब्रह्मतेज में निष्क्रिय नहीं रह सकता, कुछ काल के बाद वह सक्रिय होना ही चाहेगा। किन्तु भगवान् से सम्बद्ध न होने से उसमें आध्यात्मिक सक्रियता नहीं रहती, अतएव और अधिक क्रियाशीलता के लिए उसे इस भौतिक जगत में उतरना होता है। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* में (१०.२.३२) इस प्रकार हुई है—

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः।
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥

चूँकि मायावादी दार्शनिकों को भगवान् की दिव्य सेवा के विषय में कोई जानकारी नहीं होती, अतएव भौतिक कार्यकलापों से मुक्ति पाने और ब्रह्मतेज में लीन होने के बाद उन्हें इस भौतिक जगत में अस्पताल या स्कूल खोलना अथवा इसी तरह के लोकोपयोगी कार्य करने के लिए फिर से आना पड़ता है।

हेन प्रेम श्रीचैतन्य दिला य़था तथा।
जगाइ माधाइ पर्यन्त—अन्येर का कथा।।२०।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस कृष्ण-प्रेम को सभी जगह, यहाँ तक कि जगाइ तथा माधाइ जैसे पतितों को भी मुक्तहस्त होकर प्रदान किया है। तो भला उन सबों के विषय में क्या कहा जाय जो पहले से पवित्र तथा उन्नत हैं?

तात्पर्य

मानव समाज के लिए श्री चैतन्य द्वारा दी गई भेंट तथा अन्यों की भेंट में अन्तर यह है कि परोपकारी लोगों ने शरीर से सम्बन्धित सुविधाएँ प्रदान की हैं, जबकि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवत्प्रेम द्वारा भगवद्धाम वापस जाने के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन प्रदान करते हैं। यदि इन दोनों भेंटों की तुलना की जाय तो जो व्यक्ति गम्भीर होगा वह श्री चैतन्य महाप्रभु को ही सर्वाधिक श्रेय प्रदान करेगा। इसीलिए कविराज गोस्वामी ने कहा है—

श्रीकृष्णचैतन्यदया करह विचार।
विचार करिले चित्ते पाबे चमत्कार।।

"यदि आप तर्क में रुचि रखते हैं तो कृपया उसका प्रयोग श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा के लिए कीजिये। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपको यह अतीव अद्भुत लगेगी।" (चैतन्य-चरितामृत आदि ८.१५)

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का कहना है—

दीन-हीन य़त छिल
हरि-नामष उद्धारिल
तार साक्षी जगाइ माधाइ।

जगाइ तथा माधाइ दोनों भाई इस कलियुग के पापी लोगों के दृष्टान्त हैं। वे समाज के अत्यन्त ऊधमी व्यक्ति थे क्योंकि वे मांसभक्षक, शराबी, स्त्री-आखेटक, धूर्त तथा चोर थे। फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका उद्धार किया तो फिर गम्भीर, पवित्र, भक्त तथा विवेकवान् व्यक्ति के विषय में क्या कहा जा सकता है। *भगवद्गीता* भी पुष्टि करती है (*किं पुनर्ब्राह्मण:*

पुन्या भक्ता राजर्षय: तथा) कि ब्राह्मण तुल्य योग्य भक्तों और राजर्षियों के लिए तो कुछ कहना ही नहीं जो भी व्यक्ति शुद्ध भक्तों की संगति से कृष्णभावनाभावित हो जाता है वह भगवद्धाम जाने का पात्र बन जाता है। *भगवद्गीता* में (९.३२) भगवान् घोषणा करते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु: पापयोनय:।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम्।

"हे पृथापुत्र! जो मेरी शरण में आ जाते हैं, वे भले ही निम्न कुल में जन्मे स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र क्यों न हों, वे परम गति को प्राप्त होते हैं।"

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगाइ तथा माधाइ नामक दो पतित भाइयों का उद्धार किया, किन्तु सम्प्रति, पूरा जगत जगाइयों तथा माधाइयों से—अर्थात् मांसभक्षकों, जुआड़ियों तथा चोरों से भरा हुआ है जो समाज में सभी तरह के उत्पात करते हैं। ऐसे व्यक्तियों के कार्य आमफहम हो चुके हैं। शराबी, स्त्री- आखेटक, मांसाहारी, चोर, उचक्का होना अब गर्हित नहीं माना जाता क्योंकि मानव समाज ऐसे तत्वों को आत्मसात् कर चुका है। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं होता कि ऐसे व्यक्तियों के गर्हित गुण मानव-समाज को माया के चंगुल से छुड़ा लेंगे। उल्टे, ये लोग मानवता को प्रकृति के कठोर नियमों में फँसा देंगे। मनुष्य के सारे कार्यकलाप प्रकृति के गुणों के प्रभाव में आकर सम्पन्न होते हैं। (*प्रकृते: क्रियमाणानि गुणै: कर्माणि सर्वश:*)। चूँकि लोग अब तमोगुण से तथा कुछ हद तक रजोगुण से साथ करते हैं और उनमें सत्त्वगुण का लेश भी नहीं पाया जाता, इसीलिए वे अधिकाधिक लोभी तथा कामी होते जा रहे हैं, क्योंकि इन गुणों की संगति करने का यही परिणाम होता है। *तदा रजस्तमोभावा: कामलोभादयश्च ये*—प्रकृति के इन दो निम्न गुणों का साथ करने से मनुष्य कामी तथा लोभी हो जाता है। (भागवत १.२.१९)। वस्तुत: आधुनिक मानव-समाज में हर व्यक्ति लोभी तथा कामी है, अतएव उसके उद्धार का एक ही साधन है श्री चैतन्य महाप्रभु का संकीर्तन-आन्दोलन, जो सारे जगाइयों-माधाइयों को सत्त्वगुण के सर्वोच्च पद अर्थात ब्राह्मण संस्कृति तक ले जा सकता है।

श्रीमद्भागवत का (१.२.१८-१९) वचन है—

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी॥
तदा रजस्तमो भावाः काम लोभादयश्च ये॥

मानव-समाज की अस्तव्यस्तता को देखते हुए यदि कोई सचमुच अमन-चैन चाहता है तो उसे कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में सम्मिलित होकर *भगवत-धर्म* में लग जाना चाहिए। इससे सारा अज्ञान तथा विषयवासना दूर हो जाते हैं और इनके दूर हो जाने पर लोभ तथा काम से भी छुटकारा मिल जाता है। लोभ तथा काम से मुक्त होने पर मनुष्य में ब्राह्मण के गुण आ जाते हैं, जिससे वह प्रगति करता है और वैष्णव-पद प्राप्त कर लेता है। इसी वैष्णव पद पर पहुँच कर मनुष्य अपने सुप्त भगवत्प्रेम को जागृत कर सकता है और ऐसा होते ही उसका जीवन सफल हो जाता है।

अधुना मानव-समाज में तमोगुण ही पल रहा है, रजोगुण के तो यत्रतत्र दर्शन होते हैं (काम तथा लोभ से पूर्ण) संसार की सारी जनसंख्या अधिकांशतया शूद्र तथा कुछ कुछ वैश्य है और धीरे-धीरे केवल शूद्र होती जा रही है। साम्यवाद शूद्रों का आन्दोलन है और पूंजीवाद वैश्यों के लिए है। शूद्रों तथा वैश्यों की आपसी लड़ाई से समाज की जघन्य अवस्था के कारण धीरे-धीरे साम्यवादी विजयी होंगे और ऐसा होते ही समाज में जो कुछ बचा है वह भी विनष्ट हो जायेगा। यदि साम्यवादी मनोवृत्ति का कोई मुकाबला कर सकता है तो वह कृष्णभावनामृत-आन्दोलन है जो साम्यवादियों को भी साम्यवादी समाज का असली विचार प्रदान कर सकता है। साम्यवादी विचारधारा के अनुसार हर वस्तु का मालिक राज्य को होना चाहिए। लेकिन कृष्णभावनामृत-आन्दोलन इस धारण को विस्तार देते हुए ईश्वर को प्रत्येक वस्तु का स्वामी स्वीकार करता है। लोग इसे नहीं समझ सकते क्योंकि उन्हें ईश्वर का कोई अनुभव (ज्ञान) नहीं है। किन्तु कृष्णभावनामृत-आन्दोलन उन्हें ईश्वर को समझने तथा यह समझने में सहायक बन सकता है कि हर वस्तु ईश्वर की है। चूँकि हर वस्तु ईश्वर की सम्पत्ति है और सारे ही जीव—मनुष्य ही नहीं अपितु पशु, पक्षी, वृक्ष आदि भी ईश्वर की सन्तानें हैं, अतएव हर एक को ईश्वर पर आश्रित रहने का अधिकार है। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन का यही सार-संक्षेप है।

स्वतन्त्र ईश्वर प्रेम-निगूढ़भाण्डार।
बिलाइल य़ारे तारे, ना कैल विचार॥२१॥

अनुवाद

भगवान के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। अतएव वे अत्यन्त गुह्य रूप से संचित वरदान भगवत्प्रेम के बिना सोचे विचारे हर एक को वितरित कर सकते हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य के आन्दोलन का यही लाभ है। यदि कोई किसी प्रकार से भी हरे-कृष्ण-आन्दोलन के सम्पर्क में आता है तो चाहे वह शूद्र हो, वैश्य हो, या जगाइ, माधाइ से भी नीच हो उसे आध्यात्मिक चेतना प्राप्त होती है और तुरन्त ही उसमें भगवत्प्रेम उत्पन्न हो जाता है। अब हमें इसका वास्तविक अनुभव है कि सारे विश्व में यह आन्दोलन एकमात्र हरे-कृष्ण-महामन्त्र के कीर्तन से अनेक ऐसे लोगों को भगवत्प्रेमी बना रहा है। वस्तुतः श्री चैतन्य महाप्रभु सारे विश्व के गुरु के रूप में प्रकट हुए हैं। वे अपराधियों तथा निर्दोषों में भेदभाव नहीं बरतते। *कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते*—वे हर एक को मुक्तहस्त होकर भगवत्प्रेम प्रदान करते हैं। इसका वास्तविक अनुभव किया जा सकता है जैसा कि अगले श्लोक में बतलाया गया है।

अद्यापिह देख चैतन्य-नाम य़েই लय।
कृष्ण-प्रेमे पुलकाश्रु-विह्वल से हय॥२२॥

अनुवाद

चाहे कोई अपराधी या निर्दोष होते हुए भी श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द का कीर्तन करता है, तो वह भावविभोर हो उठता है और उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं।

तात्पर्य

प्राकृत सहजिये जो *निताइ गौर राधेश्याम* का कीर्तन करते हैं उन्हें भागवत के निष्कर्ष का कोई ज्ञान नहीं रहता और वे शायद ही वैष्णव विधि-विधानों का पालन करते हैं किन्तु चूँकि वे *भज-निताइ- गौर* का कीर्तन करते हैं अतएव उनके कीर्तन से तुरन्त ही अश्रु तथा अन्य भावलक्षण प्रकट हो आते हैं। यद्यपि वे वैष्णव-दर्शन के सिद्धान्तों को नहीं जानते और सुशिक्षित

भी नहीं होते किन्तु वे इन लक्षणों से लोगों को आकृष्ट करते हैं। निस्सन्देह उनके भावाश्रु अन्ततः उनके सहायक बन सकते हैं क्योंकि शुद्ध भक्त के संपर्क में आते ही उनके जीवन सफल हो जायेंगे। यहाँ तक कि प्रारम्भ में भी निताई गौर के पवित्र नाम का कीर्तन करने के फलस्वरूप भगवत्प्रेम के मार्ग में उनकी प्रगति तेजी से होती है।

'नित्यानन्द' बलिते हय कृष्णप्रेमोदय।
आउलाय सकल अंग, अश्रु-गङ्गा वय॥२३॥

अनुवाद

केवल नित्यानन्द प्रभु के विषय में बातें करने से मनुष्य में कृष्ण-प्रेम जागृत हो जाता है। इस प्रकार उसके सारे अंग भाव से व्याकुल हो उठते हैं और उसकी आँखों से गंगा की धारा के समान अश्रु बहने लगते हैं।

'कृष्णनाम' करे अपराधेर विचार।
कृष्ण बलिले अपराधीर ना हय विकार॥२४॥

अनुवाद

हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करते समय अपराधों पर विचार करना होता है। इसलिए केवल हरे कृष्ण का कीर्तन करने से कोई भावदशा को प्राप्त नहीं होता।

तात्पर्य

हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने के पूर्व *श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द* के नामों का उच्चारण करना लाभप्रद होता है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य तथा प्रभु नित्यानन्द—इन दो पवित्र नामों के उच्चारण से मनुष्य तुरन्त भावविभोर हो उठता है और यदि वह इसके बाद हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करता है तो सारे अपराधों से मुक्त हो जाता है।

हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करते समय दस अपराधों से बचना चाहिए। पहला अपराध है उन महापुरुषों की निन्दा करना जो भगवन्नाम का वितरण करने में लगे हुए हैं। शास्त्र में (चैतन्य-चरितामृत अन्त्य ७.११) कहा गया है—*कृष्णशक्ति बिना नहे तार प्रवर्तन*—भगवान् से शक्ति प्राप्त किये बिना कोई हरे-कृष्ण-महामन्त्र के पवित्र नामों का वितरण नहीं कर सकता। अतएव

इस कार्य में लगे भक्त की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

श्री पद्मपुराण का कथन है

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते।
यतः ख्यातिं यातं कथमु सहते तद्विग्रहाम्॥

हरे-कृष्ण-महामन्त्र की महिमा का प्रचार करने में लगे महान सन्त पुरुषों की निन्दा करना पवित्र नाम के चरणकमलों पर घोर अपराध है। हरे कृष्ण महामन्त्र की महिमा के प्रचारक की आलोचना नहीं होनी चाहिए। यदि कोई ऐसा करता है तो वह अपराधी है। नाम-प्रभु, जो कृष्ण से अभिन्न हैं ऐसे निन्दनीय कार्य को कभी सहन नहीं करेंगे, भले ही कितना बड़ा भक्त क्यों न हो।

द्वितीय *नामापराध* का वर्णन निम्नवत् है—

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादिसकलं
धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामाहित करः॥

इस भौतिक जगत में विष्णु का नाम सर्वमंगलदायक है। विष्णु के नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ—ये सभी दिव्य परम ज्ञान हैं। अतएव जो कोई भगवान के नाम, रूप, गुण, या लीलाओं को भौतिक समझ कर उनसे भगवान् को पृथक करना चाहता है वह अपराध करता है। इसी प्रकार शिव जैसे देवताओं के नामों को विष्णु के नाम के तुल्य बताना अथवा शिव तथा अन्य देवताओं को ईश्वर के अन्य रूप मान कर विष्णु के ही तुल्य बताना भी निन्दनीय है। यह भगवान् के चरणकमलों पर दूसरा अपराध है।

तीसरा अपराध है *गुरोरवज्ञा*—अर्थात् गुरु को भौतिक मान कर उसके उच्च पद से ईर्ष्या करना। चौथा अपराध है *श्रुतिशास्त्र निन्दम्*—चारों वेदों तथा पुराणों की निन्दा करना। पाँचवा अपराध *तथार्थवादः* है—नाम की महिमा को अतिरंजित मानना। इसी प्रकार छठा अपराध है *हरिनाम्नि कल्पनम्*—हरि नाम को काल्पनिक मानना।

सातवें अपराध का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

नामो बलाद्यस्य हि पापबुद्धि
र्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिं॥

यह सोच कर कि हरे-कृष्ण-मन्त्र सारे पापकर्मों को नष्ट करने वाला है अतएव पापकर्म करके उन्हें नष्ट करने के लिए हरे-कृष्ण-मन्त्र का उच्चारण करना *हरिनाम* के चरणकमलों पर सब से बड़ा अपराध है।

आठवें अपराध का वर्णन इस प्रकार हुआ है—*धर्मव्रतत्यागहुतादिसर्वशुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः*। हरे कृष्ण मन्त्र कीर्तन को धार्मिक अनुष्ठान मानना अपराध है। धार्मिक उत्सव मनाना, व्रत करना, वैराग्य लेना तथा यज्ञ करना ये भौतिकतावादी शुभ-कार्य हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र कीर्तन की तुलना कभी ऐसे भौतिकतावादी धार्मिक कार्यों से नहीं की जानी चाहिए। यह भगवान् के चरणकमलों पर अपराध है।

नवाँ अपराध इस प्रकार है।

अश्रद्धाने विमुखेऽप्यश्रृण्वति।
यश्चोपदेशः शिवनामापराधः॥

ऐसे लोगों के बीच नाम महिमा का प्रचार करना अपराध है जिनमें बुद्धि न हो या जिन्हें इस विषय में कोई श्रद्धा न हो। ऐसे लोगों को हरे-कृष्ण-मन्त्र के कीर्तन को सुनने का अवसर तो प्रदान करना चाहिए, किन्तु प्रारम्भ से ही उन्हें नाम की आध्यात्मिक महत्ता के विषय में उपदेश नहीं दिया जाना चाहिए। नाम का निरन्तर श्रवण करने से उनके हृदय शुद्ध होंगे और तब वे नाम की दिव्य स्थिति को समझ सकेंगे।

दसवाँ अपराध इस प्रकार है—

श्रुतेऽपि नाममाहात्मये यः प्रीतिरहितोनरः।
अहम्ममादिपरमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत॥

यदि कोई भगवान् के नाम की महिमा सुनने के बाद भी भौतिकतावादी विचारधारा रखता है और सोचता है कि "मैं यह शरीर हूँ और इस शरीर से सम्बद्ध सारी वस्तुएँ मेरी हैं (*अहं ममेति*)," और हरे-कृष्ण- महामन्त्र के कीर्तन के प्रति सम्मान तथा प्रेम प्रदर्शित नहीं करता तो यह भी एक अपराध है।

तदश्मसारं हृदयं बतेदं, यदगृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो, नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥२५॥

अनुवाद

यदि हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करते समय किसी का हृदय परिवर्तित नहीं होता, यदि उसके नेत्रों से अश्रु नहीं बहते, उसका शरीर नहीं काँपता, न ही उसे रोमांच होता है तो यह मान लेना चाहिए कि वह पाषाण-हृदय है। भगवन्नाम के चरणकमलों पर अपराधों के कारण ऐसा होता है।

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* का (२.३.२४) है। इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर यह लिखते हैं कि कभी-कभी *महाभागवत* के शरीर में ऐसे दिव्य लक्षण—यथा आँखों में अश्रु—नहीं दिखते, जबकि कभी-कभी *कनिष्ठ अधिकारी* कृत्रिम रूप से उनका प्रदर्शन करता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि कनिष्ठ अधिकारी (नवदीक्षित) महाभागवत से आगे है। हरे-कृष्ण-महामन्त्र के कीर्तन से हृदय में होने वाले परिवर्तन की परीक्षा यही है कि मनुष्य भौतिक भोग से विरक्त हो जाता है। यही असली परिवर्तन है। *भक्तिर्परस्यानुभवो विरक्तिरन्यत्र स्यात्*। आध्यात्मिक जीवन में असली प्रगति तो तब होती है जब मनुष्य भौतिक भोग से विरक्त हो जाता है। यदि कभी यह पाया जाये कि हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करते समय कोई कनिष्ठ अधिकारी (नवदीक्षित भक्त) आँखों में आँसू तो लाता है, किन्तु भौतिक वस्तुओं में लिप्त रहता है तो यह समझना चाहिए उसका हृदय परिवर्तित नहीं हुआ। परिवर्तन को मनुष्य के असली कार्यकलापों में परिलक्षित होना चाहिए।

'एक' कृष्णनामे करे सर्वपाप नाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश॥२६॥

अनुवाद

निरपराध होकर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने मात्र से सारे पाप दूर हो जाते हैं और भगवत्प्रेम की कारणस्वरूपा शुद्ध भक्ति प्रकट होती है।

तात्पर्य

पापपूर्ण जीवन से छूटे बिना भगवद्भक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। इसकी

पुष्टि *भगवद्गीता* में (७.२८) हुई है—

येषां त्वन्त गतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रता:॥

"जिन लोगों ने पूर्वजन्म में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये है, जिनके पाप समूल नष्ट हो चुके हैं और जो मोह के द्वन्द्व से मुक्त हो चुके हैं वे ही संकल्पपूर्वक मेरी सेवा में अपने को लगाते हैं।" जो व्यक्ति पापमय जीवन के सारे कलंकों से निर्मल हो चुका है, वह अविचलित होकर या द्वन्द्वरहित होकर भगवद्भक्ति करता है। इस युग में यद्यपि लोग अत्यधिक पापी हैं किन्तु हरे-कृष्ण-महामन्त्र के कीर्तन मात्र से उन्हें अपने पापों से छुटकारा मिल जाता है। *एक कृष्णनामे*—केवल कृष्ण के नाम-कीर्तन से यह सम्भव हो जाता है। *श्रीमद्भागवत* में इसकी पुष्टि हुई है (*कीर्तनादेव कृष्णस्य*)। चैतन्य महाप्रभु ने भी हमें यही सिखलाया है। वे रास्ते चलते हुए कीर्तन करते थे—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम्
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम्
राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्

यदि कोई कृष्ण नाम का सदैव कीर्तन करता है तो वह धीरे-धीरे पापमय जीवन के सारे प्रभावों से मुक्त हो जाता है, बशर्ते कि वह निरपराध भाव से कीर्तन करे और हरे-कृष्ण-मन्त्र कीर्तन के बल पर और अधिक पापकर्म न करे। इस तरह मनुष्य शुद्ध हो जाता है और उसकी भक्ति से उसका सुप्त भगवत्प्रेम जागृत हो उठता है। केवल हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करने तथा पाप एवं अपराध न करने से उसका जीवन शुद्ध हो आता है और वह सिद्धि की पंचम अवस्था को प्राप्त होता है अर्थात् भगवान् की प्रेमाभक्ति में प्रवृत्त होता है (*प्रेमा पुमर्थो महान्*)।

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य

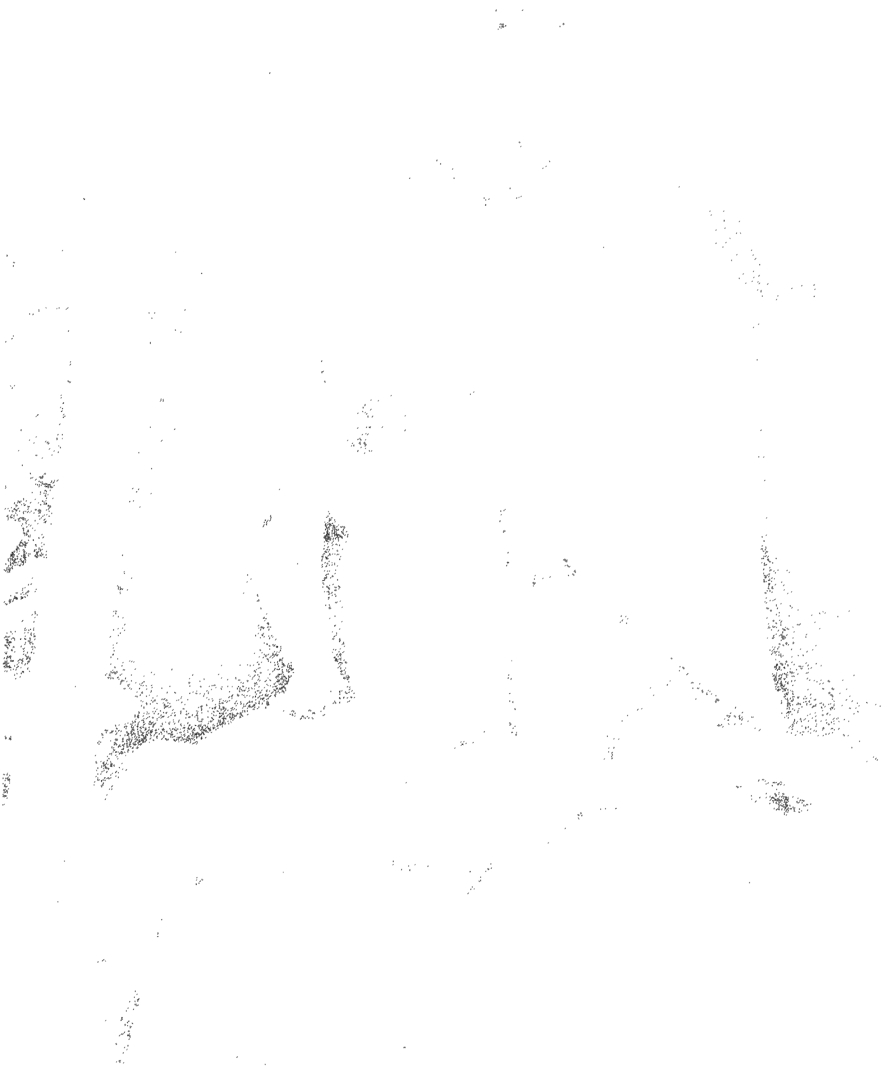

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज: श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के गुरु महाराज।

श्री पञ्चतत्व : श्रीकृष्ण चैतन्य अपने अवतार (अद्वैत आचार्य), अपने अंश (श्री नित्यानन्द प्रभु), अपनी प्रकट अन्तरंगाशक्ति (श्रीगदाधर) तथा अपने पूर्ण भक्त (श्री श्रीवास) के बीच (बाएँ से दाएँ)।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने पार्षदों के साथ नवद्वीप धाम में अनेक लीलाएँ कीं। उनके आज्ञावान सेवक आज भी इन लीलाओं का दर्शन कर सकते हैं।

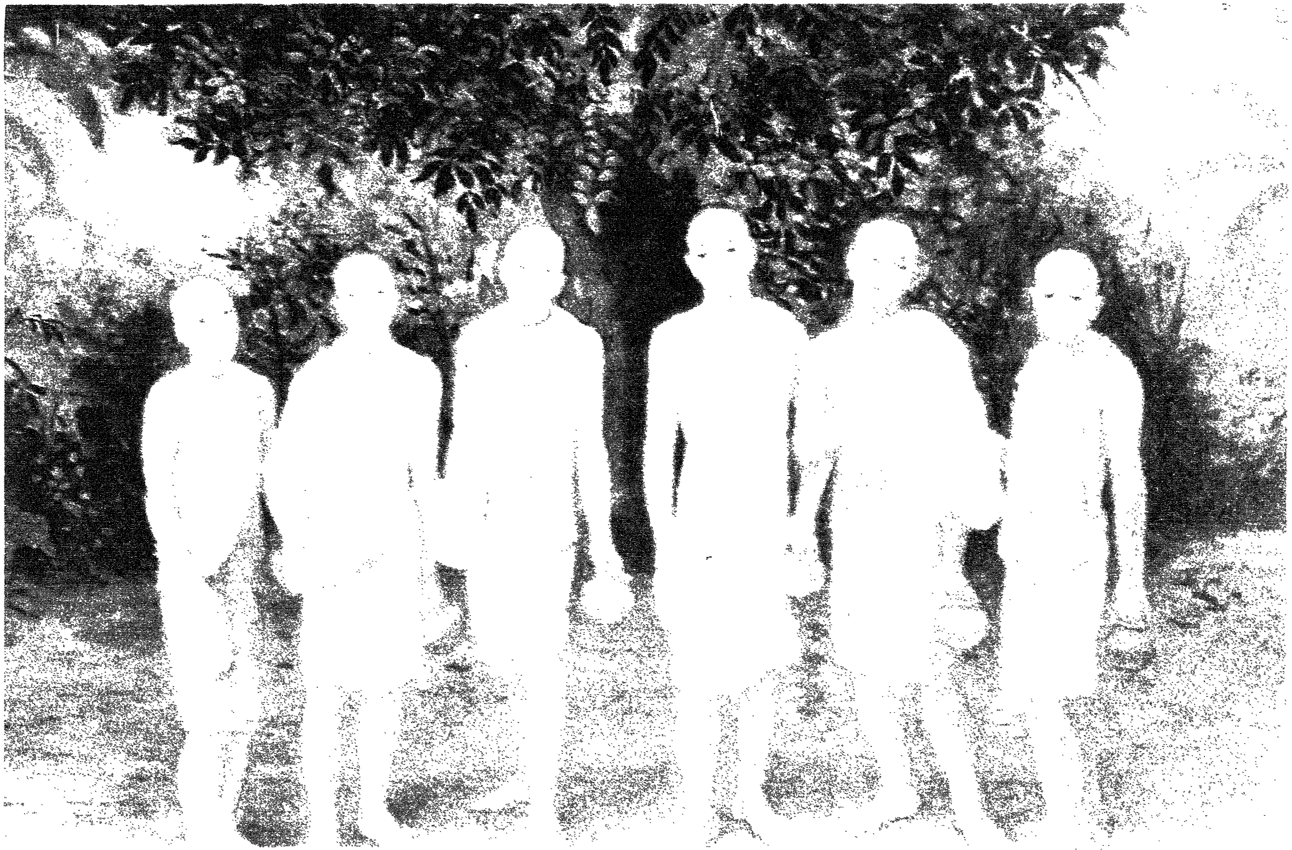

श्रीचैतन्य महाप्रभु के अन्तरंग पार्षद— वृन्दावन के षड्-गोस्वामीगण।
श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी एवं श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी।

गोविन्दजी के मन्दिर में हजारों सेवक मणियों से अलंकृत स्वर्ण सिंहासन पर आसीन भगवान् की सदैव सेवा करते हैं।

बेनापोल में हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते हुए हरिदास ठाकुर की परीक्षा स्वयं मायादेवी ने ली।

हरिदास ठाकुर के निधन के पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु उनका शरीर लेकर भावविभोर होकर नाचने लगे।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन के शरीर को आध्यात्मिक मानते हुए उनका आलिंगन किया।

महाप्रभु, भगवान् शिव के निमित्त लाई गई सारी भेंट स्वयं ले लेते।

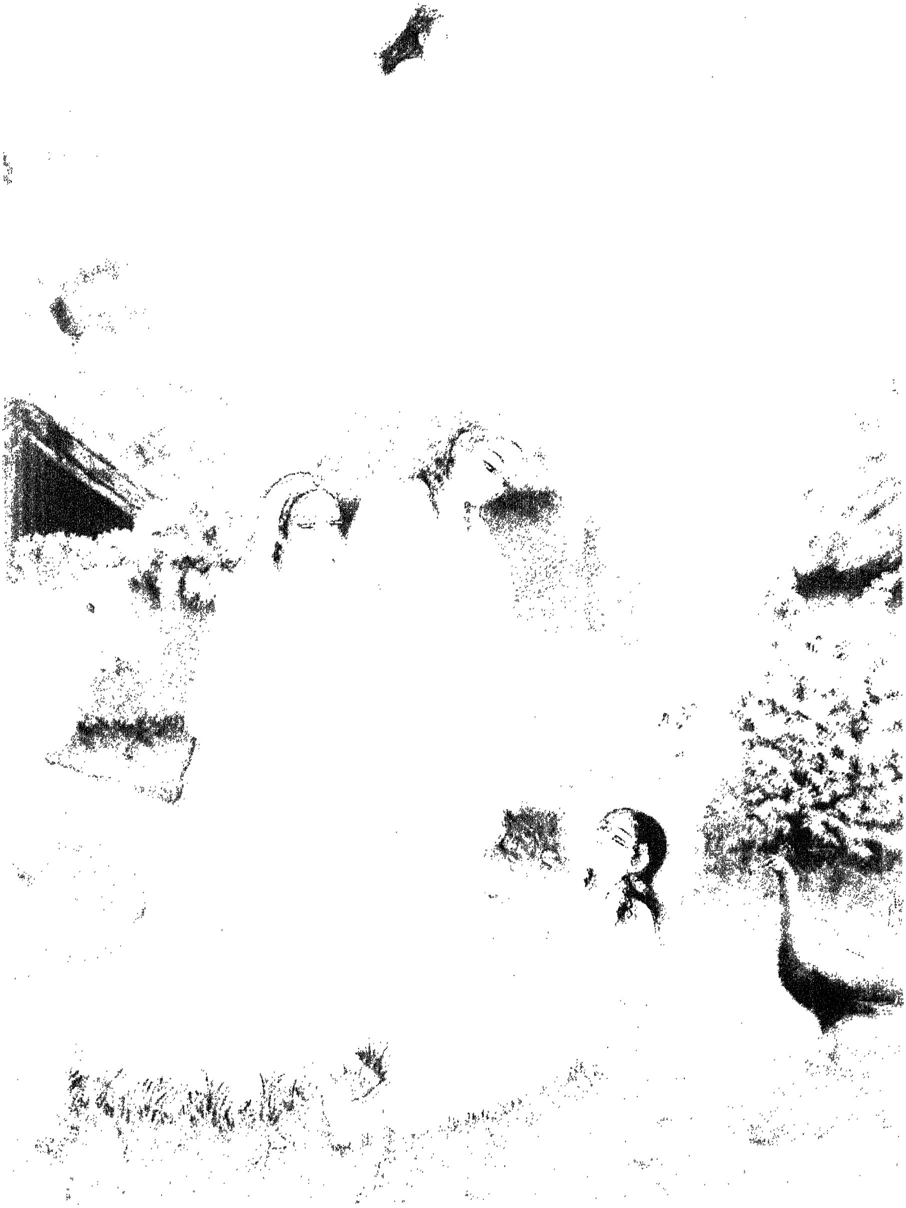

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वप्न देखा कि विश्वरूप उन्हें ले गया और उनसे संन्यास ग्रहण करने के लिए कहा।

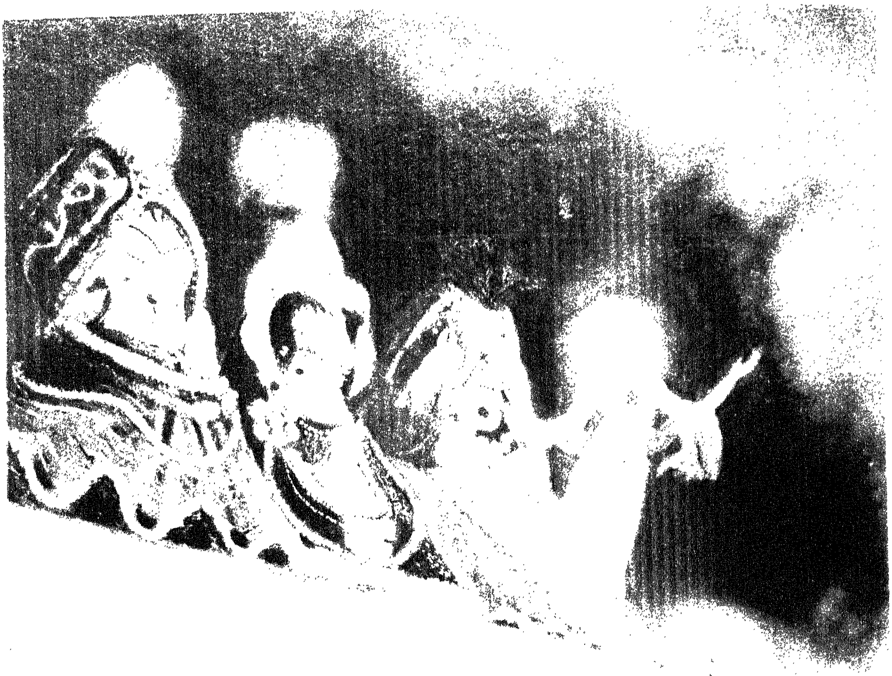

मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु को जगन्नाथ के शरीर में प्रवेश करते और फिर उसमें से निकलते देखा।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने काजी को आश्वस्त किया कि वह सारे पापों से मुक्त है।

काजी ने कहा, "मैं आपको वचन देता हूँ कि भविष्य में मेरा कोई भी वंशज यदि संकीर्तन अन्दोलन में बधा देगा तो मेरे वंश से उसका सम्बन्ध टूट जाएगा।"

जब श्री चैतन्य महाप्रभु बलदेव के भाव में थे तो सारे भक्त एकत्र होकर एवं आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे।

श्रीधाम मायापुर : बंगाल के गौड़ प्रान्त में परमेश्वर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु का जन्मस्थान।

प्रेमेर उदये हय प्रेमेर विकार।
स्वेद-कम्प-पुलकादि गद्‌गदाश्रुधार॥२७॥

अनुवाद

जब किसी में सचमुच भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति जागृत होती है तो इससे शरीर में पसीना, कम्पन, हृदय का पुलकना, वाणी का अवरोध तथा आँखों में अश्रु जैसे विकार उत्पन्न होते हैं।

तात्पर्य

असली भगवत्प्रेम होने पर मनुष्य के शरीर में स्वतः विकार प्रकट होते है। उनका कृत्रिम रूप से अनुकरण नहीं करना चाहिए। हमारा सबसे बड़ा रोग है भौतिक वस्तु के लिए इच्छा करना। यहाँ तक कि आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करते समय भी हम भौतिक वाहवाही चाहते हैं। मनुष्य को इस रोग से मुक्त होना चाहिए। शुद्ध भक्ति को *अन्याभिलाषिताशून्यम्* अर्थात् किसी भौतिक वस्तु की इच्छा से रहित होना चाहिए। बढ़े-चढ़े भक्तों में अनेक शारीरिक विकार प्रकट होते हैं, जो भाव के लक्षण हैं, किन्तु जनता से सस्ती प्रशंसा पाने के लिए उनका अनुकरण नहीं करना चाहिए। जब मनुष्य को स्वतः उच्च पद प्राप्त होता है तो भाव के लक्षण स्वतः प्रकट हो आते हैं उसे उनका अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

अनायासे भवक्षय, कृष्णेर सेवन।
एक कृष्णनामेर फले पाइ एत धन॥२८॥

अनुवाद

हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के फलस्वरूप मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन में इतनी अधिक उन्नति होती है कि उसके जीवन का अन्त तथा भगवद्प्रेम की प्राप्ति एक साथ होते हैं। कृष्ण का पवित्र नाम इतना शक्तिशाली है कि केवल एक नाम के कीर्तन से उसे यह दिव्य सम्पत्ति सहज ही उपलब्ध हो जाती है।

हेन कृष्णनाम य़दि लय बहुबार।
तबू य़दि प्रेम नहे, नहे अश्रुधार॥२९॥

तबे जानि, अपराध ताहाते प्रचुर।
कृष्णनाम-बीज ताहे ना करे अङ्कुर॥३०॥

अनुवाद

यदि भगवान् के पवित्र नाम का बारम्बार कीर्तन करते रहने पर भी मनुष्य में भगवान् के प्रति प्रेम उत्पन्न नहीं होता और उसकी आँखों में आँसू प्रकट नहीं होते तो इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कीर्तन में उसके अपराधों के फलस्वरूप कृष्ण-नाम का बीज अंकुरित नहीं हो पाया।

तात्पर्य

यदि कोई अपराधभाव से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करता है तो उसे वांछित फल नहीं मिलता। अतएव उसे बड़ी ही सावधानी के साथ उन अपराधों से बचना चाहिए जिनका वर्णन श्लोक २४ में किया जा चुका है।

चैतन्य-नित्यानन्द नाहि एसब विचार।
नाम लैते प्रेम देन, बहे अश्रुधार॥३१॥

अनुवाद

किन्तु यदि कोई थोड़ी भी श्रद्धा से चैतन्य तथा नित्यानन्द के पवित्र नामों का कीर्तन करता है तो वह सारे अपराधों से तुरन्त ही मुक्त हो जाता है। इस तरह वह ज्योंही हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करता है त्योंही उसे भगवत्प्रेम भाव का अनुभव होता है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि यदि कोई श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द की शरण लेता है, और उनके इस उपदेश का पालन करता है कि वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु तथा घास से भी अधिक विनीत बनो तो उसे शीघ्र ही भगवान् की प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है और उसके नेत्रों में आँसू आ जाते हैं। हरे-कृष्ण-महामन्त्र के कीर्तन के समय कुछ अपराधों पर ध्यान रखना आवश्यक है, किन्तु गौर नित्यानन्द के नामों के उच्चारण में ऐसी बात नहीं है। अतएव यदि कोई जीवन-भर हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करे किन्तु उसका जीवन पापकर्मों से पूर्ण रहे, तो उसे भगवान् की प्रेमाभक्ति के पद को प्राप्त कर सकना अत्यन्त कठिन

होगा। किन्तु यदि वह अपराधी होते हुए भी गौर नित्यानन्द के नामों का कीर्तन करता है तो उसके सारे पाप दूर हो जाते हैं। इसलिए सबसे पहले चैतन्य तथा नित्यानन्द के पास जाना चाहिए या गुरु गौरांग की पूजा करने का उपदेश दिया जाता है और जब वे कुछ उन्नति कर लेते हैं तो राधा-कृष्ण का अर्चाविग्रह स्थापित किया जाता है और वे भगवान् की पूजा में लगाये जाते हैं।

अन्ततः राधा-कृष्ण तक पहुँचने के लिए सर्वप्रथम गौर नित्यानन्द की शरण में जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है

गौरंग बलिते ह'बे पुलक शरीर
हरि हरि बलिते नयने ब'बे नीर
आर कबे निताइचांदेर करुणा हइबे
संसारवासना मोर कबे तुच्छ हबे
विषय छाडिया कबे शुद्ध हबे मन
कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन॥

प्रारम्भ में श्री गौरसुन्दर के पवित्र नाम का नियमित कीर्तन करना चाहिए और तब नित्यानन्द के नाम का। इस प्रकार मनुष्य का हृदय भौतिक भोग की मलिन भावनाओं से शुद्ध हो सकेगा। तब वह भगवान् कृष्ण की पूजा करने वृन्दावन धाम जा सकता है। चैतन्य तथा नित्यानन्द की कृपा हुए बिना वृन्दावन जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यदि मनुष्य का चित्त शुद्ध नहीं है तो वृन्दावन जाकर भी वृन्दावन के दर्शन नहीं कर सकता। वास्तव में वृन्दावन जाने का अर्थ है *भक्तिरसामृत सिन्धु, विदग्धमाधव, ललित माधव* तथा षड् गोस्वामियों द्वारा लिखित अन्य पुस्तकों को पढ़ कर इन गोस्वामियों की शरण ग्रहण करना। इस तरह से राधाकृष्ण के दिव्य प्रेम भाव को समझा जा सकता है। *कबे हाम बुझब से युगलपिरीति* राधाकृष्ण का माधुर्य-प्रेम सामान्य मानवी व्यापार नहीं है, यह पूर्णतया दिव्य है। राधा-कृष्ण को समझने, उनकी पूजा करने तथा उनकी प्रेमाभक्ति में लगने के लिए मनुष्य को चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु के प्रत्यक्ष शिष्यगण षड् गोस्वामियों से मार्गदर्शन ग्रहण करना चाहिए।

सामान्य व्यक्ति के लिए राधा-कृष्ण की पूजा की अपेक्षा श्री चैतन्य तथा नित्यानन्द या पंचतत्त्व की पूजा करना सरल है। जब तक कोई परम भाग्यशाली

न हो, उसे सीधे राधा-कृष्ण की पूजा करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। एक नवदीक्षित शिष्य, जो पर्याप्त शिक्षित नहीं होता या प्रबुद्ध नहीं है उसे राधाकृष्ण की पूजा में या हरे-कृष्ण-मन्त्र के कीर्तन में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। यदि वह ऐसा करता भी है तो उसे वांछित फल नहीं मिल पाता। अतएव उसे निताई-गौर नामों का कीर्तन करना चाहिए और झूठी प्रतिष्ठा को ताक पर रख कर उनकी पूजा करनी चाहिए। चूँकि इस जगत का प्रत्येक व्यक्ति पापकर्मों से न्यूनाधिक प्रभावित है, अतएव प्रारम्भ में यह नितान्त आवश्यक है कि वह गुरु गौरांग की पूजा करे और उनकी कृपा की याचना करे, क्योंकि ऐसा करने से अपनी तमाम अयोग्यताओं के बावजूद भी वह राधा-कृष्ण विग्रह की पूजा करने का पात्र बन जाता है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना होगा कि कृष्ण तथा गौरसुन्दर दोनों ही नाम भगवान् से अभिन्न हैं। इसलिए कभी भी यह नहीं सोचना चाहिए कि एक नाम दूसरे से सशक्त है। किन्तु इस युग के लोगों की स्थिति को देखते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम का कीर्तन हरे-कृष्ण-महामन्त्र के कीर्तन से अधिक आवश्यक है क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वाधिक वदान्य अवतार हैं और उनकी कृपा अपेक्षतया जल्दी प्राप्त हो जाती है। अतएव *श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यान्द श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द* का कीर्तन करते हुए सर्वप्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण लेनी चाहिए। गौर नित्यानन्द की सेवा करने से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त हो जाता है और राधाकृष्ण-विग्रह की पूजा करने के योग्य बन जाता है।

स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु अत्यन्त उदार।
ताँरे ना भजिले कभु ना हय निस्तार॥३२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वतन्त्र भगवान् हैं और अत्यन्त वदान्य हैं। उनकी पूजा किये बिना किसी को मुक्ति नहीं मिल सकती।

तात्पर्य

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस प्रसंग में कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने के लिए राधाकृष्ण की पूजा का परित्याग नहीं करना चाहिए। केवल राधा-कृष्ण या चैतन्य की पूजा करके कोई आगे नहीं बढ़ सकता। उसे षड् गोस्वामियों के आदेशों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए क्योंकि वे

आचार्य हैं और चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय हैं। इसीलिए नरोत्तमदास ठाकुर गाते हैं

रूपरघुनाथपदे हैबे आकूति
कबे हाम भुजब से युगलपिरीति।

उसे श्रील रूप गोस्वामी से लेकर रघुनाथ दास गोस्वामी तक सारे षड् गोस्वामियों का विनीत जिज्ञासु होना चाहिए। उनमें आदेशों का पालन न करके गौरसुन्दर एवं राधाकृष्ण की पूजा की कल्पना करना महान् अपराध है। इससे मनुष्य नरक को जाता है। यदि कोई षड् गोस्वामियों के आदेशों की उपेक्षा करके उसके बाद भी तथाकथित राधाकृष्ण भक्त बनता है तो वह राधाकृष्ण के असली भक्तों की आलोचना करता है। कल्पना के फलस्वरूप वह गौरसुन्दर को सामान्य भक्त मानता है अतएव वह राधाकृष्ण की सेवा करने में प्रगति नहीं कर सकता।

ओरे मूढ़ लोक, शुन चैतन्यमङ्गल।
चैतन्य-महिमा याते जानिबे सकल॥३३॥

अनुवाद

अरे मूर्खो! जरा चैतन्य-मंगल तो पढ़ो। इस ग्रंथ को पढ़ कर तुम श्री चैतन्य महाप्रभु की सारी महिमा को समझ सकते हो।

तात्पर्य

श्री वृन्दावन दास ठाकुर-कृत *चैतन्य-भागवत्* का मूल शीर्षक *चैतन्य-मंगल* था, किन्तु जब श्री लोचनदास ठाकुर ने *चैतन्य-मंगल* नाम से एक दूसरी पुस्तक लिख दी तो श्री वृन्दावन दास ने अपनी पुस्तक का नाम बदल दिया और अब वह *चैतन्य- भागवत* के नाम से विख्यात है। इस ग्रंथ में श्री चैतन्य महाप्रभु का विस्तार से जीवन दिया गया है और कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने पहले ही यह सूचित कर दिया है कि वृन्दावन दास ठाकुर ने जिस अंश का वर्णन नहीं किया, उसी का वर्णन वे करेंगे। कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा *श्री चैतन्य-भागवत* को मान्यता देना इसका सूचक है कि वे उनकी परम्परा मानते हैं। दिव्य साहित्य का प्रणेता कभी-भी अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का अतिक्रमण नहीं करना चाहता।

कृष्णलीला भागवते कहे वेदव्यास।
चैतन्य-लीलार व्यास—वृन्दावन-दास॥३४॥

अनुवाद

जिस तरह वेदव्यास ने *श्रीमद्भागवत* में कृष्ण की सारी लीलाओं का संकलन किया है, उसी तरह वृन्दावन दास ने चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का अंकन किया है।

वृन्दावनदास कैल 'चैतन्यमङ्गल'।
य़ाँहार श्रवणे नाशे सर्व अमङ्गल॥३५॥

अनुवाद

ठाकुर वृन्दावन दास ने चैतन्य-मंगल की रचना की जिसके सुनने से सारा अमंगल नष्ट हो जाता है।

चैतन्य-निताइर य़ाते जानिये महिमा।
य़ाते जानि कृष्णभक्तिसिद्धान्तेर सीमा॥३६॥

अनुवाद

चैतन्य मंगल पढ़ कर चैतन्य तथा नित्यानन्द की सारी महिमा या सत्य को समझा जा सकता है और कृष्ण-भक्ति के चरम निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है।

तात्पर्य

यद्यपि *श्रीमद्भागवत* भक्ति समझने के लिए सन्दर्भ ग्रंथ है, किन्तु विस्तृत होने के कारण थोड़े ही लोग इसके उद्देश्य को समझ सकते हैं। *श्रीमद्भागवत* न्याय प्रस्थान कहलाने वाले *वेदान्त-सूत्र* की आदि टीका है। इसका प्रणयन तर्क के द्वारा परम सत्य को समझाने के लिए हुआ था, इसलिए इसकी सहज टीका—*श्रीमद्भागवत* अत्यन्त विस्तृत है। पेशेवर वाचकों ने ऐसा विज्ञापित कर रखा है कि *श्रीमद्भागवत* में केवल कृष्ण की रासलीला है, यद्यपि इसका वर्णन केवल दशम स्कंध में (अध्याय २९-३०) हुआ है। इस तरह इन लोगों ने पाश्चात्य जगत के सम्मुख कृष्ण को स्त्री-आखेटक के रूप में प्रस्तुत किया है इसलिए कभी-कभी अपने प्रचार-कार्य के दौरान हमें ऐसी भ्रान्तियों से निपटना पड़ता है। *श्रीमद्भागवत* के समझने में जो दूसरी कठिनाई

सामने आती है, वह है पेशेवर वाचकों द्वारा *भागवत्- सप्ताह* का—अर्थात् सात दिनों में भागवत के पढ़े जाने का सूत्रपात। वे एक सप्ताह में *श्रीमद्भागवत* को समाप्त करना चाहते हैं, जबकि यह इतना उदात्त ग्रंथ है कि इसके एक-एक श्लोक की ठीक से व्याख्या करने पर यह तीन महीनों में भी समाप्त नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में सम्मान्य व्यक्ति के लिए वृन्दावन दास ठाकुर-कृत *चैतन्य-भागवत* सहायक है, क्योंकि इस तरह से भक्ति, कृष्ण, चैतन्य तथा नित्यानन्द को ठीक से समझा जा सकता है। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है—

श्रुति-स्मृति पुराणादिपञ्चरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥

"ऐसी भगवदभक्ति, जो उपनिषदों, पुराणों, नारद पञ्चरात्र आदि प्रामाणिक वैदिक ग्रंथों की उपेक्षा करती है, समाज के लिए अनावश्यक उत्पात है" *श्रीमद्भागवत* को ठीक से न समझने के कारण लोग कृष्णतत्त्व के विषय में दिग्भ्रमित होते हैं। किन्तु श्रील वृन्दावन दास ठाकुर की पुस्तक पढ़ कर इसे सरलता से समझा जा सकता है।

भागवते य़त भक्तिसिद्धान्तेर सार।
लिखियाछेन इँहा जानि' करिया उद्धार॥३७॥

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने *चैतन्य-मंगल* में (जो बाद में *श्री-चैतन्य-भागवत* कहलाया) श्रीमद्भागवत से प्रामाणिक उद्धरण देते हुए भक्ति के सिद्धान्त और सार दिये हैं।

'चैतन्यमङ्गल' शुने य़दि पाषण्डी, य़वन।
सेह महा-वैष्णव हय ततक्षण॥३८॥

अनुवाद

यदि बड़ा से बड़ा नास्तिक भी चैतन्य मंगल को सुने, तो वह तुरन्त महाभागवत बन जाता है।

मनुष्ये रचिते नारे ऐछे ग्रन्थ धन्य।
वृन्दावनदास-मुखे वक्ता श्रीचैतन्य॥३९॥

अनुवाद

इस पुस्तक का विषय इतना भव्य है कि लगता है मानो श्री वृन्दावन दास ठाकुर की लेखनी से साक्षात् श्री चैतन्य महाप्रभु बोल रहे हों।

तात्पर्य

श्रील सनातन गोस्वामी ने अपने ग्रंथ *हरिभक्ति विलास* में लिखा है—

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम्।
श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः॥

ऐसा साहित्य जो वैदिक सिद्धान्तों तथा पुराणों एवं पाञ्चरात्रिक विधि के निष्कर्ष का दृढ़ता से पालन करता हो, केवल शुद्ध भक्त द्वारा लिखा जा सकता है। सामान्य पुरुष के बूते की बात नहीं है कि वह भक्ति पर ग्रंथ लिखे क्योंकि उसकी रचनाएँ प्रभावशाली नहीं होंगी। कोई कितना ही बड़ा पंडित तथा अलंकारमयी भाषा में लिखने वाला व्यक्ति क्यों न हो किन्तु इससे दिव्य साहित्य के समझने में कोई सहायता नहीं मिलती। यदि दिव्य साहित्य दोषमय भाषा में भी लिखा हो किन्तु यदि वह भक्त द्वारा लिखा हो तो मान्य है। यदि वही साहित्य संसारी विद्वान लिखे तो चाहे उसका साहित्यिक प्रस्तुतीकरण कितना ही चमत्कारपूर्ण क्यों न रहे, मान्य नहीं हो सकता। भक्त के लिखने का रहस्य यह है कि जब वे भगवान् की लीलाएँ लिखता होता है तो भगवान् उसकी सहायता करते हैं, वह स्वयं कुछ नहीं लिखता। *भगवद्गीता* में (१०.१०) कहा गया है—*ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते*। जब भक्त भगवान् के चरणों में बैठ कर लिखता है तो भगवान् उसके भीतर से इतनी बुद्धि प्रदान करते हैं कि वह पुस्तकें लिखता चला जाता है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी इसकी पुष्टि करते हैं कि जो कुछ वृन्दावन दास ठाकुर ने लिखा वह चैतन्य महाप्रभु की वाणी थी, उन्होंने तो उसको दुहरा भर दिया है। यही बात *चैतन्य-चरितामृत* पर भी लागू होती है। श्री कृष्णदास कविराज ने अपनी वृद्धावस्था में अक्षम हो जाने पर *चैतन्य-चरितामृत* की रचना की, किन्तु यह इतना भव्य ग्रंथ है कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज कहा करते थे कि "एक समय आयेगा जब संसार के लोग *श्रीचैतन्य-चरितामृत* पढ़ने के लिए बँगला सीखेंगे। हम *श्रीचैतन्य-चरितामृत* को अंग्रेजी में प्रस्तुत कर रहे हैं और यह नहीं

जानते कि यह कितना सफल होगा, किन्तु यदि कोई मूल चैतन्य-चरितामृत को बँगला भाषा में पढ़ेगा तो उसे भक्ति के आनन्द का अधिकाधिक आस्वाद मिलेगा।

वृन्दावनदास-पदे कोटि नमस्कार।
ऐछे ग्रन्थकरि' तेंहो तारिला संसार॥४०॥

अनुवाद

मैं वृन्दावन दास ठाकुर के चरणकमलों पर कोटि-कोटि नमस्कार करता हूँ। उनके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति पतितात्माओं के उद्धार के लिए ऐसा अद्भुत ग्रंथ नहीं लिख सकता था।

नारायणी—चैतन्येर उच्छिष्टभाजन।
ताँर गर्भे जन्मिला श्रीदास-वृन्दावन॥४१॥

अनुवाद

नारायणी सदा से चैतन्य महाप्रभु का जूठन खाया करती थी। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर उसी के गर्भ से जन्मे थे।

तात्पर्य

कविकर्णपूर द्वारा लिखित *गौरगणोद्देश-दीपिका* में बतलाया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के संगी कौन कौन थे और उसके पूर्व वे क्या थे जिसमें नारायणी के विषय में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है

अम्बिकाया: स्वसा यासीन नाम्ना श्रील-किलिम्बिका
कृष्णोच्छिष्टं प्रभुञ्जना सेयं नारायणी मता।

जब भगवान् कृष्ण शिशु थे तो अम्बिका नामक स्त्री ने उन्हें पाला था। यह किलिम्बिका की छोटी बहन थी। श्री चैतन्य के अवतार के समय यही किलिम्बिका श्री चैतन्य महाप्रभु का जूठन खाया करती थी। किलिम्बिका ही नारायणी थी जो श्रीवास ठाकुर की भांजी थी। बाद में जब यह बड़ी हुई और उसकी शादी हो गई तो इसके गर्भ से श्रील वृन्दावन दास ठाकुर का जन्म हुआ। भगवान् कृष्ण का भक्त अपनी सेवा के अनुसार विख्यात होता है। इस तरह हम श्रील वृन्दावन दास ठाकुर को नारायणी के पुत्र के रूप में जानते हैं। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

लिखते हैं कि उनके पैतृक वंश का कोई पता नहीं है क्योंकि उसे जानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

तारँ कि अद्भुत चैतन्यचरित-वर्णन।
याहार श्रवणे शुद्ध कैल त्रिभुवन॥४२॥

अनुवाद

अहा! चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का क्या ही अद्भुत वर्णन है! तीनों लोकों में जो भी उसे सुनता है, वह शुद्ध (पवित्र) हो जाता है।

अतएव भज, लोक, चैतन्य-नित्यानन्द।
खण्डिबे संसार-दुःख पाबे प्रेमानन्द॥४३॥

अनुवाद

हर एक से मेरा आग्रह है कि चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द द्वारा दी गई पूजा-विधि को अपनायें और इस तरह संसार के दुखों से मुक्त होकर भगवान् की प्रेमाभक्ति प्राप्त करें।

वृन्दावनदास कैल 'चैतन्यमङ्गल'।
ताहाते चैतन्य-लीला वर्णिल सकल॥४४॥

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने *चैतन्य-मंगल* लिखा है और उसमें चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का सर्वांगीण वर्णन किया है।

सूत्र करि' सब लीला करिल ग्रन्थन।
पाछे विस्तारिया ताहार कैल विवरण॥४५॥

अनुवाद

उन्होंने सर्वप्रथम संक्षेप में महाप्रभु की लीलाएँ दी हैं और फिर उनका विस्तार से वर्णन किया है।

चैतन्यचन्द्रेर लीला अनन्त अपार।
वर्णिते वर्णिते ग्रन्थ हइल विस्तार॥४६॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अनन्त तथा अपार हैं, अतएव इन सबों का वर्णन करने से यह ग्रंथ विशालकाय बन गया है।

विस्तार देखिया किछु संकोच हैल मन।
सूत्रधृत कोन लीला ना कैल वर्णन॥४७॥

अनुवाद

उन्हें इतना विस्तृत देख कर बाद में उन्हें लगा कि उनमें से कुछ का ठीक-ठीक वर्णन नहीं हो पाया है।

नित्यानन्द-लीला-वर्णने हइल आवेश।
चैतन्येर शेषलीला रहिल अवशेष॥४८॥

अनुवाद

उन्होंने नित्यानन्द प्रभु की लीलाओं का भावमय वर्णन किया है, किन्तु चैतन्य महाप्रभु की परवर्ती लीलाएँ अनकही रह गई हैं।

सेइ सब लीलार शुनिते विवरण।
वृन्दावनवासी भक्तेर उत्कण्ठित मन॥४९॥

अनुवाद

वृन्दावन के सारे भक्त इन लीलाओं को सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते थे।

वृन्दावने कल्पद्रुमे सुवर्ण-सदन।
महा-य़ोगपीठ ताहाँ, रत्न-सिंहासन॥५०॥

अनुवाद

वृन्दावन नामक तीर्थस्थल में कल्पवृक्ष के नीचे रत्नों से जटित सुनहला सिंहासन है।

ताते वसि' आछे सदा व्रजेन्द्र-नन्दन।
'श्रीगोविन्द-देव' नाम साक्षात् मदन॥५१॥

अनुवाद

उस सिंहासन पर नन्द महाराज के पुत्र श्री गोविन्द देव बैठते हैं, जो

साक्षात् मदन हैं।

राज-सेवा हय ताँहा विचित्र प्रकार।
दिव्य सामग्री, दिव्यवस्त्र, अलङ्कार॥५२॥

अनुवाद

वहाँ पर गोविन्द की नाना प्रकार से राजसी सेवा की जाती है। उनके वस्त्र, आभूषण तथा साज-सामग्री—सभी दिव्य हैं।

सहस्र सेवक सेवा करे अनुक्षण।
सहस्र-वदने सेवा ना जाय वर्णन॥५३॥

अनुवाद

गोविन्दजी के उस मन्दिर में हजारों सेवक सदैव भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। इस सेवा का वर्णन कर पाना हजारों मुखों से भी सम्भव नहीं है।

सेवार अध्यक्ष—श्रीपण्डित हरिदास।
ताँर यशः-गुण सर्वजगते प्रकाश॥५४॥

अनुवाद

उस मन्दिर के मुख्य सेवक श्री हरिदास पंडित हैं। उनके गुण तथा उनका यश जगत-विख्यात है।

तात्पर्य

श्री हरिदास पंडित गदाधर पंडित के शिष्य श्री अनन्त आचार्य के शिष्य थे।

सुशील, सहिष्णु, शान्त, वदान्य, गम्भीर।
मधुर-वचन, मधुर-चेष्टा, महाधीर॥५५॥

अनुवाद

वे भलेमानुस, सहनशील, शान्त, वदान्य, गम्भीर, मिष्टभाषी तथा अत्यन्त धीर थे।

सबार सम्मान-कर्ता, करने सबार हित।
कौटिल्य-मात्सर्य-हिंसा ना जाने ताँर चित॥५६॥

अनुवाद

वे सबों को सम्मान देते थे और उनकी भलाई के लिए कार्य करते थे। उनके मन में कुटिलता, ईर्ष्या-द्वेष लेशमात्र भी नहीं था।

कृष्णेर ये साधारण सद्गुण पञ्चाश।
से सब गुणेर ताँर शरीरे निवास॥५७॥

अनुवाद

उनके शरीर में भगवान् कृष्ण के पचास गुण विद्यमान थे।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत सिन्धु में श्रीकृष्ण के दिव्य गुणों का उल्लेख हुआ है। इनमें से पचास मुख्य हैं (*अयं नेता सुरम्याङ्गः...*) और श्री हरिदास पंडित में भी ये गुण किञ्चित् मात्रा में विद्यमान थे। चूँकि सारे जीव भगवान् के अंश हैं, अतएव श्रीकृष्ण में प्राप्त ये पचासों गुण हर जीव में अल्प मात्रा में पाये जाते हैं। बद्धजीवों में ये गुण भौतिक प्रकृति के सम्पर्क में रहने के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते, किन्तु जब कोई भक्त बन जाता है तो ये सारे गुण स्वतः प्रकट होते हैं। ऐसा उल्लेख *श्रीमद्भागवत* में (५.१८.१२) हुआ है, जैसा कि अगले श्लोक से स्पष्ट है।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥५८॥

अनुवाद

"यदि किसी में कृष्ण के प्रति अविचल भक्तिमयी श्रद्धा है, तो उसमें कृष्ण तथा सारे देवताओं के सद्गुण निरन्तर प्रकट होते रहते हैं। किन्तु जो भगवान् की भक्ति नहीं करता, उसमें सुयोग्यता नहीं होती क्योंकि वह मनोकल्पना द्वारा भगवान् के बाह्य रूप भौतिक जगत में लगा रहता है।"

पण्डित-गोसाञिर शिष्य—अनन्त आचार्य।
कृष्णप्रेममय-तनु, उदार, सर्व-आर्य॥५९॥

अनुवाद

अनन्त आचार्य गदाधर पंडित के शिष्य थे। उनका शरीर सदैव भगवत्प्रेम में निमग्न रहता था। वे वदान्य थे और सभी प्रकार से प्रबुद्ध थे।

ताँहार अनन्त गुण के करु प्रकाश।
ताँर प्रिय शिष्य इँह—पण्डित हरिदास॥६०॥

अनुवाद

अनन्त आचर्य समस्त गुणों के आगार थे। कोई उनके बडप्पन का अनुमान नहीं लगा सकता था। पंडित हरिदास उन्हीं के शिष्य थे।

तात्पर्य

श्री अनन्त आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के नित्य संगियों में से हैं। पूर्वजन्म में भगवान् कृष्ण के अवतार के समय वे आठ गोपियों में से सुदेवी नामक गोपी थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* (श्लोक १६५) में कहा गया है—*अनन्ताचार्यगोस्वामी या सुदेवी पुरा व्रजे*—अनन्त आचार्य गोस्वामी प्राचीनकाल में व्रज में सुदेवी गोपी थे। जगन्नाथ पुरी या पुरुषोत्तम क्षेत्र में अनन्त आचार्य द्वारा स्थापित गंगामाता मठ है। इस मठ की शिष्य-परम्परा में वे विनोद मंजरी कहलाते हैं। उनके एक शिष्य थे हरिदास पंडित गोस्वामी, जो श्री रघुगोपाल तथा श्री रासमञ्जरी के नाम से भी जाने जाते हैं। उनकी शिष्या लक्ष्मीप्रिया गंगामाता की मौसी थीं, जो पुटिया के राजा की राजकुमारी थीं। गंगामाता जयपुर के कृष्ण मिश्र से श्री रसिकराय नामक एक विग्रह ले आई थीं, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी में सार्वभौम के घर में स्थापित किया था। श्री अनन्त आचार्य की पाँचवी पीढ़ी की शिष्या श्री वनमाली थीं। छठी पीढ़ी में श्री भगवान् दास हुए जो बंगाली थे। सातवीं पीढ़ी में मधुसूदनदास हुए जो उड़िया थे। आठवीं पीढ़ी में नीलाम्बरदास, फिर नरोत्तमदास, पीताम्बरदास और माधवदास हुए। इस समय गंगामाता मठ में बारहवीं पीढ़ी चल रही है।

चैतन्य-नित्यानन्दे ताँर परम विश्वास
चैतन्य-चरिते ताँर परम उल्लास॥६१॥

अनुवाद

पंडित हरिदास को चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द में प्रगाढ़ श्रद्धा थी। अतएव उनकी लीलाओं तथा गुणों के जानने से उन्हें परम तुष्टि होती थी।

वैष्णवेर गुणग्राही, ना देखये दोष।
कायमनोवाक्ये करे वैष्णव-सन्तोष॥६२॥

अनुवाद

वे वैष्णवों के सद्गुणों के हामी थे और उनमें वे कोई दोष नहीं पाते थे। वे वैष्णवों को तुष्ट करने में अपना तन-मन लगाते थे।

तात्पर्य

वैष्णव का गुण है कि वह *अदोषदर्शी* होता है अर्थात् अन्यों के दोषों को नहीं देखता। निस्सन्देह हर मनुष्य में सद्गुण तथा दोष दोनों पाये जाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि *सज्जना गुणमिच्छन्ति दोषमिच्छन्ति पामरा:*—प्रत्येक व्यक्ति में दोषों तथा सद्गुणों का संयोग होता है। किन्तु गम्भीर होने के कारण वैष्णवजन मनुष्य-गुणों को ही ग्रहण करता है, उसके दोषों को नहीं—वैसे ही जैसे मक्खियाँ कूड़ा ढूँढती हैं और मधुमक्खियाँ मधु। हरिदास पंडित को किसी वैष्णव में कभी कोई दोष नहीं दिखा। वे उसके सद्गुणों पर ही विचार करते थे।

निरन्तर शुने तेंहो 'चैतन्यमङ्गल'।
ताँहार प्रसादे शुनेन वैष्णवसकल॥६३॥

अनुवाद

वे सदैव *चैतन्यमंगल* का पाठ सुनते थे और उनकी कृपा से अन्य सारे वैष्णव भी सुना करते थे।

कथाय सभा उज्ज्वल करे ग्रेन पूर्णचन्द्र।
निज-गुणामृते बाडाय वैष्णव-आनन्द॥६४॥

अनुवाद

वे *चैतन्यमंगल* बाँच कर पूर्णचन्द्रमा की तरह सारी सभा को आलोकित

करते थे और अपने गुणों के अमृत से उनके दिव्य आनन्द को वर्धित करते थे।

तेँहो अति कृपा करि' आज्ञा कैला मोरे।
गौराङ्गेर शेषलीला वर्णिबार तरे॥६५॥

अनुवाद

उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपा से मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं को लिखने का आदेश दिया।

काशीश्वर गोसाञिर शिष्य—गोविन्द गोसाञि।
गोविन्देर प्रिय-सेवक ताँर सम नाञि॥६६॥

अनुवाद

वृन्दावन में गोविन्द भगवान् की सेवा में लगे पुरोहित गोविन्द गोसाईं काशीश्वर गोसाईं के शिष्य थे। गोविन्द अर्चाविग्रह को उनसे बढ़ कर कोई अन्य सेवक प्रिय न था।

तात्पर्य

काशीश्वर गोसाईं का अन्य नाम काशीश्वर पंडित भी था। वे ईश्वर पुरी के शिष्य तथा काँजीलाल कानु वंश से सम्बद्ध वासुदेव भट्टाचार्य के पुत्र थे। उनका उपनाम चौधुरी था। उनका भांजा, रुद्रपंडित था जो वल्लभपुरा का आदि पुरोहित था। यह स्थान चातरा नामक ग्राम में है, जो श्रीरामपुर रेलवे स्टेशन से लगभग एक मील दूर है। यहाँ पर राधा-गोविन्द तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के अर्चाविग्रह स्थापित हैं। काशीश्वर गोसाईं अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे, अतएव जब चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर आते थे तो भीड़ से उनकी रक्षा करते थे। उनका दूसरा कार्य था कीर्तन के बाद भक्तों में प्रसाद वितरण करना। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के समसामयिकों में से थे, जो महाप्रभु के साथ-साथ जगन्नाथ पुरी में रहे।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर भी वल्लभपुर के इस मन्दिर में गये थे। उस समय इसके उत्तराधिकारी श्री शिवचन्द्र चौधरी नामक एक शैव थे, जो काशीश्वर गोसाईं के भाई के वंशज थे। वल्लभपुर में नौ किलो चावल, तरकारी तथा अन्य भोज्य पदार्थ पकाने का स्थायी प्रबन्ध था। इस गाँव के निकट ही काफी भूमि है जो अर्चाविग्रह की है और जिसमें धान

उगाया जाता था। दुर्भाग्यवश काशीश्वर गोसाईं के भाई के वंशजों ने इस भूमि का काफी अंश बेच दिया है, अतएव अब विग्रह-पूजा में व्यवधान आ गया है।

गौरगणोद्देश-दीपिका में कहा गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के समय काशीश्वर गोसाई के वंशजों में भृंगार नामक एक कृष्ण का दास वृन्दावन में अवतरित हुआ। जब हम गृहस्थ थे, तो हम भी कभी-कभी इस मन्दिर में जाते थे और दोपहर का प्रसाद ग्रहण करते थे। इस मन्दिर के श्री-श्री-राधागोविन्द तथा गौरांग-विग्रह अत्यन्त सुन्दर हैं। वल्लभपुर के ही निकट जगन्नाथ का एक अन्य सुन्दर मन्दिर है। हम भी कभी इस जगन्नाथ मन्दिर में प्रसाद ग्रहण करते थे। ये दोनों मन्दिर कलकत्ता के निकट श्रीरामपुर रेलवे स्टेशन से एक मील की परिधि में स्थित हैं।

यादवाचार्य गोसाञि श्रीरूपेर सङ्गी।
चैतन्यचरिते तेँहो अति बड़ रङ्गी॥६७॥

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी के नित्यसंगी श्री यादवाचार्य गोसाईं भी चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को सुनने तथा उनका कीर्तन करने में अत्यन्त उत्साह दिखलाते थे।

पण्डित-गोसाञिर शिष्य—भूगर्भ गोसाञि।
गौरकथा विना आर मुखे अन्य नाइ॥६८॥

अनुवाद

पण्डित गोसाईं के शिष्य भूगर्भ गोसाईं चैतन्य महाप्रभु सम्बन्धी कथाओं में सदैव लगे रहते थे। उसके अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं जानते थे।

ताँर शिष्य—गोविन्द पूजक चैतन्यदास।
मुकुन्दानन्द चक्रवर्ती, प्रेमी कृष्णदास॥६९॥

अनुवाद

इनके शिष्यों में से थे गोविन्द अर्चा-विग्रह के पुजारी चैतन्यदास, मुकुन्दानन्द चक्रवर्ती तथा महाभागवत कृष्णदास।

आचार्य गोसाञिर शिष्य—चन्द्रवर्ती शिवानन्द।
निरवधि ताँर चित्ते चैतन्य-नित्यानन्द॥७०॥

अनुवाद

अनन्त आचार्य के शिष्यों में से शिवानन्द चक्रवर्ती हुए जिनके हृदय में चैतन्य तथा नित्यानन्द निरन्तर वास करते थे।

आर य़त वृन्दावने बैसे भक्तगण।
शेषलीला शुनिते सबार हैल मन॥७१॥

अनुवाद

इनके अतिरिक्त वृन्दावन में अन्य अनेक महान् भक्त थे। वे सभी चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक थे।

मोरे आज्ञा करिला सबे करुणा करिया।
ताँ-सबार बोले लिखि निर्लज्ज हइया॥७२॥

अनुवाद

इन सभी भक्तों ने कृपा करके मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाएँ लिखने का आदेश दिया। यद्यपि मैं निर्लज्ज हूँ, किन्तु उन्हीं के आदेश से मैंने यह *चैतन्य-चरितामृत* लिखने का प्रयास किया है।

तात्पर्य

भगवान् की दिव्य लीलाओं को लिखना कोई आसान काम नहीं है। जब तक आचार्यों या अग्रणी भक्तों द्वारा शक्ति प्राप्त न हो, तब तक ऐसा दिव्य साहित्य नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि ऐसे साहित्य को सन्देहातीत होना चाहिए। दूसरे शब्दो में, लिखने वाले में बद्धजीवों के एक भी दोष यथा त्रुटि, मोह, ठगी तथा अधूरा इन्द्रिय-बोध नहीं होना चाहिए। कृष्ण के वचन तथा कृष्ण के आदेशों को पालन करने वाली परम्परा ही वास्तव में प्रामाणिक है। दिव्य साहित्य के लिखने की शक्ति प्राप्त कर पाना लेखक के लिए बड़े ही गर्व का विषय होता है। अकिंचन वैष्णव के रूप में, इस प्रकार शक्ति पाकर कृष्णदास कविराज गोस्वामी को अत्याधिक लज्जा लगी कि उन्हें ही अब चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन करना होगा।

वैष्णवेर आज्ञा पाञा चिन्तित-अन्तरे।
मदनगोपाले गेलाङ् आज्ञा मागिबारे॥७३॥

अनुवाद

वैष्णवों की आज्ञा प्राप्त करने के बाद अपने मन में चिन्तित होने के कारण मैं वृन्दावन के मदनमोहन मन्दिर में उनकी भी आज्ञा लेने के लिए गया।

तात्पर्य

एक वैष्णव सदैव गुरु तथा कृष्ण का आदेश मानता है। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* का लेखन उन्हीं की कृपा से कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा सम्पन्न हुआ। उन्होंने उन सभी भक्तों को, जिनका उल्लेख हो चुका है, तथा मदनगोपाल (श्री मदनमोहन-विग्रह) को, जो साक्षात कृष्ण हैं, अपना गुरु माना। उन्होंने दोनों से ही आज्ञा प्राप्त की और जब उन्हें गुरु तथा कृष्ण दोनों की कृपा प्राप्त हो गई तभी वे यह दिव्य ग्रंथ *श्रीचैतन्य-चरितामृत* लिख सके। सबों को इसी उदाहरण का पालन करना चाहिए। जो भी व्यक्ति कृष्ण के विषय में कुछ लिखना चाहता है, उसे सर्वप्रथम गुरु तथा कृष्ण की अनुमति प्राप्त करनी चाहिए। कृष्ण तो सबों के हृदय में वास करते हैं और गुरु उनका साक्षात् ब्रह्म प्रतिनिधि होता है। इस तरह कृष्ण भीतर और बाहर स्थित हैं—*अन्तर्बहिः*। सर्वप्रथम मनुष्य को चाहिए कि विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करे और नित्य सोलह माला जप करे। इस प्रकार जब शुद्ध भक्त बन जाय और यह सोचे कि मैं वास्तव में वैष्णव-पद पर आसीन हूँ, तो उसे अपने गुरु की आज्ञा लेनी चाहिए और उस आज्ञा की पुष्टि उसके हृदय में स्थित कृष्ण द्वारा भी होनी चाहिए। तब यदि कोई अत्यन्त निष्ठावान् तथा शुद्ध है तो वह दिव्य साहित्य लिख सकता है, चाहे वह पद्य हो गया गद्य।

दरशन करि कैलूँ चरण वन्दन।
गोसाञिदास पूजारी करे चरण-सेवन॥७४॥

अनुवाद

जब मैं मदनमोहन के मन्दिर में दर्शन करने गया तो पुजारी गोसाईं दास भगवान् के चरणों की सेवा कर रहा था। मैंने भी भगवान् के

चरणकमलों पर प्रार्थना की।

प्रभुर चरणे य़दि आज्ञा मागिल।
प्रभुकण्ठ हैते माला खसिया पड़िल॥७५॥

अनुवाद

जब मैंने भगवान् से आज्ञा माँगी, तो तुरन्त ही उनके गले की माला नीचे खिसक आई।

सब वैष्णवगण हरिध्वनि दिल।
गोसाञिदास आनि' माला मोर गले दिल॥७६॥

अनुवाद

जब यह घटना घटी तो यहाँ पर खड़े सारे वैष्णवजनों ने 'हरिबोल!' की हर्षध्वनि की और पुजारी गोसाईं दास ने वह माला लाकर मेरे गले में डाल दी।

आज्ञामाला पाञा आमार हइल आनन्द।
ताँहाइ करिनु एइ ग्रन्थेर आरम्भ॥७७॥

अनुवाद

इस माला को भगवान् के आदेश रूप में पाकर मैं अत्यधिक प्रसन्न हुआ और तुरन्त ही मैंने यह ग्रंथ लिखना प्रारम्भ कर दिया।

एइ ग्रंथ लेखाय मोरे 'मदनमोहन'।
आमार लिखन य़ेन शुकेर पठन॥७८॥

अनुवाद

वास्तव में *चैतन्यचरितामृत* मेरा लिखा नहीं है, अपितु श्री मदनमोहन द्वारा लिखाया गया है। मेरा लिखना तो सुग्गे जैसा दोहराना (पुनरावृत्ति) है।

तात्पर्य

सारे भक्तों का यही मनोभाव होना चाहिए। जब भगवान् किसी भक्त को मान्यता देते हैं तो वे उसे बुद्धि देते हैं और बतलाते हैं कि किस तरह भगवद्धाम वापस जाया जाये। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में (१०.१०) हुई है—

तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो लोग मेरी निरन्तर भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं ज्ञान प्रदान करता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकें।" भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगने के लिए हर व्यक्ति को छूट है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति विधानतः भगवान् का दास है। भगवान् की सेवा में लगना जीव का सहज कार्य है, किन्तु वह माया के द्वारा आच्छन्न होने से इसे कठिन कार्य समझ बैठता है। किन्तु यदि वह गुरु के मार्गदर्शन में रह कर निष्ठा से काम करे तो हर एक के हृदय में वास करने वाले भगवान् तुरन्त ही उसे निर्देश देते हैं कि उनकी सेवा किस तरह की जाय। (*ददामि बुद्धियोगं तम्*)। भगवान् वह निर्देश देते हैं जिससे भक्त का जीवन सफल हो जाता है। शुद्ध भक्त जो भी कार्य करता है वह परमेश्वर के निर्देश के अनुसार होता है। *चैतन्य-चरितामृत* का प्रणेता इसकी पुष्टि कर रहा है कि उसने जो भी लिखा है वह श्री मदनमोहन-विग्रह के निर्देशानुसार है।

सेइ लिखि, मदनगोपाल ग्रे लिखाय।
काष्ठेर पुत्तली ग्रेन कुहके नाचाय॥७९॥

अनुवाद

जिस प्रकार जादूगर काठ की पुतली को नचाता है उसी प्रकार मदनगोपाल मुझे जो-जो आदेश देते हैं, मैं वह-वह लिखता हूँ।

तात्पर्य

यह शुद्ध भक्त की स्थिति है। मनुष्य को अपने ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं लेनी चाहिए, अपितु भगवान् की शरण में जाना चाहिए। वे ही चैत्य गुरु अर्थात् अन्तर के गुरु के रूप में निर्देश देंगे। भगवान् भीतर तथा बाहर से भक्त को मार्गदर्शन करने में प्रसन्न होते हैं। वे भीतर से परमात्मा के रूप में मार्गदर्शन करते हैं और बाहर से गुरु के रूप में।

कुलाधिदेवता मोर—मदनमोहन।
ग्राँर सेवक—रघुनाथ, रूप, सनातन॥८०॥

अनुवाद

मैं मदनमोहन को अपना पारिवारिक देवता मानता हूँ, जिनकी उपासना करने वाले रघुनाथदास, श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी हैं।

वृन्दावनदासेर पादपद्म करि' ध्यान।
ताँर आज्ञा लञा लिखि याहाते कल्याण॥८१॥

अनुवाद

तब मैंने श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के चरणकमलों पर प्रार्थना करके उनकी अनुमति माँगी और अनुमति पा लेने के बाद मैंने यह दिव्य ग्रंथ लिखने का प्रयास किया है।

तात्पर्य

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने न केवल वैष्णव तथा मदनमोहन की आज्ञा प्राप्त की, अपितु वृन्दावन दास ठाकुर से भी प्राप्त की, जिन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का व्यास माना जाता है।

चैतन्यलीलाते 'व्यास'—वृन्दावनदास।
ताँर कृपा विना अन्य ना हय प्रकाश॥८२॥

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर प्रामाणिक लेखक हैं चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के। अतएव उनकी कृपा के बिना इन लीलाओं का वर्णन नहीं किया जा सकता।

मूर्ख, नीच, क्षुद्र मुञि विषय-लालस।
वैष्णवाज्ञा-बले करि एतेक साहस॥८३॥

अनुवाद

मैं मूर्ख, निम्न कुल में उत्पन्न तथा क्षुद्र हूँ और सदा ही भौतिक भोग की इच्छा करता हूँ। फिर भी वैष्णव की आज्ञा के कारण मैं इस दिव्य ग्रंथ को लिखने के लिए अत्यन्त उत्साहपूर्ण हूँ।

श्रीरूप-रघुनाथ-चरणेर एइ बल।
याँर स्मृते सिद्ध हय वाञ्छित सकल॥८४॥

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी तथा रघुनाथदास गोस्वामी के चरणकमल मेरे बल के साधन हैं। उनके चरणकमलों के स्मरण से मनुष्य की सारी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं।

श्री रूप-रघुनाथ-पदे य़ार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥८५॥

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करके, तथा सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए *श्रीचैतन्य-चरितामृत* कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत, आदिलीला के आठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें लेखक द्वारा आचार्यों, कृष्ण तथा गुरु की आज्ञा प्राप्त करने का वर्णन हुआ है।

आदि-लीला

अध्याय ९

श्रील भक्तिविनाद ठाकुर ने अपने ग्रंथ *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में नवें अध्याय का सारांश निम्न प्रकार से दिया है। लेखक ने भक्ति के वृक्ष की कल्पना की है। वे विश्वम्भर नामधारी चैतन्य महाप्रभु को इस वृक्ष का लगाने वाला (माली) मानते हैं क्योंकि वही प्रमुख व्यक्ति है जिसने इसका भार अपने ऊपर ले रखा है। परम भोक्ता के रूप में उन्होंने फूलों का भोग किया है और उन्हें बाँटा भी है। इस वृक्ष का बीज सर्वप्रथम चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि नवद्वीप में बोया गया। फिर यह वृक्ष पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) में लाया गया और तब वृन्दावन में। इसका बीज सर्वप्रथम श्रील माधवेन्द्र पुरी में फलित हुआ और फिर उनके शिष्य श्री ईश्वर पुरी में। बड़े ही आलंकारिक ढंग से बतलाया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृक्ष और तना दोनों ही हैं। परमानन्द पुरी तथा अन्य आठ बड़े-बड़े संन्यासी इस वृक्ष की दूर-दूर तक फैलने वाली जड़ें हैं। इसके मुख्य तने से दो विशेष शाखाएँ निकलती हैं—अद्वैत प्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु और इन शाखाओं से अन्य उपशाखाएँ निकलती हैं। यह वृक्ष सारे जगत को घेरे है और इसके फूल हर एक को वितरित होने हैं। इस तरह चैतन्य महाप्रभु-रूपी वृक्ष समग्र संसार को मोहने वाला है। ध्यान रहे कि यह आलंकारिक उदाहरण चैतन्य महाप्रभु के उद्देश्य की व्याख्या करने के निमित्त है।

तं श्रीमत्कृष्णचैतन्यदेवं वन्दे जगद्गुरुम्।
यस्यानुकम्पया श्वापि महाब्धिं सन्तरेत् सुखम्॥१॥

अनुवाद

मैं अखिल जगत के गुरु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से एक कुत्ता भी महासागर को पार कर सकता है।

तात्पर्य

कभी-कभी देखा जाता है कि कुत्ता कुछ दूर तक पानी में तैर सकता है और फिर किनारे लौट आता है। किन्तु यहाँ पर यह कहा गया है कि श्रीकृष्ण चैतन्य की कृपा से कुत्ता महासागर के आर-पार तैर सकता है। इसी प्रकार *चैतन्य-चरितामृत* का प्रणेता अपने को असहाय बतलाते हुए कहता है कि मुझमें अपनी कोई शक्ति नहीं है किन्तु वैष्णवों तथा मदनमोहन विग्रह के माध्यम से व्यक्त श्री चैतन्य की कृपा से मैं दिव्य सागर को पार करके *श्रीचैतन्य-चरितामृत* प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ हूँ।

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य गौरचन्द्र।
जय जयाद्वैत जय जय नित्यानन्द॥२॥

अनुवाद

उन श्रीकृष्ण चैतन्य की जय हो जो गौरहरि कहलाते हैं। अद्वैत तथा नित्यानन्द प्रभु की जय हो।

जय जय श्रीवासादि गौर भक्तगण।
सर्वाभीष्ट-पूर्ति-हेतु य़ाँहार स्मरण॥३॥

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर इत्यादि भक्तों की जय हो। मैं अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उनके चरणकमलों का स्मरण करता हूँ।

तात्पर्य

यहाँ पर लेखक पञ्चतत्त्व की उसी पूजा-विधि का अनुसरण करता है जिसका वर्णन आदिलीला के सातवें अध्याय में हो चुका है।

श्रीरूप सनातन, भट्ट रघुनाथ।
श्रीजीव, गोपालभट्ट, दासरघुनाथ॥४॥

अनुवाद

मैं छहों गोस्वामियों—रूप, सनातन, भट्ट, रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा दास रघुनाथ का भी स्मरण करता हूँ।

तात्पर्य

दिव्य साहित्य लेखन की यही विधि है। जिस भावुक में वैष्णव-गुण नहीं होते वह दिव्य ग्रंथ नहीं लिख सकता। ऐसे अनेक मूर्ख हैं जो कृष्ण-लीला को कला का विषय मान कर गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं का अंकन या चित्रांकन करते हैं। कभी-कभी तो ये अत्यन्त अश्लील ढंग से उन्हें प्रदर्शित करते हैं। ये मूर्ख भौतिक इन्द्रियतृप्ति को आनन्द मानते हैं, किन्तु जो व्यक्ति सचमुच आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करना चाहता है उसे ऐसे गन्दे साहित्य से बचना चाहिए। जब तक कोई कृष्ण तथा वैष्णवों का दास नहीं बनता जिस प्रकार कि चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करते हुए कृष्णदास कविराज गोस्वामी अपने को प्रस्तुत करते हैं, तब तक उसे दिव्य साहित्य लिखने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

एसब-प्रसादे लिखि चैतन्य-लीलागुण
जानि वा ना जानि, करि आपन-शोधन॥५॥

अनुवाद

इन सारे वैष्णवों तथा गुरु की कृपा से ही मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं और गुणों को लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। चाहे जान में हो अथवा अनजान में, मैं आत्मशुद्धि के लिए ही यह पुस्तक लिख रहा हूँ।

तात्पर्य

दिव्य ग्रंथ का सार यही है। मनुष्य को विनीत एवं शुद्ध वैष्णव होना चाहिए। उसे श्रेय के लिए नहीं, अपितु आत्मशुद्धि के लिए दिव्य साहित्य लिखना चाहिए। भगवान् की लीलाओं के विषय में लिख कर वह भगवान् की प्रत्यक्ष संगति करता है। उसे यह महत्त्वकांक्षा नहीं होनी चाहिए कि मैं महान् लेखक बन जाऊँ और लेखक के रूप में विख्यात बनूँ। ये तो भौतिक इच्छाएँ हैं। मनुष्य को चाहिए कि आत्मशुद्धि के लिए लिखे—चाहे वह प्रकाशित हो या अप्रकाशित ही रहे। यदि सचमुच वह लिखने में निष्ठावान् है तो उसकी सारी इच्छाएँ पूरी होंगी। कोई महान् लेखक बनता है कि नहीं, यह दैववशात् है। भौतिक नाम तथा यश के लिए दिव्य साहित्य नहीं लिखना चाहिए।

मालाकार, स्वयं कृष्णप्रेमामरतरुः स्वयम्।
दाता भोक्ता तत्फलानां यस्तं चैतन्यमाश्रये॥६॥

अनुवाद

मैं भगवान श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण लेता हूँ, जो साक्षात् कृष्णप्रेम रूपी वृक्ष हैं, इसके माली हैं और इसके फलों के दाता तथा भोक्ता दोनों हैं।

प्रभु कहे, आमि 'विश्वम्भर' नाम धरि।
नाम सार्थक हय, य़दि प्रेमे विश्व भरि॥७॥

अनुवाद

चैतन्य ने सोचा, "मेरा नाम विश्वम्भर अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड का पालन करने वाला है। यह नाम तभी सार्थक बनेगा, जब मैं अखिल ब्रह्माण्ड को भगवत्प्रेम से भर दूँ।"

एत चिन्ति' लैला प्रभु मालाकार-धर्म।
नवद्वीपे आरम्भिला फलोद्यान-कर्म॥८॥

अनुवाद

इस प्रकार सोचते हुए उन्होंने माली का कार्य स्वीकार किया और नवद्वीप में एक उद्यान (बगीचा) लगाना प्रारम्भ कर दिया।

श्रीचैतन्य मालाकार पृथिवीते आनि'।
भक्ति-कल्पतरु रोपिला सिञ्चिऽइच्छापानि॥९॥

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु भक्ति रूपी कल्पवृक्ष को इस पृथ्वी पर ले आये और स्वयं माली बने। उन्होंने बीज बोया और उसे इच्छा रूपी जल से सींचा।

तात्पर्य

अनेक स्थलों पर भक्ति की उपमा लता से दी गई है। मनुष्य को अपने हृदय के भीतर भक्ति लता का बीज बोना होता है। ज्यों-ज्यों वह नियमित रूप से श्रवण और कीर्तन करता है, यह बीज उग कर धीरे-धीरे प्रौढ़ वृक्ष बनता है और फिर उसमें भक्ति का फल अर्थात् भगवत्प्रेम लगता है, जिसे

माली (*मालाकार*) बिना व्यवधान के भोग सकता है।

जय श्री माधवपुरी कृष्णप्रेमपूर।
भक्तिकल्पतरुर तेँहो प्रथम अङ्कुर॥१०॥

अनुवाद

कृष्ण-भक्ति के आगार श्री माधवेन्द्र पुरी की जय हो। वे भक्ति के कल्पवृक्ष हैं और उन्हीं में भक्ति का प्रथम बीज अंकुरित हुआ।

तात्पर्य

श्री माधवेन्द्र पुरी श्री माधव पुरी के नाम से भी जाने जाते हैं। वे मध्वाचार्य की शिष्य-परम्परा से सम्बद्ध थे और विख्यात संन्यासी थे। श्री चैतन्य महाप्रभु श्री माधवेन्द्र पुरी के तीसरे शिष्य वंशज थे। मध्वाचार्य की शिष्य-परम्परा की पूजा-विधि कर्मकाण्ड से बोझिल थी जिसमें भगवत्प्रेम का नामोनिशान न था। श्री माधवेन्द्र पुरी उस परम्परा के वे प्रथम व्यक्ति थे जिनमें भगवत्प्रेम के लक्षण प्रकट हुए। उन्होंने एक कविता लिखी जिसकी प्रथम पंक्ति थी—*आर्य दीनदयार्द्रनाथ*! इसी कविता में चैतन्य महाप्रभु के भगवत्प्रेम के अनुशीलन के बीज निहित हैं।

श्रीईश्वरपुरी-रूपे अङ्कुर पुष्ट हैल।
आपने चैतन्यमाली स्कन्ध उपजिल॥११॥

अनुवाद

इसके बाद भक्ति रूपी बीज श्री ईश्वरपुरी के रूप में अंकुरित हुआ और फिर श्री चैतन्य महाप्रभु जो स्वयं माली थे, उस भक्ति रूपी वृक्ष का मुख्य तना बने।

तात्पर्य

श्री ईश्वरपुरी कुमारहट्ट के वासी थे, जहाँ अब कामरहट्टी स्टेशन है। पास ही हालिसहर नामक अन्य स्टेशन है, जो कलकत्ता के पूर्वी सेक्शन के पूर्वी रेलवे से सम्बन्धित है। ईश्वरपुरी का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे श्रील माधवेन्द्र पुरी के सर्वाधिक प्रिय शिष्य थे। *चैतन्य-चरितामृत* के अंतिम भाग के आठवें अध्याय में श्लोक २८-२९ में कहा गया है—

ईश्वरपुरी करे श्रीपद सेवन
स्वहस्ते करेन मलमूत्रादि मार्जन।
निरन्तर कृष्णनाम कराय स्मरण
कृष्णनाम कृष्णलीला शुनय अनुक्षण।
तुष्ट हञा पुरी ताँरे कैल आलिङ्गन
वर दिल कृष्णे तोमार हउक प्रेमधन।
सेइ हइते ईश्वरपुरी प्रेमेर सागर

"श्री माधवेन्द्र पुरी अपने अन्तिम समय में अशक्त हो गये थे और हिल-डुल नहीं सकते थे। ईश्वर पुरी उनकी सेवा करते थे यहाँ तक कि उनका मलमूत्र भी स्वयं साफ करते थे। ईश्वर पुरी ने सदैव हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन और श्री माधवेन्द्र पुरी को उनके अन्तिम समय में भगवान् कृष्ण की लीलाओं का स्मरण कराकर उनके शिष्यों में से सर्वाधिक सेवा की। इस तरह माधवेन्द्र पुरी ने अत्यधिक प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया, "हे बालक! भगवान् कृष्ण से मेरी यही विनती है कि वे तुम पर प्रसन्न हों। इस प्रकार ईश्वर पुरी अपने गुरु की कृपा से भगवत्प्रेम के महासागर में महान् भक्त बन गये।" श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती अपने *गुर्वष्टक* में प्रार्थना करते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि*—गुरु की कृपा से ही कृष्ण-कृपा का वर मिलता है। कोई भी गुरु-कृपा के बिना उन्नति नहीं कर सकता। गुरु-कृपा से ही मनुष्य पूर्ण बनता है, जैसा कि इस उदाहरण से स्पष्ट है। एक वैष्णव की रक्षा सदैव भगवान् करते हैं किन्तु यदि वह अशक्त हो जाता है तो इससे उसके शिष्यों को सेवा करने का अवसर मिलता है। ईश्वर पुरी ने अपनी सेवा से गुरु को प्रसन्न कर लिया और अपने गुरु के आशीर्वाद से वे इतने महान् बन गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें अपना गुरु बनाया।

श्रील ईश्वर पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु थे, किन्तु चैतन्य को दीक्षा देने के पूर्व वे नवद्वीप जाकर गोपीनाथ आचार्य के घर कुछ महीने रहे थे। तभी चैतन्य का उनसे परिचय हुआ। तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु को *कृष्णलीलामृत* नामक अपनी पुस्तक सुनाया करते थे। इसका वर्णन *चैतन्य-भागवत* में (आदिलीला, सातवाँ अध्याय) मिलता है।

अन्यों के समक्ष दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए कि किस प्रकार गुरु का

आज्ञाकारी शिष्य बना जाय, श्री चैतन्य महाप्रभु ईश्वर पुरी के जन्मस्थान कामरहट्टी गये और वहाँ से कुछ मिट्टी लेते आये, जिसे वे सावधानी से रखते थे और नित्य उसमें से कुछ अंश खाया करते थे। *चैतन्य-भागवत* के बारहवें अध्याय में इसका वर्णन हुआ है। भक्तगण श्री चैतन्य महाप्रभु के दृष्टान्त का अनुसरण करते हुए वहाँ जाते हैं और मिट्टी लाते हैं।

निजाचिन्त्यशक्त्ये माली हञा स्कन्ध हय।
सकल शाखार सेइ स्कन्ध मूलाश्रय॥१२॥

अनुवाद

अपनी अचिन्त्य शक्ति से महाप्रभु एकसाथ माली, तना तथा शाखाएँ बने।

परमानन्द पुरी, आर केशव भारती।
ब्रह्मानन्द पुरी, आर ब्रह्मानन्द भारती॥१३॥
विष्णुपुरी, केवशवपुरी, पुरी कृष्णानन्द।
श्रीनृसिंहतीर्थ, आर पुरी सुखानन्द॥१४॥
एइ नव मूल निकसिल वृक्षमूले॥
एइ नव मूले वृक्ष करिल निश्चले॥१५॥

अनुवाद

श्री परमानन्द पुरी, केशव भारती, ब्रह्मानन्दपुरी, ब्रह्मानन्द भारती, श्री विष्णुपुरी, केशवपुरी, कृष्णानन्द पुरी, श्री नृसिंह तीर्थ तथा सुखानन्द पुरी—ये नौ संन्यासी वे जड़ें हैं, जो उस वृक्ष के तने से फूटीं। इस तरह इन नवों जड़ों के बल पर वह वृक्ष दृढ़ता से खड़ा रहा।

तात्पर्य

परमानन्द पुरी: परमानन्द पुरी उत्तरप्रदेश के तिरहुत जिले में एक ब्राह्मण परिवार से सम्बद्ध थे। माधवेन्द्र पुरी इनके गुरु थे। फलत: परमानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के बड़े प्रिय थे। *चैतन्य-भागवत* में (आदिलीला अध्याय ११) निम्नलिखित कथन है—

संन्यासीर मध्ये ईश्वरेर प्रियपात्र
आर नाहि एक पुरी गोसाञि से मात्र

दामोदरस्वरूप परमानन्दपुरी
संन्यासि पार्षदे एइ दुइ अधिकारी
निरवधि निकटे थाकेन दुइजन
प्रभुर संन्यासे करे दण्डेर ग्रहण
पुरी ध्यानपर दामोदरेर कीर्तन
यतप्रीति ईश्वरेर पुरी-गोसाञिरे
दामोदर-स्वरूपे-ओ तत प्रीति करे।

"माधवेन्द्र पुरी को संन्यासी शिष्यों में ईश्वर पुरी तथा परमानन्द पुरी अत्यन्त प्रिय थे। इस तरह संन्यासी स्वरूप दामोदर की तरह परमानन्द पुरी भी श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे और उनके नित्य पार्षद थे। जब चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास लिया तो परमानन्द पुरी ने उन्हें दण्ड प्रदान किया। परमानन्द पुरी सदैव ध्यान में और श्री स्वरूप दामोदर हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में लीन रहते थे। जिस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु अपने गुरु श्री ईश्वर पुरी का पूरा आदर करते थे उसी तरह वे परमानन्द पुरी तथा स्वरूप दामोदर का भी आदर करते थे।" *चैतन्य-भागवत* में (अन्त्य लीला, अध्याय ३) में वर्णन है कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले पहल परमानन्द पुरी को देखा तो उन्होंने निम्नलिखित बात कही—

आजि धन्य लोचन, सफल आजि जन्म
सफल आमार आजि हैल सर्वधर्म।
प्रभु बले आजि भोर सफल संन्यास
आजि माधवेन्द्र मोरे हइला प्रकाश।

"आज मेरी आँखें, मेरा मन, मेरे धार्मिक कृत्य तथा मेरा सन्यास स्वीकार करना—ये सभी धन्य हो गये क्योंकि मेरे सामने आज परमानन्द पुरी के रूप में माधवेन्द्र पुरी प्रकट हुए हैं। *चैतन्य-भागवत* में आगे कहा गया है—

कथोक्षणे अन्यो'न्ये करेन प्रणाम।
परमानन्दपुरी चैतन्येर प्रियधाम॥

"इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने परम प्रिय परमानन्द पुरी से सादर नमस्कार

का आदान-प्रदान किया।" परमानन्द पुरी ने जगन्नाथ-मन्दिर की पश्चिमी दिशा में एक छोटा-सा मठ स्थापित किया, जहाँ उन्होंने जल के लिए एक कुआँ खोद रखा था। लेकिन पानी खारा था, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ से प्रार्थना की कि वे गंगाजल को इस कुएँ में लाकर इसे मीठा बनाने के लिए कहें। जब जगन्नाथ ने प्रार्थना स्वीकार कर ली तो महाप्रभु ने सारे भक्तों से कहा कि आज से परमानन्द पुरी के कुएँ के जल को गंगाजल जैसा प्रसिद्ध मानें, क्योंकि इसका जल पीने या इससे नहाने से गंगास्नान करने या गंगाजल-पान करने जैसा ही लाभ मिलेगा। ऐसा व्यक्ति शुद्ध भगवत्प्रेम प्राप्त कर सकेगा। *चैतन्य भागवत* में कहा गया है—

प्रभु बले आमि ये आछिये पृथिवीते।
निश्चयै जानिह पुरीगोसाञिर प्रीते॥

"श्री चैतन्य महाप्रभु कहा करते थे, "मैं इस दुनिया में केवल श्री परमानन्द पुरी के सर्वोत्कृष्ट आचरण के कारण ही रह रहा हूँ।" *गौरगणोद्देश दीपिका* (श्लोक १८८) का कथन है—*पुरी श्री परमानन्दो य आसीद् उद्धवः पुरा*—परमानन्द पुरी श्री उद्धव ही थे। उद्धव भगवान् कृष्ण के पिता तथा चाचा थे और चैतन्य-लीला में यही उद्धव श्री चैतन्य महाप्रभु के मित्र तथा शिष्य-परम्परा में उनके चाचा थे।

केशव भारती: सरस्वती, भारती तथा पुरी सम्प्रदाय दक्षिण भारत के शृंगेरी मठ से सम्बन्धित हैं और श्री केशव भारती, जो उस समय कतवा स्थित मठ में रह रहे थे, भारती सम्प्रदाय के थे। कुछ प्रामाणिक मतों के अनुसार यद्यपि केशव भारती का सम्बन्ध शंकर सम्प्रदाय से था, किन्तु पहले वे एक वैष्णव द्वारा दीक्षित हो चुके थे। माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा प्राप्त करने के कारण वे वैष्णव माने जाते हैं, क्योंकि कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने माधवेन्द्र पुरी से संन्यास लिया था। खाटुण्डी नामक ग्राम में जो बर्दवान जिले में कान्दरा डाकखाने के अन्तर्गत है, मन्दिर है तथा उसमें केशव भारती द्वारा चालू की गई विग्रह-पूजा आज भी प्रचलित है। उस मठ के प्रबन्धकों के अनुसार पुजारी केशव भारती के वंशज हैं और कुछ लोगों के अनुसार विग्रह के पुजारी केशव भारती के पुत्रों के वंशज है। गृहस्थ जीवन में उन्हें दो पुत्र हुए—निशापति तथा उषापति। निशापति के वंश का ही एक सदस्य श्री नकडिचन्द्र विद्यारत्न नामक ब्राह्मण उस मन्दिर

का पुजारी था, जब श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती वहाँ गये थे। कुछ लोगों के अनुसार इस मन्दिर के पुजारी केशव भारती के भाई के वंशज हैं। अन्य लोग उन्हें माधव भारती के वंशज मानते हैं, जो केशव भारती के अन्य शिष्य थे। माधव भारती के शिष्य बलभद्र भी बाद में भारती सम्प्रदाय के संन्यासी बने। उनके दो पुत्र मदन तथा गोपाल थे। मदन का घरेलू नाम भारती था, जो औरिया गाँव में रहता था और गोपाल का घरेलू नाम ब्रह्मचारी था, जो देण्डुड गाँव में रहता था। इन दोनों वंशों के अनेक वंशज आज भी जीवित हैं।

गौरांगगणोद्देश-दीपिका में (श्लोक ५२) कहा गया है—

मथुरायां यज्ञसूत्रं पुरा कृष्णाय यो मुनिः।
ददौ सान्दीपनिः सोऽभूदद्य केशवभारती॥

"सन्दीपनि मुनि ही, जिन्होंने पुराकाल में कृष्ण तथा बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार कराया था बाद में केशव भारती बने। इन्हीं ने श्री चैतन्य महाप्रभु को सन्यास दिया। *गौरगणोद्देश-दीपिका* (श्लोक ११७) में अन्य कथन भी है—*इति केचित् प्रभाषान्तेऽक्रूरः केशवभारती*—कुछ प्रमाणों के अनुसार केशव भारती अक्रूर के अवतार हैं। केशव भारती ने १४३२ शकाब्द (सन् १५१० ई.) में श्री चैतन्य महाप्रभु को कटवा में संन्यास दिलाया। इसका उल्लेख *वैष्णवमञ्जूषा* (मागर) में हुआ है।

ब्रह्मानन्द पुरी: श्री ब्रह्मानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के तब के संगी थे जब वे नवद्वीप में कीर्तन करते थे। जगन्नाथ पुरी में भी वे महाप्रभु के साथ रहे। यहाँ यह ध्यान देना होगा कि ब्रह्मानन्द नाम न केवल मायावादी संन्यासियों का होता है अपितु वैष्णव संन्यासियों का भी। हमारे एक गुरु-भाई ने हमारे संन्यासी ब्रह्मानन्द स्वामी की यह कह कर आलोचना की कि यह तो मायावादी नाम है। वह मूर्ख यह भी नहीं जानता था कि ब्रह्मानन्द केवल निर्विशेष का ही सूचक नहीं है। परब्रह्म कृष्ण हैं। अतएव कृष्ण-भक्त भी ब्रह्मानन्द कहला सकता है। यह इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि ब्रह्मानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख्य संन्यासी-संगी थे।

ब्रह्मानन्द भारती: ब्रह्मानन्द भारती श्रीकृष्ण चैतन्य से मिलने जगन्नाथ धाम गये। उस समय वे केवल मृगचर्म पहनते थे और महाप्रभु ने अप्रत्यक्ष रीति से इंगित किया था कि उन्हें उनका मृगचर्म पहनना अच्छा नहीं लगता।

अतएव ब्रह्मानन्द भारती मृगचर्म पहनना त्याग कर वैष्णव संन्यासियों जैसा केसरिया (गेरुआ) कोपीन पहनने लगे। वे कुछ काल तक श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी में रहे।

मध्यमूल परमानन्द पुरी महाधीर।
अष्ट दिके अष्ट मूल वृक्ष कैल स्थिर॥१६॥

अनुवाद

धीरगम्भीर परमानन्द पुरी मध्य मूल (जड़) बने और आठों दिशाओं में अन्य आठ जड़ों समेत श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी वृक्ष स्थिर हो गया।

स्कन्धेर उपरे बहु शाखा उपजिल।
उपरि उपरि शाखा असंख्य हइल॥१७॥

अनुवाद

तने से तमाम शाखाएँ फूटीं और उनके भी ऊपर अनेक शाखाएँ निकलीं।

विश विश शाखा करि' एक एक मण्डल।
महा-महा-शाखा छाइल ब्रह्माण्ड सकल॥१८॥

अनुवाद

इस तरह चैतन्य रूपी वृक्ष की शाखाओं से एक गुच्छा या समाज बना और बड़ी-बड़ी शाखाएँ सारे ब्रह्माण्ड में छा गईं।

तात्पर्य

हमारा अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ भी चैतन्य-वृक्ष की एक शाखा है।

एकैक शाखाते उपशाखा शत शत।
यत उपजिल शाखा के गनिबे कत॥१९॥

अनुवाद

हर शाखा से सैकड़ों उपशाखाएँ फूटीं। इस तरह कितनी शाखाएँ निकलीं, इसकी गिनती नहीं हो सकती।

मुख्य मुख्य शाखागणेर नाम अगणन।
आगेत' करिब, शुन वृक्षेर वर्णन॥२०॥

अनुवाद

मैं इन असंख्य शाखाओं में से सर्वप्रमुख शाखाओं का नाम गिनाने का प्रयत्न करूँगा। कृपया चैतन्य-वृक्ष का वर्णन सुनें।

वृक्षेर उपरे शाखा हैल दुइ स्कन्ध।
एक 'अद्वैत' नाम, आर 'नित्यानन्द'॥२१॥

अनुवाद

वृक्ष के ऊपरी तने के दो भाग हो गये। एक तने का नाम अद्वैत प्रभु था और दूसरे का श्री नित्यानन्द प्रभु।

सेइ दुइस्कन्धे बहु शाखा उपजिल।
तार उपशाखागणे जगत् छाइल॥२२॥

अनुवाद

इन दोनों तनों से तमाम शाखाएँ एवं उपशाखाएँ उत्पन्न हुईं, जिन्होंने सारे जगत को छा लिया।

बड़ शाखा, उपशाखा, तार उपशाखा।
य़त उपजिल तार के करिबे लेखा॥२३॥

अनुवाद

ये शाखाएँ तथा उपशाखाएँ और उनकी भी उपशाखाएँ इतनी अधिक हो गईं कि उन सब के विषय में लिख पाना कठिन है।

शिष्य, प्रशिष्य आर उपशिष्यगण।
जगत् व्यापिल तार नाहिक गणन॥२४॥

अनुवाद

इस तरह शिष्य, उनके शिष्य और उन सब के प्रशंसक सारे जगत् में फैल गये। इन सब को गिना पाना सम्भव नहीं है।

उडुम्बर-वृक्ष य़ेन फले सर्व अङ्गे।
एइ मत भक्तिवृक्षे सर्वत्र फले लागे॥२५॥

अनुवाद

जिस प्रकार विशाल अंजीर वृक्ष में सर्वत्र फल लगते हैं, उसी तरह

भक्ति-वृक्ष के प्रत्येक अंग में फल लगे।

तात्पर्य

यह भक्ति-वृक्ष इस भौतिक जगत् का वृक्ष नहीं है। यह आध्यात्मिक जगत में बढ़ता है, जहाँ शरीर के विभिन्न अंगों में अन्तर नहीं होता। यह गन्ने. के वृक्ष के समान है जिसके पोर-पोर में मिठास होती है। भक्ति-वृक्ष में अनेक प्रकार की शाखाएँ, पत्तियाँ और फल होते हैं, किन्तु वे सब भगवान् की सेवा के लिए होते हैं। भक्ति की नौ भिन्न-भिन्न विधियाँ हैं (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्*)। किन्तु ये सभी भगवान् की सेवा के निमित्त हैं। अतएव चाहे कोई श्रवण करे, कीर्तन करे, स्मरण करे या पूजा करे, उसके कृत्यों का एक ही फल मिलेगा। इनमें से कौन-सी विधि किसी भक्त को ग्राह्य होगी यह उसकी रुचि पर निर्भर करेगा।

मूलस्कन्धेर शाखा आर उपशाखागणे।
लागिला ये प्रेमफल,—अमृतके जिने॥२६॥

अनुवाद

चूँकि श्रीकृष्ण चैतन्य आदि तना थे अतएव शाखाओं तथा उपशाखाओं में जो फल लगे, उनका स्वाद अमृत से बढ़ कर था।

पाकिल ये प्रेमफल अमृत-मधुर।
विलाय चैतन्यमाली, नाहि लय मूल॥२७॥

अनुवाद

फल पक कर मीठे तथा अमृतमय हो गये। माली श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें कोई मूल्य माँगे बिना ही वितरित कर दिया।

त्रिजगते यत आछे धन-रत्नमणि।
एकफलेर मूल्य करि' ताहा नाहि गणि॥२८॥

अनुवाद

भक्ति के ऐसे एक अमृतमय फल के मूल्य की बराबरी तीनों लोक की सारी सम्पदा भी नहीं कर सकती।

मागे वा ना मागे केह, पात्र वा अपात्र।
इहार विचार नाहि जाने, देय मात्र॥२९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसका विचार किये बिना कि कौन माँगता है, कौन नहीं माँगता अथवा कौन उसका पात्र है और कौन नहीं है, भक्तिरूपी फल का वितरण किया।

तात्पर्य

चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन-आन्दोलन का यही सार है। इस संकीर्तन-आन्दोलन को सुनने या इसमें भाग लेने का पात्र कौन है और कौन नहीं, इसमें भेदभाव नहीं किया जाता। इसका प्रचार भेदभाव-रहित होकर करना चाहिए। संकीर्तन-आन्दोलन के प्रचारकों का एकमात्र प्रयोजन बिना रुकावट के प्रचार-कार्य करना है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने विश्व में इस संकीर्तनआन्दोलन का सूत्रपात इसी विधि से किया।

अञ्जलि अञ्जलि भरि' फेले चतुर्दिशे।
दरिद्र कूडाञा खाय, मालाकार हासे॥३०॥

अनुवाद

दिव्य माली श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी दिशाओं में अंजुली में भर-भर कर फल बाँट दिये और जब गरीब भूखे लोगों ने यह फल खाया तो माली परम आनन्दित होकर हँस पड़ा।

मालाकार कहे,—शुन, वृक्ष-परिवार।
मूल शाखा-उपशाखा य़तेक प्रकार॥३१॥

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति-वृक्ष की तमाम शाखाओं तथा उपशाखाओं को सम्बोधित किया।

अलौकिक वृक्ष करे सर्वेन्द्रिय-कर्म।
स्थावर हइया धरे जङ्गमेर धर्म॥३२॥

अनुवाद

"चूँकि भक्ति-वृक्ष दिव्य होता है, अतएव इसका कोई भी अंग अन्य

अंगों का कार्य सम्पन्न कर सकता है। यद्यपि वृक्ष जड़ (अचल) होता है, किन्तु यह वृक्ष जंगम (चलने वाला) है।

तात्पर्य

भौतिक जगत में हम सबों का यह अनुभव है कि वृक्ष एक स्थान पर खड़े रहते हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत में वृक्ष एक स्थान से दूसरे स्थान को चला जाता है। इसलिए आध्यात्मिक जगत की हर वस्तु *अलौकिक* अर्थात् दिव्य है। इस वृक्ष की अन्य विशेषता यह है कि यह सारे विश्व में कार्य कर सकता है। भौतिक जगत में वृक्ष की जड़ें पृथ्वी के अन्दर जाकर अपना भोजन एकत्र करती हैं किन्तु आध्यात्मिक जगत में वृक्ष की टहनियाँ तथा पत्तियाँ भी जड़ों का काम कर सकती हैं।

ए वृक्षेर अङ्ग हय सब सचेतन।
बाडिया व्यापिल सबे सकल भुवन॥३३॥

अनुवाद

"इन वृक्ष के सारे अंग आध्यात्मिक रूप से सचेतन हैं और वे ज्यों-ज्यों ऊपर की ओर बढ़ते हैं त्यों-त्यों सारे जगत में फैल जाते हैं।"

एकला मालाकार आमि काहाँ काहाँ य़ाब।
एकला वा कत फल पाड़िया विलाब॥३४॥

अनुवाद

"मैं ही अकेला माली हूँ। मैं कितने स्थानों में जा सकता हूँ? मैं कितने फल तोड़ और बाँट सकता हूँ।

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु इंगित करते हैं कि हरे-कृष्ण-महामन्त्र का वितरण मिल कर करना चाहिए। यद्यपि वे परमेश्वर हैं, किन्तु उन्हें पश्चाताप है, "मैं अकेले कैसे कार्य कर सकता हूँ? अकेले मैं कैसे फल को तोड़ कर सारे जगत में वितरण कर सकता हूँ?" इससे सूचित होता है कि सभी श्रेणी के भक्तों को मिल कर देश-काल का विचार किये बिना हरे-कृष्ण-महामन्त्र का वितरण करना चाहिए।

एकला उठाञा दिते हय परिश्रम।
केह पाय, केहना पाय, रहे मने भ्रम॥३५॥

अनुवाद

"अकेले फलों को तोड़ कर उन्हें वितरित करना अत्यधिक परिश्रम का कार्य है, और मुझे सन्देह है, इतने पर भी सभी लोग उन्हें प्राप्त करेंगे या नहीं।

अतएव आमि आज्ञा दिलुँ सबाकारे।
य़ाहाँ ताहाँ प्रेमफल देह' य़ारे तारे॥३६॥

अनुवाद

"अतएव मैं इस ब्रह्माण्ड के हर व्यक्ति को आज्ञा देता हूँ कि इस कृष्णभावनामृत-आन्दोलन को स्वीकार करे और इसे सर्वत्र वितरित करे।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा लिखित एक गीत है—

एनेछि औषधि माया नाशिबार लागे'
हरिनाम महामन्त्र लाओ तुमि मागि'
भक्तिविनोद प्रभु- चरणे पडिय़ा
सेइ हरिनाममन्त्र लइल मागिया॥

श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन-आन्दोलन का सूत्रपात माया के उस मोह को भगाने के लिए किया, जिससे इस भौतिक जगत का हर व्यक्ति अपने को पदार्थ से उत्पन्न मानता है और शरीर के प्रति अपने कर्तव्यों को निभाता है। वास्तव में जीव शरीर नहीं अपितु आत्मा है। उसे ज्ञान तथा आनन्द से पूर्ण होने की आवश्यकता है, किन्तु वह अपने को शरीर मान लेता है, जिससे कभी वह मनुष्य, कभी पशु, कभी वृक्ष, तो कभी देवता बनता है। इस तरह शरीर बदलने के साथ ही वह विभिन्न प्रकार की चेतना विकसित करके विभिन्न कार्य करता है और इस तरह इस संसार में अधिकाधिक फँसता जाता हैं। माया के वशीभूत होकर वह भूत या भविष्य को न देख कर केवल वर्तमान के अल्पकालिक जीवन को देखता है। इस माया या मोह को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन-आन्दोलन

लाये और वे हर एक से प्रार्थना करते हैं कि लोग इसे अंगीकार करके वितरित करें। जो व्यक्ति सचमुच ही श्री भक्तिविनोद ठाकुर का अनुयायी है, उसे चैतन्य महाप्रभु के इस निवेदन को तुरन्त स्वीकार करके उनके चरणकमलों की याचना करनी चाहिए। यदि कोई इतना भाग्यशाली हो कि महाप्रभु से हरे-कृष्ण-महामन्त्र की याचना कर सके तो उसका जीवन सफल हो जाय।

एकला मालाकार आमि कत फल खाब।
ना दिया वा एइ फल आर कि करिब॥३७॥

अनुवाद

"मैं अकेला माली हूँ। यदि मैं इन्हें वितरित न करूँ तो इनका क्या करूँगा? अकेले मैं कितने फल खा सकता हूँ।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति के इतने फल उत्पन्न किये कि उन्हें सारे विश्व में वितरित कर देना जरूरी था, अन्यथा वे अकेले इतने सारे फलों को कैसे चख सकते थे? श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के अवतरित होने का मुख्य कारण था अपने प्रति श्रीमती राधारानी के प्रेम को समझना और उस प्रेम का आस्वादन करना। चूँकि भक्ति के फल असंख्य थे, अतएव वे बिना किसी रोक-टोक के हर एक को बाँट देना चाहते थे। इसलिए श्रील रूप गोस्वामी लिखते हैं—

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्ण: कलौ
समर्पयितुम् उन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरि: पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपित:
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु व: शचीनन्दन:॥

यद्यपि भगवान् के अनेक अवतार हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के समान उदार, दयालु तथा वदान्य कोई न था क्योंकि उन्होंने भक्ति के सबसे रहस्यमय पक्ष—राधाकृष्ण के माधुर्य प्रेम का वितरण किया। इसीलिए श्री रूप गोस्वामी प्रभुपाद चाहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त भक्तों के हृदयों में निरन्तर वास करें, क्योंकि तभी वे श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण-प्रेम-व्यापारों को समझ सकेंगे और उनका आस्वादन कर सकेंगे।

आत्म-इच्छामृते वृक्ष सिञ्चि निरन्तर।
ताहाते असंख्य फल वृक्षेर उपर॥३८॥

अनुवाद

"भगवान् की दिव्य इच्छा से सारे वृक्ष पर पानी छिड़का गया है और इस तरह भगवत्प्रेम के असंख्य फल हैं।

तात्पर्य

ईश्वर असीम है और उनकी इच्छाएँ भी असीम हैं। अनन्त फलों का यह उदाहरण भौतिक प्रसंग के उपयुक्त है, क्योंकि भगवान् की इच्छा से इतने फल, अन्न तथा खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं कि सारे लोग अपनी क्षमता से दस गुना भी अधिक खायें तो भी पर्याप्त बना रहे। इस जगत में यदि किसी वस्तु का अभाव है तो केवल कृष्णभावनामृत का। यदि लोग कृष्णभावनाभावित हो जायँ, तो भगवत्कृपा से इतना अधिक अन्न उत्पन्न हो सकता है कि सारी आर्थिक समस्याएँ दूर हो जायँ। इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है। फल-फूल का उत्पादन हमारी इच्छा पर नहीं, अपितु परमेश्वर भी परम इच्छा पर निर्भर करता है। यदि वे प्रसन्न रहें तो पर्याप्त फल-फूल प्रदान करेंगे, किन्तु यदि लोग नास्तिक तथा ईश्वरविहीन हैं तो प्रकृति भोजन की पूर्ति को कम कर देती है। उदाहरणार्थ, कभी-कभी वर्षा न होने से भारत के अनेक प्रान्तों में, विशेषतया महाराष्ट्र तथा उत्तरप्रदेश एवं निकटवर्ती राज्यों में, खाद्य पदार्थों का नितान्त अभाव हो जाता है। इस विषय में तथाकथित विज्ञानी तथा अर्थशास्त्री कुछ भी नहीं कर सकते। अतएव सारी समस्याओं को हल करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि कृष्णभावनाभावित बन कर तथा भगवान् की नित्य पूजा करके परमेश्वर की कृपा प्राप्त करने की चेष्टा करे।

अतएव सब फल देह' य़ारे तारे।
खाइया हउक् लोक अजर अमरे॥३९॥

अनुवाद

"इस कृष्णभावनामृत-आन्दोलन का वितरण सारे विश्व में करो, जिससे सारे लोग इन फलों को खाकर वृद्धावस्था तथा मृत्यु से मुक्त हों।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा चलाया गया कृष्णभावनामृत-आन्दोलन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि जो इसे स्वीकार करता है वह जन्म, मृत्यु तथा वृद्धावस्था से मुक्त होकर शाश्वत बन जाता है। लोग यह समझ नहीं पाते कि जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग ये जीवन के चार असली क्लेश हैं। वे इतने मूर्ख हैं कि इन चारों क्लेशों के समक्ष घुटने टेक देते हैं, क्योंकि वे हरे-कृष्ण-महामन्त्र के दिव्य उपचार को नहीं जानते। केवल हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन से सारे क्लेशों से छूटा जा सकता है, किन्तु लोग माया के वशीभूत होकर इस आन्दोलन को स्वीकार नहीं करते। अतएव जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के वास्तविक दास हैं, उन्हें चाहिए कि मानव समाज के सर्वाधिक लाभ के लिए इस आन्दोलन का विश्व-भर में विस्तार करें। निस्सन्देह पशु तथा निम्न योनियाँ इस आन्दोलन को समझने में असमर्थ हैं, किन्तु यदि कुछ ही जीव इसे गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करें तो उनके कीर्तन से सारे जीव, जिनमें पशु, वृक्ष तथा अन्य निम्न योनियाँ सम्मिलित हैं लाभान्वित होंगे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से पूछा कि वे मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य जीवों को कैसे लाभ पहुँचा रहे हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि हरे-कृष्ण-महामन्त्र इतना शक्तिशाली है कि यदि इसका जोर से उच्चारण किया जाय तो सभी व्यक्ति, जिसमें निम्न योनियाँ भी सम्मिलित हैं, लाभान्वित होंगे।

जगत व्यापिया मोर हबे पुण्य ख्याति।
सुखी हइया लोक मोर गाहिबेक कीर्ति॥४०॥

अनुवाद

"यदि फलों को सारे विश्व में वितरित किया जाय तो पुण्यात्मा के रूप में मेरी ख्याति सर्वत्र फैलेगी और सारे लोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मेरे नाम की महिमा का गान करेंगे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की यह भविष्यवाणी अब सच हो रही है। भगवान् के पवित्र नाम, हरे-कृष्ण-महामन्त्र के कीर्तन द्वारा कृष्णभावनामृत-आन्दोलन का विश्व-भर में वितरण हो रहा है और जो लोग सुदर्शनपूर्ण जीवन बिता रहे थे। वे अब दिव्य सुख का अनुभव कर रहे हैं। उन्हें संकीर्तन में शान्ति मिल रही है, अतएव वे इस अन्दोलन के परम लाभ को स्वीकार करते

हैं। यह श्री चैतन्य महाप्रभु का आशीर्वाद है। उनकी भविष्यवाणी वास्तव में पूरी हो रही है और जो लोग गम्भीर तथा भावुक हैं, वे इस महान आन्दोलन के महत्व को समझ रहे हैं।

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म य़ार।
जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार॥४१॥

अनुवाद

"जिसने भारतभूमि (भारतवर्ष) में मनुष्य होकर जन्म लिया है उसे अपना जीवन सफल बनाना चाहिए और अन्य सारे लोगों के लाभ के लिए कार्य करना चाहिए।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की वदान्यता इस महत्वपूर्ण श्लोक में व्यक्त हुई है। चूँकि वे बंगाल में पैदा हुए थे, जिससे बंगालियों का उनके प्रति विशेष दायित्व है, किन्तु महाप्रभु केवल बंगालियों को नहीं, अपितु भारत के सारे निवासियों को सम्बोधित कर रहे हैं। केवल भारतभूमि में ही वास्तविक मानव सभ्यता विकसित हो सकती है।

जैसा कि *वेदान्त-सूत्र* में कहा गया है मानव जीवन ईश-साक्षात्कार के लिए है (*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा*)। जो भी भारतभूमि (*भारतवर्ष*) में जन्म लेता है, उसे यह विशेष अवसर प्राप्त है कि वह वैदिक सभ्यता के उपदेश तथा मार्गदर्शन का लाभ उठाये। वह स्वतः आध्यात्मिक जीवन के मूल सिद्धान्तों को पा लेता है क्योंकि ९९.९ भारतीय लोग, यहाँ तक कि किसान तथा अशिक्षित लोग भी आत्मा के देहान्तरण, विगत तथा भावी जीवन एवं ईश्वर में विश्वास करते हैं और भगवान् या उनके प्रतिनिधि की पूजा करना चाहते हैं। ये विचार भारत में जन्म लेने वालों को उत्तराधिकार में मिलते हैं। भारत में अनेक पवित्र स्थान हैं—यथा गया, बनारस, मथुरा, प्रयाग, वृन्दावन, हरिद्वार, रामेश्वरम् तथा जगन्नाथ पुरी, और जहाँ अब भी लाखों लोग जाते हैं। यद्यपि भारत के वर्तमान नेता सामान्य जनता को ईश्वर, अगले जन्म, तथा पवित्र और अपवित्र जीवन में विश्वास न करने को प्रेरित करते हैं और उन्हें शराब पीने, मांस खाने तथा तथाकथित सभ्य बनने की शिक्षा देते हैं फिर भी लोग चार पापों—अवैध यौनाचार, मांसाहार, मद्यपान तथा द्यूतक्रीड़ा से भयभीत रहते हैं। जब भी कोई धार्मिक उत्सव मनाया जाता

है, तो हजारों की संख्या में लोग एकत्र होते हैं। हमें इसका वास्तविक अनुभव है। जब भी हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन कोई संकीर्तन-उत्सव कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, अहमदाबाद या हैदराबाद जैसे किसी बड़े शहर में मनाता हैं तो सुनने के लिए हजारों लोग आते हैं। कभी-कभी हम अंग्रेजी बोलते हैं, लेकिन अधिकांश लोग अंग्रेजी न समझने पर भी हमें सुनने आते हैं। जब भगवान् के नकली अवतार भी बोलते हैं तो भी हजारों लोग एकत्र होते हैं क्योंकि भारतभूमि में जन्मे हर व्यक्ति में सहज आध्यात्मिक प्रवृत्ति पाई जाती है और उसे आध्यात्मिक जीवन के मूल सिद्धान्त सिखलाये जाते हैं। उसे वैदिक सिद्धान्तों को कुछ और अधिक बताये जाने की आवश्यकता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा—*जन्म सार्थक करि' कर पर उपकार*—यदि भारतीयों को वैदिक सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाय तो वे समग्र जगत का सर्वाधिक उपयोगी, कल्याणकारी कार्य सम्पन्न कर सकते हैं।

सम्प्रति कृष्णभावनामृत की कमी के कारण सारा जगत अंध में है क्योंकि यह चार पापों—मांसाहार, अवैध यौनाचार, द्यूतक्रीड़ा तथा मद्यपान—से आवृत है। अतएव लोगों को इन पापकर्मों से विरत करने के लिए जोरदार प्रचार-कार्य की आवश्यकता है। इससे शान्ति तथा सम्पन्नता आयेगी, चोर-उचक्कों की संख्या घटेगी और मानव समाज ईश-भावनाभावित होगा।

हमारे द्वारा विश्व-भर में कृष्णभावनामृत-अन्दोलन के प्रसार का प्रभाव यह हुआ है कि सर्वाधिक पतित, लम्पट व्यक्ति भी परम उच्च सन्त बन रहे हैं। यह केवल एक भारतीय का सेवा-कार्य है विश्व के लिए। यदि श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशानुसार सारे भारतीय इस पथ का अनुसरण करते तो भारत विश्व को अद्वितीय उपहार दे सकता था और इस तरह वह महिमामंडित बन सकता था। किन्तु भारत तो दरिद्र देश माना जाता है और जब भी अमरीका या किसी अन्य ऐश्वर्यवान देश का कोई व्यक्ति भारत आता है तो उसे सड़कों के किनारे अनेक लोग लेटे मिलते हैं, जिन्हें दोनों वक्त भरपेट भोजन भी नहीं मिल पाता। ऐसी संस्थाएँ भी हैं, जो इन गरीब लोगों के कल्याण के नाम पर सारे विश्व से धन तो एकत्र करती हैं, किन्तु उसे अपनी इन्द्रियतृप्ति में खर्च करती हैं। लेकिन अब श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार कृष्णभावनामृत-आन्दोलन चालू किया गया है और लोग इस आन्दोलन से लाभान्वित हो रहे हैं। अतएव भारत के अग्रणी व्यक्तियों का कर्तव्य है कि इस आन्दोलन की महत्ता को समझें

और तमाम भारतीयों को प्रशिक्षित करके इस सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए उन्हें भारत से बाहर भेजें। तब लोग इसे स्वीकार करेंगे, इससे भारतीयों तथा विश्व के अन्य लोगों में सहयोग बढ़ेगा और तब श्री चैतन्य महाप्रभु का मिशन पूरा होगा। तब श्री चैतन्य महाप्रभु की सारे विश्व में कीर्ति फैलेगी और लोग न केवल इस जन्म में अपितु अगले जन्म में भी सुखी, शान्त तथा समृद्ध होंगे, क्योंकि *भगवद्गीता* में कहा गया है कि जो कोई भी भगवान् कृष्ण को समझता है वह आसानी से जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है, अर्थात् मोक्ष पा लेता है और भगवद्धाम को जाता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु प्रत्येक भारतीय से आग्रह करते हैं कि वह दुनिया को भयावह ऊहापोह से बचाने के लिए उनके सम्प्रदाय का प्रचारक बने।

यह भारतीयों का ही नहीं अपितु हर एक का कर्तव्य है और हमें अत्यधिक प्रसन्नता है कि अमरीकी तथा यूरोपीय बालक तथा बालिकाएँ हमारे इस आन्दोलन में गम्भीरतापूर्वक हाथ बँटा रहे हैं। हमें यह जान लेना होगा कि सारे मानव समाज के लिए सर्वोत्तम कल्याणकारी कार्य है मनुष्य में ईश-भावनामृत या कृष्णभावनामृत को जागृत करना। अतएव हर व्यक्ति को चाहिए कि इस महान आन्दोलन की सहायता करे। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* में (१०.२२.३५) हुई है जो अगले श्लोक के रूप में उद्धृत है।

एतावज्जन्म साफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेयआचरणं सदा॥४२॥

अनुवाद

" 'हर प्राणी का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन, धन, बुद्धि, तथा वाणी से अन्यों के लाभ के लिए कल्याण-कार्य करे॥'

तात्पर्य

कार्य दो प्रकार के होते हैं—*श्रेयस्*जो अन्ततोगत्वा लाभप्रद तथा मंगलप्रद होते हैं तथा *प्रेयस्* जो तुरन्त ही लाभप्रद तथा मंगलप्रद होते हैं। उदाहरणार्थ, बच्चों को खेलने का शौक होता है। वे शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्कूल नहीं जाना चाहते और सोचते हैं कि अपने मित्रों के साथ रात-दिन खेलना ही उनके जीवन का लक्ष्य है। यहाँ तक कि भगवान् कृष्ण के दिव्य जीवन में भी हम देखते हैं कि जब वे बालक थे, तो उन्हें अपने ही समवयस्क ग्वालबालों से खेलना अत्यन्त प्रिय था। वे खाना खाने तक घर नहीं जाते

थे। माता यशोदा को उन्हें घर लाने के लिए फुसलाना पड़ता था। अतएव बच्चे का स्वभाव है कि वह रात-दिन खेल में लगा रहता है और अपने स्वास्थ्य तथा अन्य महत्वपूर्ण कार्यों की भी परवाह नहीं करता। यह *प्रेयस्* का उदाहरण है। किन्तु कार्य कुछ *श्रेयस्* भी हैं जो अंतत: मंगलप्रद होते है। वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य को ईश-भावनाभावित होना चाहिए। उसे यह जानना चाहिए कि ईश्वर क्या है? यह भौतिक जगत क्या है? वह कौन है और उनके परस्पर सम्बन्ध क्या है? यह *श्रेयस्* कहलाता है अर्थात् अंतत: मंगलप्रद कार्य।

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में बतलाया गया है कि मनुष्य को *श्रेयस्* कार्य में रुचि दिखलानी चाहिए। श्रेयस के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे अपना सर्वस्व—अपना जीवन, धन तथा वाणी—अपने लिए ही नहीं, अपितु अन्यों के लिए अर्पित कर देना चाहिए। किन्तु जब तक वह अपने निजी जीवन में *श्रेयस्* में रुचि नहीं लेगा तब तक वह अन्यों को श्रेयस् का उपदेश नहीं दे सकता।

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उद्धृत यह श्लोक मनुष्यों पर लागू होता है, पशुओं पर नहीं। जैसा कि पिछले श्लोक में *मनुष्य-जन्म* शब्द से इंगित किया गया है, ये आदेश मनुष्यों के लिए हैं। दुर्भाग्यवश अब के मनुष्य मानव-देह धारण करते हुए आचरण में पशुओं से भी बदतर होते जा रहे हैं। यह आधुनिक शिक्षा का दोष है। आधुनिक शिक्षक मानव-जीवन के उद्देश्य को नहीं जानते, उन्हें इसी की चिन्ता रहती है कि वे अपने देश या मानव-समाज की आर्थिक दशा को कैसे उन्नत बनायें। यह भी आवश्यक है। वैदिक सभ्यता में तो मानव-जीवन के सारे पक्षों पर विचार किया लाया है—इनमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सम्मिलित हैं। किन्तु मानवता का पहला तकाजा धर्म है। धार्मिक बनने के लिए मनुष्य को ईश्वर के आदेशों के अनुसार चलना होता है; किन्तु दुर्भाग्यवश इस युग के लोगों ने धर्म का तिरस्कार कर दिया है और वे आर्थिक उन्नति में लगे हुए हैं। अतएव धन पाने के लिए वे किसी भी साधन को अपना सकते है। आर्थिक उन्नति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि धन चाहे जिस विधि से प्राप्त किया जाय। मनुष्य को केवल उतना ही धन चाहिए जिससे उदर-पोषण हो सके। किन्तु आधुनिक आर्थिक विकास बिना किसी धार्मिक पृष्ठभूमि के किया जा

रहा है, अतएव लोग लालची, विषयी तथा धन के पीछे उन्मत्त रहते हैं। वे केवल रजो तथा तमोगुणों को विकसित कर रहे हैं और सतोगुण तथा ब्राह्मण-गुणों की उपेक्षा कर रहे हैं। इसीलिए सारा समाज अस्तव्यस्त है।

भागवत का कथन है कि प्रबुद्ध मनुष्य का कर्तव्य है कि वह इस तरह कर्म करे कि मानव समाज, जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। ऐसा ही श्लोक *विष्णु-पुराण* में भी (३.२.४५) आता है जो नीचे उद्धृत है।

प्राणिनामुपकाराय यदेवेह परत्र च।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान् भजेत्॥४३॥

अनुवाद

" 'बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कार्यों, विचारों तथा शब्दों से ऐसे कर्म करे जो सारे प्राणियों को इस जन्म में तथा अगले जन्म में लाभप्रद हो सकें।

तात्पर्य

दुर्भाग्यवश सामान्य लोग यह नहीं जानते कि अगले जन्म में क्या होगा। अगले जीवन के लिए तैयार होना सामान्य बुद्धि है और यह वैदिक सभ्यता का सिद्धान्त है, किन्तु इस समय विश्व-भर में लोगों को अगले जीवन में विश्वास नहीं है। यहाँ तक कि बड़े-बड़े प्रभावशाली प्रोफेसर तथा अन्य शिक्षक यह कहते हैं कि शरीर समाप्त होते ही सब कुछ समाप्त हो जाता है। यह नास्तिक दर्शन मानव-सभ्यता को मार डाल रहा है। लोग मनमाने तौर पर सभी प्रकार के पापकर्म करते हैं और इस तरह मानव-जीवन का स्वत्व तथाकथित नेताओं के शैक्षिक प्रचार-कार्य से नष्ट होता जा रहा है। वास्तविकता तो यह है कि यह जीवन अगले जन्म की तैयारी के लिए है। विकास के द्वारा मनुष्य अनेक योनियों या स्वरूपों से होकर गुजरा है और यह मनुष्य-जीवन श्रेष्ठ जीवन प्राप्त करने का सुअवसर होता है। इसकी व्याख्या *भगवद्गीता* में (९.२५) हुई है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यानि पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।

"जो लोग देवताओं की पूजा करते हैं वे देवताओं के मध्य जन्म लेंगे,

जो भूतप्रेतों की पूजा करते हैं वे उनके बीच उत्पन्न होंगे, जो अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं वे अपने पूर्वजों के बीच रहेंगे तथा जो मेरी पूजा करते हैं वे मेरे साथ रहेंगे।" अतएव मनुष्य चाहे तो देवलोक जा सकता है, चाहे तो पितृलोक को जा सकता है, चाहे तो पृथ्वी लोक में रह सकता है या भगवद्धाम वापस जा सकता है। इसकी आगे पुष्टि *भगवद्गीता* में (४.९) हुई है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*। शरीर त्यागने के बाद जो कृष्ण को सचमुच जानता है वह इस लोक में फिर से भौतिक शरीर धारण करने नहीं आता। वह भगवद्धाम चला जाता है। शास्त्रों में यह ज्ञान दिया हुआ है और लोगों को इसे समझने का अवसर दिया जाना चाहिए। यदि कोई एक जन्म में भगवद्धाम नहीं जा पाता तो वैदिक सभ्यता उसे यह अवसर प्रदान करती है कि वह देवलोक स्वर्ग को जाय और पुनः पशु-जीवन में न आ गिरे। अधुना, लोग इस ज्ञान को महान् विज्ञान होते हुए भी, नहीं समझते, क्योंकि वे अशिक्षित हैं और इसे न स्वीकार करने के लिए प्रशिक्षित किये जाते हैं। आधुनिक मानव समाज की ऐसी भयावह स्थिति है। फलतः कृष्णभावनामृत-आन्दोलन ही एकमात्र आशा की किरण है जो बुद्धिमान व्यक्तियों के ध्यान को जीवन के अधिकाधिक लाभ की ओर आकृष्ट कर सकता है।

माली मनुष्य आमार नाहि राज्य-धन।
फल-फूल दिया करिं' पुन्य उपार्जन॥४४॥

अनुवाद

"मैं तो केवल माली हूँ। मेरे पास न तो साम्राज्य है न धन है। मेरे पास तो कुछ फल-फूल हैं, जिनका उपयोग मैं अपने जीवन में पुण्य प्राप्त करने के लिए करना चाहता हूँ।

तात्पर्य

मानव-समाज के कल्याण-कार्यों के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं को किसी धनी व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं करते जिससे सूचित होता है कि मानवता के कल्याण-कार्य करने के लिए मनुष्य का धनी या ऐवर्यवान होना आवश्यक नहीं है। कुछ धनी व्यक्तियों को इसका गर्व रहता है कि वे ही मानव-समाज के लिए कल्याणप्रद कार्य कर सकते हैं, अन्य लोग नहीं। इसका जीता-जागता उदाहरण यह है कि जब अवर्षा के कारण भारत में अकाल पड़ता है तो

धनी वर्ग के सदस्य सरकार की सहायता से बड़े आयोजन के रूप में खाद्य सामग्री का वितरण बड़े ही गर्व के साथ करते हैं, मानो ऐसे कार्यों से ही लोगों को लाभ हो सकता है। मान लीजिये कि अन्न न रहता तो फिर ये धनी लोग किस तरह अन्न वितरण करते? अन्न का उत्पादन पूरी तरह से ईश्वर के हाथ में है। यदि पानी न बरसे तो अन्न न उपजे और ये तथाकथित धनी लोग तब अन्न का वितरण नहीं कर सकेंगे।

अतएव जीवन का असली उद्देश्य भगवान् को प्रसन्न करना है। श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में कहा है कि भक्ति इतनी महान है कि हर व्यक्ति के लिए लाभप्रद तथा मंगलप्रद है। श्रील चैतन्य महाप्रभु ने भी घोषणा की कि मानव समाज में भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए किसी के लिए धनी होना आवश्यक नहीं है। कोई भी इसे कर सकता है और यदि वह कला जानता है तो मानवता को सर्वोच्च लाभ पहुँचा सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने को माली बताते हैं जो अधिक धनी नहीं होता किन्तु जिसके पास फल-फूल तो रहता ही है। कोई भी व्यक्ति फल-फूल एकत्र करके भगवान् को भक्ति के द्वारा प्रसन्न कर सकता है। जैसा कि *भगवद्गीता* में (९.२६) संस्तुति की गई है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः।

भले ही मनुष्य अपनी सम्पत्ति से भगवान् को प्रसन्न न कर पाये, किन्तु कोई भी व्यक्ति कुछ फल या फूल एकत्र करके उन्हें भगवान् को अर्पित कर सकता है। भगवान् कहते हैं कि यदि कोई भक्तिपूर्वक ऐसी भेंट लाता है तो वे उसे स्वीकार करके उसका भोग लगाते हैं। *महाभारत* में एक कथा है कि किस प्रकार कृष्ण के भोजन करने से दुर्वासा मुनि के साठ हजार शिष्य तुष्ट हो गये। अंतएव यह तथ्य है कि यदि हम अपने प्राणों से (*प्राणैः*), अपने धन से (*अर्थैः*), अपनी बुद्धि से (*धिया*) या अपनी वाणी से (*वाचैः*) भगवान को प्रसन्न कर सकें तो सारा संसार सुखी होगा। इसलिए हमारा यह मुख्य कर्तव्य है कि हम अपने कार्यों, अपने धन, तथा अपने शब्दों से भगवान् को प्रसन्न करें। यह अतीव सरल है। भले ही किसी के पास धन न रहे, वह हर एक को हरे-कृष्ण-मन्त्र का उपदेश दे सकता है। वह घर-घर जाकर हर एक से हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन

करने का अनुरोध कर सकता है। इस तरह सारे विश्व की स्थिति सुखमय तथा शान्तिपूर्ण हो सकेगी।

माली हञा वृक्ष हइलाङ् एइ तऽइच्छाते।
सर्वप्राणीर उपकार हय वृक्ष हैते॥४५॥

अनुवाद

"यद्यपि मैं माली का कार्य कर रहा हूँ, किन्तु मैं वृक्ष भी बनना चाहता हूँ, क्योंकि इस तरह सबों को लाभ पहुँचा सकता हूँ।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु मानव-समाज के सर्वाधिक उपकारी पुरुष हैं, क्योंकि लोगों को सुखी बनाना ही उनकी एकमात्र अभिलाषा है। उनका संकीर्तन आन्दोलन लोगों को सुखी बनाने के विशेष उद्देश्य के लिए है। वे स्वयं वृक्ष बनना चाह रहे थे क्योंकि वृक्ष सर्वाधिक उपकारी जीव है। अगले श्लोक में, जो *श्रीमद्भागवत* से है (१०.२२.३३) स्वयं कृष्ण ने वृक्ष के अस्तित्व की अत्यधिक प्रशंसा की है।

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीविनाम्।
सुजनस्येव एषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः॥४६॥

अनुवाद

"जरा देखो तो! ये वृक्ष किस तरह हर जीव का पालन कर रहे हैं। इनका जन्म सफल है। इनका आचरण महापुरुषों जैसा है, क्योंकि जो कोई भी वृक्ष से कुछ माँगता है, वह कभी निराश होकर नहीं जाता।"

तात्पर्य

वैदिक सभ्यता के अनुसार क्षत्रियों को महापुरुष माना जाता है, क्योंकि यदि कोई क्षत्रिय राजा के पास दान लेने जाता है तो वह कभी इनकार नहीं करता। वृक्षों की तुलना उन नेक क्षत्रियों से की जाती है क्योंकि वृक्षों से लोग सभी तरह के लाभ उठाते हैं—कोई फल लेता है, कोई फूल लेता है तो कोई पत्ती या टहनी लेता है और कुछ लोग वृक्ष को काटते भी हैं, किन्तु फिर भी वृक्ष बिना हिचक के दान देता है।

मनुष्य की लम्पटता का दूसरा उदाहरण है बिना सोचे-विचारे वृक्ष काटना।

कागज उद्योग के लिए लाखों वृक्ष काटे जाते हैं और उस कागज से मानव समाज की मनचली पूर्ति के लिए कूड़ा साहित्य छापा जाता है। दुर्भाग्यवश ऐसे उद्योगपति अपने औद्योगिक विकास के कारण इस जीवन में सुखी तो रहते हैं किन्तु उन्हें इसका पता नहीं रहता कि उन पर इन जीवों को मारने का आरोप लगेगा, क्योंकि वृक्ष भी जीव हैं।

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का है जिसे कृष्ण ने उस समय कहा था जब वे गोपियों का चीरहरण करके (*वस्त्रहरण लीला*) एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। इस श्लोक को उद्धृत करके श्री चैतन्य महाप्रभु हमें यह शिक्षा देते हैं कि हमें वृक्षों के समान सहिष्णु और उपयोगी होना चाहिए, जो अपने नीचे आने वाले जरूरतमन्द व्यक्तियों को हर वस्तु प्रदान करते हैं। जरूरतमन्द व्यक्ति वृक्षों से तथा पशुओं से भी अनेक लाभ उठा सकता है, किन्तु आधुनिक सभ्यता में लोग इतने कृतघ्न हो चुके हैं कि वे वृक्षों तथा पशुओं का शोषण करके उनका वध कर देते हैं। ये आधुनिक सभ्यता के कुछ पापकर्म हैं।

एइ आज्ञा कैल यदि चैतन्य-मालाकार।
परम आनन्द पाइल वृक्ष-परिवार॥४७॥

अनुवाद

वृक्ष के वंशज (श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तगण) महाप्रभु से प्रत्यक्ष यह आदेश पाकर अत्यन्त प्रसन्न थे।

तात्पर्य

यह श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा है कि ५०० वर्ष पूर्व नवद्वीप में संकीर्तन-आन्दोलन के परोपकारी कार्यों का जो सूत्रपात किया गया था, वह सारे मनुष्यों के हित में सारे विश्व में फैले। दुर्भाग्यवश चैतन्य महाप्रभु के ऐसे अनेक तथाकथित अनुयायी हैं, जो मन्दिर बनवाने, अर्चाविग्रहों का प्रदर्शन करने, कुछ धन एकत्र करने तथा उसका उपयोग खाने और सोने के लिए करने में ही सन्तुष्ट रहते हैं। उनके द्वारा संसार-भर में श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के प्रचार का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु वे ऐसा करने में अक्षम होते हुए भी ईर्ष्या करते हैं; यदि कोई अन्य व्यक्ति उसे करता है। यह स्थिति है महाप्रभु के आधुनिक अनुयायियों की। कलियुग इतना प्रबल है कि इससे महाप्रभु के तथाकथित अनुयायी भी प्रभावित हो जाते हैं। कम-से-कम महाप्रभु के

अनुयायियों को भारत से बाहर जाकर उनके सम्प्रदाय का विश्व-भर में प्रचार करना चाहिए, क्योंकि यही महाप्रभु का मिशन है। महाप्रभु के अनुयायियों को चाहिए कि प्राणपण से उनकी इच्छा पूरी करने के लिए वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु और तिनके से भी अधिक विनीत बनें।

ग्रेइ ग्राहाँ ताहाँ दान करे प्रेमफल।
फलास्वादेमत्त लोक हइल सकल॥४८॥

अनुवाद

भगवत्प्रेम का फल इतना स्वादिष्ट होता है कि भक्त इसको जहाँ कहीं भी बाँटता है और विश्व-भर में कहीं भी जो इस फल का आस्वादन करता है, वह तुरन्त मस्त हो उठता है।

तात्पर्य

यहाँ पर महाप्रभु द्वारा वितरित किये गये अद्भुत फल का वर्णन हुआ है। हमें इसका व्यावहारिक अनुभव है कि जो इस फल को ग्रहण करता है और उसे ठीक से चखता है वह इसके पीछे दीवाना हो जाता है और महाप्रभु के उपहार हरे-कृष्ण-महामन्त्र से मदोन्मत्त होकर अपनी सारी बुरी आदतें छोड़ देता है। *चैतन्य-चरितामृत* के सारे कथन इतने व्यावहारिक हैं कि कोई भी इनकी परीक्षा कर सकता है। जहाँ तक हमारी बात है, हम तो भगवत्प्रेम के महान् फल को महामन्त्र—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे/हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे के माध्यम से वितरित करने की सफलता के प्रति आश्वस्त हैं।

महामादक प्रेमफल पेट भरि' खाय।
मातिल सकल लोक—हासे, नाचे, गाय॥४९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा वितरित भगवत्प्रेम रूपी फल इतना मादक है कि जो भी खाता है, अघा जाता है और तुरन्त ही उससे उन्मत्त हो उठता है। वह स्वतः ही कीर्तन करता, नाचता, हँसता और आनन्द लेता है।

केह गडागडि य़ाय, केह त' हुङ्कार।
देखि' आनन्दित हञा हासे मालाकार॥५०॥

अनुवाद

जब माली श्री चैतन्य महाप्रभु देखते हैं कि लोग कीर्तन करते, नाचते और हँसते हैं और कुछ लोग भूमि पर लोटपोट होते हैं तथा कुछ हुंकार भरते हैं, तो वे परम आनन्दित होकर हँसते हैं।

तात्पर्य

कृष्णभावनामृत के हरे-कृष्ण-आन्दोलन में लगे हुए लोगों के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु का यह मनोभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हमने अपने संस्थान **इस्कान** के प्रत्येक केन्द्र में हर रविवार के दिन एक प्रीति-भोज का आयोजन कर रखा है और हम देखते हैं कि लोग हमारे केन्द्र में आते हैं, कीर्तन करते हैं, नाचते हैं, प्रसाद ग्रहण करते हैं, हर्षित होते हैं और पुस्तकें खरीदते हैं। हमें विश्वास है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसे दिव्य कार्यों में सदैव उपस्थित रहते हैं और वे इससे अत्यन्त प्रसन्न तथा तुष्ट होते हैं। अतएव **इस्कान** के सदस्यों को चाहिए कि इस समय हम जिन सिद्धान्तों के अनुसार चलना चाह रहे हैं, उन्हीं के अनुसार इस आन्दोलन को अधिकाधिक बढ़ायें। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु प्रसन्न होकर मुसकाते हुए अपनी कृपादृष्टि डालेंगे और यह आन्दोलन सफल होगा।

एइ मालाकार खाय एइ प्रेमफल।
निरवधि मत्त रहे, विवश-विह्वल॥५१॥

अनुवाद

यह माली, चैतन्य महाप्रभु, स्वयं इस फल को खाते हैं; फलस्वरूप वे निरन्तर उन्मत्त रहते हैं, मानों असहाय एवं मोहग्रस्त हों।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का मिशन ही है कि स्वयं कर्म करके लोगों को शिक्षा दी जाय। वे कहते हैं—*आपनी आचरि' भक्ति करिल प्रचार* (चै.च. आदि ४.४१)। सर्वप्रथम कर्म करना चाहिए, तब शिक्षा देनी चाहिए। असली शिक्षक का यही कार्य है। जब तक वह अपने द्वारा बताए गये दर्शन को समझता नहीं, तब तक उसका प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव न केवल चैतन्य-सम्प्रदाय

के दर्शन को समझना होगा, अपितु अपने जीवन में उसे उतारना भी होगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करते करते कभी-कभी मूर्छित हो जाते थे और घंटों बेहोश पड़े रहते थे। *शिक्षाष्टक* में उनकी प्रार्थना है—

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्द-विरहेण मे।

"हे गोविन्द! आपके विरह में मुझे एक क्षण बारह वर्ष या इससे भी अधिक लगता है। मेरी आँखों से मेघ की झड़ी लगी हुई है और आपकी अनुपस्थिति में मुझे यह जगत बिल्कुल शून्य लगता है।" (शिक्षाष्टक ७)। यह सिद्ध अवस्था है जो हरे-कृष्ण-मन्त्र के कीर्तन करने तथा भगवत्प्रेम रूपी फल के खाने से मिलती है, जैसा कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने दिखलाया है। मनुष्य को चाहिए कि इस अवस्था की जान-बूझकर नकल न करे, किन्तु यदि वह नियमों का ठीक से पालन करे और हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करे तो वह घड़ी आयेगी जब ये लक्षण स्वत: प्रकट होंगे। उसकी आँखें अश्रुपूरित हो उठेंगी, वह ठीक से महामन्त्र का कीर्तन नहीं कर सकेगा और भावावेश में उसका हृदय स्पन्दित हो उठेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि इसकी नकल नहीं की जानी चाहिए, अपितु भक्त को ऐसी कामना करनी चाहिए कि वह दिन आये जब ऐसी समाधि के लक्षण उसके शरीर में स्वत: प्रकट हों।

सर्वलोके मत्त कैला आपन-समान।
प्रेमे मत्त लोक विना नाहि देखि आन॥५२॥

अनुवाद

महाप्रभु ने अपने संकीर्तन-आन्दोलन से हर एक को अपनी तरह मत्त बना दिया। हमें ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं मिलता, जो उनके संकीर्तन-आन्दोलन द्वारा मस्त न हो उठा हो।

ये ये पूर्वे निन्दा कैल, बलि' मातोयाल।
सेहो फल खाय, नाचे, बले—भाल, भाल॥५३॥

अनुवाद

जिन लोगों ने पहले श्री चैतन्य महाप्रभु की आलोचना उन्हें शराबी कह कर की थी, उन्होंने भी फल खाया और वे यह कह कर नाचने लगे, "बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!"

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन आन्दोलन प्रारम्भ किया तो मायावादियों, नास्तिकों तथा मूर्खों ने उनकी भी आलोचना की थी। अतः स्वाभाविक है कि ऐसे लोगों द्वारा हमारी भी आलोचना की जाये। ऐसे लोग सदैव रहेंगे और वे सदैव ऐसी हर बात की आलोचना करते रहेंगे जो मानव समाज के लिए उत्तम है; किन्तु संकीर्तन आन्दोलन के प्रचारकों को ऐसी आलोचना से कुंठित नहीं होना चाहिए। हमें चाहिए कि ऐसे मूर्खों को आने और प्रसाद-ग्रहण करने तथा अपने साथ कीर्तन करने और नाचने के लिए कहें और धीरे-धीरे उन्हें बदल दें। यही हमारी नीति होनी चाहिए। हाँ, जो हमारे साथ आना चाहता हो उसे निष्ठावान तथा जीवन के आध्यात्मिक विकास के प्रति आश्वस्त होना चाहिए। तब ऐसा व्यक्ति हमारे साथ कीर्तन करके, नाच करके और प्रसाद ग्रहण करके यह कहने लगेगा कि यह आन्दोलन बहुत ही उत्तम है। किन्तु जो व्यक्ति भौतिक लाभ या निजी तृप्ति के लिए सम्मिलित होना चाहता है वह कभी भी इस आन्दोलन के दर्शन को हृदयंग नहीं कर सकेगा।

एइ त' कहिलूँ प्रेमफल-वितरण।
एबे शुन, फलदाता ग्रे ग्रे शाखागण॥५४॥

अनुवाद

महाप्रभु द्वारा भगवत्प्रेम रूपी फल के वितरण का वर्णन करने के बाद अब मैं महाप्रभु रूपी वृक्ष की विभिन्न शाखाओं का वर्णन करना चाहूँगा।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥५५॥

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों की प्रार्थना करते हुए और उनकी कृपा की आकांक्षा रखते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर

चलते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के नवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें भक्तिरूपी वृक्ष का वर्णन है।

आदि-लीला

अध्याय १०

इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु नामक वृक्ष की शाखाओं का वर्णन हुआ है।

श्रीचैतन्यपदाम्भोज-मधुपेभ्यो नमो नमः।
कथञ्चिदाश्रयाद् येषां श्वापि तद्गन्धभाग् भवेत॥१॥

अनुवाद

मैं उन भँवरों के तुल्य भक्तों के चरणकमलों को बार-बार नमस्कार करता हूँ, जो चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के मधु का निरन्तर आस्वाद करते हैं। यदि कुत्ते जैसा अभक्त भी किसी प्रकार ऐसे भक्तों की शरण में पहुँच जाता है, तो उसे कमल के फूल की सुगन्धि का आनन्द प्राप्त होता है।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में कुत्ते का दृष्टान्त महत्वपूर्ण है। सामान्यतया कुत्ता भक्त नहीं बनता; किन्तु यह देखा गया है कि भक्त का कुत्ता भी कभी-कभी धीरे-धीरे भक्त बन जाता है। हमने स्वयं देखा है कि कुत्ते में तुलसी के पौधे के लिए भी कोई आदर नहीं होता। वह स्वभाववश तुलसी के पौधे पर पेशाब करता है। अतएव कुत्ता पहले दर्जे का अभक्त होता है। लेकिन श्री चैतन्य महाप्रभु का संकीर्तन-आन्दोलन इतना प्रबल है कि कुत्ते जैसा अभक्त भी श्री चैतन्य के भक्त की संगति से धीरे-धीरे भक्त बन जाता है। महाप्रभु के एक महान् गृहस्थ भक्त श्रील शिवानन्द सेन जब जगन्नाथ पुरी जा रहे थे तो एक भगेड़ू कुत्ता उनके साथ हो लिया। यह कुत्ता उनके साथ लगा रहा और चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जा पहुँचा; फलतः उसको मोक्ष मिल गया। इसी प्रकार श्रीवास ठाकुर के घर के कुत्ते तथा बिल्लियाँ भी

मोक्ष-लाभ प्राप्त कर सके। बिल्लियों, कुत्तों तथा अन्य पशुओं से भक्त बनने की आशा नहीं की जाती, किन्तु शुद्ध भक्त की संगति में इनका भी उद्धार हो जाता है।

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्री अद्वैत प्रभु की जय हो और श्रीवास समेत चैतन्य के भक्तों की जय हो।

एइ मालीर—एइ वृक्षेर अकथ्य कथन।
एबे शुन मुख्यशाखार नाम-विवरण॥३॥

अनुवाद

माली तथा वृक्ष के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु का वर्णन अकथनीय है। अब इस वृक्ष की शाखाओं के विषय में ध्यान से सुनिये।

चैतन्य-गोसाञिर य़त पारिषद-चय।
गुरु-लघु-भाव ताँर ना हय निश्चय॥४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के अनेक संगी थे, किन्तु इनमें से किसी को भी ऊँचा या नीचा नहीं मानना चाहिए क्योंकि इसका निर्धारण नहीं किया जा सकता।

य़त य़त महान्त कैला ताँ-सबार गणन।
केह करिबारे नारे ज्येष्ठ-लघु-क्रम॥५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की पंक्ति के सारे महापुरुषों की गणना इन भक्तों में हो जाती है, किन्तु इनमें कौन छोटा है और कौन बड़ा है—इसका अन्तर नहीं हो सकता।

अतएव ताँ-सबारे करि' नमस्कार।
नाम-मात्र करि, दोष ना लबे आमार॥६॥

अनुवाद

उन सबों को आदर के नाते नमस्कार करता हूँ। मेरी उनसे विनती कि वे मेरे अपराधों पर ध्यान नहीं देंगे।

वन्दे श्रीकृष्णचैतन्य-प्रेमामरतरोः प्रियाम्।
शाखारूपान् भक्तगणान् कृष्णप्रेमफलप्रदान्॥७॥

अनुवाद

मैं भगवत्प्रेम के शाश्वत् वृक्ष- रूपी श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त प्रिय भक्तों को नमस्कार करता हूँ। मैं इस वृक्ष की समस्त शाखाओं-रूपी महाप्रभु के उन भक्तों को नमस्कार करता हूँ, जो कृष्ण-प्रेम रूपी फल का वितरण करते हैं।

तात्पर्य

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी चैतन्य महाप्रभु के समस्त प्रचारक भक्तों को ऊँच-नीच का भेदभाव किये बिना नमस्कार करने की परिपाटी प्रस्तुत करते हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश इस समय महाप्रभु के ऐसे अनेक मूर्ख तथाकथित भक्त हैं, जो उनमें ऊँच-नीच का भेद करते हैं। उदाहरणार्थ, "प्रभुपाद" की उपाधि श्रील रूप गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी या श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी जैसे गुरुओं को प्रदान की जाती है। किन्तु जब हमारे शिष्यों ने अपने गुरू को "प्रभुपाद" के रूप में सम्बोधित करना चाहा तो कुछ मूर्ख लोग ईर्ष्या करने लगे। वे हरे-कृष्ण-आन्दोलन के प्रचार-कार्य पर विचार किये बिना ही हमारे शिष्यों से इसलिए ईर्ष्या करने लगे, क्योंकि उन्होंने अपने गुरु को प्रभुपाद कह कर सम्बोधित करना शुरू कर दिया था। फलतः उन्होंने कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के महत्व को कम करने के लिए अन्य ऐसे ही ईर्ष्यालु व्यक्तियों के साथ मिल कर एक दल बना लिया। ऐसे ही मूर्खों को दण्डित करने के उद्देश्य से श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी स्पष्ट कहते हैं—*कहे करिबारे नारे ज्येष्ठ-लघु-क्रम*। कोई भी जो श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रामाणिक प्रचारक होगा, वह महाप्रभु के असली भक्तों का सम्मान करेगा। उसे किसी एक प्रचारक को महान् और दूसरे को तुच्छ मान कर ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। यह भौतिक भेदभाव है जिसका आध्यात्मिक स्तर पर कोई महत्व नहीं है। इसीलिए कृष्णदास कविराज गोस्वामी चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय के उन समस्त प्रचारकों का समान रूप से आदर करते

हैं जिनकी उपमा वृक्ष की शाखाओं से दी गई है। **इस्कान** भी एक शाखा है, अतएव महाप्रभु के समस्त निष्ठावान भक्तों द्वारा इसका आदर किया जाना चाहिए।

श्रीवास पण्डित, आर श्रीराम पण्डित।
दुइ भाइ—दुइ शाखा, जगते विदित॥८॥

अनुवाद

श्रीवास पण्डित तथा श्रीराम पण्डित—इन दोनों भाइयों से दो शाखाएँ प्रारम्भ हुईं जो सर्वविदित हैं।

तात्पर्य

गौर-गणोद्देश दीपिका (श्लोक ९०) में श्रीवास पण्डित को नारद मुनि का और उनके छोटे भाई श्रीराम पण्डित को नारद के परम मित्र पर्वत मुनि का अवतार माना गया है। श्रीवास पण्डित की पत्नी मालिनी को कृष्ण की धाय, अम्बिका का अवतार माना गया है। *चैतन्य भागवत* के लेखक ठाकुर वृन्दावन दास की माता, जो श्रीवास पण्डित की भतीजी थीं, कृष्ण-लीला में अम्बिका की बहन थीं। *चैतन्य-भागवत* से पता चलता है कि महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने के बाद श्रीवास पण्डित ने भी विरहवश नवद्वीप छोड़ दिया था और कुमारहट्ट में रहने लगे थे।

श्रीपति, श्रीनिधि—ताँर दुइ सहोदर।
चारि भाइर दास-दासी, गृह-परिकर॥९॥

अनुवाद

उनके अन्य दो भाइयों के नाम श्रीपति तथा श्रीनिधि थे। उन चारों भाइयों, उनके नौकरों तथा नौकरानियों को एक बृहद् शाखा माना जाता है।

दुइ शाखार उपशाखार ताँ-सबार गणन।
याँर गृहे महाप्रभुर सदा संकीर्तन॥१०॥

अनुवाद

इन दोनों शाखाओं से निकलने वाली उपशाखाओं की कोई गिनती नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु नित्य ही श्रीवास पण्डित के घर में संकीर्तन

किया करते थे।

चारि भाइ सवंशे करे चैतन्येर सेवा।
गौरचन्द्र विना नाहि जाने देवी-देवा॥११॥

अनुवाद

ये चारों भाई तथा उनके परिवारिक सदस्य श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में लगे रहते थे। वे किसी अन्य देवता या देवी को नहीं जानते थे।

तात्पर्य

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने कहा है—*अन्य देवाश्रयनाइ, तोमारे कहिनु भाइ, एइ भक्ति परम-कारण*—यदि कोई शुद्ध कट्टर भक्त बनना चाहता है, तो उसे किसी अन्य देवता या देवी की शरण में नहीं जाना चाहिए। मूर्ख मायावादी कहते हैं कि देवताओं की पूजा परमेश्वर की पूजा के समान है; किन्तु यह तथ्य नहीं है। इस विचार के कारण लोग नास्तिकता की ओर उन्मुख होते है। जिसे इसका कोई अनुमान नहीं है कि वास्तव में ईश्वर क्या है, वह अपने द्वारा कल्पित किसी भी रूप को ईश्वर मान लेता है। इस तरह से सस्ते देवताओं या ईश्वर के अवतारों को मानना वास्तव में नास्तिकता है। अतएव हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि जो लोग देवताओं को या अपने को ईश्वर का अवतार घोषित करने वालों को पूजते हैं, वे सभी नास्तिक हैं। उनका ज्ञान नष्ट हो चुका होता है जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा (७.२०) होती है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता:*—जिनके मन भौतिक इच्छाओं के फलस्वरूप विकृत हो चुके हैं, वे देवताओं की शरण ग्रहण करते हैं। दुर्भाग्यवश, जो लोग कृष्णभावनामृत का अनुशीलन नहीं करते और वैदिक ज्ञान को सही ढंग से नहीं समझते, वे किसी भी धूर्त को ईश्वर का अवतार मान लेते हैं और उनका यह कहना है कि किसी देवता की पूजा करके अवतार बना जा सकता है। ऐसा दार्शनिक ऊहापोह हिन्दू धर्म के नाम पर चल रहा है, लेकिन कृष्णभावनामृत-आन्दोलन इसको नहीं मानता। हम इनका डट कर तिरस्कार करते हैं। देवताओं एवं तथाकथित ईश्वर के अवतारों की ऐसी पूजा को शुद्ध कृष्णभावनामृत आन्दोलन से कभी भी मिलाना नहीं चाहिए।

'आचार्यरत्न' नाम धरे बड़ एक शाखा।
ताँर परिकर, ताँर शाखा-उपशाखा॥१२॥

अनुवाद

अन्य बड़ी शाखा 'आचार्यरत्न' की थी और उनके संगी उपशाखाएँ थे।

आचार्यरत्नेर नाम 'श्रीचन्द्रशेखर'।
याँर घरे देवी-भावे नाचिला ईश्वर॥१३॥

अनुवाद

आचार्यरत्न को श्री चन्द्रशेखर आचार्य भी कहते थे। उनके घर में एक नाटक में महाप्रभु ने लक्ष्मी का अभिनय किया था।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की भी उपस्थिति में नाटक खेले जाते थे, किन्तु इसमें भाग लेने वाले शुद्ध भक्त होते थे। किसी बाहरी को अनुमति नहीं दी जाती थी। **इस्कान** के सदस्यों को इसका अनुकरण करना चाहिए। जब भी वे श्री चैतन्य महाप्रभु या भगवान् कृष्ण के जीवन के विषय में कोई नायक (अभिनय) करें, तो अभिनेताओं को शुद्ध भक्त होना चाहिए। पेशेवर अभिनेताओं तथा नाट्यकारों को भक्ति का कोई ज्ञान नहीं होता, अतएव वे अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से अभिनय कर सकते हैं लेकिन इनमें कोई प्राण नहीं रहता। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ऐसे पात्र को *यात्रादेल नारद* कहते थे जिसका अर्थ है "पाखण्डी नारद"। कभी-कभी कोई अभिनेता नाटक में नारद बनता है, यद्यपि उसका निजी जीवन नारद जैसा नहीं होता क्योंकि वह भक्त नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् कृष्ण के जीवन सम्बन्धी अभिनय में ऐसे पात्रों की आवश्यकता नहीं है।

श्री चैतन्य महाप्रभु चन्द्रशेखर के घर में अद्वैत प्रभु, श्रीवास ठाकुर तथा अन्य भक्तों के साथ अभिनय किया करते थे। जिस स्थान पर चन्द्रशेखर का घर था, अब वह व्रजपत्तन कहलाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने इस स्थान पर श्री चैतन्य मठ की स्थापना की। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास लेने का निश्चय कर लिया, तो इसकी सूचना श्री नित्यानन्द प्रभु ने श्री चन्द्रशेखर आचार्य को दी; अतएव जब महाप्रभु ने कटवा में

केशव भारती से संन्यास ग्रहण किया तो वे उपस्थित थे। वे ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने नवद्वीप में महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने की बात फैलाई। श्री चन्द्रशेखर आचार्य महाप्रभु की लीलाओं की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं के समय उपस्थित थे। अतएव श्री चैतन्य-वृक्ष की वे दूसरी शाखा हैं।

पुण्डरीक विद्यानिधि—बड़शाखा जानि।
याँर नाम लञा प्रभु कान्दिला आपनि॥१४॥

अनुवाद

तृतीय बड़ी शाखा पुण्डरीक विद्यानिधि थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को इतने प्रिय थे कि उनकी अनुपस्थिति में महाप्रभु कभी-कभी चिल्ला उठते थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में श्रील पुण्डरीक विद्यानिधि को कृष्णलीला की श्रीमती राधारानी का पिता बतलाया गया है। अतएव महाप्रभु उन्हें पितृ तुल्य मानते थे। पुण्डरीक विद्यानिधि के पिता वाणेश्वर नाम से प्रसिद्ध थे। एक अन्य मत के अनुसार वे शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी थे। उनकी माता का नाम गंगादेवी था। एक मत के अनुसार वाणेश्वर श्री शिवराम गंगोपाध्याय के वंशज थे। पुण्डरीक विद्यानिधि का असली घर पूर्वी बंगाल में ढाका के निकट बाघिया गाँव था जिसमें वारेन्द्र कुल के ब्राह्मण परिवार रहते थे। कभी-कभी ये वारेन्द्र ब्राह्मण राढ़ीय ब्राह्मणों से झगड़ जाते थे इसलिए पुण्डरीक विद्यानिधि का परिवार विच्छेद हुआ जिससे उसे सम्मान प्राप्त नहीं था। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती बतलाते हैं कि इस परिवार का एक सदस्य वृन्दावन में रह रहा है, जिसका नाम सरोजानन्द गोस्वामी है। इस परिवार की एक विशेषता यह थी कि हर सदस्य के एक या एक भी पुत्र नहीं था, अतएव यह परिवार बढ़ नहीं पाया। पूर्वी बंगाल में चट्टग्राम नामक जिले में एक स्थान है जिसका नाम हाटहाजारी है जिससे कुछ ही दूरी पर मेखला ग्राम है, जहाँ पुण्डरीक विद्यानिधि के पूर्वज रहते थे। चट्टग्राम से घोड़े, बैलगाड़ी अथवा स्टीमर द्वारा मेखलाग्राम पहुँचा जा सकता है। स्टीमर स्टेशन का अन्नपूर्णार घाट है। यहाँ से दो मील दक्षिण पश्चिम की ओर पुण्डरीक विद्यानिधि का जन्मस्थान है। यहाँ पर पुण्डरीक विद्यानिधि ने जो मन्दिर बनवाया था, वह बहुत प्राचीन

है और उसके मरम्मत किये जाने की आवश्यकता है। इसके बिना यह मन्दिर शीघ्र ही ध्वस्त हो जायेगा। इस मन्दिर में ईंटों पर दो लेख खुदे हैं, किन्तु वे इतने पुराने हैं कि उन्हें पढ़ा नहीं जा सकता। इस मन्दिर से २०० गज दक्षिण की ओर एक दूसरा मन्दिर है, जिसे कुछ लोग पुण्डरीक विद्यानिधि द्वारा बनवाया गया बतलाते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु पुण्डरीक विद्यानिधि को "पिता" कहते थे और उन्हें प्रेमनिधि की उपाधि दी थी। वे बाद में गदाधर पण्डित के गुरु और स्वरूप दामोदर के घनिष्ठ मित्र बने। गदाधर पण्डित ने पहले पुण्डरीक विद्यानिधि को सामान्य साहूकार समझा था, किन्तु बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के बतलाने पर वे उनके शिष्य बन गये। पुण्डरीक विद्यानिधि के जीवन की एक अन्य घटना जगन्नाथ मन्दिर के पुजारी की निन्दा करने से सम्बद्ध है, जिसके दण्डस्वरूप जगन्नाथ प्रभु ने उनके चपत लगाई। इसका उल्लेख *चैतन्य-भागवत* के अन्त्यलीला खण्ड के अध्याय सात में हुआ है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती हमें बतलाते हैं कि अब भी पुण्डरीक विद्यानिधि के परिवार के दो वंशज जीवित हैं जिनके नाम श्री हरकुमार स्मृतितीर्थ तथा श्री कृष्णकिंकर विद्यालंकार हैं। अधिक सूचना के लिए *वैष्णव-मञ्जूषा* नामक ग्रंथ देखना चाहिए।

बड़ शाखा-गदाधर पण्डित-गोसाञि।
तेँहो लक्ष्मीरूपा, ताँर सम केह नाइ॥१५॥

अनुवाद

चौथी शाखा गदाधर पण्डित को श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के अवतार रूप में वर्णित किया जाता है। अतएव उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में (श्लोक १४७-१५३) कहा गया है, "श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति, जो पहले वृन्दावनेश्वरी नाम से विख्यात थीं, अब श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में श्री गदाधर पण्डित के रूप में साक्षात् प्रकट हुई है। स्वरूप दामोदर दास ने इंगित किया है कि कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति लक्ष्मी के रूप में भगवान् को श्यामसुन्दरवल्लभा के रूप में अत्यन्त प्रिय थीं। वही श्यामसुंदरवल्लभा गदाधर पण्डित के रूप में उपस्थित हैं। पहले वह ललिता सखी के रूप में श्रीमती राधारासी की सेवा करती थीं।

चैतन्य-चरितामृत के इस खण्ड के बारहवें अध्याय में गदाधर पण्डित के वंशजों का वर्णन हुआ है।

ताँर शिष्य-उपशिष्य,—ताँर उपशाखा।
एइमत सब शाखा-उपशाखार लेखा॥१६॥

अनुवाद

उनके शिष्य तथा प्रशिष्य उनकी उपशाखाएँ हैं। उन सबका वर्णन कर पाना कठिन होगा।

वक्रेश्वर पण्डित—प्रभुर बड़ प्रिय भृत्य।
एक-भावे चब्बिश प्रहर ग्राँर नृत्य॥१७॥

अनुवाद

वृक्ष की पाँचवीं शाखा वक्रेश्वर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय नौकर थे। वे बहत्तर घंटे तक लगातार भाव में नृत्य कर सकते थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश दीपिका में (श्लोक ७१) कहा गया है कि वक्रेश्वर पंडित अनिरुद्ध के अवतार थे, जो विष्णु-चतुर्व्यूह में से (वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न) एक थे। वे लगातार ७२ घंटे तक अद्भुत ढंग से नाच सकते थे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीवास पण्डित के घर अभिनय में भाग लिया था, तो वक्रेश्वर पण्डित मुख्य नर्तकों में से थे और वे लगातार उतनी देर तक नाचते रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु के एक उड़िया भक्त श्री गोविन्द दास ने अपनी पुस्तक *गौर कृष्णोदय* में वक्रेश्वर पण्डित का जीवन-चरित्र दिया है। उड़ीसा में वक्रेश्वर पण्डित के अनेक शिष्य हैं और वे उड़िया होते हुए भी गौड़ीय वैष्णव कहलाते हैं। इन शिष्य में श्री गोपाल गुरु तथा उनके शिष्य श्री ध्यानचन्द्र गोस्वामी उल्लेख्य हैं।

आपने महाप्रभु गाय याँर नृत्य काले।
प्रभुर चरण धरि' वक्रेश्वर बले॥१८॥

अनुवाद

जब वक्रेश्वर पण्डित नाच रहे थे, तो स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु ने

गाना गाया। फलतः वक्रेश्वर पण्डित महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और बोले।

"दश सहस्र गन्धर्व मोरे देह' चन्द्रमुख।
तारा गाय, मुञि नाचों—तबे मोर सुख॥"१९॥

अनुवाद

"हे चन्द्रमुख! मुझे आप १००० गन्धर्व दें। जब मैं नाचूँ और वे गाएँ तब मैं परम प्रसन्न होऊँगा।"

तात्पर्य

गन्धर्वलोक के वासी गन्धर्वगण स्वर्गिक गवैयों के रूप में विख्यात हैं। जब भी स्वर्गलोक में गायन की आवश्यकता होती है, तो गाने के लिए गन्धर्वों को बुलाया जाता है। ये लगातार कई दिनों तक गा सकते हैं, इसीलिए वक्रेश्वर पण्डित चाहते थे कि जब ये गाएँ तो वे स्वयं नाचें।

प्रभु बले—तुमि मोर पक्ष एक शाखा।
आकाशे उड़िताम य़दि पाङ् आर पाखा॥२०॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "तुम्हारे समान ही मेरे भी एक पंख है। यदि मेरे पास दूसरा पंख होता तो मैं आकाश में उड़ता।"

पण्डित जगदानन्द प्रभुर प्राणरूप।
लोके ख्यात य़ेंहो सत्यभामार स्वरूप॥२१॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु की छठी शाखा पंडित जगदानन्द थे जो महाप्रभु के प्राणस्वरूप थे। वे सत्यभामा (भगवान् कृष्ण की पटरानी) के अवतार माने जाते हैं।

तात्पर्य

जगदानन्द पण्डित ने श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ अनेक कार्यकलाप किये। इनमें से मुख्य थे कि वे महाप्रभु के नित्य संगी थे और श्रीवास पंडित तथा चन्द्रशेखर आचार्य के घरों में महाप्रभु की लीलाओं में विशेष रूप

से सम्मिलित होते थे।

प्रीत्ये करिते चाहे प्रभुर लालन-पालन।
वैराग्य-लोक-भये प्रभु ना माने कखन॥२२॥

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित (सत्यभामा के अवतार रूप में) सदैव चैतन्य महाप्रभु की सुविधाओं का ध्यान रखते थे, किन्तु संन्यासी होने के कारण महाप्रभु उनके द्वारा प्रदत्त सुविधाओं को स्वीकार नहीं करते थे।

दुइजने खट्‌मटि लागाय कोन्दल।
ताँर प्रीत्येर कथा आगे कहिब सकल॥२३॥

अनुवाद

कभी-कभी दोनों जन छोटी-छोटी बातों पर झगड़ जाते, किन्तु ये झगड़े प्रेम पर आधारित होते थे, जिनके बारे में मैं बाद में बतलाऊँगा।

राघव-पण्डित—प्रभुर आद्य-अनुचर।
ताँर एक शाखा मुख्य,—मकरध्वज कर॥२४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आदि अनुयायी राघव पंडित सातवीं शाखा थे। उनसे एक अन्य उपशाखा निकली, जिसमें मकरध्वज पण्डित मुख्य थे।

तात्पर्य

मकरध्वज की उपाधि कर थी। सम्प्रति कायस्थ जाति में यह उपाधि पायी जाती है। *गौरगणोद्देश-दीपिका* श्लोक १६६ में बताया गया है—

धनिष्ठा भक्ष्यसामग्रीं कृष्णायादाद् व्रजेऽमिताम्
सैव साम्प्रतं गौरांगप्रियो राघव-पण्डितः।

राघव पण्डित पूर्वजन्म में भगवान् कृष्ण की लीलाओं के समय व्रज की विश्वासपात्र गोपी के रूप में थे जिसका नाम धनिष्ठा था। यह गोपी कृष्ण के लिए सदैव भोजन बनाया करती थी।

ताँहार भगिनी दमयन्ती प्रभुर प्रिय दासी।
प्रभुर भोगसामग्री ये करे बारमासि॥२५॥

अनुवाद

राघव पण्डित की बहिन दमयन्ती महाप्रभु की प्रिय सेविका थी। वह सदैव विभिन्न भोग-सामग्री एकत्र कर महाप्रभु के लिए भोजन बनाती थी।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक १६७) में उल्लेख है—*गुणमाला व्रजे यासीद् दमयन्ती तु तत्स्वसा*—अब गुणमाला नामक गोपी उसकी बहिन के रूप में प्रकट हुई है। पूर्वी बंगाल रेलवे में स्यालदह स्टेशन के आगे सोदपुर नामक एक स्टेशन है, जो कलकत्ता से बहुत दूर नहीं है। इस स्टेशन से एक मील से कम दूरी पर गंगा नदी के पश्चिम पाणिहाटि नाम का एक गाँव है, जहाँ अब भी राघव पंडित का मकान है। राघव पंडित की समाधि एक पक्के चबूतरे के रूप में है जिस पर लतर फैली है। पास के जीर्ण मन्दिर में मदनमोहन का अर्चाविग्रह भी है। इस मन्दिर की व्यवस्था स्थानीय जमींदार श्री शिवचन्द्र राम चौधरी करते हैं। मकरध्वज कर भी पाणिहाटि का ही निवासी था।

से सब सामग्री यत झालिते भरिया।
राघव लइया या'न गुपत करिया॥२६॥

अनुवाद

जब महाप्रभु पुरी में थे तो उनके लिए दमयन्ती जो भोजन तैयार करती, उसे उसका भाई राघव एक डलिया में भर दूसरों की नजर बचाकर ले जाया करता था।

वारमास ताहा प्रभु करेन अङ्गीकार।
'राघवेर झालि' बलि' प्रसिद्धि याहार॥२७॥

अनुवाद

महाप्रभु बारहों महीने उसका भोजन स्वीकार करते। यह डलिया अब भी 'राघवेर झालि' अर्थात् राघव पण्डित की डलिया के नाम से विख्यात

है।

से-सब सामग्री आगे करिब विस्तार।
य़ाहार श्रवणे भक्तेर बहे अश्रुधार॥२८॥

अनुवाद

मैं श्री राघव पण्डित की डलिया की सामग्री का बाद में वर्णन करूँगा। इस कथा को सुन कर भक्तगण रो उठते हैं और उनकी आँखों से अश्रु झरने लगते हैं।

तात्पर्य

राघवेर झालि का विस्तृत विवरण *श्रीचैतन्य-चरितामृत* की अन्त्यलीला के दसवें अध्याय में मिलता है।

प्रभुर अत्यन्त प्रिय—पण्डित गङ्गादास।
य़ाँहार स्मरणे हय सर्वबन्ध-नाश॥२९॥

अनुवाद

पण्डित गंगादास श्री चैतन्य वृक्ष की आठवीं प्रिय शाखा थे। जो व्यक्ति उनके कार्यों का स्मरण करता है, उसके सारे बन्धन नष्ट हो जाते हैं।

चैतन्य पार्षद—श्रीआचार्य पुरन्दर।
पिता करि' य़ाँरे बले गौराङ्गसुन्दर॥३०॥

अनुवाद

श्री आचार्य पुरन्दर नवीं शाखा थे जो श्री चैतन्य महाप्रभु के नित्य संगी थे। महाप्रभु उन्हें अपने पिता के रूप में मानते थे।

तात्पर्य

चैतन्य भागवत में बतलाया गया है कि जब भी चैतन्य महाप्रभु राघव पण्डित के घर जाते तो संदेशा पाने पर पुरन्दर आचार्य के यहाँ भी जाया करते थे। पुरन्दर आचार्य परम भाग्यशाली थे, क्योंकि महाप्रभु उन्हें अपना पिता कहा करते थे और बड़े प्रेम से उनका आलिंगन किया करते थे।

दामोदरपण्डित शाखा प्रेमते प्रचण्ड।
प्रभुर उपरे य़ेंहो कैल वाक्य-दण्ड॥३१॥

अनुवाद

चैतन्य वृक्ष की दसवीं शाखा, दामोदर पण्डित महाप्रभु के प्रेम में इतना आगे थे कि एक बार उन्होंने महाप्रभु को बिना किसी झिझक के कड़े शब्द कह कर प्रताड़ित किया।

दण्ड-कथा कहिब आगे विस्तार करिया।
दण्डे तुष्ट प्रभु ताँरे पाठाइला नदीया ॥३२॥

अनुवाद

इस दण्ड-कथा का वर्णन मैं *चैतन्य-चरितामृत* में बाद में करूँगा। महाप्रभु इस दण्ड से अत्यधिक तुष्ट हुए और उन्होंने दामोदर पण्डित को नवद्वीप भेज दिया।

तात्पर्य

दामोदर पण्डित पूर्वजन्म में व्रजधाम में शैव्या थे और ये चैतन्य महाप्रभु का सन्देशा उनकी माता शची तक पहुँचाते थे। रथयात्रा के समय ये शचीमाता का सन्देशा महाप्रभु तक ले जाते थे।

ताँहार अनुज शाखा—शङ्करपण्डित।
'प्रभु-पादोपाधान' ग्राँर नाम विदित ॥३३॥

अनुवाद

दामोदर पण्डित के छोटे भाई ग्यारहवीं शाखा थे जिनका नाम शंकर पंडित था। वे महाप्रभु की पादुका के नाम से प्रसिद्ध थे।

सदाशिवपण्डित ग्राँर प्रभुपदे आश।
प्रथमेइ नित्यानन्देर ग्राँर घरे वास ॥३४॥

अनुवाद

बारहवीं शाखा सदाशिव पण्डित सदैव महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा करने के लिए उत्सुक रहते थे। यह उनका परम सौभाग्य था कि जब नित्यानन्द नवद्वीप आये तो वे उन्हीं के घर टिके।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में (अन्त्यलीला, अध्याय ९) उल्लेख है कि सदाशिव शुद्ध

भक्त थे और नित्यानन्द प्रभु उनके घर में रहते थे।

श्रीनृसिंह-उपासक—प्रद्युम्न ब्रह्मचारी।
प्रभु ताँर नाम कैला 'नृसिंहानन्द' करि'॥३५॥

अनुवाद

तेरहवीं शाखा प्रद्युम्न ब्रह्मचारी थे। वे नृसिंह भगवान् के उपासक थे, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका नाम बदल कर नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी कर दिया था।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला के दूसरे अध्याय में प्रद्युम्न ब्रह्मचारी का वर्णन हुआ है। वे चैतन्य महाप्रभु के परम् भक्त थे और उन्होंने अपना नाम बदल कर नृसिंहानन्द कर लिया था। जब वे पाणिहाटी स्थित राघव पण्डित के घर से शिवानन्द के घर आ रहे थे तो श्री चैतन्य महाप्रभु नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के हृदय में प्रकट हुए। इसी कृतज्ञता के कारण श्री नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी जगन्नाथ, नृसिंहदेव तथा श्री चैतन्य महाप्रभु इन तीन विग्रहों का भोग स्वीकार करते थे। इसका उल्लेख *चैतन्य-चरितामृत* (अन्त्यलीला, द्वितीय अध्याय, श्लोक ४८-७८) में हुआ है। जब नृसिंहानन्द को यह सूचना मिली कि महाप्रभु कुलिया से वृन्दावन के लिए प्रस्थान कर रहे हैं, तो वे ध्यानमग्न हो गये और उन्होंने मन ही मन कुलिया से लेकर वृन्दावन तक एक सुन्दर मार्ग का निर्माण कर दिया। किन्तु बीच ही में उन्होंने ध्यान भंग करके अन्य भक्तों को बतलाया कि इस बार महाप्रभु वृन्दावन तक नहीं अपितु कानाइ नाटशाला तक ही जायेंगे। इसका वर्णन मध्यलीला में अध्याय एक के अन्तर्गत ५५ से ६२ वें श्लोक में हुआ है। *गौरगणोद्देश-दीपिका* के श्लोक ७४ के कहा गया है—*आवेशश्य तथा ज्ञेयो मिश्रे प्रद्युम्न संज्ञके*—श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र अर्थात् प्रद्युम्न ब्रह्मचारी का नाम नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी रख दिया, क्योंकि उनके हृदय में भगवान् नृसिंहदेव प्रकट हुए थे। कहा जाता है कि नृसिंहदेव उनसे प्रत्यक्ष बातें करते थे।

नारायण-पण्डित एक बडइ उदार।
चैतन्यचरण विनु नाहि जाने आर॥३६॥

अनुवाद

चौदहवीं शाखा नारायण पण्डित थे, जो एक महान एवं उदार भक्त थे और चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय नहीं जानते थे।

तात्पर्य

नारायण पण्डित श्रीवास ठाकुर के संगियों में से थे। *चैतन्य भागवत* में (अध्याय ९, श्लोक १३) उल्लेख है कि वे श्रीवास ठाकुर के भाई श्रीराम पण्डित के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने जगन्नाथ पुरी गये थे।

श्रीमान्पण्डित शाखा—प्रभुर निज भृत्य।
देउटि धरेन, य़बे प्रभु करेन नृत्य॥३७॥

अनुवाद

पन्द्रहवीं शाखा श्रीमान् पंडित थे जो श्री चैतन्य महाप्रभु के निरन्तर सेवक के रूप में थे। जब महाप्रभु नाचा करते तो वे मशाल लिये रहते थे।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन किया करते थे तो श्रीमान पंडित उनके साथ रहा करते थे। जब महाप्रभु ने देवी लक्ष्मी का वेश धारण करके नवद्वीप की सड़कों में नृत्य किया था तो श्रीमान पंडित मार्ग में प्रकाश करने के लिए मशाल लिए थे।

शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी बड़ भाग्यवान्।
य़ाँर अन्न मांगि' काडि' खाइला भगवान्॥३८॥

अनुवाद

सोलहवीं शाखा शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी अत्यन्त भाग्यशाली थे, क्योंकि चैतन्य महाप्रभु मजाक में या गम्भीर होकर उनसे भोजन माँगते थे और कभी-कभी जबरदस्ती छीन कर खा लेते थे।

तात्पर्य

कहा जाता है कि नवद्वीप के निवासी शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी ऐसे पहले संगी हैं, जो संकीर्तन आन्दोलन में महाप्रभु के साथ-साथ रहे। जब महाप्रभु दीक्षित

होकर गया से लौटे तो शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के यहाँ रुके, क्योंकि वे इस भक्त से भगवान् कृष्ण की लीलाएँ सुनना चाहते थे। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी नवद्वीप के निवासियों से चावल माँग कर लाते और उसे पकाते। महाप्रभु इस चावल को बड़े ही चाव से खाया करते। कहा जाता है कि शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी पूर्वजन्म में भगवान् कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं के समय याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों में से एक थे। भगवान् कृष्ण ने इन याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों से भीख माँगी थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी से चावल माँग कर वैसी ही लीला की।

नन्दन-आचार्य-शाखा जगते विदित।
लुकाइया दुइ प्रभुर य़ाँर घरे स्थित॥३९॥

अनुवाद

चैतन्य वृक्ष की सत्रहवीं शाखा नन्दन आचार्य जगतविदित हैं क्योंकि दोनों प्रभु (चैतन्य तथा नित्यानन्द) कभी-कभी उनके घर में छिप जाया करते थे।

तात्पर्य

नवद्वीप में महाप्रभु की कीर्तन-लीलाओं के समय उनके साथ रहने वाले दूसरे संगी नन्दन आचार्य थे। अवधूत के रूप में श्रील नित्यान्द प्रभु ने अनेक तीर्थयात्राएँ कीं और जब वे पहले पहल श्री नवद्वीप धाम आये तो नन्दन आचार्य के घर में छिपे रहे। यहीं पर पहले पहले उन्होंने महाप्रभु के भक्तों से भेंट की। जब चैतन्य महाप्रभु ने अपना महाप्रकाश दिखलाया तो उन्होंने रामाइ पंडित से कहा कि जाकर अद्वैत प्रभु को बुला लाये। उस समय वे नन्दन आचार्य के घर में छिपे थे और महाप्रभु जान गये थे कि अद्वैत छिपे हुए हैं। इसी प्रकार कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु भी नन्दन आचार्य के घर में छिप जाते थे। इस प्रसंग के लिए *चैतन्य-भागवत* मध्यलीला के अध्याय १६ तथा १७ दृष्टव्य हैं।

श्रीमुकुन्द-दत्त शाखा—प्रभुर समाध्यायी।
य़ाँहार कीर्तने नाचे चैतन्य-गोसाञि॥४०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सहपाठी श्री मुकुन्द दत्त चैतन्य वृक्ष की अन्य

शाखा थे। जब वे गाया करते तो श्री चैतन्य महाप्रभु नाचा करते थे।

तात्पर्य

श्री मुकुन्द दत्त का जन्म चट्टग्राम जिले के छन्होरा नामक ग्राम में हुआ था जो थाना पटिया के अन्तर्गत है। यह गाँव पुण्डरीक विद्यानिधि के घर से दस क्रोश अर्थात् लगभग बीस मील दूरी पर है। *गौरगणोद्देश दीपिका* में (श्लोक १४३) कहा गया है—

वज्रे स्थितौ गायकौ यौ मधुकण्ठ-मधुव्रतौ।
मुकुन्द वासुदेवौ तौ दत्तौ गौरांग-गायको॥

"व्रज में दो मशहूर गवैये थे, जिनके नाम थे मधुकण्ठ तथा मधुव्रत। वे चैतन्य-लीला में मुकुन्द तथा वासुदेव दत्त के रूप में प्रकट हुए जो चैतन्य महाप्रभु की मंडली के गायक थे।" जब श्री चैतन्य विद्यार्थी थे तो मुकुन्द दत्त उनके सहपाठी मित्र थे और वे कभी-कभी उससे तर्क किया करते थे। कभी-कभी तर्क के बहाने महाप्रभु उनसे भिड़ जाया करते थे। इसका वर्णन *चैतन्य भागवत* में (आदिलीला, अध्याय ७ तथा ८) हुआ है। जब महाप्रभु गया से लौटे तो मुकुन्द दत्त ही उन्हें कृष्णलीला के विषय में *श्रीमद्भागवत* के श्लोक सुनाकर आनन्दित करते थे। उन्हीं के प्रयास से गदाधर पण्डित गोस्वामी पुण्डरीक विद्यानिधि के शिष्य बने, जिसका उल्लेख मध्यलीला के सातवें अध्याय में हुआ है। जब मुकुन्द दत्त श्रीवास प्रभु के आँगन में नाचे तो महाप्रभु गा-गा कर नाचे और जब महाप्रभु ने २१ घंटे का *सात प्रहरिया* भावावेश प्रदर्शित किया, तो मुकुन्द दत्त ने गाकर के समारोह का शुभारम्भ किया। कभी-कभी चैतन्य महाप्रभु उन्हें *खरझटिया बेटा* कह कर खिझाते थे क्योंकि वे अनेक अभक्तों के उत्सवों में सम्मिलित होते रहते थे। इसका वर्णन *चैतन्य-भागवत* मध्यलीला के दसवें अध्याय में मिलता है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने लक्ष्मीदेवी का वेश धारण करके चन्द्रशेखर के घर में नाचना शुरू किया तो पहला गीत मुकुन्द दत्त ने ही गाया था।

संन्यास की इच्छा प्रकट करने के पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु सबसे पहले मुकुन्द दत्त के घर गये, किन्तु उस समय मुकुन्द दत्त ने प्रार्थना की कि संन्यास लेने के पूर्व वे और कुछ दिनों तक संकीर्तन-आन्दोलन चालू रखें

(चैतन्य-भागवत, मध्यलीला, अध्याय २५)। चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने का समाचार नित्यानन्द प्रभु द्वारा गदाधर पण्डित, चन्द्रशेखर आचार्य तथा मुकुन्द दत्त को दिया गया, अतएव ये सारे लोग कटवा गये और वहाँ पर महाप्रभु द्वारा सन्यास ग्रहण करने के लिए कीर्तन तथा सारी सामग्री का आयोजन किया गया। महाप्रभु द्वारा संन्यास लेने के बाद वे सभी उनके साथ हो लिए और नित्यानन्द प्रभु, गदाधर प्रभु तथा गोविन्द तो उनके साथ-साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र तक गये। इस सन्दर्भ में अन्त्यलीला अध्याय दो देखना चाहिए। जलेश्वर नामक स्थान में नित्यानन्द प्रभु ने चैतन्य महाप्रभु का संन्यास-दण्ड तोड़ दिया। उस समय मुकुन्द दत्त भी उपस्थित थे। वे प्रतिवर्ष महाप्रभु से भेंट करने के लिए बंगाल से जगन्नाथ पुरी जाया करते थे।

वासुदेव दत्त—प्रभुर भृत्य महाशय।
सहस्र-मुखे य़ाँर गुण कहिले ना हय॥४१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य वृक्ष की उन्नीसवीं शाखा वासुदेव दत्त एक महापुरुष एवं महाप्रभु के परम अन्तरंगी भक्त थे। उनके गुणों का वर्णन हजारों मुखों से भी नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य

वासुदेव दत्त मुकुन्द दत्त के भाई थे और वे भी चट्टग्राम के वासी थे। *चैतन्य-भागवत* में कहा गया है—*य़ाँर स्थाने कृष्ण हय आपने विक्रय*—वासुदेव दत्त श्रीवास पण्डित के घर रुके थे और *चैतन्य भागवत* में बतलाया गया है कि वासुदेव से महाप्रभु इतने प्रसन्न थे और उनके प्रति इतने वत्सल थे कि वे कहा करते थे, "मैं तो केवल वासुदेव दत्त का आदमी हूँ। मेरा शरीर वासुदेव दत्त के ही निमित्त है और वह मुझे कहीं भी बेच सकता है।" उन्होंने तीन बार प्रतिज्ञा की कि इन वचनों में कोई अविश्वास न करे। उन्होंने कहा, "मेरे भक्तो! मैं तुम लोगों से सच कहता हूँ। मेरा शरीर विशेष रूप से वासुदेव दत्त के ही निमित्त है।" वासुदेव दत्त ने रघुनाथदास (जो बाद में रघुनाथदास गोस्वामी बने) के गुरु श्री यदुनन्दन आचार्य को दीक्षा दी। अन्त्यलीला के अध्याय छह श्लोक १६१ में इसका वर्णन मिलेगा। वासुदेव दत्त बड़ी ही उदारता के साथ धन का खर्च करते थे; अतएव

महाप्रभु ने शिवानन्द सेन से उनका *सरखेल* अर्थात् सचिव बनने को कहा जिससे उनके अपव्यय पर अंकुश लग सकें। वासुदेव दत्त इतने दयालु थे कि वे सारे जीवों के पापों को अपने ऊपर ले लेना चाहते थे जिससे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उनका उद्धार हो सके। इसका वर्णन आदिलीला के पन्द्रहवें अध्याय में श्लोक १५९ से १८० तक हुआ है।

नवद्वीप रेलवे स्टेशन के लिए पूर्वस्थली नामक एक रेलवे स्टेशन है और उससे एक मील दूरी पर मामगाछि नामक एक गाँव है, जो वृन्दानव दास ठाकुर की जन्मभूमि है। वहीं पर इस समय मदनगोपाल का एक मन्दिर है, जिसकी स्थापना वासुदेव दत्त ने की थी। अब गौड़ीय मठ के भक्तों ने इस मन्दिर का भार अपने ऊपर ले लिया और वहाँ ढंग से *सेवापूजा* चलती है। प्रतिवर्ष नवद्वीप परिक्रमा करने वाले यात्री मामगाछि भी जाते हैं। जबसे श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने नवद्वीप-परिक्रमा-समारोह का उद्घाटन किया, तब से इस मन्दिर की व्यवस्था ठीक है।

जगते प्रतेक जीव, तार पाप लञा।
नरक मुञ्जिते चाहे जीव छाड़ाइया।।४२।।

अनुवाद

श्रील वासुदेव दत्त ठाकुर चाहते थे कि सारे संसार के लोगों के पापकर्मों का भोग वे ही करें, जिससे चैतन्य महाप्रभु उन लोगों का उद्धार कर सकें।

हरिदास ठाकुर शाखार अद्भुत चरित।
तिन लक्ष नाम तेँहो लयेन अपतित।।४३।।

अनुवाद

चैतन्य वृक्ष की बीसवीं शाखा हरिदास ठाकुर थे। उनका चरित्र अद्भुत था। वे बिना नागा किये प्रतिदिन ३ लाख बार कृष्ण-नाम का जप करते थे।

तात्पर्य

भगवान् के नाम का ३ लाख बार जप सचमुच आश्चर्यजनक है। न तो कोई सामान्य व्यक्ति ऐसा कर सकता है, न ही किसी को हरिदास की

नकल करनी चाहिए। किन्तु यह अनिवार्य है कि हर व्यक्ति हरे कृष्ण मन्त्र जप करने के व्रत को पूरा करे। इसीलिए हमने अपने समाज के हर विद्यार्थी के लिए निर्धारित कर दिया है कि प्रतिदिन कम से कम १६ माला जप करे। ऐसे जाप को उच्च कोटि का होने के लिए निरपराध होना चाहिए। अपराधरहित नाम का जप मशीनी जप से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है। *चैतन्य भागवत* में (आदिलीला, अध्याय २) कहा गया है कि हरिदास ठाकुर का जन्म बुढन ग्राम में हुआ था, किन्तु कुछ काल बाद वे गंगातट पर स्थित फुलिया में आकर रहने लगे जो शान्तिपुर के निकट है। मुसलमान मैजिस्ट्रेट (काजी) द्वारा दण्डित होने के वृत्तान्त से (चैतन्य-भागवत आदिलीला, अध्याय ११) पता चलता है कि हरिदास ठाकुर कितने विनीत एवं उदार थे और किस तरह उन्हें महाप्रभु की अहैतुकी कृपा प्राप्त हुई थी। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा अभिनीत नाटकों में हरिदास ठाकुर पुलिस अफसर की भूमिका अदा करते थे। जब वे बेनापोल में हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन कर रहे थे, तो साक्षात् मायादेवी ने उनकी परीक्षा ली थी। हरिदास के निधन का वर्णन *चैतन्य-चरितामृत* अन्त्यलील के अध्याय ११ में हुआ है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि हरिदास ठाकुर खुलना जिले के बुढन नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। पहले यह गाँव सीताक्षीर डिवीजन के अन्तर्गत चौबीस परगना जिले में था।

ताँहार अनन्त गुण,—कहि दिङ्मात्र।
आचार्य गोसाञि य़ाँरे भुञ्जाय श्राद्धपात्र॥४४॥

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के दिव्य गुणों का कोई अन्त न था। यहाँ मैं उनके गुणों के एक अंश का ही उल्लेख कर रहा हूँ। वे इतने महान थे कि अद्वैत गोस्वामी ने जब अपने पिता का श्राद्ध-संस्कार किया तो उन्हें ही पहली थाली दी।

प्रह्लाद-समान ताँर गुणेर तरङ्ग।
य़वन-ताड़नेओ य़ाँर नाहिक भ्रूभङ्ग॥४५॥

अनुवाद

उनके उत्तम गुणों की तरंगें प्रह्लाद महाराज जैसी थीं। जब मुसलमान

शासक ने उन्हें दण्ड दिया तो उन्होंने अपनी भौंह तक नहीं उठाई।

तेँहो सिद्धि पाइले ताँर देह लञा कोले।
नाचिल चैतन्यप्रभु महाकुतूहले ॥४६॥

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के दिवंगत होने पर उनके शव को अपनी गोद में लेकर स्वयं महाप्रभु बड़े ही भाव से नाचने लगे थे।

ताँर लीला वर्णियाछेन वृन्दावनदास।
य़ेबा अवशिष्ट, आगे करिब प्रकाश ॥४७॥

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने *चैतन्य भागवत* में हरिदास ठाकुर की लीलाओं का विशद वर्णन किया है। जो कुछ शेष रह गया है उसे मैं इसी पुस्तक में बाद में बतलाने का प्रयास करूँगा।

ताँर उपशाखा,—य़त कुलीनग्रामी जन।
सत्यराज-आदि—ताँर कृपार भाजन ॥४८॥

अनुवाद

श्री हरिदास ठाकुर की एक उपशाखा में कुलीन ग्राम के निवासी थे। इनमें से सत्यराज खान या सत्यराज वसु सर्वाधिक प्रसिद्ध थे, जिन्हें हरिदास ठाकुर की पूरी पूरी कृपा प्राप्त थी।

तात्पर्य

सत्यराज खान गुणराज खान के पुत्र तथा रामानन्द वसु के पिता थे। हरिदास ठाकुर चातुर्मास्य काल में कुछ समय तक कुलीन ग्राम में रहे, जहाँ वे हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करते थे। वहाँ वसु परिवार को अपना कृपापात्र बनाया। सत्यराज खान को रथयात्रा उत्सव के समय जगन्नाथ अर्चाविग्रह के लिए रेशमी रस्से की पूर्ति करने का सेवा-कार्य सौंपा गया था। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से गृहस्थ भक्तों के धर्म के विषय में जो जिज्ञासाएँ की थीं उनके उत्तर मध्यलीला खण्ड में अध्याय १५ तथा १६ में दिये हुए हैं। कुलीन ग्राम हावडा से बदर्वान जाने वाली नई रेलवे लाइन में जौग्राम नामक रेलवे स्टेशन से दो मील की दूरी पर स्थित है। महाप्रभु कुलीन

ग्रामवासियों की बड़ी प्रशंसा करते थे और कहते थे कि कुलीन ग्राम का कुत्ता भी मुझे अत्यन्त प्रिय है।

श्रीमुरारि गुप्त शाखा—प्रेमेर भाण्डार।
प्रभुर हृदय द्रवे शुनि' दैन्य य़ाँर॥४९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य वृक्ष की इक्कीसवीं शाखा मुरारि गुप्त भगवत्प्रेम के आगार थे। उनकी अत्यधिक दीनता तथा विनयशीलता से महाप्रभु का हृदय द्रवित हो उठता था।

तात्पर्य

श्री मुरारि गुप्त ने *श्रीचैतन्य-चरित* नामक एक पुस्तक लिखी। वे महाप्रभु की पितृभूमि श्रीहट्ट के वैद्य परिवार से सम्बन्धित थे और बाद में नवद्वीप के निवासी बन गये। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के अग्रजों में से थे। महाप्रभु ने अपना वराह-रूप मुरारि गुप्त के ही घर में दिखलाया था (चैतन्य भागवत, मध्यलीला, अध्याय ३)। जब महाप्रभु ने अपना *महाप्रकाश* रूप प्रकट किया तो वे इनके समक्ष भगवान् रामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए थे। एक बार जब चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु साथ-साथ श्रीवास ठाकुर के घर बैठे थे तो मुरारि गुप्त ने सर्वप्रथम चैतन्य महाप्रभु को ही नमस्कार किया था और श्री नित्यानन्द प्रभु को बाद में। किन्तु नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु से उम्र में बड़े थे, इसलिए महाप्रभु ने छींटाकसी की थी कि मुरारि गुप्त ने शिष्टाचार भंग किया है। उन्हें चाहिए कि वे पहले नित्यानन्द को नमस्कार करते, तब उन्हें। इस तरह मुरारि गुप्त को श्री नित्यानन्द के पद का पता चला, अतएव अगले दिन उन्होंने श्री नित्यानन्द को ही नमस्कार किया और तब महाप्रभु को। तब महाप्रभु ने उन्हें अपना जूठा पान दिया। एक बार मुरारि गुप्त ने महाप्रभु को ऐसा भोजन भेंट किया जिसमें काफी घी पड़ा था, जिससे वे बीमार पड़ गये और उन्हें मुरारि गुप्त के घर अपना इलाज कराने जाना पड़ा। उन्होंने मुरारि गुप्त के जलपात्र से थोड़ा जल लिया जिससे वे चंगे हो गये। कुपच का सहज इलाज थोड़ा-सा जल पीना है और चूँकि मुरारि गुप्त वैद्य थे अतएव उन्होंने पीने के लिए कुछ जल दिया, जिससे वे चंगे हो गये। जब श्रीवास ठाकुर के घर महाप्रभु ने चतुर्भुज मूर्ति धारण की, तो मुरारि गुप्त उनका वाहन गरुड़ बने और आवेश में आकर

महाप्रभु उनकी पीठ पर बैठ गये। मुरारी गुप्त की इच्छा थी कि महाप्रभु के रहते हुए अपना शरीर त्यागें, किन्तु महाप्रभु ने ऐसा करने से मना कर दिया। इसका वर्णन *चैतन्य-भागवत* मध्यलीला अध्याय २० में मिलता है। एक दिन जब महाप्रभु भावावेश में वराह मूर्ति के रूप में प्रकट हुए तो मुरारि गुप्त ने उनकी स्तुति की। वे भगवान् रामचन्द्र के परम भक्त थे और उनकी कट्टर भक्ति का वर्णन मध्यलीला, अध्याय १५ में श्लोक १३७ से १५७ में मिलता है।

प्रतिग्रह नाहि करे, ना लय कार धन।
आत्मवृत्ति करि' करे कुटुम्ब भरण ॥५०॥

अनुवाद

श्री मुरारि गुप्त ने न तो कभी अपने मित्रों से कोई दान लिया, न ही किसी से कोई धन लिया। वे वैद्यक का कार्य करके अपने परिवार का भरण करते थे।

तात्पर्य

यह ध्यान देने की बात है कि गृहस्थ को भिक्षावृत्ति करके अपनी जीविका नहीं चलानी चाहिए। उच्च जाति के प्रत्येक गृहस्थ को ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य धर्म निबाहना चाहिए; लेकिन उसे दूसरों की सेवा (नौकरी) नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह शूद्रों का धर्म है। उसे अपने पेशे से जो कमाई हो उसे ही स्वीकार करनी चाहिए। ब्राह्मण के कार्य हैं—यजन, याजन, पठन, पाठन, दान तथा प्रतिग्रह। ब्राह्मण को विष्णु उपासक होना चाहिए और उसे चाहिए कि अन्यों को विष्णु-पूजा करने की शिक्षा दे। क्षत्रिय को भूमिधर बन कर उससे कर एकत्र करके या असामियों से किराया वसूल कर अपनी जीविका चलानी चाहिए। चूँकि मुरारि गुप्त का जन्म *वैद्यवंश* में हुआ था, अतएव वे वैद्यक करते थे और उससे जो आमदनी होती थी उसी से परिवार का उदर-पोषण करते थे। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है हर एक को अपना धर्म निबाहना चाहिए और परमेश्वर को तुष्ट करना चाहिए। यही जीवन की सफलता है। यह *दैववर्णाश्रम* कहलाता है। मुरारि गुप्त आदर्श गृहस्थ थे, क्योंकि वे भगवान् रामचन्द्र तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के परम भक्त थे। वे वैद्यक द्वारा अपने परिवार का उदर-भरण करते थे और साथ ही चैतन्य महाप्रभु को भरसक प्रसन्न रखते थे। यही आदर्श गृहस्थ-जीवन

है।

चिकित्सा करेन य़ारे हइया सदय।
देहरोग भवरोग,—दुइ तार क्षय॥५१॥

अनुवाद

जब मुरारि गुप्त अपने रोगियों का उपचार करते, तो उनकी कृपा से रोगियों के शारीरिक तथा आध्यात्मिक दोनों तरह के रोग शमित हो जाते।

तात्पर्य

मुरारि गुप्त शारीरिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के रोगों का इलाज कर सकते थे, क्योंकि पेशे से वे वैद्य थे और आध्यात्मिक प्रगति के मामले में भगवान् के परम भक्त थे। यह मानवता की सेवा का एक उदाहरण है। हर व्यक्ति को यह जान लेना चाहिए कि मानव-समाज में दो प्रकार के रोग होते हैं। एक भौतिक रोग है जो शरीर से सम्बन्धित होता है, किन्तु मुख्य रोग आध्यात्मिक है। जीव नित्य है किन्तु जब वह भौतिक शक्ति के सम्पर्क में आता है तो वह जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि के चक्र में फँस जाता है। आज के वैद्यों को मुरारि गुप्त से सबक लेना चाहिए। यद्यपि आधुनिक परोपकारी चिकित्सक बड़े-बड़े अस्पताल खोलते हैं, किन्तु आत्मा के भवरोग को ठीक करने को एक भी अस्पताल नहीं है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ने इस रोग को दूर करने का बीड़ा उठाया है, किन्तु लोग इसकी तारीफ नहीं करते क्योंकि उन्हें इस रोग का पता ही नहीं है। रोगी व्यक्ति को उचित दवा तथा उचित भोजन दोनों की आवश्यकता पड़ती है, अतएव कृष्णभावनामृत-आन्दोलन भवरोग से पीड़ित लोगों को हरे-कृष्ण-महामन्त्र रूपी ओषधि तथा प्रसाद का भोजन प्रदान करता है। शारीरिक रोगों से छुटकारा दिलाने के लिए अनेक अस्पताल तथा चिकित्सा के क्लिनिक हैं, किन्तु आत्मा के भवरोग को अच्छा करने के लिए ऐसे अस्पताल नहीं हैं। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के केन्द्र एकमात्र मान्य अस्पताल हैं जो मनुष्य के जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि को अच्छा कर सकते हैं।

श्रीमान् सेन प्रभुर सेवक प्रधान।
चैतन्य-चरण विनु नाहि जाने आन॥५२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य वृक्ष की बाईसवीं शाखा श्रीमान सेन श्री चैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक थे। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के अतिरिक्त और कुछ जानते ही न थे।

तात्पर्य

श्रीमान् सेन नवद्वीप के निवासी थे और महाप्रभु के नित्य संगी थे।

श्रीगदाधर दास शाखा सर्वोपरि।
काजीगणेर मुखे य़ेँह बोलाइल हरि॥५३॥

अनुवाद

तेईसवीं शाखा श्री गदाधर दास सर्वोपरि समझे जाते थे, क्योंकि उन्होंने सारे मुसलमान काजियों को हरिनाम कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया।

तात्पर्य

कलकत्ता से लगभग ८-१० मील दूरी पर गंगा नदी के तट पर एंडियादह ग्राम है। श्री गदाधर दास इसी ग्राम के निवासी माने जाते थे (*एंडियादहवासी गदाधर दास*)। *भक्तिरत्नाकर* के सातवें अध्याय में बतलाया गया है कि महाप्रभु के तिरोधान के बाद गदाधर दास नवद्वीप से कटवा आ गये। उसके बाद वे एंडियादह में आकर रहने लगे। कहा जाता है कि वे उसी तरह श्रीमती राधारानी के शरीर की द्युति थे, जिस तरह श्रील गदाधर पंडित गोस्वामी स्वयं श्रीमती राधारानी के अवतार थे। कभी-कभी चैतन्य महाप्रभु को *राधाभावद्युति सुबलित* अर्थात् श्रीमती राधारानी के भावों और उनकी शारीरिक द्युति से युक्त कहा जाता है। गदाधर दास यही *द्युति* अर्थात् आभा हैं। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में उन्हें श्रीमती राधारानी की अंश-शक्ति कहा गया है। उनकी गणना श्रील गौर हरि तथा नित्यानन्द दोनों ही के संगियों में होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त-रूप में वे माधुर्य रस में भगवान् कृष्ण के पार्षदों में से एक थे, और नित्यानन्द के भक्त के रूप में वे शुद्ध भक्ति वाले भगवान् कृष्ण के मित्र माने जाते हैं। यद्यपि वे नित्यानन्द प्रभु के संगी थे, किन्तु वे ग्वालबाल नहीं थे। वे दिव्य माधुर्य रस में स्थित थे। उन्होंने कटवा में श्री गौरसुन्दर के मन्दिर की स्थापना की थी।

१४३४ शकाब्द (१५३४ ई.) में, जब महाप्रभु ने श्री नित्यानन्द प्रभु को

बंगाल में संकीर्तन-आन्दोलन का प्रचार करने का कार्यभार सौंप दिया तो श्री गदाधर दास नित्यानन्द प्रभु के मुख्य सहायकों में से थे। हर एक व्यक्ति से हरे-कृष्ण-महामन्त्र कीर्तन करने का अनुरोध करके उन्होंने संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार किया। हर एक को उनके प्रचार की इस विधि को अपनाना चाहिए। उसे नित्यानन्द प्रभु का निष्ठावान् एवं गम्भीर सेवक बन कर घर-घर इस सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहिए।

जब श्रील गदाधर दास प्रभु हरि कीर्तन आन्दोलन का प्रचार कर रहे थे तो एक मैजिस्ट्रेट (काजी) उनके इस आन्दोलन के विरुद्ध था। अतएव महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए श्रील गदाधर दास एक रात को काजी के घर गये और उससे अनुरोध किया कि वह हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन किया करे। काजी ने उत्तर दिया, "ठीक है, मैं कल से हरे-कृष्ण-कीर्तन करूँगा। यह सुन कर गदाधर दास प्रभु नाचने लगे और बोले, "कल क्यों? आपने तो पहले ही हरे-कृष्ण-मन्त्र का उच्चारण कर लिया है अतएव इसे चालू रखिये।"

गौरगणोद्देश दीपिका (श्लोक १५४, १५५) में कहा गया है—

राधाविभूतिरूपा या चन्द्रकान्तिः पुरा व्रजे
स श्रीगौरांगनिकटे दासवंश्यो गदाधरः
पूर्णानन्दा व्रजे यासीद बलदेवप्रियागुणी
सापि कार्यवशाद् एव प्रविशत्तां गदाधरम्

श्रील गदाधर दास को श्रीमती राधारानी के तेज चन्द्रकान्ति और बलराम की प्रिय सखी पूर्णानन्दा का संयुक्त रूप माना जाता है। इस तरह श्रील गदाधर दास प्रभु, चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी से बंगाल लौट रहे थे तो वे आत्म विस्मृत होकर जोर-जोर से बोलने लगे मानों कोई व्रजभूमि की दही बेचने वाली युवती हो। इसे श्रील नित्यानन्द प्रभु ने सुना। दूसरी बार जब वे गोपी-भाव में लीन थे तो वे अपने सिर पर गंगाजल से भरा घड़ा रखे थे मानो दूध बेच रहे हों। चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाते समय राघव पंडित के घर आये थे तो गदाधर दास उनके दर्शन करने गये थे और महाप्रभु ने प्रसन्न होकर उनके सिर पर अपना चरण रख दिया था। जब गदाधर प्रभु एंडियादह में थे तो वहाँ पर पूजन के लिए बालगोपाल-मूर्ति स्थापित की। श्री माधव घोष ने श्री नित्यानन्द प्रभु

तथा श्री गदाधर दास की सहायता से *दान-खण्ड* नामक नाटक का अभिनय किया था। *चैतन्य भागवत* में (अन्त्य खण्ड अध्याय ५) इसका वर्णन है।

श्रील गदाधर दास प्रभु की समाधि एंडियादह में है, जो पहले संयोगी वैष्णवों के कब्जे में थी और बाद में काल्ना के सिद्ध भगवान् दास बाबाजी के नियंत्रण में चली गई। उनके आदेश से कलकत्ता के नारिकेलडांगा के मल्लिक परिवार के एक सदस्य श्री मधुसूदन मल्लिक ने वहाँ पर १२५६ बंगाब्द में एक *पाटवाटी* (मठ) स्थापित किया। उन्होंने श्री राधाकान्त नामक विग्रह की पूजा की भी व्यवस्था की। उनके पुत्र बलाइचांड मल्लिक ने १३१२ बंगाल में गौरनिताई के विग्रह स्थापित किये। इस तरह सिंहासन पर गौर-नित्यानन्द विग्रह तथा राधा-कृष्ण विग्रह हैं। सिंहासन के नीचे एक पत्थर में संस्कृत में लेख खुदा है। इस मन्दिर में गोपेश्वर के रूप में शिव की भी छोटी-सी मूर्ति है। प्रवेश-द्वार में एक ओर पत्थर पर सारा वृत्तान्त लिखा है।

शिवानन्द सेन—प्रभुर भृत्य अन्तरङ्ग।
प्रभुस्थाने य़ाइते सबे लयेन य़ार सङ्ग॥५४॥

अनुवाद

वृक्ष की चौबीसवीं शाखा शिवानन्द सेन महाप्रभु के अत्यन्त विश्वासपात्र सेवक थे। जो कोई महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी जाता वह श्री शिवानन्द सेन के यहाँ शरण और मार्गदर्शन पाता।

प्रतिवर्षे प्रभुगण सङ्गेते लइया।
नीलाचले चलेन पथे पालन करिया॥५५॥

अनुवाद

वे प्रतिवर्ष महाप्रभु का दर्शन करने के लिए भक्तों की टोली को बंगाल से जगन्नाथ पुरी ले जाया करते थे।

भक्ते कृपा करेन प्रभु ए-तिन स्वरूपे।
'साक्षात्', 'आवेश' आर 'आविर्भाव'—रूपे॥५६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों पर तीन रूपों में अहैतुकी कृपा प्रदान

करते हैं—अपने प्रत्यक्ष प्राकट्य (साक्षात्) द्वारा, किसी अन्य की प्रदत्त शक्ति के भीतर अपने पराक्रम (आवेश) द्वारा तथा अपने आविर्भाव द्वारा।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का *साक्षात्* रूप उनकी निजी उपस्थिति है। *आवेश* से प्रदत्त-शक्ति का द्योतन होता है जैसे कि नकुल ब्रह्मचारी में निहित शक्ति। *आविर्भाव* का अर्थ है कि स्वयं उपस्थित न होने पर प्रकट होना। उदाहरणार्थ, श्री शचीमाता अपने घर में श्री चैतन्य महाप्रभु को भोग लगाती थीं, यद्यपि वे जगन्नाथ पुरी में रहते थे और जब वे आँखें खोलतीं तो देखतीं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने भोजन कर लिया है। इसी प्रकार श्रीवास ठाकुर संकीर्तन करते तो महाप्रभु की अनुपस्थिति में भी सबों को उनके रहने का आभास होता। यह *आविर्भाव* का दूसरा उदाहरण है।

'साक्षाते' सकल भक्त देखे निर्विशेष।
नकुल ब्रह्मचारिदेहे प्रभुर 'आवेश'॥५७॥

अनुवाद

प्रत्येक भक्त की उपस्थिति में श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रकट होना साक्षात् कहलाता है। नकुल ब्रह्मचारी में विशेष आवेश के लक्षण रूप में प्राकट्य आवेश का उदाहरण है।

'प्रद्युम्न ब्रह्मचारी' ताँर आगे नाम छिल।
'नृसिंहानन्द' नाम प्रभु पाछे त' राखिल॥५८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रद्युम्न ब्रह्मचारी का नाम बदल कर नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी रख दिया।

ताहाँते हइल चैतन्येर 'आविर्भाव'।
अलौकिक ऐछे प्रभुर अनेक स्वभाव॥५९॥

अनुवाद

उसके शरीर में आविर्भाव के लक्षण थे। ऐसा प्राकट्य अलौकिक होता है, किन्तु महाप्रभु ने अपने विभिन्न स्वरूपों से ऐसी अनेक लीलाएँ

प्रदर्शित कीं।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में कहा गया है कि नकुल ब्रह्मचारी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के *आवेश* को और प्रद्युम्न ब्रह्मचारी ने *आविर्भाव* को प्रदर्शित किया। वैसा तो चैतन्य महाप्रभु के लाखों भक्त हैं, किन्तु उनमें कोई विशेष लक्षण प्रकट नहीं होता, किन्तु जब कोई भक्त विशेष आवेश के साथ कार्य करता है तो वह *आवेश* स्वरूप को प्रदर्शित करता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं संकीर्तन-आन्दोलन का प्रसार किया और भारतवर्ष के सारे वासियों को इस सम्प्रदाय को स्वीकार करके विश्व-भर में इसके प्रचार करने की सलाह दी। जो भक्त ऐसे आदेशों का पालन करते हैं और तब उनके शरीर में जो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं वे *आवेश* कहलाते हैं। श्री शिवानन्द सेन ने नकुल ब्रह्मचारी के शरीर में ऐसे आवेश के लक्षण देखे जो चैतन्य महाप्रभु सरीखे थे। *चैतन्य-चरितामृत* का कथन है इस कलियुग में भगवान् के नाम का प्रसार ही एकमात्र आध्यात्मिक कार्य है, किन्तु यह कार्य वही कर सकता है जिसे भगवान् कृष्ण शक्ति प्रदान करें। जिस विधि से भक्त को शक्ति प्राप्त होती है वह *आवेश* या कभी-कभी *शक्त्यावेश* कहलाती है।

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी पहले काल्ना के पियरीगंज नामक गाँव के निवासी थे। इसका वर्णन *चैतन्य-चरितामृत* में (अन्त्यलीला अध्याय ३ तथा ९) में मिलता है।

आस्वादिल ए सब रस सेन शिवानन्द।
विस्तारि' कहिब आगे एसब आनन्द॥६०॥

अनुवाद

श्रील शिवानन्द सेन को साक्षात्, आवेश तथा आविर्भाव तीनों स्वरूपों का अनुभव था। इस आनन्दपूर्ण विषय का विस्तृत वर्णन मैं बाद में करूँगा।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज ने श्रील शिवानन्द सेन का वर्णन इस प्रकार दिया है। वे कुमारहट्ट या हालिसहर के निवासी थे और परम भगवद्भक्त थे। कुमारहट्ट से लगभग १ १/२ मील दूरी पर कांचडापाड़ा नामक एक

अन्य गाँव है, जहाँ पर गौरगोपाल के विग्रह हैं, जिनकी स्थापना शिवानन्द सेन ने की थी। उन्होंने कृष्णराय का एक मन्दिर भी स्थापित किया था जो आज भी विद्यमान है। शिवानन्द सेन परमानन्द दास के पिता थे, जो पुरीदास या कर्णपूर के नाम से भी जाने जाते हैं। परमानन्द सेन ने अपनी पुस्तक *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (१७६) लिखा है कि वृन्दावन की दो गोपियाँ, जिनके नाम वीरा तथा दूती थे, मिल कर उनका पिता बनीं। श्रील शिवानन्द उन समस्त चैतन्य भक्तों का मार्गदर्शन करते थे, जो बंगाल से जगन्नाथ पुरी जाया करते थे और वे उनकी यात्रा का सारा व्यय स्वयं वहन करते थे। इसका वृत्तान्त मध्यलीला (अध्याय १६, श्लोक १९-२६) में मिलता है। श्रील शिवानन्द सेन के तीन पुत्र थे—चैतन्य दास, रामदास तथा परमानन्द। अन्तिम पुत्र बाद में कवि कर्णपूर बना और वह *गौरगणोद्देश-दीपिका* का प्रणेता है। इनके गुरु श्रीनाथ पंडित थे, जो शिवानन्द सेन के पुरोहित थे। वासुदेव दत्त के अपव्यय के कारण शिवानन्द सेन को उसके खर्च का निरीक्षण करने के लिए नियुक्त किया गया।

श्री शिवानन्द सेन को श्री चैतन्य महाप्रभु के साक्षात् आदेश तथा आविर्भाव रूपों का वास्तविक अनुभव था। एक बार जगन्नाथ पुरी जाते समय उन्होंने एक कुत्ता उठा लिया और अन्त्यलीला के प्रथम अध्याय में बतलाया गया है कि इस कुत्ते को मोक्ष प्राप्त हुआ। जब श्रील रघुनाथ दास, जो बाद में रघुनाथ दास गोस्वामी बने, अपने पिता के घर से भग कर चैतन्य महाप्रभु के पास गये तो उनके पिता ने शिवानन्द सेन को पत्र लिख कर सूचना माँगी। जब उन्होंने पूरी सूचना लिख भेजी तो रघुनाथ दास के पिता ने शिवानन्द सेन के पास कुछ नौकर तथा धन भेजा जिससे रघुनाथ दास का लालन-पालन हो सके। एक बार शिवानन्द सेन ने महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित करके उन्हें इतना खिलाया कि कुपच हो गया और वे बीमार-जैसे पड़ गये। जब यह बात उनके पुत्र को मालूम हुई तो उन्होंने कुपच की कुछ दवा दी, जिससे चैतन्य महाप्रभु परम प्रसन्न हो उठे। इसका वर्णन अन्त्यलीला में (अध्याय १०, श्लोक १२४-१५१) हुआ है।

एक बार जगन्नाथ पुरी जाते समय सारे भक्तों को एक वृक्ष के नीचे सोना पड़ा जिससे नित्यानन्द प्रभु अत्यन्त नाराज हो गये। ऐसा लगा कि वे भूखे थे। अतएव उन्होंने शिवानन्द के पुत्रों को मरने का शाप दे दिया। इससे शिवानन्द की पत्नी अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं और वे रोने लगीं।

उन्होंने सोचा कि यह शाप सच होगा। जब शिवानन्द लौटे और अपनी पत्नी को रोते देखा तो पूछा, "तुम क्यों रो रही हो? यदि नित्यानन्द प्रभु की इच्छा है तो हम सभी क्यों न मरें।" जब शिवानन्द सेन लौटे तो नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें देखा। उन्होंने उन्हें लात मारते हुए कहा कि "मैं भूखा हूँ, तुम भोजन का प्रबन्ध क्यों नहीं करते।" ऐसा व्यवहार है अपने भक्तों के साथ महाप्रभु का। श्रील नित्यानन्द ने सामान्य भूखे व्यक्ति जैसा व्यवहार किया, मानो वे शिवानन्द सेन के प्रबन्ध पर पूरी तरह आश्रित हों।

शिवानन्द सेन का भांजा श्रीकान्त था। उसने नित्यानन्द प्रभु के शाप के विरोध में उनका साथ छोड़ दिया और वह सीधे चैतन्य महाप्रभु के पास जगन्नाथ पुरी जा पहुँचा, जहाँ महाप्रभु ने उसे शान्त किया। उस समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुरीदास को अपने पैर का अँगूठा चूसने को दिया, क्योंकि उस समय वे नन्हें शिशु थे। महाप्रभु के आदेश से ही वह तुरन्त संस्कृत छन्दों की रचना करने लगा। शिवानन्द के परिवार के साथ इस गड़बड़ी से श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने निजी सेवक गोविन्द को आदेश दिया कि उनका सारा जूठन ले जाकर शिवानन्द को दे। इसका वर्णन अन्त्य खण्ड में (अध्याय १२, श्लोक ५३) हुआ है।

शिवानन्देर उपशाखा, ताँर परिकर।
पुत्र-भृत्य-आदि करि' चैतन्य-किङ्कर ॥६१॥

अनुवाद

शिवानन्द सेन के पुत्र, नौकर तथा परिवार के सदस्य उपशाखा का निर्माण करते हैं। ये सभी श्री चैतन्य महाप्रभु के निष्ठावान् सेवक थे।

चैतन्यदास, रामदास, आर कर्णपूर।
तिन पुत्र शिवानन्देर प्रभुर भक्तशूर ॥६२॥

अनुवाद

शिवानन्द सेन के तीनों पुत्र—चैतन्यदास, रामदास तथा कर्णपूर—श्री चैतन्य महाप्रभु के शूर भक्त थे।

तात्पर्य

शिवानन्द सेन के ज्येष्ठ पुत्र चैतन्यदास ने *कृष्णकर्णामृत* पर भाष्य लिखा,

जिसका अनुवाद करके श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी पत्रिका *सज्जन-तोषणी* में छापा। विद्वानों का मत है कि चैतन्यदास संस्कृत में लिखित ग्रंथ *चैतन्य-चरित* के लेखक हैं। इसके लेखक कवि कर्णपूर नहीं थे, जैसा कि सामान्यतया माना जाता है। यही मत श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का है। श्री रामदास दूसरे पुत्र थे शिवानन्द सेन के। *गौरगणोद्देश दीपिका* में (१४५) कहा गया है कि भगवान् कृष्ण के दो अनुभवी सेवक शुक तथा दक्ष ही कवि कर्णपूर के बड़े भाई चैतन्यदास तथा रामदास बने। तीसरे पुत्र कर्णपूर परमानन्द दास या पुरीदास के नाम से भी जाने जाते थे, जिनकी दीक्षा श्री अद्वैत प्रभु के शिष्य श्रीनाथ पण्डित के द्वारा हुई। कर्णपूर ने कई पुस्तकें लिखी हैं, जो वैष्णव साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं—यथा *आनन्द-वृन्दावन-चम्पू, अलंकार-कौस्तुभ, गौरगणोद्देश-दीपिका* तथा महान् काव्य *चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक*। उनका जन्म शकाब्द १४४८ में हुआ। वे १४८८ से १४९८ तक अर्थात् लगातार १० वर्षों तक ग्रंथ लिखते रहे।

श्रीवल्लभसेन, आर सेन श्रीकान्त।
शिवानन्द-सम्बन्ध प्रभुर भक्त एकान्त॥६३॥

अनुवाद

श्रीवल्लभ सेन तथा श्रीकान्त सेन भी उपशाखाएँ थे शिवानन्द सेन की, क्योंकि ये न केवल उनके भांजे थे, अपितु श्री चैतन्य महाप्रभु के अनन्य भक्त थे।

तात्पर्य

जब पुरी जाते समय नित्यानन्द प्रभु ने शिवानन्द सेन को डाँटा था तो शिवानन्द के दोनों भांजे विरोध में उनका साथ छोड़ कर श्री चैतन्य महाप्रभु के पास जगन्नाथ पुरी चले गये थे। महाप्रभु इन बालकों के मनोभाव ताड़ गये, अतएव अपने भृत्य गोविन्द से कहा कि शिवानन्द की टोली आने तक उन्हें प्रसाद देते रहना। रथयात्रा-संकीर्तन-उत्सव के समय ये दोनों भाई मुकुन्द की टोली के सदस्य थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में कहा गया है कि कात्यायनी नामक गोपी ही श्रीकान्त सेन के रूप में प्रकट हुई।

प्रभुप्रिय गोविन्दानन्द महाभागवत।
प्रभुर कीर्तनीया आदि श्रीगोविन्द दत्त॥६४॥

अनुवाद

वृक्ष की पच्चीसवीं और छब्बीसवीं शाखाएँ गोविन्दानन्द तथा गोविन्द दत्त श्री चैतन्य महाप्रभु के संग कीर्तन किया करते थे। गोविन्द दत्त महाप्रभु की टोली का प्रधान गवैया था।

तात्पर्य

गोविन्द दत्त का जन्म खडदह के निकट सुखचर ग्राम में हुआ था।

श्रीविजयदास-नाम प्रभुर आखरिया।
प्रभुरे अनेक पुँथि दियाछे लिखिया॥६५॥

अनुवाद

सत्ताइसवीं शाखा श्री विजयदास महाप्रभु के अन्य प्रमुख गवैया थे, जिन्होंने महाप्रभु को अनेक हस्तलिखित पुस्तकें दीं।

तात्पर्य

पहले न तो छापेखाने होते थे, न छपी पुस्तकें थीं। सारी पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं। मूल्यवान पुस्तकों को मन्दिरों या प्रसिद्ध स्थानों में रखा जाता था, और जिसे जिस किसी पुस्तक में रुचि होती, वह हाथ से उसकी प्रति तैयार करता था। विजयदास पेशेवर लिपिक थे, जिन्होंने अनेक पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियाँ कीं और उन्हें महाप्रभु को दिया।

'रत्नबाहु' बलि' प्रभु थुइल ताँर नाम।
अकिञ्चन प्रभुर प्रिय कृष्णदास-नाम॥६६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने विजयदास का नाम रत्नबाहु रखा क्योंकि उन्होंने महाप्रभु के लिए अनेक हस्तलिपियाँ उतारी थीं। अट्ठाइसवीं शाखा कृष्णदास थे जो महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। उनका नाम अकिंचनदास था।

तात्पर्य

अकिंचन का अर्थ होता है, "जिसके पास इस संसार में कुछ भी नहीं रहता।"

खोला-वेचा श्रीधर प्रभुर प्रियदास।
य़ाहाँ-सने प्रभु करे नित्य परिहास॥६७॥

अनुवाद

उन्तीसवीं शाखा श्रीधर थे जो केले की छाल के व्यापारी थे। वे महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय सेवक थे। कई बार महाप्रभु ने उनके साथ मजाक भी किया था।

तात्पर्य

श्रीधर निर्धन ब्राह्मण थे जो केले की छाल के प्याले बनाकर अपनी जीविका चलाते थे। सम्भवत: उनके पास केले का बगीचा था, जिससे वे केले की पत्तियाँ, छिलका तथा गूदा एकत्र करके नित्य ही बाजार में बेच दिया करते थे। वे अपनी आमदनी का ५० प्रतिशत गंगाजी की पूजा करने में और शेष पचास प्रतिशत अपनी जीविका चलाने में खर्च करते थे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने काजी की आज्ञा उल्लंघन करके अवज्ञा-आन्दोलन चलाया तो श्रीधर प्रसन्नता से नाचने लगे थे। महाप्रभु इनके जलपात्र से पानी पिया करते थे। श्रीधर ने शचीदेवी को श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने के पूर्व पकाने के लिए फल का रस दिया था। वे प्रतिवर्ष महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी जाया करते थे। कवि कर्णपूर के अनुसार पूर्वजन्म में श्रीधर वृन्दावन के एक गोप थे जिसका नाम कुसुमासव था। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (श्लोक १३३) कहा गया है—

खोलावेचातया ख्यात: पण्डित: श्रीधरो द्विज:।
आसीद् व्रजे हास्यकरो यो नाम्ना कुसुमासव:॥

"कृष्ण-लीला में कुसुमासव नामक ग्वालबाल ही बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला के समय नवद्वीप में खोलावेचा श्रीधर बना।

प्रभु य़ाँर नित्य लय थोड़-मोचा-फल।
य़ाँर फुटा-लौहपात्रे प्रभु पिला जल॥६८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु रोज मजाक में श्रीधर से फल, फूल तथा गूदा छीन लिया करते थे और उनके टूटे लोहे के पात्र से जल पीते थे।

प्रभुर अतिप्रिय दास भगवान् पण्डित।
य़ाँर देहे कृष्ण पूर्वे हैला अधिष्ठित॥६९॥

अनुवाद

तीसवीं शाखा भगवान पण्डित थे। वे महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय सेवक थे, किन्तु इसके पूर्वजन्म में भी वे भगवान् कृष्ण के महान भक्त थे और भगवान् को सदैव अपने हृदय में रखते थे।

जगदीश पण्डित, आर हिरण्य महाशय।
य़ारे कृपा कैल बाल्ये प्रभु दयामय॥७०॥

अनुवाद

इकतीसवीं शाखा जगदीश पण्डित थे और बत्तीसवीं शाखा हिरण्य महाशय थे, जिन पर महाप्रभु ने अपने बाल्यकाल में अहैतुकी कृपा दर्शाई थी।

तात्पर्य

पूर्वजन्म कृष्णलीला में जगदीश पण्डित एक महान नर्तक थे और चन्द्रहास कहलाते थे। हिरण्य पण्डित के बारे में यह कहा जाता है कि एक रात नित्यानन्द मूल्यवान रत्नों से सज्जित होकर उनके घर में ठहरे थे और एक बड़ा चोर रात-भर इन रत्नों को चुराने का प्रयास करता रहा, किन्तु असफल रहा। बाद में नित्यानन्द प्रभु के पास आकर उसने आत्मसमर्पण कर दिया।

एइ दुइ-घरे प्रभु एकादशी दिने।
विष्णुर नैवेद्य मागि' खाइल आपने॥७१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने एकादशी के दिन इन दोनों के घरों से भोजन की भिक्षा माँगी और स्वयं खाया।

तात्पर्य

एकादशी के दिन उपवास रखने का विधान भक्तों के लिए है, किन्तु भगवान् को भोजन (नैवेद्य) अर्पित करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने विष्णु-तत्त्व के रूप में भावावेश में भगवान् विष्णु का नैवेद्य ग्रहण किया।

प्रभुर पडुया दुइ,—पुरुषोत्तम, सञ्जय।
व्याकरणे दुइ शिष्य—दुइ महाशय॥७२॥

अनुवाद

तैंतीसवीं तथा चौतीसवीं शाखाएँ पुरुषोत्तम तथा सञ्जय नामक चैतन्य महाप्रभु के दो शिष्य थे, जो व्याकरण में सिद्धहस्त थे। वे महापुरुष थे।

तात्पर्य

ये दोनों विद्यार्थी नवद्वीप के निवासी थे और संकीर्तन-आन्दोलन में महाप्रभु के प्रथम संगी थे। *चैतन्य-भागवत* के अनुसार पुरुषोत्तम मुकुन्द सञ्जय के पुत्र थे, किन्तु *चैतन्य-चरितामृत* के प्रणेता ने स्पष्ट कर दिया है कि पुरुषोत्तम तथा सञ्जय एक नहीं, अपितु अलग-अलग दो व्यक्ति थे।

वनमाली पण्डित शाखा विख्यात जगते।
सोनार मुषल हल देखिल प्रभुर हाते॥७३॥

अनुवाद

वृक्ष की पैंतीसवीं शाखा वनमाली पण्डित थे जो इस जगत में अत्यन्त विख्यात थे। उन्होंने महाप्रभु के हाथ में सोने की गदा (मूसल) तथा हल देखा।

तात्पर्य

वनमाली पण्डित ने महाप्रभु को बलराम के भाव में देखा। इसका विशाद वर्णन *चैतन्य-भागवत* अन्त्यलीला के नवे अध्याय में मिलता है।

श्रीचैतन्येर अति प्रिय बुद्धिमन्त खान।
आजन्म आज्ञाकारी तेंहो सेवक-प्रधान॥७४॥

अनुवाद

छत्तीसवीं शाखा बुद्धिमन्त खान थे, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। वे महाप्रभु की आज्ञापालन करने के लिए सदैव सन्नद्ध रहते थे, अतएव वे महाप्रभु के प्रधान सेवक माने जाते थे।

तात्पर्य

श्री बुद्धिमन्त खान नवद्वीप के वासी थे। ये अत्यन्त धनी थे और इन्होंने महाप्रभु चैतन्य की शादी विष्णुप्रिया से कराई थी, जो स्थानीय जमींदार के पुरोहित सनातन मिश्र की पुत्री थीं। उन्होंने शादी का सारा खर्च अपनी ओर से किया था। जब महाप्रभु को *वायुव्याधि* हो गई तो बुद्धिमन्त खान ने उनके इलाज और दवाइयों में जो खर्च हुआ उसे वहन किया था। वे कीर्तन-आन्दोलन में महाप्रभु के निरन्तर संगी थे। जब महाप्रभु ने चन्द्रशेखर आचार्य के घर में देवी लक्ष्मी की भूमिका सम्पन्न की थी, तो इन्हीं ने ही सारे गहनों की व्यवस्था की थी। जब महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रह रहे थे, तो ये उन्हें देखने भी गये थे।

गरुड़ पण्डित लय श्रीनाम-मङ्गल।
नाम-बले विष ग्राँरे ना करिल बल॥७५॥

अनुवाद

वृक्ष की सैंतीसवीं शाखा गरुड़ पण्डित सदैव भगवान् का नाम-कीर्तन करने में व्यस्त रहते थे। इस कीर्तन के बल पर उन्हें विष का प्रभाव छू तक नहीं पाता था।

तात्पर्य

एक बार गरुड़ पण्डित को एक विषैले सर्प ने डस लिया, किन्तु उनके द्वारा हरे-कृष्ण-महामन्त्र कीर्तन करने से साँप के विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ।

गोपीनाथ सिंह—एक चैतन्येर दास।
अक्रूर बलि' प्रभु ग्राँरे कैला परिहास॥७६॥

अनुवाद

वृक्ष की अडतीसवीं शाखा गोपीनाथ सिंह श्री चैतन्य महाप्रभु के आज्ञाकारी दास थे। महाप्रभु मजाक में उन्हें अक्रूर कह कर पुकारते थे।

तात्पर्य

वे सचमुच अक्रूर थे जैसा कि *गौरगणोद्देश-दीपिका* में कहा गया है।

भागवती देवानन्द वक्रेश्वर-कृपाते।
भागवतेर भक्ति-अर्थ पाइल प्रभु हैते॥७७॥

अनुवाद

देवानन्द पण्डित *श्रीमद्भागवत* के पेशेवर वाचक थे, किन्तु वक्रेश्वर पण्डित तथा महाप्रभु की कृपा से वे भागवत् की भक्तिमयी व्याख्या समझ सके।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत (मध्यलीला अध्याय २१) में कहा गया है कि देवानन्द पण्डित उसी गाँव के रहने वाले थे जिसमें सार्वभौम भट्टाचार्य के पिता विशारद रहते थे। ये *श्रीमद्भागवत* के पेशेवर वाचक थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु को उनकी व्याख्या पसन्द न थी। महाप्रभु ने वर्तमान नगर नवद्वीप में, जो पहले कुलिया कहलाता था, उन पर ऐसी कृपा प्रदर्शित की कि उन्होंने *श्रीमद्भागवत* की मायावादी व्याख्या छोड़ कर भक्ति के माध्यम से व्याख्या करनी सीख ली। पहले जब देवानन्द मायावादी व्याख्या करते थे तो एक बार उनकी बैठक में श्रीवास ठाकुर उपस्थित थे और जब वे जोर-जोर से रोने लगे तो देवानन्द के शिष्यों ने उन्हें मार भगाया। कुछ दिन बाद श्री चैतन्य महाप्रभु उधर से गुजरे, तो उन्होंने देवानन्द को *श्रीमद्भागवत* की मायावादी व्याख्या के लिए दण्डित किया। उस समय देवानन्द को तनिक भी विश्वास नहीं होता था कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण के अवतार हैं, किन्तु कुछ काल बाद एक रात वक्रेश्वर पण्डित उनके घर मेहमान हुए तो उन्होंने कृष्ण-विज्ञान बतलाया जिससे देवानन्द चैतन्य महाप्रभु के स्वरूप के विषय में आश्वस्त हो गये। इस तरह वैष्णव-ज्ञान के अनुसार *श्रीमद्भागवत* की व्याख्या करने के लिए उन्हें प्रेरित किया गया। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में बतलाया गया है कि वे पूर्वजन्म में भागुरी मुनि थे, जो नन्द महाराज के घर में वैदिक साहित्य सुनाने वाले *सभा-पण्डित* थे।

खण्डवासी मुकुन्ददास, श्रीरघुनन्दन।
नरहरिदास, चिरञ्जीव, सुलोचन॥७८॥
एइ सब महाशाखा—चैतन्यकृपाधाम।
प्रेम-फल-फूल करे याँहाँ ताहाँ दान॥७९॥

अनुवाद

खण्डवासी मुकुन्द तथा उनके पुत्र श्री रघुनन्दन उस वृक्ष की उन्तालीसवीं शाखा थे, नरहरि चालीसवीं, चिरञ्जीव एकतालीसवीं और सुलोचन बयालीसवीं शाखा थे। ये सभी श्री चैतन्य महाप्रभु-रूपी कृपाधाम-वृक्ष की बड़ी-बड़ी शाखाएँ थे। इन्होंने भगवत्प्रेम रूपी फल, फूल को सर्वत्र वितरित किया।

तात्पर्य

श्री मुकुन्द दास नारायण दास के पुत्र तथा नरहरि सरकार के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके दूसरे भाई का नाम माधवदास था और उनके पुत्र का नाम था रघुनन्दन दास। आज भी रघुनन्दन दास के वंशज कटवा से चार मील पश्चिम श्रीखण्ड नामक ग्राम में रह रहे हैं, जहाँ रघुनाथ दास रहा करते थे। रघुनन्दन दास के एक पुत्र था जिसका नाम कानाइ था और जिसके दो पुत्र हुए—पहला मदन राय जो नरहरि ठाकुर का शिष्य था और दूसरा वंशीवदन। अनुमान है कि इस परिवार में ४०० व्यक्ति हुए होंगे। श्रीखण्ड गाँव में इन सबों के नामों का रिकार्ड है। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में बतलाया गया है कि वृन्दादेवी नामक गोपी ही मुकुन्ददास बनी। ये श्रीखण्ड गाँव में रहते थे और श्री चैतन्य महाप्रभु को अतिप्रिय थे। उनकी अद्भुत भक्ति तथा कृष्ण-प्रेम का वर्णन *मध्यलीला* के पन्द्रहवें अध्याय में मिलता हैं। *भक्ति रत्नाकर* के आठवें अध्याय में बतलाया गया है कि रघुनन्दन श्री चैतन्य महाप्रभु के विग्रह की सेवा करते थे।

नरहरि दास सरकार अत्यन्त प्रसिद्ध भक्त थे। लोचनदास ठाकुर इन्हीं के शिष्य थे, ये *चैतन्य-मंगल* के सुविख्यात लेखक थे। *चैतन्य-मंगल।* में कहा गया है कि श्री गदाधर दास तथा नरहरि सरकार श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे, किन्तु इसका उल्लेख नहीं है कि वे श्रीखण्ड ग्राम के निवासी थे।

चिरञ्जीव तथा सुलोचन दोनों ही श्रीखण्ड के निवासी थे, जहाँ उनके वंशज आज भी रह रहे हैं। चिरञ्जीव के दो पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र कविराज श्रीनिवासाचार्य के शिष्य तथा नरोत्तमदास ठाकुर के घनिष्ठ संगी थे। कनिष्ठ पुत्र गोविन्द दास कविराज एक प्रसिद्ध वैष्णव कवि थे। चिरञ्जीव पहले गंगा नदी के तट पर स्थित कुमारनगर गाँव में रहा करते थे। *गौरगणोद्देश*

दीपिका (श्लोक २०७) के अनुसार वे पूर्वजन्म में वृन्दावन की चन्द्रिका थे।

कुलीनग्रामवासी सत्यराज, रामानन्द।
य़दुनाथ, पुरुषोत्तम, शङ्कर, विद्यानन्द॥८०॥

अनुवाद

सत्यराज, रामानन्द, यदुनाथ, पुरुषोत्तम, शङ्कर, तथा विद्यानन्द बीसवीं शाखा से सम्बद्ध थे। वे कुलीन ग्राम के रहने वाले थे।

वाणीनाथ वसु आदि य़त ग्रामी जन।
सबेइ चैतन्यभृत्य—चैतन्यप्राणाधन॥८१॥

अनुवाद

वाणीनाथ वसु इत्यादि कुलीन ग्राम के सारे निवासी चैतन्य महाप्रभु के सेवक थे और उनके प्राण तथा धन चैतन्य ही थे।

प्रभु कहे कुलीन ग्रामेर य़े हय कुक्कुर।
सेइ मोर प्रिय, अन्य जन रहु दूर॥८२॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "औरों की बात जाने दें, कुलीन ग्राम का कुत्ता भी मेरा प्रिय मित्र है।"

कुलीन ग्रामीर भाग्य कहने ना य़ाय।
शुकर चराय डोम, सेइ कृष्ण गाय॥८३॥

अनुवाद

"कुलीन ग्राम के भाग्य के विषय में कोई कुछ कह नहीं सकता। वह इतना दिव्य है कि सुअर पालने वाले डोम भी हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करते हैं।"

अनुपम-वल्लभ, श्रीरूप, सनातन।
एइ तिन शाखा वृक्षेर पश्चिमे सर्वोत्तम॥८४॥

अनुवाद

वृक्ष के पश्चिम की ओर की तैंतालीसवीं, चवालीसवीं तथा पैंतालीसवीं

शाखाएँ श्री सनातन, श्री रूप तथा अनुपम थे। ये सबों में श्रेष्ठ थे।

तात्पर्य

श्री अनुपम जीव गोस्वामी के पिता तथा श्री सनातन गोस्वामी और श्री रूप गोस्वामी के छोटे भाई थे। उनका पहले का नाम वल्लभ था, किन्तु भेंट होने के बाद श्री चैतन्य ने उनका नाम अनुपम रख दिया। ये तीनों भाई मुसलमान सरकार में कार्य कर रहे थे, अतएव उन्हें मल्लिक की उपाधि प्राप्त हुई थी। हमारा परिवार कलकत्ता के महात्मा गांधी मार्ग के मल्लिकों से सम्बद्ध है और हम उनके राधागोविन्द मन्दिर का प्रायः दर्शन करने जाते थे। उनका सम्बन्ध उसी परिवार से है जिससे हमारा है। हमारा गोत्र *गौतम* है और हमारा पदवी डे है। लेकिन चूँकि उन्होंने मुसलिम सरकार में जमींदारों का पद ग्रहण कर रखा था, इसलिए वे मल्लिक कहलाये। इसी तरह रूप सनातन तथा वल्लभ को भी मल्लिक पदवी मिली थी। मल्लिक का अर्थ है, "स्वामी या मालिक," अतएव मुसलमानों ने मल्लिक उपाधि उन धनी, सम्मानित परिवारों को दी, जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध सरकार से था। यह पदवी न केवल हिन्दुओं में पाई जाती है, अपितु मुसलमानों में भी है। यह पदवी किसी एक परिवार तक भी सीमित नहीं है। यह विभिन्न परिवारों तथा जातियों को प्रदान की जाती है। इसे पाने की योग्यताएँ हैं धन तथा सम्मान।

सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी *भरद्वाज गोत्र* के थे, जिससे सूचित होता है कि उनका परिवार भरद्वाज मुनि की परम्परा से सम्बन्धित है। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के सदस्य होने के नाते हम सरस्वती गोस्वामी परिवार से सम्बद्ध हैं, अतएव हम लोग *सारस्वत* कहलाते हैं। अतएव गुरु को सारस्वत-देव कह कर नमस्कार किया जाता है (*नमस्ते सारस्वते देवम्*) जिसका उद्देश्य श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करना (*गौर वाणिप्रचारिणे*) तथा निर्विशेषियों एवं शून्यवादियों से शास्त्रार्थ करना है। (*निर्विशेष-शून्यवादीपाश्चात्यदेशतारिणे*) सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा अनुपम गोस्वामी की भी यही वृत्ति थी।

सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा वल्लभ गोस्वामी का वंशवृक्ष बारहवीं शताब्दी शकाब्द से प्रारम्भ होता है, जब कर्णाट प्रान्त के एक अत्यन्त धनवान तथा ऐश्वर्यवान ब्राह्मण परिवार में सर्वज्ञ नामक व्यक्ति उत्पन्न हुआ। उसके दो पुत्र हुए—अनिरुद्ध रूपेश्वर तथा हरिहर। इन दोनों को राज्य से

वंचित कर दिया, जिससे इन्हें ऊबड़खाबड़ प्रदेशों में रहना पड़ा। रूपेश्वर का पुत्र पद्मनाभ हुआ जो बंगाल के नैहाटी नामक स्थान चला गया जो गंगा नदी के किनारे है। उसके पाँच पुत्र हुए, जिनमें से सबसे छोटे पुत्र मुकुन्द के कुमारदेव नामक एक अत्यन्त शिष्ट पुत्र हुआ। उसी से रूप, सनातन तथा वल्लभ तीनों उत्पन्न हुए। कुमारदेव बाक्लाचन्द्रद्वीप में रहता था, जो यशोहर जिले में था और अब फतेयाबाद कहलाता है। उसके कई पुत्र हुए जिनमें से तीन पुत्र वैष्णव थे। बाद में श्री वल्लभ तथा उनके भाई रूप एवं सनातन चन्द्रद्वीप से रामकेलि नामक गाँव चले आये जो बंगाल के मल्दह जिले में है। श्रील जीव गोस्वामी का जन्म इसी ग्राम में हुआ और वल्लभ उनके पिता थे। तीनों भाई मुसलिम सरकार में नौकरी करते थे, इसलिए इन्हें मल्लिक की पदवी मिली। जब श्री चैतन्य महाप्रभु रामकेली ग्राम गये तो वहाँ वे वल्लभ से मिले थे। तत्पश्चात श्री रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने के बाद सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया, और जब वे महाप्रभु से मिलने वृन्दावन गये, तो वल्लभ उनके साथ थे। इलाहाबाद में रूप गोस्वामी तथा वल्लभ की श्री चैतन्य महाप्रभु से जो भेंट हुई उसका वर्णन मध्यलीला के अध्याय १९ में हुआ है।

वास्तव में सनातन गोस्वामी के कथन से पता चलता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार ही श्री रूप गोस्वामी तथा वल्लभ वृन्दावन गये थे। सर्वप्रथम वे मथुरा गये, जहाँ उनकी भेंट सुबुद्धिराय नामक लकड़हारा से हुई। वह रूप गोस्वामी तथा अनुपम से मिल कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने इन्हें वृन्दावन के बारह जंगल दिखलाये। इस तरह वे वृन्दावन में एक मास तक रहे और तब पुनः सनातन गोस्वामी को ढूँढने निकले। वे गंगा के प्रवाह का अनुसरण करते हुए इलाहाबाद या प्रयाग-तीर्थ पहुँचे, किन्तु सनातन गोस्वामी दूसरे रास्ते से आये थे, अतएव वे वहाँ उनसे नहीं मिल सके। जब सनातन गोस्वामी मथुरा पहुँचे तो उन्हें सुबुद्धिराय ने रूप गोस्वामी तथा अनुपम के आने की खबर दी। जब रूप गोस्वामी तथा अनुपम बनारस में महाप्रभु से मिले तो उनके मुख से उन्होंने सनातन गोस्वामी की यात्रा के विषय में सुना। अतएव वे बंगाल लौट गये, उन्होंने वहाँ अपना काम-धाम सँभाला और श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से उनसे भेंट करने जगन्नाथ पुरी गये।

१४३६ शकाब्द में सबसे छोटा भाई अनुपम मर कर स्वर्गधाम चला

गया। वह उसी धाम को गया जहाँ श्री रामचन्द्र हैं। श्री रूप गोस्वामी ने इस घटना की सूचना महाप्रभु को जगन्नाथ पुरी में दी। वल्लभ श्री रामचन्द्र का महान् भक्त था, अतएव वह श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार राधागोविन्द की पूजा नहीं कर पाता था। फिर भी उसने श्री चैतन्य महाप्रभु को भगवान् रामचन्द्र का अवतार मान लिया था। *भक्तिरत्नाकर* में यह कथन मिलता है कि "अनुपम को वल्लभ नाम श्री गौरसुन्दर द्वारा दिया गया, किन्तु वह सदैव भगवान् रामचन्द्र की सेवा में लीन रहता था। वह श्री रामचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानता था, किन्तु वह यह जानता था कि चैतन्य गोसाईं वही भगवान् रामचन्द्र हैं।"

गौरगणोद्देश-दीपिका (१८०) श्री रूप गोस्वामी को श्री रूप मञ्जरी नामक गोपी बतलाया गया है। *भक्तिरत्नाकर* में श्रील रूप गोस्वामी द्वारा लिखित ग्रंथों की सूची दी गई है। उनके समस्त ग्रंथों में निम्नलिखित १६ ग्रंथ वैष्णवों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। (१) हंसदूत (२) उद्धवसन्देश (३) कृष्ण-जन्म-तिथि-विधि (४-५) गणोद्देश दीपिका, बृहत तथा लघु (६) स्तवमाला (७) विदग्ध माधव (८) ललित माधव (९)दानकेलि कौमुदी (१०) भक्तिरसामृत सिन्धु (यह सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है) (११) उज्ज्वल नीलमणि (१२) आख्यात चन्द्रिका (१३) मथुरा-महिमा (१४) पद्यावली (१५) नाटक-चन्द्रिका तथा (१६) लघु भागवतामृत। श्रील रूप गोस्वामी ने पारिवारिक सम्बन्ध तोड़ कर संन्यास ले लिया था और अपने धन का ५०% ब्राह्मणों तथा वैष्णवों को तथा २५% अपने कुटुम्बियों को दान देने से बचे २५% को अपनी आवश्यकताओं के लिए रख छोड़ा। वे जगन्नाथ पुरी में हरिदास ठाकुर से मिले तथा उनकी भेंट श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों से भी हुई। श्री चैतन्य महाप्रभु रूप गोस्वामी की लिखावट (हस्तलिपि) की प्रशंसा किया करते थे। वे महाप्रभु की इच्छानुसार पद्य रचना करते थे और उन्हीं के आदेशानुसार *ललित-माधव* तथा *विदग्ध-माधव* नामक दो पुस्तकें लिखीं। महाप्रभु की इच्छा थी कि सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी—ये दोनों भाई वैष्णव धर्म के समर्थन में अनेक पुस्तकें प्रकाशित करें। जब सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले तो महाप्रभु ने उन्हें वृन्दावन जाने की सलाह दी।

गौरगणोद्देश दीपिका में (१८१) श्री सनातन गोस्वामी का वर्णन हुआ है। पूर्वजन्म में ये रति मंजरी या लवंग मंजरी कहलाते थे। *भक्ति रत्नाकर* में कहा गया है कि इनके गुरु विद्यावाचस्पति कभी-कभी रामकेलि गाँव

आकर रुकते थे और सनातन गोस्वामी ने उन्हीं से सारे वेदों का अध्ययन किया था। वे अपने गुरु के इतने आज्ञाकारी थे कि उसका वर्णन ही नहीं हो सकता। वैदिक पद्धति के अनुसार यदि किसी की भेंट किसी मुसलमान से हो जाय तो उसे तुरन्त प्रायश्चित करना चाहिए। सनातन गोस्वामी तो सदा ही मुसलमान राजाओं के साथ-साथ रहे। वे वैदिक आदेशों की परवाह न करते हुए मुसलमान बादशाहों के घर मिलने जाते रहते थे और इस तरह अपने को मुसलमान में परिवर्तित हुआ मान चुके थे। अतएव वे अत्यन्त दीन थे। महाप्रभु के समक्ष उपस्थित होते समय उन्होंने कहा, "मैं सदैव निम्न श्रेणी के लोगों के साथ रहता हूँ, अतएव मेरा आचरण अत्यन्त गर्हित है। वास्तव में वे सम्मानित ब्राह्मण परिवार के थे, किन्तु वे अपने आचरण को कुत्सित मानते हुए कभी ब्राह्मणों के बीच में नहीं जाना चाहते थे, अपितु वे सदैव नीची जाति के लोगों के साथ रहते। उन्होंने *हरिभक्ति-विलास* तथा *वैष्णव-तोषणी* नामक *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कन्ध का भाष्य लिखा। १४७६ शकाब्द में उन्होंने *श्रीमद्भागवत* पर *बृहत वैष्णव-तोषणी-भाष्य* समाप्त किया। १५०४ शकाब्द में उन्होंने *लघु-तोषणी* समाप्त किया।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने चार प्रमुख अनुयायियों के माध्यम से अपने सिद्धान्तों की शिक्षा दी। इनमें से रामानन्द दास अद्वितीय हैं, क्योंकि उनके माध्यम से महाप्रभु ने अपने भक्त को कामशक्ति को पूरी तरह जीतने की शिक्षा दी। कामशक्ति के कारण मनुष्य ज्योंही किसी सुन्दर स्त्री को देखता है वह उसकी सुन्दरता के वश में हो जाता है। श्री रामानन्द राय ने काम के गर्व को दूर किया क्योंकि जगन्नाथ-वल्लभ नाटक में उन्होंने सुन्दरी तरुणियों के नृत्य का निर्देशन किया तो भी वे कभी उनके सौन्दर्य से प्रभावित नहीं हुए। श्री रामानन्द स्वयं ही इन तरुणियों को अपने हाथ से नहलाते और उनका स्पर्श करते, किन्तु तब भी शान्त तथा कामवासना-रहित बने रहते, जिस तरह कि बड़े भक्त को होना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रमाणित किया कि केवल रामानन्द राय के लिए ही ऐसा कर पाना सम्भव था। इसी तरह दामोदर पण्डित अपनी आलोचना के लिए विख्यात थे। वे महाप्रभु को भी नहीं छोड़ते थे। इनका भी कोई अनुकरण नहीं कर सकता। हरिदास ठाकुर अपनी सहनशीलता के लिए अद्वितीय थे, क्योंकि यद्यपि वे बाईस बाजारों में बेंतो से पीटे गये थे, फिर भी वे सहिष्णु बने रहे। इसी प्रकार सनातन गोस्वामी ब्राह्मण होते हुए भी अपनी दीनता तथा विनयशीलता में

अद्वितीय थे।

मध्यलीला के उन्नीसवें अध्याय में सनातन गोस्वामी ने सरकारी नौकरी से मुक्ति पाने के लिए जो युक्ति अपनाई उसका वर्णन मिलता है। उन्होंने नवाब के पास बीमारी की अर्जी भेजी किन्तु दरअसल वे ब्राह्मणों से अपने घर पर *श्रीमद्भागवत* का अध्ययन कर रहे थे। नवाब को एक राजवैद्य से यह सूचना मिल गई, अतएव वह इस रहस्य का पर्दाफाश करने सनातन गोस्वामी के यहाँ गया। नवाब ने सनातन से प्रार्थना की कि वे उसके साथ उड़ीसा यात्रा पर चलें। किन्तु जब गोस्वामी ने मना कर दिया, तो नवाब ने आदेश दिया कि उन्हें तुरन्त जेल में डाल दिया जाये। जब रूप गोस्वामी ने घर छोड़ा, उस समय उन्होंने सनातन गोस्वामी को एक पत्र लिख कर सूचित किया कि वे अपना कुछ धन किसी स्थानीय पंसारी के यहाँ छोड़े जा रहे हैं। सनातन गोस्वामी ने इस धन का उपयोग जेलर को घूस देने में किया और कैद से छूटे। फिर वे महाप्रभु से मिलने के लिए चल पड़े और अपने साथ केवल एक नौकर ले गये जिसका नाम ईशान था। रास्ते में वे एक सराय में रुके और जब सराय के मालिक को पता चला कि ईशान के पास कुछ स्वर्ण मुद्राएँ हैं तो उसने उन मुद्राओं को लेने के लिए सनातन गोस्वामी तथा ईशान दोनों को मार डालने की योजना बनाई। बाद में सनातन गोस्वामी ने देखा कि सराय का मालिक उन्हें न जानते हुए भी उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखता था, अतएव वे इस नतीजे पर पहुँचे कि ईशान चुपके से कुछ धन रखे है जिसका पता सराये के मालिक को लग चुका है। इसीलिए उसने उन्हें मारने की योजना बनाई है। जब ईशान ने स्वीकार कर लिया कि उसके पास धन है, तो सनातन गोस्वामी ने तुरन्त ही उससे वह धन लेकर सराय वाले को दे दिया और उससे प्रार्थना की कि वह उन्हें जंगल के पार कर दे। इस तरह चोरों के चोर उस सराय वाले की सहायता से वे हाजीपुर पहाड़ को लाँघ पाये, जो आजकल हजारीबाग कहलाता है। तब उनकी भेंट अपने साले श्रीकान्त से हुई जिसने उन्हें अपने साथ रुकने के लिए कहा। सनातन गोस्वामी ने इन्कार कर किया, किन्तु विदा होने के पूर्व श्रीकान्त ने उन्हें एक कीमती कम्बल दिया।

सनातन गोस्वामी किसी तरह बनारस पहुँचे और वहाँ चन्द्रशेखर के मकान में महाप्रभु से मिले। महाप्रभु की आज्ञा से सनातन गोस्वामी के बाल बना

दिये गये और उनकी वेशभूषा बदल कर बाबाजी जैसी कर दी गई। उन्होंने तपन मिश्र के पुराने वस्त्र पहने और एक महाराष्ट्री ब्राह्मण के घर प्रसाद ग्रहण किया। फिर महाप्रभु से वार्ता हुई जिसमें महाप्रभु ने उन्हें भक्ति के विषय में सारी बातें बतलाईं। उन्होंने सनातन गोस्वामी को भक्ति विषयक पुस्तकें लिखने तथा वृन्दावन के प्राचीन विस्मृत स्थानों की खुदाई करने की सलाह दी। इन सारे कार्यों को पूरा करने के लिए महाप्रभु ने उन्हें आशीर्वाद दिया और *आत्माराम* श्लोक की ६१ प्रकार से व्याख्या भी की।

सनातन गोस्वामी मुख्य मार्ग से मथुरा गये और जब वे वहाँ पहुँचे तो उनकी भेंट सुबुद्धि राय से हुई। तत्पश्चात् वे झारिखण्ड अर्थात् उत्तरप्रदेश के जंगल से होकर जगन्नाथ पुरी लौट आये। वहाँ उन्होंने जगन्नाथ रथ के पहिए के नीचे गिर कर प्राणान्त करने का निश्चय किया, किन्तु महाप्रभु ने बचा लिया। उन्हें हरिदास ठाकुर से मिलने के बाद अनुपम के अन्तर्धान होने का पता चला। बाद में सनातन गोस्वामी ने हरिदास ठाकुर की महिमा का वर्णन किया। सनातन ने देखा कि किस तरह समुद्र के तट से होकर जगन्नाथ का मन्दिर महाप्रभु का दर्शन करने ले जाया जाता है, यद्यपि धूप के कारण वह तप रहा था। उन्होंने जगदानन्द पण्डित से प्रार्थना की कि उन्हें वृन्दावन वापस जाने की अनुमति दी जाय। महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी के चरित्र की प्रशंसा की और उनके शरीर को आध्यात्मिक मान कर उनका आलिंगन किया। महाप्रभु ने आदेश दिया कि सनातन गोस्वामी एक वर्ष तक जगन्नाथ पुरी में रहें। कई वर्षों बाद जब वे वृन्दावन लौटे तो पुनः रूप गोस्वामी से मिले और दोनों भाई श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों को पूरा करने के लिए वृन्दावन में रहे।

वह स्थान जहाँ श्री रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी पहले रहते थे अब तीर्थस्थल बन गया है। यह गुप्त वृन्दावन के नाम से जाना जाता है और इंग्लिशबाजार से लगभग ८ मील दक्षिण स्थित है। आज भी निम्नलिखित स्थानों के दर्शन किये जाते हैं—(१) श्री मदन-मोहन-विग्रह का मन्दिर (२) केलिकदम्ब वृक्ष जिसके नीचे रात में श्री चैतन्य महाप्रभु रूप गोस्वामी से मिले तथा (३) रूपसागर—एक बड़ा तालाब जो रूप गोस्वामी को खुदाई कराने से मिला। मन्दिर की मरम्मत तथा तालाब के पुनर्निर्माण के लिए १९२४ में रामकेलि-संस्कार समिति की स्थापना की गई थी।

ताँर मध्ये रूप-सनातन—बड़ शाखा।
अनुपम, जीव, राजेन्द्रादि उपशाखा ॥८५॥

अनुवाद

इन शाखाओं में रूप तथा सनातन मुख्य थे। अनुपम, जीव गोस्वामी तथा राजेन्द्र आदि उनकी उपशाखाएँ थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में कहा गया है कि श्रील जीव गोस्वामी पहले विलासमञ्जरी गोपी थे। श्रील जीव गोस्वामी अपने बचपन से *श्रीमद्भागवत* के प्रेमी थे। बाद में वे संस्कृत का अध्ययन करने नवद्वीप आये और श्री नित्यानन्द प्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए पूरे नवद्वीप धाम की परिक्रमा की। नवद्वीप धाम देख लेने के बाद वे मधुसूदन वाचस्पति से संस्कृत पढ़ने बनारस गये और वहाँ से अध्ययन समाप्त करने के बाद वृन्दावन गये, जहाँ उन्होंने अपने चाचाओं श्रील रूप तथा सनातन चाचाओं की शरण ग्रहण की। इसका वर्णन *भक्ति-रत्नाकर* में हुआ है। जहाँ तक हमें पता है, श्रील जीव गोस्वामी ने कम-से-कम २५ पुस्तकें लिखी हैं। ये सभी प्रसिद्ध हैं और इनकी सूची इस प्रकार है—(१) हरिनामामृत व्याकरण (२) सूत्र मालिका (३)धातुसंग्रह (४) कृष्णार्चा दीपिका (५)गोपाल विरुदावली (६) रसामृत-शेष (७) श्रीमाधव महोत्सव (८) श्री संकल्प कल्पवृक्ष (९) भावार्थ सूचक चम्पू (१०) गोपाल तापनी टीका (११) ब्रह्मसंहिता की टीका (१२) भक्तिरसामृत सिंधु की टीका (१३) उज्ज्वल नीलमणि की टीका (१४)योगसार स्तव की टीका (१५) अग्निपुराण में वर्णित गायत्री मन्त्र की टीका (१६) पद्मपुराण से लिया गया भगवान् के चरणकमलों का वर्णन (१७) श्रीमती राधारानी के चरणकमलों का वर्णन (१८) गोपाल चम्पू (२ भाग) तथा (१९-२५) सात सन्दर्भ—क्रम, तत्त्व, भगवत, परमात्मा, कृष्ण, भक्ति तथा प्रीति सन्दर्भ। वृन्दावन में श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के तिरोधान के बाद श्रील जीव गोस्वामी बंगाल, उड़ीसा तथा शेष जगत के वैष्णवों के आचार्य बने और वे ही भक्ति के मामलों में उनका मार्गदर्शन करते रहे। उन्होंने वृन्दावन में राधा-दामोदर मन्दिर की स्थापना की। हमें यहीं ६५ वर्ष की आयु तक रहने का अवसर मिला, जब हमने संयुक्त राज्य अमरीका आने का निश्चय किया। अभी जीव गोस्वामी जीवित थे जब श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी

ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ *चैतन्य-चरितामृत* लिखा। तत्पश्चात् श्रील जीव गोस्वामी ने श्रीनिवास आचार्य, नरोत्तमदास ठाकुर तथा दुःखी कृष्णदास को बंगाल में कृष्णभावनामृत प्रचार करने के लिए प्रोत्साहित किया। जीव गोस्वामी को बताया गया कि वृन्दावन से जितने हस्तलिखित ग्रंथ एकत्र करके प्रचार-कार्य हेतु बंगाल भेजे गये थे, उन्हें बंगाल में विष्णुपुर के निकट लूट लिया गया, किन्तु बाद में यह सूचना आई कि वे फिर से प्राप्त कर लिए गये हैं। उन्होंने श्रीनिवास आचार्य के शिष्य रामचन्द्र सेन तथा उनके छोटे भाई गोविन्द को कविराज की उपाधि प्रदान की। जब जीव गोस्वामी जीवित थे तो श्री नित्यानन्द प्रभु की ह्लादिनी शक्ति जाह्नवी देवी कुछ भक्तों के साथ वृन्दावन गईं। जीव गोस्वामी गौड़ीय वैष्णवों के प्रति अत्यधिक कृपालु थे। जो कोई भी वृन्दावन जाता उसे वे आवास तथा प्रसाद प्रदान करते थे। उनके शिष्य कृष्णदास अधिकारी ने अपनी डायरी में उनकी सारी पुस्तकों की सूची बनाई थी।

सहजिया लोग श्रील जीव गोस्वामी पर तीन आरोप लगाते हैं जो भक्ति-कार्य में शोभनीय नहीं है। पहला आरोप उस भौतिकतावादी ने लगाया जो अपने को संस्कृत का पंडित मानता था और श्री रूप तथा सनातन के पास शास्त्रार्थ करने के बहाने पहुँचा था। श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी अपना समय गँवाना नहीं चाहते थे, अतएव उन्होंने लिखित बयान दे दिया कि वे शास्त्रार्थ में उससे हार गये। यह प्रमाण-पत्र लेकर वह पंडित जीव गोस्वामी के पास पहुँचा, किन्तु वे इस तरह का प्रमाण-पत्र देने के लिए राजी नहीं हुए। यद्यपि श्रील जीव गोस्वामी के पक्ष में यह ठीक ही था कि वे एक पंडित द्वारा श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी की पराजय का विज्ञापन किये जाने को रोकना चाहते थे, किन्तु सहजिया वर्ग वाले अपनी अशिक्षा के कारण इस घटना का उल्लेख यह कह कर करते हैं कि श्रील जीव गोस्वामी अपने दैन्य सिद्धान्त से विचलित हुए। किन्तु वे यह नहीं जानते कि दैन्य भाव वहीं उचित होता है जब निजी सम्मान को धक्का लगता हो। किन्तु जब भगवान् विष्णु या आचार्यों की निन्दा की जाय तो मनुष्य को दीन न बने रह कर विरोध प्रकट करना चाहिए। उसे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रस्तुत दृष्टान्त का पालन करना चाहिए। महाप्रभु एक प्रार्थना में कहते हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

"अपने को तृण से भी तुच्छ मान कर शान्त भाव से भगवन्नाम का कीर्तन करना चाहिए। उसे वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु होना चाहिए, उसे झूठी प्रतिष्ठा भाव से रहित होना चाहिए और अन्यों का सम्मान करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। ऐसी मनः स्थिति में ही भगवन्नाम का निरन्तर कीर्तन किया जा सकता है।" इतने पर भी जब महाप्रभु ने सुना कि जगाइ तथा माधाइ ने नित्यानन्द प्रभु को चोट पहुँचाई है, तो तुरन्त ही वे उस स्थान पर अग्नि की तरह क्रुद्ध होकर गये और उन्हें मार डालना चाहा। इस तरह महाप्रभु ने अपने ही आचरण से दृष्टान्त प्रस्तुत करके अपने श्लोक की व्याख्या की है। मनुष्य को चाहिए कि अपने अपमान को तो सहे किन्तु जब गुरुजनों की, यथा अन्य वैष्णवों की, निन्दा की जाय तो उसका दीन या विनीत बने रहना उचित नहीं है, उसे ऐसी निन्दा का प्रतिवाद करने के लिए उचित कदम उठाना चाहिए। जो गुरु तथा वैष्णव के दासत्व को समझता है, वह श्रील जीव गोस्वामी द्वारा अपने गुरुओं—श्रील रूप तथा श्रील सनातन गोस्वामी-पर तथाकथित पंडित की विजय के सम्बन्ध में किये गये कार्य को समझेगा।

श्रील जीव गोस्वामी को बदनाम करने के लिए जो दूसरी कथा बनाई गई वह यह है कि जब श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने *श्रीकृष्ण-चरितामृत* लिख कर श्रील जीव गोस्वामी को दिखलाया तो उन्होंने यह सोच कर उसे कुएँ में फेंक दिया कि इससे उनके पांडित्य को धक्का लगेगा। इससे श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी को गहरा आघात लगा और वे तुरन्त मर गये। सौभाग्यवश मुकुन्द नामक व्यक्ति के पास *चैतन्य-चरितामृत* की एक हस्तलिपि बनी थी, जिससे उसे बाद में प्रकाशित किया जा सका। यह कहानी भी गुरु तथा वैष्णव की निन्दा का दूसरा जघन्य उदाहरण है। ऐसी कहानी को कभी-भी प्रामाणिक नहीं मानना चाहिए।

एक अन्य आरोप यह है कि श्रील जीव गोस्वामी व्रजधाम के *पारकीय रस* के सिद्धान्तों से सहमत नहीं थे, अतएव उन्होंने *स्वकीय रस* का समर्थन किया, जिसमें राधा तथा कृष्ण को शाश्वत विवाहित दिखाया जाता है। वास्तव में, जब जीव गोस्वामी जीवित थे तो उनके कुछ अनुयायियों को

गोपियों का पारकीय रस पसन्द नहीं आया। इसीलिए उनके आध्यात्मिक लाभ के लिए श्रील जीव गोस्वामी ने स्वकीय रस का समर्थन किया, क्योंकि वे जानते थे कि सहजिया लोग पारकीय रस का दुरुपयोग कर सकते हैं, जैसा कि इस समय वे कर रहे हैं। दुर्भाग्यवश वृन्दावन तथा नवद्वीप में सहजियों के बीच यह फैशन बन चुका है कि पारकीय रस में भक्ति सम्पन्न करने के लिए वे अविवाहित संगी की तलाश करते हैं। पूर्व दृष्टि होने के कारण श्रील जीव गोस्वामी ने स्वकीय रस का समर्थन किया और बाद में सारे वैष्णव आचार्यों ने इसको मान्यता दे दी। श्रील जीव गोस्वामी कभी-भी दिव्य पारकीय रस के विरुद्ध नहीं थे, न ही किसी अन्य वैष्णव ने असहमति व्यक्त की है। श्रील जीव गोस्वामी ने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं और वैष्णवों—श्री रूप और सनातन गोस्वामियों—का दृढ़तापूर्वक अनुसरण किया और श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने उन्हें अपना शिक्षक-गुरु स्वीकार किया।

मालीर इच्छाय शाखा बहुत बाड़िल।
बाड़िया पश्चिम देश सब आच्छादिल॥८६॥

अनुवाद

महान् माली की इच्छा से, श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी की शाखाएँ कई गुना बढ़ कर समूचे पश्चिमी देशों में फैल गईं।

आ-सिन्धुनदी-तीर आर हिमालय।
वृन्दावन-मथुरादि यत तीर्थ हय॥८७॥

अनुवाद

वे सिन्धु नदी तथा हिमालय पर्वत की घाटियों की सीमाओं तक बढ़ कर सारे भारत में फैल गईं जिसमें वृन्दावन, मथुरा तथा हरिद्वार जैसे सारे तीर्थस्थल सम्मिलित हैं।

दुइ शाखार प्रेमफले सकल भासिल।
प्रेमफलास्वादे लोक उन्मत्त हइल॥८८॥

अनुवाद

इन दोनों शाखाओं में जो भगवत्प्रेम रूपी फल लगे, वे बड़ी संख्या में वितरित किये गये। इन फलों को चख कर हर व्यक्ति उनके लिए

मचल उठा।

पश्चिमेर लोक सब मूढ़ अनाचार।
ताहाँ प्रचारिल दोंहे भक्ति-सदाचार॥८९॥

अनुवाद

भारत के पश्चिमी दिशा के लोग न तो बुद्धिमान थे न शिष्ट, किन्तु श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के प्रभाव से वे भक्ति तथा सदाचार में प्रशिक्षित हो सके।

तात्पर्य

ऐसा नहीं है कि पश्चिम भारत में ही लोग मुसलमानों की संगति से कलुषित थे, अपितु यह तथ्य है कि ज्यों-ज्यों हम पश्चिम की ओर बढ़ते हैं त्यों-त्यों लोग वैदिक संस्कृति से च्युत मिलते हैं। ५००० वर्ष पूर्व तक जब सारा लोक महाराज परीक्षित के अधीन था, तो सर्वत्र वैदिक संस्कृति प्रचलित थी। किन्तु धीरे-धीरे लोग अवैदिक संस्कृति से प्रभावित होते गये और उन्हें इसका ज्ञान ही न रहा कि भक्ति में किस तरह आचरण किया जाता है। श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ने पश्चिमी भारत में भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार किया और उन्हीं के चरणचिह्नों पर चलते हुए चैतन्य-सम्प्रदाय के प्रचारक पाश्चात्य जगत में संकीर्तन-आन्दोलन का प्रसार कर रहे हैं और वैष्णव-सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं। इस तरह वे पहले से म्लेच्छों तथा यवनों की संस्कृति के अभ्यस्त लोगों को सुधार रहे हैं और शुद्ध कर रहे हैं। पाश्चात्य देशों में हमारे सारे भक्त अवैध यौनाचार, नशाखोरी, मांसाहार तथा जुआ खेलने की अपनी पुरानी आदतें छोड़ देते हैं। ५०० वर्ष पूर्व पूर्वी भारत में ये कुरीतियाँ अज्ञात थीं, किन्तु दुर्भाग्यवश इस समय सारा भारत इन अवैदिक सिद्धान्तों से आक्रान्त है, जिन्हें कभी-कभी सरकारी समर्थन भी प्राप्त होता रहता है।

शास्त्र-दृष्ट्ये कैल लुप्ततीर्थेर उद्धार।
वृन्दावने कैल श्रीमूर्ति-सेवार प्रचार॥९०॥

अनुवाद

शास्त्रों के निर्देशों के अनुसार दोनों गोस्वामियों ने लुप्त तीर्थस्थलों की खुदाई की और वृन्दावन में अर्चाविग्रहों की पूजा का सूत्रपात किया।

तात्पर्य

आज जहाँ हम श्री राधाकुण्ड देखते हैं वहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु के समय खेत था। वहां एक छोटी-सी तलैया थी जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु नहाया करते थे। उन्होंने ही यह इंगित किया था कि पहले इस स्थान पर राधाकुण्ड था। उनके निर्देशानुसार श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ने राधाकुण्ड का जीर्णोद्धार कराया। यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि किस तरह गोस्वामियों ने लुप्त तीर्थस्थलों की खुदाई कराई। इसी तरह गोस्वामियों के ही प्रयासों से वृन्दावन के सारे महत्वपूर्ण मन्दिरों की स्थापना की गई। पहले वृन्दावन में सात महत्वपूर्ण गौड़ीय वैष्णव मन्दिर थे जिनके नाम हैं—मदनमोहन मन्दिर, गोविन्द मन्दिर, गोपीनाथ मन्दिर, श्री राधारमण मन्दिर, राधा-श्यामसुन्दर मन्दिर, राधादामोदर मन्दिर तथा गोकुलानन्द मन्दिर।

महाप्रभुर प्रिय भृत्य—रघुनाथदास।
सर्व त्यजि' कैल प्रभुर पदतले वास॥९१॥

अनुवाद

छियालिसवीं शाखा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी थे, जो महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय सेवक थे। उन्होंने अपनी सारी भौतिक सम्पत्ति महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में रहने के लिए छोड़ दी।

तात्पर्य

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी सम्भवत: १४१६ शकाब्द में एक कायस्थ परिवार में उस समय के जमींदार हिरण्य मजुमदार के छोटे भाई गोवर्धन मजुमदार के पुत्र थे। जिस गाँव में उनका जन्म हुआ था वह श्री कृष्णपुर के नाम से प्रसिद्ध है। कलकत्ता तथा बर्दवान के बीच रेलवे लाइन पर त्रिशाबघा स्टेशन है जहाँ से १ १/२ मील दूरी पर कृष्णपुर है। वहीं पर श्री रघुनाथ दास गोस्वामी का पैतृक घर है। अब भी वहाँ पर श्री श्री राधागोविन्द का मन्दिर है। मन्दिर के सामने विशाल प्रांगण है, किन्तु कोई सभाभवन नहीं है। किन्तु हाल ही में श्री हरिचरण घोष नामक एक कलकत्ता के धनाढ्य ने इस मन्दिर की मरम्मत करा दी है। मन्दिर का पूरा प्रांगण चाहार-दीवारी से घिरा है और मन्दिर के बगल में एक छोटे-से कमरे में एक चबूतरा है जिसमें रघुनाथ दास गोस्वामी अर्चाविग्रह की पूजा किया करते थे। मन्दिर के निकट मृतप्राय सरस्वती नदी है।

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के सारे पूर्वज वैष्णव थे और धनी भी थे। उनके घर के गुरु यदुनन्दन आचार्य थे। यद्यपि रघुनाथ दास गृहस्थ थे किन्तु उनमें अपनी जायदाद तथा पत्नी के प्रति तनिक भी लगाव न था। उनमें गृहत्याग की इस प्रवृत्ति को देख कर उनके पिता तथा चाचा ने विशेष अंगरक्षक नियुक्त कर रखे थे जो उन पर निगरानी रख सकें, तो भी वे भाग निकले और श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने जगन्नाथ पुरी जा पहुँचे। यह घटना १४३९ शकाब्द की है। रघुनाथ दास गोस्वामी ने तीन पुस्तकें लिखीं—*स्तवमाला* या *स्तवावली, दानचरित* तथा *मुक्ताचरित*। वे दीर्घकाल तक जीवित रहे। वे अधिकांश समय तक राधाकुण्ड में रहे। आज भी राधाकुण्ड के पास वह स्थान है जहाँ वे भक्ति करते थे। उन्होंने भोजन करना छोड़ रखा था, इसलिए वे अत्यन्त कृश हो गये थे। उनकी एकमात्र चिन्ता भगवन्नाम-कीर्तन करने की थी। धीरे-धीरे उन्हें नींद आनी कम होती गई और अन्त में तो बिल्कुल ही नहीं आती थी। कहा जाता है कि उनकी आँखे सदैव अश्रुपूरित रहती थीं। जब श्रीनिवास आचार्य उनसे मिलने गये तो उन्होंने उनका आलिंगन करके आशीर्वाद दिया। श्रीनिवास आचार्य ने आशीर्वाद माँगा कि मैं बंगाल में प्रचार-कार्य करूँ, जिसे श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी ने स्वीकार कर लिया। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (१८६) कहा गया है कि पहले श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी रसमञ्जरी नामक गोपी थे। कभी-कभी यह कहा जाता है कि वे रतिमञ्जरी थे।

प्रभु समर्पिल ताँरे स्वरूपेर हाते।
प्रभुर गुप्तसेवा कैल स्वरूपेर साथे॥९२॥

अनुवाद

जब रघुनाथ दास गोस्वामी जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के पास पहुँचे तो महाप्रभु ने उन्हें अपने सचिव स्वरूप दामोदर के हाथों सौंप दिया। इस तरह वे दोनों मिल कर भगवान् की गुप्त सेवा करने लगे।

तात्पर्य

यह गुप्त सेवा महाप्रभु की निजी देखरेख थी। स्वरूप दामोदर उनके सचिव के रूप में उनके नहाने, खाने, आराम करने तथा पाँव दबाने की देखरेख करते थे और रघुनाथ दास गोस्वामी उनकी सहायता करते थे। वस्तुतः रघुनाथ दास गोस्वामी महाप्रभु के सहायक-सचिव का कार्य करते थे।

षोडश वत्सर कैल अन्तरङ्ग-सेवन।
स्वरूपेर अन्तर्धाने आइला वृन्दावन॥९३॥

अनुवाद

उन्होंने जगन्नाथ पुरी में रह कर सोलह वर्षों तक महाप्रभु की सेवा की और महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के तिरोधान के पश्चात् वे जगन्नाथ पुरी छोड़ कर वृन्दावन चले गये।

वृन्दावने दुइ भाइर चरण देखिया।
गोवर्धने त्यजिब देह भृगुपात करिया॥९४॥

अनुवाद

श्री रघुनाथ दास गोस्वामी की इच्छा हुई कि वे वृन्दावन जाकर रूप तथा सनातन के चरणकमलों का दर्शन करें और गोवर्धन पर्वत से कूद कर अपना प्राण त्याग दें।

तात्पर्य

गोवर्धन-पर्वत की चोटी से कूदना आत्महत्या की एक विधि है। विशेषतया सन्त पुरुष ऐसा करते हैं। चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के अन्तर्धान होने के बाद श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी को इन दोनों महापुरुषों का वियोग सताने लगा, अतएव उन्होंने वृन्दावन के गोवर्धन-पर्वत से कूद कर अपने प्राण देने का निश्चय किया। किन्तु ऐसा करने के पूर्व वे श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के चरणकमलों का दर्शन करना चाहते थे।

एइ त' निश्चय करि' आइल वृन्दावने।
आसि' रूप-सनातनेर वन्दिल चरणे॥९५॥

अनुवाद

इस प्रकार श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी वृन्दावन आये और श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से मिले तथा उन्हें प्रणाम किया।

तबे दुइ भाइ ताँरे मरिते ना दिल।
निज तृतीय भाइ करि' निकट राखिल॥९६॥

अनुवाद

किन्तु इन दोनों भाइयों ने उन्हें मरने नहीं दिया। इन्होंने उन्हें अपना

तीसरा भाई मान कर अपने साथ रख लिया।

महाप्रभुर लीला यत बाहिर-अन्तर।
दुइ भाइ ताँर मुखे शुने निरन्तर॥९७॥

अनुवाद

चूँकि रघुनाथ दास गोस्वामी स्वरूप दामोदर के सहायक थे, अतएव वे महाप्रभु की लीलाओं के बाहरी तथा भीतरी तथ्यों से परिचित थे। इस तरह रूप तथा सनातन दोनों भाई उनसे इनके विषय में सुना करते थे।

अन्न-जल त्याग कैल अन्य-कथन।
पल दुइ-तीन माठा करेन भक्षण॥९८॥

अनुवाद

रघुनाथ दास गोस्वामी ने धीरे-धीरे अन्न खाना त्याग दिया और मट्ठे की कुछ बूँदे पीने लगे।

सहस्र दण्डवत् करे, लय लक्ष नाम।
दुइ सहस्र वैष्णवेर नित्य परणाम्॥९९॥

अनुवाद

वे नित्यप्रति भगवान् को हजार बार नमस्कार करते, एक लाख बार भगवान् का नाम जपते और दो हजार वैष्णवों को प्रणाम करते।

रात्रिदिने राधाकृष्णेर मानस सेवन।
प्रहरेक महाप्रभुर चरित्रकथन॥१००॥

अनुवाद

वे अपने मन में रात-दिन राधाकृष्ण की सेवा करते और तीन घण्टे प्रतिदिन श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र के विषय में वार्ता करते।

तात्पर्य

हमें श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी से भजन अर्थात् भगवान् की पूजा के विषय में अनेक बातें सीखनी चाहिए। सारे गोस्वामी ऐसे दिव्य कार्यकलापों में लगे रहते थे, जैसा कि श्रीनिवास आचार्य ने गोस्वामियों के विषय में लिखी

गई अपनी कविता में कहा है (*कृष्णोत्कीर्तनगाननर्तनपरौ प्रेमाभृताम्भोनिधी*)। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी, श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के चरणचिह्नों पर चल कर दृढ़तापूर्वक भक्ति करनी चाहिए।

तिन सन्ध्या राधाकुण्डे अपतित स्नान।
व्रजवासी वैष्णवे करे आलिङ्गन मान॥१०१॥

अनुवाद

वे नित्य राधाकुण्ड में तीन बार स्नान करते थे। ज्योंही उन्हें वृन्दावन में रहने वाला कोई वैष्णव मिलता, वे उसका आलिंगन करते और उसका आदर करते थे।

सार्ध सप्तप्रहर करे भक्तिर साधने।
चारि दण्ड निद्रा, सेह नहे कोन दिने॥१०२॥

अनुवाद

वे दिन के २२ १/२ घण्टे भक्ति में बिताते और मुश्किल से दो घंटे सोते। किसी-किसी दिन तो वह भी सम्भव नहीं हो पाता था।

ताँहार साधनरीति शुनिते चमत्कार।
सेइ रूप-रघुनाथ प्रभु ग्रे आमार॥१०३॥

अनुवाद

जब मैं उनके द्वारा सम्पन्न भक्ति के विषय में सुनता हूँ तो आश्चर्यचकित रह जाता हूँ। मैं श्रील रूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी को अपना मार्गदर्शक मानता हूँ।

तात्पर्य

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने रघुनाथ दास गोस्वामी को अपना विशिष्ट मार्गदर्शक माना है। इसीलिए हर अध्याय के अन्त में वे कहते हैं—*श्रीरूपरघुनाथपदे य़ाँर आश चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास*। रघुनाथ शब्द से कभी-कभी लोग भ्रमवश यह समझ बैठते हैं कि वे रघुनाथ भट्ट गोस्वामी को नमस्कार कर रहे हैं, क्योंकि कोई-कोई रघुनाथ भट्ट गोस्वामी को उनका दीक्षा-गुरु मानते हैं। किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर रघुनाथ भट्ट गोस्वामी को श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी का गुरु स्वीकार नहीं करते।

इँहा-सबार ग्रैछे हैल प्रभुर मिलन।
आगा विस्तारिया ताहा करिब वर्णन॥१०४॥

अनुवाद

मैं इसका बाद में विस्तृत वर्णन करूँगा कि ये सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु से किस तरह मिले।

श्रीगोपाल भट्ट एक शाखा सर्वोत्तम।
रूप-सनातन-सङ्गे ग्राँर प्रेम-आलापन॥१०५॥

अनुवाद

श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी उस वृक्ष की सैंतालीसवीं महान् एवं श्रेष्ठ शाखा थे। वे रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के साथ सदैव भगवत्प्रेम विषयक वार्ता में व्यस्त रहते थे।

तात्पर्य

श्री गोपाल भट्ट श्रीरंगम निवासी वेंकट भट्ट के पुत्र थे। गोपाल भट्ट पहले रामानुज सम्प्रदाय की शिष्य-परम्परा से सम्बद्ध थे, किन्तु बाद में गौड़ीय सम्प्रदाय के अंग बन गये। १४३३ शकाब्द में जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत के भ्रमण पर थे तो वे वेंकट भट्ट के मकान पर चातुर्मास्य-काल में ठहरे थे, तभी उन्होंने जी-भरकर महाप्रभु की सेवा की थी। उसी समय गोपाल भट्ट को भी महाप्रभु की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ था। बाद में गोपाल भट्ट को उनके चाचा, महान् संन्यासी प्रबोधानन्द सरस्वती ने दीक्षा दी। लेकिन गोपाल भट्ट के माता-पिता भाग्यशाली थे कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में सारा जीवन लगा दिया। उन्होंने गोपाल भट्ट को वृन्दावन जाने की अनुमति दे दी और स्वयं महाप्रभु का चिन्तन करते-करते अपने प्राण त्यागे। जब महाप्रभु से बाद में बताया गया कि गोपाल भट्ट गोस्वामी वृन्दावन गये हैं और वहाँ श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी से मिले हैं तो वे परम प्रसन्न हुए और श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामी को सलाह दी कि वे गोपाल भट्ट को अपने छोटे भाई की तरह रखें। श्री सनातन गोस्वामी ने गोपाल भट्ट गोस्वामी के प्रति अपने अगाध स्नेह के कारण *हरिभक्ति विलास* नामक वैष्णव स्मृति लिख कर उनके नाम से प्रकाशित की। गोपाल भट्ट ने श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी के आदेशानुसार

वृन्दावन के सात प्रमुख अर्चाविग्रहों में से राधारमण-विग्रह की स्थापना की। राधारमण मन्दिर के *सेवाइत* (पुरोहित) गौड़ीय सम्प्रदाय के हैं।

जब कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने *चैतन्य-चरितामृत* लिखने के पूर्व सारे वैष्णवों की अनुमति प्राप्त की, तो गोपाल भट्ट गोस्वामी ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया, किन्तु यह अनुरोध किया कि उनके नाम का उल्लेख न किया जाय। इसीलिए कविराज ने बहुत सतर्कतापूर्वक एकाध स्थलों पर गोपाल भट्ट गोस्वामी का नामोल्लेख किया है। श्रील जीव गोस्वामी ने *तत्त्व सन्दर्भ* के प्रारम्भ में लिखा है "दक्षिण भारत के एक भक्त ने, जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ था और रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी का घनिष्ठ मित्र था, उसने एक पुस्तक लिखी है, किन्तु वह संवत्सर के अनुसार संग्रहीत नहीं है, अतएव मैं एक क्षुद्र जीव उस पुस्तक की घटनाओं को क्रमबद्ध करने का प्रयत्न कर रहा हूँ जिसके लिए मध्वाचार्य, श्रीधर स्वामी, रामानुजाचार्य तथा परम्परा के अन्य वरिष्ठ निर्देश प्राप्त कर रहा हूँ। *भगवत-सन्दर्भ* के प्रारम्भ में भी श्रील जीव गोस्वामी ने ऐसी ही बात कही है। श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने *सत-क्रियासार-दीपिका* पुस्तक लिखी, *हरिभक्ति-विलास* का सम्पादन किया, *षट् सन्दर्भ* ग्रंथ की भूमिका लिखी तथा *कृष्ण-कर्णामृत* पर भाष्य लिखा। उन्होंने वृन्दावन में राधारमण अर्चाविग्रह की स्थापना की। *गौरगणोदेश-दीपिका* में (श्लोक १८४) उल्लेख है कि कृष्ण-लीला में उनका पहले का नाम अनंगमंजरी था। कभी-कभी उन्हें गुणमञ्जरी का भी अवतार बतलाया जाता है। श्रीनिवास आचार्य तथा गोपीनाथ पुजारी उनके दो शिष्य थे।

शङ्करारण्य—आचार्य वृक्षेर एक शाखा।
मुकुन्द, काशीनाथ, रुद्र,—उपशाखा लेखा॥१०६॥

अनुवाद

आचार्य शंकरारण्य को मूल वृक्ष की अडतालीसवीं शाखा माना गया है। उनसे मुकुन्द, काशीनाथ तथा रुद्र नामक उपशाखाएँ फूटीं।

तात्पर्य

कहा जाता है कि श्रील विश्वरूप का संन्यास-नाम शंकरारण्य था। ये विश्वरूप विश्वम्भर (श्री चैतन्य का मूल नाम) के बड़े भाई थे। शंकरारण्य का देहान्त १४३२ शकाब्द में शोलापुर में हुआ, जहाँ पण्डरपुर नामक तीर्थस्थान है।

इसका निर्देश मध्यलीला में (अध्याय ९, श्लोक २९९-३००) हुआ है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुकुन्द के घर में एक प्राइमरी पाठशाला खोली थी और मुकुन्द का पुत्र पुरुषोत्तम उनका विद्यार्थी था। काशीनाथ ने महाप्रभु का जब विवाह कराया तब उनका नाम विश्वम्भर था। उन्होंने राज दरबार के पण्डित सनातन को प्रेरित किया कि वे अपनी पुत्री का हाथ विश्वम्भर के हाथों सोंप दें। *गौरगणोद्देश-दीपिका* (श्लोक ५०) में बतलाया गया है कि काशीनाथ सत्राजित के अवतार थे जिन्होंने कृष्ण तथा सत्या का विवाह कराया था। श्लोक १३५ में उल्लेख है कि रुद्र या श्री रुद्राम पण्डित पूर्वजन्म में कृष्ण के मित्र वरूथप थे। उन्होंने वल्लभपुर में राधावल्लभ नामक अर्चाविग्रहों के लिए एक बड़ा भारी मन्दिर बनवाया। यह स्थान माहेश से एक मील उत्तर है। उनके भाई यदुनन्दन बन्दोपाध्याय के वंशज चक्रवर्ती ठाकुर कहलाते हैं और वे इस मन्दिर के *सेवाइत* हैं। पहले रथयात्रा के समय जगन्नाथ अर्चाविग्रह माहेश से राधावल्लभ मन्दिर में आता था किन्तु १२६२ बंगाब्द में दोनों मन्दिरों के पुजारियों में अनबन के कारण जगन्नाथ अर्चाविग्रह का आना बन्द हो गया।

श्रीनाथ पण्डित—प्रभुर कृपार भाजन।
य़ाँर कृष्णसेवा देखि' वश त्रिभुवन॥१०७॥

अनुवाद

उञ्चासवीं शाखा श्रीनाथ पण्डित महाप्रभु के अत्यन्त कृपापात्र थे। तीनों लोक के सारे प्राणी यह देख कर चकित थे कि वे भगवान् कृष्ण की किस तरह सेवा करते हैं।

तात्पर्य

कुमारहट्ट या कामरहट्टि से लगभग १ १/२ मील दूर एवं कलकत्ता से कुछ मील दूरी पर कञ्चडापाडा नामक एक कस्बा है जो श्री शिवानन्द सेन का घर था। वहीं उन्होंने श्री गौरगोपाल का एक मन्दिर बनवाया था। वहीं पर श्री राधाकृष्ण मूर्तियों से युक्त एक अन्य मन्दिर श्रीनाथ पण्डित ने बनवाया था। उस मन्दिर का अर्चाविग्रह श्री कृष्णराय कहलाता है। १७०८ शकाब्द में कृष्णराय का एक मन्दिर, जिसे कलकत्ता के एक प्रमुख जमींदार पाथुरिया घाट के निमाई मलिक ने बनवाया था, बहुत विशाल है। मन्दिर के सामने विशाल प्रांगण है और आने वालों के लिए रिहायशी कमरे हैं, तथा प्रसाद

बनाने की सुन्दर व्यवस्था है। समूचा प्रांगण ऊँची चाहारदीवारी से घिरा है। यह मन्दिर महेश मन्दिर जितना बड़ा है। एक पत्थर पर श्रीनाथ, उनके पिता तथा पितामह के नाम और मन्दिर-निर्माण की तिथि अंकित है। श्रीनाथ पंडित अद्वैत प्रभु के शिष्य थे और शिवानन्द के तीसरे पुत्र परमानन्द कविकर्णपूर के गुरु थे। ऐसा माना जाता है कि कविकर्णपूर के समय में ही कृष्णराय अर्चाविग्रह स्थापित हुआ होगा। जनश्रुति के अनुसार नित्यानन्द प्रभु के पुत्र एक बहुत बड़ा पत्थर मुर्शिदाबाद से लाये जिससे तीन विग्रह तराश कर बनाये गये—वल्लभपुर के राधावल्लभ, खडदह के श्यामसुन्दर तथा काञ्चनपाडा के श्री कृष्णराय के विग्रह। शिवानन्द सेन का घर एक जीर्ण मन्दिर के पास गंगा-तट पर स्थित था। कहा जाता है कि कलकत्ता के निमाई मलिक ने बनारस जाते समय इसी भग्न मन्दिर को देखा तो उसने वर्तमान मन्दिर का निर्माण कराया।

जगन्नाथ आचार्य प्रभुर प्रिय दास।
प्रभुर आज्ञाते तेंहो कैल गङ्गावास॥१०८॥

अनुवाद

चैतन्य-वृक्ष की पचासवीं शाखा जगन्नाथ आचार्य महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय दास थे और उन्हीं की आज्ञा से उन्होंने गंगा नदी के तट पर रहने का निश्चय किया।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में (१११) जगन्नाथ आचार्य को पूर्वजन्म में निधुवन का दुर्वासा बतलाया गया है।

कृष्णदास वैद्य, आर पण्डित-शेखर।
कविचन्द्र, आर कीर्तनीया षष्ठीवर॥१०९॥

अनुवाद

चैतन्य-वृक्ष की इक्कावनवीं शाखा कृष्णदास वैद्य थे, बावनवीं शाखा पण्डित शेखर, तिरपनवीं शाखा कविचन्द्र और चौवनवीं शाखा बहुत बड़े संकीर्तनिया षष्ठीवर थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में (१७१) उल्लेख है कि श्रीनाथ मिश्र चित्रांगी नामक गोपी थे और कविचन्द्र मनोहरा गोपी।

श्रीनाथ मिश्र, शुभानन्द, श्रीराम, ईशान।
श्रीनिधि, श्रीगोपीकान्त, मिश्र भगवान्॥११०॥

अनुवाद

श्रीनाथ मिश्र, शुभानन्द, श्रीराम, ईशान, श्रीनिधि, श्री गोपीकान्त तथा मिश्र भगवान् क्रमशः पचपनवीं, छप्पनवीं, सत्तावनवीं, अट्ठावनवीं, उनसठवीं तथा साठवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

पूर्वजन्म में मालती के रूप में वृन्दावन में रहने वाले शुभानन्द जगन्नाथ-उत्सव के समय रथयात्रा के समक्ष नाचा करते थे। कहा जाता है कि रथयात्रा के रथ के समक्ष जब महाप्रभु नाचते थे, तो उनके मुँह से जो झाग निकलता था उसे वे खाते थे। ईशान श्रीमती शचीदेवी का निजी नौकर था। उस पर उनकी अत्यधिक कृपा थी। वह श्री चैतन्य महाप्रभु का भी अत्यन्त प्रिय था।

सुबुद्धि मिश्र, हृदयानन्द, कमलनयन।
महेश पण्डित, श्रीकर, श्रीमधुसूदन॥१११॥

अनुवाद

सुबुद्धि मिश्र, हृदयानन्द, कमलनयन, महेश पण्डित, श्रीकर तथा मधुसूदन वृक्ष की क्रमशः बासठवीं से लेकर सरसठवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

सुबद्धि मिश्र पूर्वजन्म में वृन्दावन की गुणचूड़ा थे। उन्होंने बेलगान नामक ग्राम में, जो श्रीखण्ड से लगभग ३ मील दूर है, एक मन्दिर में गौरनित्यानन्द के विग्रह स्थापित किये। सम्प्रति गोविन्दचन्द्र गोस्वामी उनके वंशज हैं।

पुरुषोत्तम, श्रीगालीम, जगन्नाथदास।
श्रीचन्द्रशेखर वैद्य, द्विज हरिदास॥११२॥

अनुवाद

मूल वृक्ष की अड़सठवीं शाखा श्री पुरुषोत्तम थे और उनके बाद बहत्तरवीं शाखा तक क्रमशः श्री गालीम, जगन्नाथ दास, श्री चन्द्रशेखर वैद्य तथा द्विज हरिदास थे।

तात्पर्य

इसमें कुछ सन्देह प्रकट किया जाता है कि द्विज हरिदास *अष्टोत्तरशतनाम* के प्रणेता थे। उनके दो पुत्र थे जिनके नाम श्रीदाम तथा गोकुलानन्द थे। वे श्री अद्वैत आचार्य के शिष्य थे। उनका गाँव कांचनगड़िया पश्चिम बंगाल में मुर्शिदाबाद जिले के आजीमगंज से पांचवे स्टेशन बाजारसाउ से पाँच मील की दूरी पर है।

रामदास, कविचन्द्र, श्रीगोपालदास।
भागवताचार्य, ठाकुर सारंगदास॥११३॥

अनुवाद

मूल वृक्ष की तिहत्तरवीं से सतहत्तरवीं शाखाओं के रूप में क्रमशः रामदास, कविचन्द्र, श्री गोपालदास, भागवताचार्य तथा ठाकुर सारंगदास थे।

तात्पर्य

गौरांगगणोद्देश-दीपिका में (२०३) बतलाया गया है, "भागवताचार्य ने *कृष्णप्रेमतरंगिणी* नामक पुस्तक लिखी और वे महाप्रभु के सर्वाधिक प्रिय भक्त थे। जब महाप्रभु कलकत्ता के ग्रामीण अंचल में वराह नगर गये तो वे एक परम भाग्यवान ब्राह्मण के यहाँ ठहरे जो भागवत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान थे। ज्योंही इस ब्राह्मण ने महाप्रभु को देखा वह *श्रीमद्भागवत* बाँचने लगा। जब महाप्रभु ने उसकी भक्ति-योग विषयक व्याख्या सुनी तो वे भाववश अचेत हो गये। बाद में महाप्रभु ने कहा, "मैंने *श्रीमद्भागवत* की ऐसी व्याख्या कभी नहीं सुनी, अतएव आपको भागवताचार्य नाम प्रदान करता हूँ। आपका एकमात्र कार्य होगा *श्रीमद्भागवत* बाँचना। यही मेरा आदेश है।" अब उनका असली नाम रघुनाथ था। उनका मठ गंगानदी के तट पर कलकत्ता से ३ १/२ मील दूरी पर वराह नगर में अब भी विद्यमान है और इसका प्रबन्ध दिवंगत श्री रामदास बाबाजी से दीक्षा-प्राप्त शिष्य करते

हैं। किन्तु आजकल पूर्ववत् व्यवस्था नहीं है।

ठाकुर सारंग दास का अन्य नाम सार्ङ्गधर ठाकुर था। कभी-कभी उन्हें सार्ङ्गपाणि या सार्ङ्गधर कहा जाता था। वे मोदद्रुमद्वीप के पड़ोस में नवद्वीप के निवासी थे और गंगानदी के तट पर एकान्त स्थान में भगवान् की पूजा करते थे। उन्होंने किसी को शिष्य नहीं बनाया, यद्यपि भगवान् सदैव ऐसा करने के लिए प्रेरित करते रहते थे। अतएव एक दिन प्रातःकाल उन्होंने निश्चय किया, "जो भी दिखेगा, उसे मैं शिष्य बना लूँगा।" जब वे गंगास्नान करने गये तो एक मृतक बहता हुआ दिखा, जिसे उन्होंने अपने पाँव से छू दिया। इससे वह तुरन्त जीवित हो उठा और उन्होंने उसे अपना शिष्य बना लिया। यही शिष्य बाद में ठाकुर मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसका नाम श्री सारंग के साथ-साथ लिया जाता है। आज भी शर नामक ग्राम में उनके वंशज रह रहे हैं। कहा जाता है कि मामगच्छि का मन्दिर सारंग ठाकुर द्वारा चालू किया गया। अभी ज्यादा दिन नहीं हुए जब वहाँ के बकुल वृक्ष के सामने एक नया मन्दिर निर्मित हुआ और अब गौड़ीय मठ के सदस्य इसका प्रबन्ध देखते हैं। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (१७२) कहा गया है कि सारंग ठाकुर पूर्वजन्म में नान्दीमुखी नामक गोपी थे। कुछ भक्त कहते हैं कि वे पहले प्रह्लाद महाराज थे, किन्तु कविकर्णपूर कहते हैं कि उनके पिता शिवानन्द को यह मत मान्य नहीं है।

जगन्नाथ तीर्थ, विप्र श्रीजानकीनाथ।
गोपाल आचार्य, आर विप्र वाणीनाथ॥११४॥

अनुवाद

आदि वृक्ष की अठत्तरवीं, उन्यासवीं, अस्सीवीं तथा इक्यासवीं शाखाएँ क्रमशः जगन्नाथ तीर्थ, श्री जानकीनाथ ब्राह्मण, गोपाल आचार्य तथा वाणीनाथ ब्राह्मण थे।

तात्पर्य

जगन्नाथ तीर्थ महाप्रभु के नौ प्रमुख संन्यासी पार्षदों में से एक थे। वाणीनाथ विप्र चाँपाहाटि गाँव के निवासी थे, जो बर्दवान जिले में नवद्वीप शहर, पूर्वस्थाली थाना तथा समुद्रगड़ डाकखाने में है। यहाँ पर जो मन्दिर था वह अत्यन्त उपेक्षित था, किन्तु १३२८ बंगाब्द में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के शिष्य श्री परमानन्द ब्रह्मचारी ने इसका पुनरुद्धार कराया और श्री

मायापुर के श्री चैतन्य मठ के प्रबन्ध के अन्तर्गत कर दिया। इस मन्दिर में अब श्री गौर गदाधर की पूजा शास्त्रीय विधि से की जाती है। चाँपाहाटि समुद्रगढ़ तथा नवद्वीप स्टेशन दोनों ही से दो मील दूरी पर है।

गोविन्द, माधव, वासुदेव,—तिन भाइ।
याँ-सबार कीर्तने नाचे चैतन्य-निताइ॥११५॥

अनुवाद

गोविन्द माधव तथा वासुदेव नामक तीनों भाई वृक्ष की अगली तीन शाखाएँ (८२-८४वीं) थे। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द इन के कीर्तन में नाचा करते थे।

तात्पर्य

गोविन्द, माधव तथा वासुदेव—ये तीनों भाई कायस्थ परिवार के थे। गोविन्द अग्रद्वीप में गोपीनाथ मन्दिर स्थापित करके वहीं रहने लगे थे। माधव घोष कीर्तन करने में पटु थे। इस संसार में उनकी जोड़ का कोई न था। ये वृन्दावन के गायक के रूप में विख्यात थे और श्री नित्यानन्द प्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। कहा जाता है कि जब तीनों भाई कीर्तन करते थे तो श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द भावविभोर होकर तुरन्त कीर्तन करने लगते थे। *गौरगणोद्देश दीपिका* के अनुसार (१८८), तीनों भाई पूर्वजन्म में कलावती, रसोल्लासा तथा गुणतुङ्गण नामक गायिकाएँ थे, जो श्री विशाखा गोपी द्वारा रचित गीतों को गाती थीं। ये तीनों भाई उन सात मंडलियों में से एक थे, जिन्होंने जगन्नाथ पुरी में रथयात्रा में महाप्रभु के सम्मिलित होने पर संकीर्तन किया था। उनकी मंडली का मुख्य नर्तक वक्रेश्वर पंडित था। इसका विस्तृत वर्णन मध्यलीला में (अध्याय १३, श्लोक ४२-४३) मिलता है।

रामदास अभिराम—सख्य प्रेमराशि।
षोलसाङ्गेर काष्ट तुलि' ये करिल वाँशी॥११६॥

अनुवाद

रामदास अभिराम सदैव सख्य भाव में लीन रहते थे। उन्होंने १६ गाँठ वाले बाँस की बाँसुरी बनाई थी।

तात्पर्य

अभिराम खानाकुलकृष्णनगर के निवासी थे।

प्रभुर आज्ञाय नित्यानन्द गौड़ चलिला।
ताँर सङ्गे तिनजन प्रभु-आज्ञाय आइला॥११७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा से जब नित्यानन्द प्रभु प्रचार हेतु बंगाल वापस आये, तो उनके साथ-साथ तीन भक्त भी गये।

रामदास, माधव, आर वासुदेव घोष।
प्रभु-सङ्गे रहे गोविन्द पाइया सन्तोष॥११८॥

अनुवाद

ये तीनों भक्त थे रामदास, माधव तथा वासुदेव घोष। किन्तु गोविन्द घोष श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी में रह गये। इस तरह उन्हें परम सन्तोष हुआ।

भागवताचार्य, चिरञ्जीव, श्रीरघुनन्दन।
माधवाचार्य, कमलाकान्त, श्रीयदुनन्दन॥११९॥

अनुवाद

भागवताचार्य, चिरंजीव, श्री रघुनन्दन, माधवाचार्य, कमलाकान्त तथा श्री यदुनन्दन—ये सभी चैतन्य-वृक्ष की शाखाओं में से थे।

तात्पर्य

श्री माधवाचार्य नित्यानन्द प्रभु की पुत्री गंगादेवी के पति थे। उन्होंने नित्यानन्द प्रभु की शाखा पुरुषोत्तम से दीक्षा ग्रहण की। कहा जाता है कि नित्यानन्द प्रभु ने अपनी पुत्री को पांजिनगर नामक गाँव दहेज में दिया था। उनका मन्दिर पूर्वी रेलवे में जीराट नामक रेलवे स्टेशन के पास स्थित है। *गौरगणोद्देश-दीपिका* के अनुसार (१६९) श्री माधवाचार्य पूर्वजन्म में माधवी नामक गोपी थे। कमलाकान्त श्री अद्वैत प्रभु की शाखा से सम्बद्ध थे। उनका पूरा नाम कमलाकान्त विश्वास था।

महा-कृपापात्र प्रभुर जगाइ, माधाई।
'पतितपावन' नामेर साक्षी दुइ भाइ॥१२०॥

अनुवाद

वृक्ष की नवासवीं तथा नब्बेवीं शाखाएँ जगाइ तथा माधाइ श्री चैतन्य महाप्रभु के परम कृपापात्र थे। ये दोनों भाई इसके साक्षी थे, जिन्होंने यह प्रमाणित किया कि महाप्रभु का *पतितपावन* नाम सार्थक है।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में (११५) कहा गया है कि जगाइ तथा माधाइ दोनों भाई पूर्वजन्म में जय तथा विजय नामक द्वारपाल थे, जो बाद में हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु बने। जगाइ तथा माधाइ दोनों का जन्म प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में हुआ था, किन्तु उन्होंने चोर-उचक्कों का पेशा अपना रखा था, जिससे वे सभी तरह के अवांछित कार्यों में, विशेषतया स्त्री-मृगया, नशा तथा जुआ खेलने में व्यस्त रहने लगे थे। बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु की कृपा से उन्हें दीक्षित किया गया जिससे हरे-कृष्ण-महामन्त्र कीर्तन करने का अवसर प्राप्त हो सका। कीर्तन करने के फलस्वरूप दोनों भाई चैतन्य महाप्रभु के परम भक्त बने। माधाइ के वंशज अब भी विद्यमान हैं, और वे प्रतिष्ठित ब्राह्मण हैं। इन दोनों भाइयों की समाधियाँ घोषहाटे स्थान या माधाइतला ग्राम में हैं, जो कतवा से एक मील दक्षिण है। कहा जाता है कि २०० वर्ष पूर्व इस स्थान पर श्री गोपीचरण दास बाबाजी ने निताई गौर का मन्दिर स्थापित किया।

गौडदेशभक्तेर कैल संक्षेप कथन।
अनन्त चैतन्यभक्त ना याय गणन॥१२१॥

अनुवाद

मैंने महाप्रभु के बंगाल के भक्तों का संक्षेप्त विवरण प्रस्तुत किया है। वास्तव में उनके भक्तों की संख्या असंख्य है।

नीलाचले एइ सब भक्त प्रभुसङ्गे।
दुइ स्थाने प्रभु-सेवा कैल नानारङ्गे॥१२२॥

अनुवाद

मैंने इन सारे भक्तों का विशेष रूप से वर्णन इसीलिए किया है, क्योंकि वे महाप्रभु के साथ-साथ बंगाल तथा उड़ीसा में रहे और अनेक प्रकार से उनकी सेवाएँ कीं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के अधिकांश भक्त बंगाल तथा उड़ीसा में रहते थे। अतएव वे उड़िया तथा गौड़ीय कहलाते हैं। किन्तु इस समय महाप्रभु की कृपा से उनका सम्प्रदाय सारे विश्व में फैल रहा है और सम्भावना यही है कि महाप्रभु के आन्दोलन के भावी इतिहास में यूरोप, अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमरीका, एशिया तथा विश्व-भर के लोग महाप्रभु के भक्तों के रूप में विख्यात हो सकेंगे। कृष्णभावनामृत के अन्तर्राष्ट्रीय संघ ने मायापुर नवद्वीप में पहले ही एक विशाल मन्दिर बनवाया है, जिसे विश्व-भर के लोग देखने आते हैं, जिसकी भविष्यवाणी महाप्रभु ने की थी और जिसके विषय में श्रील भक्तिविनोद ने पहले से सोच रखा था।

केवल नीलाचले प्रभुर ये ये भक्तगण।
संक्षेपे करिये किछु से सब कथन॥१२३॥

अनुवाद

अब मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के जगन्नाथ पुरी के कुछ भक्तों का संक्षेप में वर्णन करूँगा।

नीलाचले प्रभुसङ्गे यत भक्तगण।
सबार अध्यक्ष प्रभुर मर्म दुइजन॥१२४॥
परमानन्दपुरी, आर स्वरूप-दामोदर।
गदाधर, जगदान्द, शङ्कर, वक्रेश्वर॥१२५॥
दामोदर पण्डित, ठाकुर हरिदास।
रघुनाथ वैद्य, आर रघुनाथदास॥१२६॥

अनुवाद

महाप्रभु के साथ-साथ जो भक्तगण जगन्नाथ पुरी गये उनमें से दो—परमानन्द पुरी तथा स्वरूप दामोदर महाप्रभु के अभिन्न अंग थे। अन्य भक्तों में

गदाधर, जगदानन्द, शंकर, वक्रेश्वर, दामोदर पंडित, ठाकुर हरिदास, रघुनाथ वैद्य तथा रघुनाथ दास उल्लेखनीय हैं।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत (अन्त्यलीला, अध्याय ५) में कहा गया है कि जब महाप्रभु पाणिहाटि में रुके थे तो रघुनाथ वैद्य, उनसे भेंट करने आये थे। वे एक महान् भक्त थे और समस्त सद्गुणों से संयुक्त थे। *चैतन्य भागवत* के अनुसार वे पूर्वजन्म में बलराम की पत्नी रेवती थे। वे जिस किसी पर दृष्टिपात करते उसे तुरन्त कृष्णभावनामृत प्राप्त हो जाता। वे जगन्नाथ पुरी में समुद्र के किनारे रहते थे। उन्होंने स्थाननिरूपण नामक ग्रंथ की रचना की थी।

इत्यादिक पूर्वे सङ्गी बड़ भक्तगण।
नीलाचले रहि' करे प्रभुर सेवन॥१२७॥

अनुवाद

ये सारे भक्त प्रारम्भ से ही महाप्रभु के संगी थे और जब वे जगन्नाथ पुरी में रहने लगे तो वे उनकी निष्ठा से सेवा करने के लिए वहीं रहते थे।

आर यत भक्तगण गौड़देशवासी।
प्रत्यब्दे प्रभुर देखे नीलाचले आसि'॥१२८॥

अनुवाद

बंगाल में रहने वाले सारे भक्त महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी आया करते थे।

नीलाचले प्रभुसह प्रथम मिलन।
सेइ भक्तगणेर एबे करिये गणन॥१२९॥

अनुवाद

अब मैं बंगाल के उन भक्तों के नाम गिनाऊँगा जो सबसे पहले महाप्रभु से मिलने जगन्नाथ पुरी आये।

बड़शाखा एक,—सार्वभौम भट्टाचार्य।
ताँर भग्नीपति श्रीगोपीनाथाचार्य॥१३०॥

अनुवाद

महाप्रभु-रूपी वृक्ष की सबसे बड़ी शाखा थे सार्वभौम भट्टाचार्य और उनके बहनोई श्री गोपीनाथाचार्य।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य का आदिनाम वासुदेव भट्टाचार्य था। उनका जन्मस्थान विद्यानगर है जो नवद्वीप रेलवे स्टेशन से या चाँपाहाटी स्टेशन से २ मील दूर है। उनके पिता विख्यात पुरुष थे जिनका नाम महेश्वर विशारद था। कहा जाता है कि सार्वभौम भट्टाचार्य अपने समय में भारत के सबसे बड़े तर्कशास्त्री थे। वे बिहार-स्थित मिथिला में पक्षधर मिश्र के शिष्य बने, जो बहुत बड़े आचार्य थे और अपने किसी भी विद्यार्थी को अपनी तर्कशास्त्र की व्याख्याएँ लिखने नहीं देते थे। किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य इतने प्रतिभाशाली थे कि उन्होंने उन व्याख्याओं को कंठाग्र कर लिया और नवद्वीप लौटने पर उन्होंने तर्क का अध्ययन करने के लिए एक पाठशाला स्थापित की। इस तरह उन्होंने मिथिला के महत्व को घटा दिया। आज भी भारत के विभिन्न भागों से तर्कशास्त्र का अध्ययन करने के लिए विद्यार्थी नवद्वीप आते हैं। कुछ प्रामाणिक विद्वानों का मत है कि सुप्रसिद्ध तर्कशास्त्री रघुनाथ शिरोमणि भी सार्वभौम भट्टाचार्य के ही शिष्य थे। एक तरह से सारे तर्कशास्त्र के विद्यार्थियों के अगुआ सार्वभौम भट्टाचार्य ही थे। वे स्वयं गृहस्थ होते हुए भी अनेक संन्यासियों को तर्कशास्त्र पढ़ाते थे। उन्होंने जगन्नाथ पुरी में वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करने के लिए एक पाठशाला खोली, क्योंकि वे दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जब वे श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले तो उन्होंने महाप्रभु को सलाह दी कि वे उनसे वेदान्त-दर्शन सीखें, किन्तु बाद में वेदान्त का असली अर्थ समझने के लिए वे महाप्रभु के शिष्य बन गये। सार्वभौम भट्टाचार्य इतने भाग्यशाली थे कि महाप्रभु के षड्भुज रूप का दर्शन पा सके। आज भी जगन्नाथ मन्दिर के एक कोने में षड्भुज-विग्रह स्थित है। मन्दिर के इस भाग में नित्य संकीर्तन होता है। महाप्रभु से सार्वभौम भट्टाचार्य की भेंट का विशद वर्णन मध्यलीला के छठे अध्याय में मिलता है। सार्वभौम भट्टाचार्य ने *चैतन्य-शतक* नामक एक पुस्तक लिखी है। इनमें से *वैराग्यविद्यानिजभक्तियोग* से प्रारम्भ होने वाले दो श्लोक गौड़ीय वैष्णवों में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। *गौरगणोद्देश दीपिका* में (११९) बतलाया गया है कि ये दैवलोक के पण्डित बृहस्पति

के अवतार थे।

गोपीनाथ आचार्य कुलीन ब्राह्मण परिवार के थे और ये भी नवद्वीप के निवासी तथा महाप्रभु के नित्यसंगी थे। ये सार्वभौम भट्टाचार्य के बहनोई थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (१७८) वर्णन है कि ये पहले रत्नावली नामक गोपी थे। अन्य मत के अनुसार ये ब्रह्मा के अवतार थे।

काशीमिश्र, प्रद्युम्न मिश्र, राय भवानन्द।
य़ाँहार मिलने प्रभु पाइला आनन्द॥१३१॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी के भक्तों की सूची में काशी मिश्र, प्रद्युम्न मिश्र, तथा भवानन्द राय के नाम पाँचवे, छठे तथा सातवें स्थान पर थे। महाप्रभु को इनसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता होती थी।

तात्पर्य

जगन्नाथपुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु काशी मिश्र के घर पर रहते थे जो राजपुरोहित थे। बाद में इस घर के उत्तराधिकारी हुए वक्रेश्वर पण्डित और फिर उनके शिष्य गोपाल गुरु गोस्वामी हुए जिन्होंने राधाकान्त-विग्रह की स्थापना की। *गौरगणोद्देश-दीपिका* के अनुसार (१९३) काशी मिश्र पूर्वजन्म में वृन्दावन की कृष्णवल्लभा नामक गोपी थे। प्रद्युम्न मिश्र उड़ीसा के निवासी तथा चैतन्य महाप्रभु के परम भक्त थे। प्रद्युम्न मिश्र ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न थे और रामानन्द राय अ-ब्राह्मण कुल में, फिर भी महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र को सलाह दी कि वे रामानन्द राय से उपदेश लें। इस घटना का वर्णन अन्त्यलीला के पाँचवे अध्याय में मिलता है।

भवानन्द राय श्रीरामानन्द राय के पिता थे। वे आलाननाथ (ब्रह्मगिरि) के निवासी थे, जो जगन्नाथ पुरी से लगभग १२ मील पश्चिम में है। वे जाति के करण थे, जिसके सदस्य कभी कायस्थ और कभी शूद्रों के नाम से प्रसिद्ध थे, किन्तु वे जगन्नाथ पुरी के राजा प्रतापरुद्र के अधीन मद्रास के गवर्नर थे।

आलिंगन करि' ताँरे बलिल वचन।
तुमि पाण्डु, पञ्चपाण्डव—तोमार नन्दन॥१३२॥

अनुवाद

महाप्रभु ने भवानन्द राय का आलिंगन करते हुए कहा, "तुम पहले पाण्डु रूप में और तुम्हारे पाँचो पुत्र पाँचों पाण्डवों के रूप में प्रकट हुए थे।"

रामानन्द राय, पट्टनायक गोपीनाथ।
कलानिधि, सुधानिधि, नायक वाणीनाथ॥१३३॥

अनुवाद

भवानन्द राय के पाँच पुत्र थे—रामानन्द राय, पट्टनायक गोपीनाथ, कलानिधि, सुधानिधि, नायक वाणीनाथ।

एइ पञ्चपुत्र तोमार मोर प्रियपात्र।
रामानन्द सह मोर देह-भेद मात्र॥१३४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भवानन्द राय से कहा, "तुम्हारे पाँचो बेटे मेरे प्रिय भक्त हैं। रामानन्द और हम दोनों एक हैं, भले ही हमारे शरीर पृथक पृथक हैं।"

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (१२०-१२४) बतलाया गया है कि रामनन्द राय पूर्वजन्म में अर्जुन थे। उन्हें ललिता गोपी का भी अवतार माना जाता है और कुछ लोग इन्हें विशाखा देवी का अवतार मानते हैं। वे महाप्रभु के परम विश्वासपात्र भक्त थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा था, "यद्यपि मैं संन्यासी हूँ किन्तु जब मैं किसी स्त्री को देखता हूँ तो कभी-कभी मेरा मन विचलित हो जाता है। किन्तु रामानन्द मुझ से बढ़ कर है, क्योंकि वह स्त्री का स्पर्श करने पर भी विचलित नहीं होता। इस दृष्टि से केवल रामानन्द सभी का स्पर्श कर सकते थे, अन्य कोई उनकी नकल नहीं कर सकता था। दुर्भाग्यवश ऐसे धूर्त हैं जो रामानन्द राय के कार्यों की नकल करते हैं। उनके बारे में न कहना ही उत्तम होगा।

महाप्रभु की अन्त्यलीलाओं में रामानन्द दास तथा स्वरूप दामोदर दोनों ही महाप्रभु की कृष्ण-विरह भावना को शमित करने के लिए *श्रीमद्भागवत* से श्लोक सुनाते थे। कहा जाता है कि जब भी चैतन्य महाप्रभु दक्षिण

भारत गये तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें सलाह दी थी कि वे रामनन्द राय से अवश्य मिलें, क्योंकि उन्हें कृष्ण तथा गोपियों के माधुर्य प्रेम की सर्वाधिक जानकारी थी। गोदावरी तट में रामानन्द राय से उनकी भेंट हुई जहाँ लम्बी वार्ता के दौरान महाप्रभु ने शिष्य रूप में रामानन्द राय से उपदेश ग्रहण किया। अन्त में महाप्रभु ने कहा, "हे रामानन्द! तुम और मैं दोनों ही पागल हैं, अतएव हम दोनों समान भावभूमि पर मिल सके।" महाप्रभु ने रामानन्द राय को सलाह दी कि वे अपनी सरकारी नौकरी त्याग कर जगन्नाथ पुरी आकर उनके साथ रहें। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने महाराज प्रतापरुद्र से भेंट करने से इनकार कर दिया क्योंकि वे राजा थे, लेकिन रामानन्द राय ने विशेष प्रबन्ध द्वारा महाप्रभु तथा राजा की भेंट कराई। इसका वर्णन मध्यलीला में (अध्याय १२ श्लोक ४१-५१) मिलता है। रामानन्द राय महाप्रभु द्वारा रथयात्रा के बाद की जलक्रीड़ा-लीला के समय उपस्थित थे।

श्री रामानन्द राय तथा श्री सनातन गोसवामी के त्याग को श्री चैतन्य महाप्रभु बराबर मानते थे क्योंकि यद्यपि श्री रामानन्द राय सरकारी नौकरी में लगे गृहस्थ थे और श्री सनातन गोस्वामी सारे भौतिक कार्यों से विरक्त होकर संन्यासी थे, किन्तु दोनों ही भगवान् के दास थे और वे अपने सारे कार्यों के केन्द्र में कृष्ण को रखते थे। श्री रामानन्द राय उन ३ १/२ पुरुषों में थे जिनसे महाप्रभु कृष्णभावनामृत के रहस्यमय विषयों पर बातें करते थे। महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र को सलाह दी थी कि यदि कृष्ण-विज्ञान सीखना है तो श्री रामानन्द से सीखें। जिस तरह कृष्ण-लीला में सुबल सदैव राधारानी के साथ आचार-व्यवहार में श्रीकृष्ण की सहायता करते थे, उसी तरह रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु की सहायता कृष्ण के विरह-भाव के समय करते थे। श्री रामानन्द राय *जगन्नाथ-वल्लभ नाटक* के रचयिता थे।

प्रतापरुद्र राजा, आर ओढ्र कृष्णानन्द।
परमानन्द महापात्र, ओढ्र शिवान्द॥१३५॥
भगवान् आचार्य, ब्रह्मानन्दाख्य भारती।
श्रीशिखि माहिति, आर मुरारि माहिति॥१३६॥

अनुवाद

जब महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रह रहे थे, तो उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्र,

उड़िया-भक्त कृष्णानन्द तथा शिवानन्द, परमानन्द महापात्र, भगवान् आचार्य, ब्रह्मानन्द भारती, श्री शिखि माहिति तथा मुरारि माहिति निरन्तर उनका साथ देते थे।

तात्पर्य

प्रतापरुद्र महाराज गंगाराज घराने के थे जिनकी राजधानी कटक में थी। वे उड़ीसा के सम्राट थे और चैतन्य महाप्रभु के परम भक्त थे। वे रामानन्द राय तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के कहने पर महाप्रभु की सेवा में लग सके। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (११८) कहा गया है कि हजारों वर्ष पूर्व जिन राजा इन्द्रद्युम्न ने जगन्नाथ मन्दिर की स्थापना की थी, वे ही श्री चैतन्य महाप्रभु के काल में महाराज प्रतापरुद्र के रूप में अपने ही परिवार में पुन: उत्पन्न हुए। महाराज प्रतापरुद्र इन्द्र के समान ही शक्तिशाली थे। *चैतन्य-चन्द्रोदय* नाटक इन्हीं के निर्देशन में लिखा गया।

चैतन्य-भागवत में (अन्त्यलीला, अध्याय ५) परमानन्द महापात्र का वर्णन इस प्रकार किया गया है, "परमानन्द महापात्र उन भक्तों में से थे जिनका जन्म उड़ीसा में हुआ था और जिन्होंने महाप्रभु को एकमात्र निधि माना। वे माधुर्य भाव में सदैव चैतन्य महाप्रभु का चिन्तन करते रहे।" भगवान् आचार्य प्रकाण्ड विद्वान थे और पहले हालिसहर में रहते थे, किन्तु बाद में अपना सर्वस्व त्याग कर महाप्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी में रहने लगे थे। महाप्रभु के साथ उनका गोपों जैसा सखा-सम्बन्ध था। वे स्वरूप गोसाईं के प्रति मैत्री भाव रखते थे, किन्तु महाप्रभु के चरणकमलों में पूरी तरह निरत थे। वे कभी-कभी महाप्रभु को अपने घर बुलाते रहते थे।

भगवान् आचार्य अत्यन्त उदार एवं सरल थे। उनके पिता शतानन्द खान पूरी तरह से भौतिकतावादी थे और छोटा भाई गोपाल भट्टाचार्य कट्टर मायावादी दार्शनिक था, जिसने गहन अध्ययन कर रखा था। जब उनका छोटा भाई गोपाल भट्टाचार्य जगन्नाथ पुरी आया तो वे उससे मायावादी दर्शन के विषय में सुनना चाह रहे थे, किन्तु दामोदर स्वरूप ने ऐसा करने से रोक दिया और बात वहीं समाप्त हो गई। एक बार भगवान् आचार्य का एक बंगाली मित्र ऐसा नाटक सुनाना चाहता था जो भक्ति के नियमों के विरुद्ध था; उसे भगवान् आचार्य महाप्रभु को सुनवाना चाहते थे किन्तु श्री दामोदर स्वरूप ने ऐसा करने की अनुमति नहीं दी। बाद में जब दामोदर स्वरूप ने उस

नाटक के तमाम दोषों तथा भक्ति-विषयक निर्णयों से अपनी असहमति की ओर ध्यान दिलाया तो लेखक ने क्षमा माँगी और स्वरूप दामोदर की शरण में आ गया। इसका वर्णन अन्त्यलीला में (अध्याय ५, श्लोक ९१-१६६) हुआ है।

गौरगणोद्देश-दीपिका में (श्लोक १८४) कहा गया है कि शिखि माहिति पहले जन्म में श्रीमती राधारानी की सहायिका थे, जिसका नाम रागलेखा था। उनकी बहन माधवी भी कलाकेलि नामक राधाजी की सहायिका थी। शिखि माहिति, माधवी तथा उनका भाई मुरारि माहिति श्री चैतन्य महाप्रभु के अनन्य भक्त थे। उड़िया भाषा में *चैतन्य-चरित-महाकाव्य* नामक ग्रंथ है जिसमें शिखि माहिति विषयक अनेक कथा हैं। एक कथा उनके एक भावमय स्वप्न देखने के सम्बन्ध में है। शिखि माहिति सदैव मन से महाप्रभु की सेवा में रत रहते थे। एक रात जब वे ऐसी सेवा कर रहे थे तो सो गये और सोते में ही उनके भाई तथा बहन उन्हें जगाने आये। उस समय वे भावावेश में थे, क्योंकि वे यह अद्भुत स्वप्न देख रहे थे कि चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर देखने गये हैं और वे वहाँ जगन्नाथ के शरीर में प्रवेश करके पुनः उससे निकल कर जगन्नाथ का दर्शन कर रहे हैं। अतएव ज्योंही वे जगे तो उन्होंने भाई-बहन दोनों का आलिंगन करते हुए कहा, "मेरे भाई तथा बहन! मैंने एक अद्भुत सपना देखा है, जिसे मैं तुम लोगों को अभी बताऊँगा। शची-पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलाप सचमुच अत्यन्त अद्भुत हैं। मैंने देखा कि महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर गये तो वे जगन्नाथ के शरीर में प्रवेश कर रहे थे और उसमें से पुनः बाहर आ रहे थे। अब भी मैं वही सपना देख रहा हूँ! और सबसे विचित्र बात तो यह है कि मैं ज्योंही महाप्रभु के निकट आया उन्होंने अपनी लम्बी भुजाओं में भर कर मेरा आलिंगन कर लिया।" जब वे इस तरह अपने भाई-बहन से बातें कर रहे थे तो उनकी वाणी रुक गई और उनके नेत्रों में अश्रु भर आये। फलतः दोनों भाई तथा बहन जगन्नाथ मन्दिर गये और वहाँ उन्होंने जगमोहन में श्री चैतन्य को देखा और देखा कि वे श्री जगन्नाथ-विग्रह के सौन्दर्य को उसी तरह देख रहे हैं जैसा कि शिखि माहिती ने स्वप्न में देखा था। महाप्रभु इतने वदान्य थे कि उन्होंने यह चिल्लाते हुए शिखि माहिति का आलिंगन किया, "तुम तो मुरारि के बड़े भाई हो।" इस तरह आलिंगित होने पर शिखि माहिति को दिव्य आनन्द का अनुभव हुआ। इस तरह वे,

उनका भाई तथा उनकी बहन सदैव महाप्रभु की सेवा में लगे रहने लगे। शिखि माहिति के सबसे छोटे भाई मुरारि माहिति का वर्णन मध्यलीला में (अध्याय १०, श्लोक ४४) मिलता है।

माधवी-देवी—शिखिमाहितिर भगिनी।
श्रीराधार दासीमध्ये य़ाँर नाम गणि॥१३७॥

अनुवाद

माधवीदेवी सत्रह प्रमुख भक्तों में से थीं और शिखि माहिति की छोटी बहन थीं। उन्हें श्रीमती राधारानी की दासी के रूप में माना जाता है।

तात्पर्य

चैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला में (अध्याय २, श्लोक १०४-१०६) माधवीदेवी का वर्णन हुआ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें श्रीमती राधारानी की दासी मानते थे। इस संसार में श्री चैतन्य महाप्रभु के ३ १/२ विश्वासपात्र भक्त थे। तीन थे स्वरूप गोसाईं, श्री रामानन्द राय तथा शिखि माहिति और शिखि माहिति की बहन माधवी देवी स्त्री होने के नाते आधी मानी जाती थीं। इस तरह महाप्रभु के ३ १/२ विश्वासपात्र भक्त माने जाते हैं।

ईश्वरपुरीर शिष्य—ब्रह्मचारी काशीश्वर।
श्रीगोविन्द नाम ताँर प्रिय अनुचर॥१३८॥

अनुवाद

ब्रह्मचारी काशीश्वर ईश्वर पुरी का शिष्य था और श्री गोविन्द उनके अन्य प्रिय शिष्यों में से था।

तात्पर्य

गोविन्द निजी नौकर था महाप्रभु का। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में कहा गया है कि पूर्वजन्म में वृन्दावन के भृंगार तथा भंगुर नामक सेवक श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला में काशीश्वर तथा गोविन्द बने। गोविन्द संकट के समय भी महाप्रभु की सेवा में लगा रहता था।

ताँर सिद्धिकाले दोँहे ताँर आज्ञा पाञा।
नीलाचले प्रभुस्थाने मिलिल आसिया॥१३९॥

अनुवाद

नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) के प्रमुख भक्तों की सूची में काशीश्वर अठारहवें तथा गोविन्द उन्नीसवें थे। ईश्वर पुरी द्वारा अपने देहावसान के समय दी गई आज्ञा के अनुसार वे दोनों श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी आये थे।

गुरुर सम्बन्धे मान्य कैल दुँहाकारे।
ताँर आज्ञा मानि' सेवा दिलेन दोँहारे॥१४०॥

अनुवाद

काशीश्वर तथा गोविन्द दोनों श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरुभाई थे। अतएव ज्योंही वे दोनों वहाँ पहुँचे, तो महाप्रभु ने उनका यथोचित सत्कार किया। चूँकि ईश्वर पुरी ने उन्हें आदेश दिया था कि वे चैतन्य महाप्रभु की निजी सेवा करें, अतएव महाप्रभु ने उनकी सेवा स्वीकार कर ली।

अङ्गसेवा गोविन्देर दिलेन ईश्वर।
जगन्नाथ देखिले चलने आगे काशीश्वर॥१४१॥

अनुवाद

गोविन्द श्री चैतन्य के शरीर की देखभाल करते और जब महाप्रभु मन्दिर में जगन्नाथजी का दर्शन करने जाते, तो काशीश्वर महाप्रभु के आगे-आगे चलते थे।

अपरश ग्राय गोसाञि मनुष्य-गहने।
मनुष्य ठेलि' पथ करे काशी बलवाने॥१४२॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर जाते तो अत्यन्त बलिष्ठ होने के कारण काशीश्वर अपने हाथों से भीड़ को एक ओर करते, जिससे महाप्रभु किसी को स्पर्श किये बिना जा सकें।

रामाइ-नन्दाइ—दोँहे प्रभुर किङ्कर।
गोविन्देर सङ्गे सेवा करे निरन्तर॥१४३॥

अनुवाद

रामाइ तथा नन्दाइ जगन्नाथ पुरी के महत्वपूर्ण भक्तों में बीसवें तथा

इक्कीसवें थे। महाप्रभु की सेवा करने में गोविन्द की वे चौबीसों घण्टे सहायता करते थे।

बाइश घड़ा जल दिने भरेन रामाइ।
गोविन्द-आज्ञाय सेवा करेन नन्दाइ॥१४४॥

अनुवाद

रामाइ प्रतिदिन बाईस घड़े पानी भरते थे और नन्दाइ गोविन्द की सहायता करते थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में (१३९) बतलाया गया है कि पूर्वकाल में भगवान् कृष्ण को दूध तथा जल पहुँचाने वाले दो नौकर महाप्रभु की लीलाओं के समय रामाइ तथा नन्दाइ बने।

कृष्णदास नाम शुद्ध कुलीन ब्राह्मण।
याँरे सङ्गे लाइया कैला दक्षिण गमन॥१४५॥

अनुवाद

बाईसवें भक्त कृष्णदास एक शुद्ध तथा प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। जब महाप्रभु दक्षिण भारत की यात्रा कर रहे थे, तो उन्होंने कृष्णदास को अपने साथ ले लिया था।

तात्पर्य

कृष्णदास का वर्णन मध्यलीला के सातवें तथा नवें अध्यायों में हुआ है। वे महाप्रभु का जलपात्र लिये रहने के लिए उनके साथ गये। मालाबार राज्य में भट्टथारि सम्प्रदाय के सदस्यों ने स्त्री-लोभ देकर कृष्णदास को मोहित करना चाहा था, तब महाप्रभु ने उन्हें बचा लिया था। किन्तु जब महाप्रभु जगन्नाथ पुरी लौट आये तो कृष्णदास को जगन्नाथ पुरी में ही रहने के लिए कहा क्योंकि महाप्रभु कभी-भी ऐसे व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हो पाये जो स्त्री द्वारा आकृष्ट हो जाय। इस तरह कृष्णदास को महाप्रभु की संगति से विलग होना पड़ा।

बलभद्र भट्टाचार्य—भक्ति अधिकारी।
मथुरा-गमने प्रभुर येँहो ब्रह्मचारी॥१४६॥

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य तेईसवें प्रमुख संगी थे जो प्रामाणिक भक्त थे और महाप्रभु के मथुरा-गमन के समय ब्रह्मचारी का कार्य किया।

तात्पर्य

बलभद्र भट्टाचार्य ने ब्रह्मचारी का कार्य किया अर्थात वे संन्यासी के निजी सहायक बने। संन्यासी भोजन नहीं पकाता। सामान्यतया एक संन्यासी किसी गृहस्थ के घर प्रसाद ग्रहण करता है और इस विषय में ब्रह्मचारी उसकी सहायता करता है। संन्यासी गुरु माना जाता है और ब्रह्मचारी उसका शिष्य होता है। जब महाप्रभु मथुरा तथा वृन्दावन की यात्रा पर थे तो बलभद्र भट्टाचार्य ब्रह्मचारी का कार्य करते थे।

बड़ हरिदास, आर छोट हरिदास।
दुइ कीर्तनीया रहे महाप्रभुर पाश॥१४७॥

अनुवाद

नीलाचल में चौबीसवें और पचीसवें भक्त बड़ हरिदास तथा छोट हरिदास अच्छे गवैये थे जो सदैव महाप्रभु के साथ रहते थे।

तात्पर्य

जैसा कि अन्त्यलीला अध्याय २ में बतलाया गया है छोट हरिदास को बाद में महाप्रभु की टोली से निकाल दिया गया था।

रामभद्राचार्य, आर ओढ्र सिंहेश्वर।
तपन आचार्य, आर रघु, नीलाम्बर॥१४८॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु के साथ रहने वाले भक्तों में रामभद्राचार्य छब्बीसवें, उड़िया सिंहेश्वर सत्ताइसवें, तपन आचार्य अट्ठाइसवें, रघुनाथ उन्तीसवें तथा नीलाम्बर तीसवें भक्त थे।

सिङ्गाभट्ट, कामाभट्ट, दन्तुर शिवानन्द।
गौडे पूर्व भृत्य प्रभुर प्रिय कमलानन्द॥१४९॥

अनुवाद

सिंगाभट्ट, कामाभट्ट, शिवानन्द तथा कमलानन्द क्रमशः इकतीसवें से लेकर चौंतीसवें भक्त थे। ये सभी पहले बंगाल में महाप्रभु की सेवा करते थे, किन्तु बाद में बंगाल छोड़ कर महाप्रभु के साथ रहने जगन्नाथ पुरी चले आये।

अच्युतानन्द—अद्वैत आचार्य-तनय ।।
नीलाचले रहे प्रभुर चरण आश्रय ।।१५०।।

अनुवाद

पैंतीसवें भक्त अच्युतानन्द थे जो अद्वैत आचार्य के पुत्र थे। वे भी जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में रहे।

तात्पर्य

आदिलीला (अध्याय १२, श्लोक १३) में अच्युतानन्द के विषय के उल्लेख है।

निर्लोम गङ्गादास, आर विष्णुदास।
एइ सबेर प्रभुसङ्गे नीलाचले वास ।।१५१।।

अनुवाद

निर्लोम गंगादास तथा विष्णुदास छत्तीसवें तथा सैंतीसवें भक्त थे, जो जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के सेवकों के रूप में रहे।

वाराणसी-मध्ये प्रभुर भक्त तिन जन।
चन्द्रशेखर वैद्य, आर मिश्र तपन ।।१५२।।
रघुनाथ भट्टाचार्य—मिश्रेर नन्दन।
प्रभु यबे काशी आइला देखि' वृन्दावन ।।१५३।।
चन्द्रशेखर-गृहे कैल दुइ मास वास।
तपन-मिश्रेर घरे भिक्षा दुइ मास ।।१५४।।

अनुवाद

वाराणसी के प्रमुख भक्तों में वैद्य चन्द्रशेखर, तपन मिश्र तथा तपन मिश्र के पुत्र रघुनाथ भट्टाचार्य थे। जब महाप्रभु वृन्दावन से होकर वाराणसी

आये, तो वे दो मास तक चन्द्रशेखर वैद्य के घर रहे और तभी तपन मिश्र के घर प्रसाद ग्रहण करते रहे।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु बंगाल में थे, तो तपन मिश्र आध्यात्मिक प्रगति के विषय में चर्चा करने उनके पास आये थे। तब महाप्रभु ने उन पर कृपा करके हरिनाम की दीक्षा दी थी। उसके बाद महाप्रभु की आज्ञा से तपन मिश्र वाराणसी में रहे और जब महाप्रभु वाराणसी आये तो तपन मिश्र के घर रुके।

रघुनाथ बाल्ये कैल प्रभुर सेवन।
उच्छिष्ट-मार्ज़न आर पाद-सम्वाहन॥१५५॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु तपन मिश्र के घर ठहरे हुए थे तो रघुनाथ भट्ट, जो उस समय बालक थे, उनकी थालियाँ माँजते थे और उनके पाँव दबाते थे।

बड़ हैले नीलाचले गेला प्रभुर स्थाने।
अष्टमास रहिल भिक्षा देन कोन दिने॥१५६॥

अनुवाद

जब रघुनाथ बड़े हो गये तो श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने जगन्नाथ पुरी गये और वहाँ आठ मास तक रुके रहे। कभी-कभी वे महाप्रभु को प्रसाद लाकर देते थे।

प्रभुर आज्ञा पाञा वृन्दावनेर आइला।
आसिया श्रीरूप-गोसाञिर निकटे रहिला॥१५७॥

अनुवाद

बाद में महाप्रभु की आज्ञा से रघुनाथ वृन्दावन चले गये और वहाँ श्रील रूप गोस्वामी की शरण में रहे।

ताँर स्थाने रूप-गोसाञि शुनेन भागवत।
प्रभुर कृपाय तेंहो कृष्णप्रेमे मत्त॥१५८॥

अनुवाद

जब वे श्रील रूप गोस्वामी के साथ ठहरे थे तो उनका एक ही काम था—श्रीमद्भागवत बाँच कर उन्हें सुनाना। इसके फलस्वरूप उन्हें कृष्ण-प्रेम की सिद्धि प्राप्त हुई, जिसके कारण वे सदैव उन्मत्त रहा करते थे।

तात्पर्य

रघुनाथ भट्टाचार्य अथवा रघुनाथ भट्ट गोस्वामी तपन मिश्र के पुत्र थे और षड् गोस्वामियों में से थे। उनका जन्म १४२५ शकाब्द में हुआ था। वे *श्रीमद्भागवत* बाँचने में पटु थे और अन्त्यलीला के अध्याय ३० में बतलाया गया है कि वे भोजन बनाने में भी पटु थे—वे जो भी पकाते वह अमृततुल्य होता। श्री चैतन्य महाप्रभु उनके पकाये भोज़न से अत्यन्त प्रसन्न रहते थे, और रघुनाध भट्ट महाप्रभु का जूठन खाया करते थे। वे आठ मास तक जगन्नाथ पुरी में रहे जिसके बाद महाप्रभु ने उन्हें वृन्दावन जाकर श्रील रूप गोस्वामी के साथ रहने का आदेश दिया। महाप्रभु ने रघुनाथ भट्टाचार्य से विवाह न करने अपितु ब्रह्मचारी रहने और सदैव *श्रीमद्भागवत* का पाठ करने के लिए भी कहा। इस तरह वे वृन्दावन चले गये, जहाँ वे श्रील रूप गोस्वामी को *श्रीमद्भागवत* सुनाया करते थे। वे *श्रीमद्भागवत* सुनाने में इतने दक्ष थे कि हर श्लोक़ को तीन स्वरों में सुनाते थे। जब रघुनाथ भट्ट महाप्रभु के साथ थे तो महाप्रभु ने जगन्नाथ-विग्रह पर चढ़े पान तथा चौदह बालिश्त लम्बी तुलसी की माला देकर आशीर्वाद दिया था। रघुनाथ गोस्वामी का आदेश उनके एक शिष्य ने गोविन्द मन्दिर का निर्माण कराया। उन्होंने गोविन्द-विग्रह के लिए सारे आभूषण दिये। वे कभी भी इधर-उधर की या सांसारिक बातें नहीं करते थे, अपितु चौबीसों घण्टे कृष्ण के विषय में श्रवण करते रहते थे। वे किसी वैष्णव की निन्दा नहीं सुन सकते थे। यहाँ तक कि जब उनकी आलोचना करने के लिए अवसर होता तब भी वह यही कहते कि चूँकि वैष्णवजन भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं, अतएव उनकी त्रुटियों की परवाह नहीं करनी चाहिए। बाद में वे राधाकुण्ड के निकट एक छोटी झोपड़ी में रहते थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (१८५) कहा गया है कि रघुनाथ भट्ट गोस्वामी पूर्वजन्म में रागमञ्जरी नामक गोपी थे।

एइमत संख्यातील चैतन्य-भक्तगण।
दिङ्मात्र लिखि, सम्यक् ना ग़ाय कथन।।१५९।।

अनुवाद

इस तरह मैं महाप्रभु के असंख्य भक्तों के एक अंश की ही सूची दे रहा हूँ। पूरी तरह उनका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

एकैक-शाखाते लागे कोटि कोटि डाल।
तार शिष्य-उपशिष्य, तार उपडाल।।१६०।।

अनुवाद

वृक्ष की प्रत्येक शाखा से शिष्यों तथा प्रशिष्यों की करोडों उपशाखाएँ निकली हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा थी कि उनका सम्प्रदाय सारे विश्व में फैले। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु की शिष्य-परम्परा में अनेकानेक शिष्य-शाखाओं की नितान्त आवश्यकता है। उनके सम्प्रदाय को केवल कुछ गाँवों में, या बंगाल या भारत में ही नहीं अपितु सारे विश्व में फैलाना है। यह बड़े खेद की बात है कि उदासीन तथाकथित भक्त अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्यों की आलोचना करते हैं कि वे संन्यास ग्रहण करके विश्व-भर में चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रसार कर रहे हैं। हम किसी की आलोचना करना नहीं चाहते, लेकिन लोग इस आन्दोलन की त्रुटियाँ निकालते हैं, इसीलिए हम सत्य बात कह रहे हैं। श्रील चैतन्य महाप्रभु चाहते थे कि उनके भक्त सारे विश्व में हों, और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने भी इसकी पुष्टि की है। उनकी इच्छा पालने के लिए ही **इस्कान** आन्दोलन सारे विश्व में फैल रहा है। श्री चैतन्य महाप्रभु के असली भक्तों को कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के प्रचार-कार्य की निन्दा न करके इसके प्रसार में गर्व का अनुभव करना चाहिए।

सफल भरिया आछे प्रेम-फुल-फले।
भासाइल त्रिजगत् कृष्णप्रेम-जले।।१६१।।

अनुवाद

वृक्ष की प्रत्येक शाखा तथा उपशाखा अनेक फलों और फूलों से पूर्ण है। वे कृष्ण-प्रेम के जल से विश्व को आप्लावित करती हैं।

एक एक शाखार शक्ति अनन्त महिमा।
'सहस्र वदने' ग्रार दिते नारे सीमा॥१६२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की प्रत्येक शाखा में अनन्त शक्ति और अनन्त महिमा है। यदि हजार मुख भी हो जायँ तो उनके कार्यकलापों की सीमाओं का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं होगा।

संक्षेपे कहिल महाप्रभुर भक्तगण।
समग्र बलिते नारे 'सहस्र-वदन'॥१६३॥

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के विभिन्न स्थानों के भक्तों का संक्षेप में वर्णन कर चुका। हजार मुखों वाले शेष भगवान् भी उन सबों की सूची नहीं बना सकते।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥१६४॥

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करके और उनकी कृपा की सदैव आकांक्षा करते और उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए मैं कृष्णदास श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के दसवें अध्याय के अन्तर्गत मुख्य स्कंध की शाखाओं-उपशाखाओं का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ।

आदि-लीला

अध्याय ११

जिस प्रकार दसवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु की शाखाओं-उपशाखाओं का वर्णन किया गया है उसी तरह इस अध्याय में श्री नित्यानन्द प्रभु की शाखाओं-उपशाखाओं की सूची दी जा रही है।

नित्यानन्दपदाम्भोज-भृङ्गान् प्रेममधून्मदान्।
नत्वाखिलान् तेषु मुख्या लिख्यन्ते कतिचिन्मया॥१॥

अनुवाद

मैं श्री नित्यानन्द प्रभु के उन समस्त भक्तों को, जो उनके चरणकमलों के मधु को संचय करने वाले भौरों के तुल्य हैं, नमस्कार करने के बाद उनमें से जो जो प्रमुख हैं उनका वर्णन करने का प्रयास करूँगा।

जय जय महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य।
ताँहार चरणाश्रित ग्रेइ, सेइ धन्य॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। जिस किसी ने उनके चरणों की शरण ले ली है वह धन्य है।

जय जय श्रीअद्वैत, जय नित्यानन्द।
जय जय महाप्रभुर सर्वभक्तवृन्द॥३॥

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो।

तस्य श्रीकृष्णचैतन्य-सत्प्रेमामरशाखिनः।
ऊर्ध्वस्कन्धावधूतेन्दोः शाखारूपान् गणान्नुमः ॥४॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु भगवत्प्रेम के अमरवृक्ष श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की सबसे ऊपरी शाखा हैं। मैं उस सबसे ऊपरी शाखा की समस्त उपशाखाओं को सादर नमस्कार करता हूँ।

श्री नित्यानन्द-वृक्षेर स्कन्ध गुरुतर।
ताहाते जन्मिल शाखा-प्रशाखा विस्तर ॥५॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य-वृक्ष की सर्वाधिक भारी शाखा हैं। उस शाखा से अनेक शाखाएँ तथा उपशाखाएँ निकलती हैं।

मालाकारेर इच्छा-जले बाडे शाखागण।
प्रेम-फूल-फले भरि' छाइल भुवन ॥६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के इच्छा-जल से सिंचित होकर ये सारी शाखाएँ तथा उपशाखाएँ असीम बढ़ गई हैं, और अपने फल-फूल से उन्होंने समस्त विश्व को आच्छादित कर लिया है।

असंख्य अनन्त गण के करु गणन।
आपना शोधिते कहि मुख्य मुख्य जन ॥७॥

अनुवाद

भक्तों की ये शाखाएँ तथा उपशाखाएँ असंख्य और असीम हैं। इनकी गणना कौन कर सकता है? मैं अपनी निजी शुद्धि के लिए, उनमें से जो सर्वाधिक प्रमुख हैं उन्हीं की गणना करूँगा।

तात्पर्य

मनुष्य को चाहिए कि भौतिक नाम, यश या लाभ के लिए दिव्य विषय पर पुस्तकें या लेख न लिखे। दिव्य साहित्य का लेखन गुरुजन के निर्देश के अन्तर्गत करना चाहिए क्योंकि यह भौतिक प्रयोजनों के लिए नहीं होता। यदि वह किसी गुरुजन के निर्देश में लिखने का प्रयास करता है, तो वह

शुद्ध बन जाता है। समस्त कृष्णभावनाभावित कार्यों को निजी शुद्धि (*आपना शोधिते*) के लिए करना चाहिए, न कि भौतिक लाभ के लिए।

श्रीवीरभद्र गोसाञि—स्कन्ध-महाशाखा।
ताँर उपशाखा य़त, असंख्य तार लेखा॥८॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के पश्चात् सबसे बड़ी शाखा वीरभद्र गोसाईं हैं, जिनकी भी अनेक शाखाएँ तथा उपशाखाएँ हैं। उन सबका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने वीरभद्र गोसाईं को श्रील नित्यानन्द प्रभु का बेटा और जाह्नवी देवी का शिष्य बतलाया है। उनकी असली माता वसुधा थीं। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (६७) उन्हें क्षीरोदकशायी विष्णु का अवतार बतलाया गया है। इस तरह वीरभद्र गोसाईं श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु से अभिन्न हैं। हुगली जिले में झामटपुर गाँव में वीरभद्र गोसाईं के शिष्य यदुनाथाचार्य के दो पुत्रियाँ थीं—एक असली पुत्री जिसका नाम श्रीमती था और दूसरी पोष्य पुत्री जिसका नाम नारायणी था। इन दोनों की शादियाँ हुई थीं, जिसका उल्लेख भक्ति रत्नाकर के तेरहवें अध्याय में हुआ है। वीरभद्र गोसाईं के तीन शिष्य थे जो उनके पुत्रों के नाम से विख्यात हैं—गोपीनाथ वल्लभ, रामकृष्ण तथा रामचन्द्र। सबसे छोटा शिष्य रामचन्द्र शाण्डिल्य गोत्र का था और उसकी उपाधि वटव्याल थी। उसने अपने परिवार को खड़दह में बसाया और इसके सदस्य खड़दह के गोस्वामी कहलाते हैं। सबसे बड़ा शिष्य गोपीनाथ वल्लभ बर्दवान जिले के मानकर रेलवे स्टेशन के निकट लता नामक ग्राम का निवासी था। द्वितीय शिष्य रामकृष्ण मालदह के निकट गयेशपुर गाँव में रहता था। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की टिप्पणी है कि ये तीनों शिष्य भिन्न-भिन्न गोत्रों के थे और उनकी उपाधियाँ तथा निवास स्थान भी भिन्न थे; अतएव उन्हें वीरभद्र के असली पुत्र नहीं माना जा सकता। रामचन्द्र के चार पुत्र थे जिनमें राधामाधव सबसे बड़ा था और उसके तृतीय पुत्र का नाम यादवेन्द्र था। यादवेन्द्र का पुत्र नन्दकिशोर , उसका पुत्र निधिकृष्ण, उसका पुत्र चैतन्यचाण्ड, उसका पुत्र कृष्णमोहन, उसका पुत्र जगनमोहन, उसका पुत्र व्रजनाथ और उसका भी पुत्र श्यामलाल गोस्वामी था। यह वंशावली

है वीरभ्रद गोसाईं के वंशजों की जिसे भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने दे रखा है।

ईश्वर हइया कहाय महा-भागवत।
वेदधर्मातीत हञा वेदधर्मे रत॥९॥

अनुवाद

यद्यपि वीरभद्र गोसाईं भगवान् थे, किन्तु वे अपने को परम भक्त मानते थे। यद्यपि भगवान् सारे वैदिक आदेशों से परे होता है, किन्तु वे वैदिक अनुष्ठानों का दृढ़तापूर्वक पालन करते थे।

अन्तरे ईश्वर-चेष्टा, बाहिरे निर्दम्भ।
चैतन्यभक्तिमण्डपे तेँहो मूलस्तम्भ॥१०॥

अनुवाद

वे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा निर्मित भक्ति रूपी भवन के मुख्य स्तम्भ हैं। वे अपने अन्तर में जानते थे कि वे भगवान् विष्णु के रूप में हैं, किन्तु बाहर से वे गर्वरहित थे।

अद्यापि य्राँहार कृपा-महिमा हइते।
चैतन्य-नित्यानन्द गाय सकल जगते॥११॥

अनुवाद

श्री वीरभद्र गोसाईं की महिमामयी कृपा से अब सारे विश्व के लोगों को चैतन्य तथा नित्यानन्द के नामों का कीर्तन करने का अवसर प्राप्त हुआ।

सेइ वीरभद्रगोसाञिर लइनु शरण।
य्राँहार प्रसादे हय अभीष्ट-पूरण॥१२॥

अनुवाद

अतएव मैं वीरभद्र गोसाईं के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ, जिससे श्रीचैतन्य-चरितामृत लिखने की मेरी परम अभिलाषा का सही ढंग से मार्गदर्शन हो सके।

श्रीरामदास आर, गदाधर दास।
चैतन्य-गोसाञिर भक्त रहे ताँर पाश॥१३॥

अनुवाद

श्री रामदास तथा गदाधर दास नामक श्री चैतन्य महाप्रभु के दो भक्त सदैव श्री वीरभद्र गोसाईं के साथ रहते थे।

तात्पर्य

श्री रामदास, जिनका नाम बाद में अभिराम ठाकुर पड़ा, श्री नित्यानन्द प्रभु के बारह गोपालों में से एक थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (१२६) कहा गया है कि श्री रामदास पहले श्रीदामा थे। *भक्तिरत्नाकर* में (अध्याय ४) श्रील अभिराम ठाकुर का विवरण मिलता है। श्री नित्यानन्द प्रभु की आज्ञा से वे महान् आचार्य तथा चैतन्य भक्तिसम्प्रदाय के प्रचारक बने। वे अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे और अभक्तगण उनसे भयभीत रहते थे। श्री नित्यानन्द से शक्ति पाकर वे सदैव भावदशा में रहते थे और समस्त पतितात्माओं पर अत्यन्त कृपालु थे। कहा जाता है कि यदि वे शालग्राम शिला के अतिरिक्त किसी अन्य प्रस्तर-खण्ड को नमस्कार कर देते, तो वह तुरन्त विदीर्ण हो जाता था।

हावड़ा से जाने वाली छोटी रेलवे लाइन पर चाँपाडाँगा रेलवे स्टेशन से १० मील दक्षिण-पश्चिम हुगली जिले में खानाकूल-कृष्णनगर गाँव है, जहाँ अभिराम ठाकुर का मन्दिर स्थित है। वर्षा के दिनों में जब यहाँ जल भर जाता है तो एक दूसरी रेलवे लाइन से जाया जाता है, जिसे दक्षिण-पूर्व रेलवे कहते हैं। इस लाइन पर कोलाघाट नामक रेलवे स्टेशन है जिससे राणीचक तक एक स्टीमर से जाना होता है। खानाकूल इस स्थान से ७ १/२ मील उत्तर है। अभिराम ठाकुर का मन्दिर कृष्णनगर में है जो खाना (द्वारकेश्वर नदी) के *कूल* (किनारा) पर है। इसीलिए यह स्थान खानाकूल कृष्णनगर के नाम से विख्यात है। इस मन्दिर के बाहर एक बकुल वृक्ष है। यह स्थान सिद्धबकुलकुंज कहलाता है। कहा जाता है कि अभिराम ठाकुर यहाँ आये थे और इस वृक्ष के नीचे बैठे थे। प्रतिवर्ष खानाकूल कृष्णनगर में चैत्र मास की कृष्णसप्तमी को (कृष्णपक्ष में) एक भारी मेला लगता है, जिसमें हजारों लोग एकत्र होते हैं। अभिराम ठाकुर मन्दिर का इतिहास पुराना है। इस मन्दिर का अर्चाविग्रह गोपीनाथ कहलाता है। इस मन्दिर के निकट

अनेक *सेवैत* परिवार रह रहे हैं। कहा जाता है कि अभिराम ठाकुर के पास एक कोड़ा था। वे जिसे भी इससे छू लेते वह कृष्ण-भक्त बन जाता था। उनके शिष्यों में श्रीनिवास आचार्य सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं प्रिय थे, किन्तु यह सन्देहास्पद है कि वे उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य थे।

नित्यानन्द आज्ञा दिल ग्रबे गौड़े ग्राइते।
महाप्रभु एइ दुइ दिला ताँर साथे॥१४॥
अतएव दुइगणे दुँहार गणन।
माधव-वासुदेव घोषरओ एइ विवरण॥१५॥

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु को बंगाल जाकर प्रचार करने का आदेश दिया गया तो इन दोनों भक्तों (रामदास तथा गदाधर दास) को उनके साथ जाने का आदेश मिला था। इसलिए कभी इन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के और कभी नित्यानन्द प्रभु के भक्तों के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार माधव तथा वासुदेव घोष भी दोनों समूहों के भक्तों से एकसाथ सम्बन्धित थे।

तात्पर्य

बर्दवान जिले में अग्रद्वीप रेलवे स्टेशन तथा पाटुलि के निकट दाँइहाट नामक स्थान में अब भी श्री गोपीनाथजी का विग्रह स्थित है। यह विग्रह गोविन्द घोष को अपना पिता मानता था। आज भी यह विग्रह गोविन्द घोष की वर्षी के अवसर पर श्राद्ध उत्सव मनाता है। इस विग्रह के मन्दिर की व्यवस्था कृष्णनगर के राजवंश द्वारा की जाती है, जिसके सदस्य राजा कृष्णचन्द्र के वंशज हैं। प्रतिवर्ष वैशाख मास में *बारदोल* उत्सव के अवसर पर गोपीनाथ-विग्रह को कृष्णनगर ले जाया जाता है। यह उत्सव अन्य ग्यारह विग्रहों के साथ सम्पन्न किया जाता है और श्री गोपीनाथजी के विग्रह को पुनः अग्रद्वीप के मन्दिर में ले आया जाता है।

रामदास—मुख्यशाखा, सख्य-प्रेमराशि।
षोलसाङ्गेर काष्ठ ग्रेइ तुलि' कैल बाँशी॥१६॥

अनुवाद

शाखाओं में एक मुख्य शाखा, रामदास भगवान् के सख्य प्रेम से परिपूर्ण थे। उन्होंने सोलह गाँठों वाली लकड़ी की एक बाँसुरी बनाई थी।

गदाधर दास गोपीभावे पूर्णानन्द।
य़ाँर घरे दानकेलि कैल नित्यानन्द॥१७॥

अनुवाद

श्रील गदाधर दास सदैव गोपी-भाव में लीन रहते थे। इनके घर में नित्यानन्द प्रभु ने दानकेलि नाटक का अभिनय किया था।

श्रीमाधव घोष—मुख्य कीर्तनीयागणे।
नित्यानन्दप्रभु नृत्य करे य़ाँर गाने॥१८॥

अनुवाद

श्री माधव मुख्य कीर्तनिया थे। जब वे गाते तो नित्यानन्द प्रभु नाचा करते थे।

वासुदेव गीते करे प्रभुर वर्णने।
काष्ठ-पाषाण द्रवे य़ाहार श्रवणे॥१९॥

अनुवाद

जब वासुदेव घोष चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द का वर्णन कर-करके कीर्तन करते, तो उसे सुन कर लकड़ी तथा पत्थर भी द्रवित हो उठते।

मुरारि-चैतन्यदासेर अलौकिक लीला।
व्याघ्र-गाले चड़ मारे, सर्प-सने खेला॥२०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त मुरारि अनेक अलौकिक कार्य करते रहते थे। भावावेश में वे कभी बाघ के मुंह पर चपत लगाते और कभी विषैले सर्प से खेलते थे।

तात्पर्य

मुरारि चैतन्य दास का जन्म सर्वृन्दावनपुर ग्राम में हुआ था, जो बर्दवान रेलवे लाइन पर स्थित गलशी स्टेशन से लगभग २ मील दूरी पर है। जब

मुरारि चैतन्य दास नवद्वीप आये तो वे मोदद्रुम या माउगाछिग्राम में आकर बस गये। उस समय वे शार्ङ्ग या सारंग मुरारि चैतन्य दास नाम से प्रसिद्ध हो गये। उनके वंशज आज भी सरेर पाट में रह रहे हैं। *चैतन्य भागवत* में (अन्त्यलीला, अध्याय ५) निम्नलिखित वक्तव्य मिलता है, "मुरारि चैतन्य दास का कोई सांसारिक स्वरूप न था क्योंकि वे पूरी तरह आध्यात्मिक थे। अतएव वे कभी जंगल में बाघों का पीछा करते और उनके साथ कुत्ते-बिल्लियों जैसा बर्ताव करते। वे बाघ के गाल पर चाँटा मारते और अपनी गोद में विषैला साँप ले लेते। उन्हें अपने बाह्य शरीर की परवाह नहीं थी क्योंकि वे विस्मृत अवस्था में रहते थे। वे हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने या चैतन्य तथा नित्यानन्द के विषय में बातें करने में सारा दिन बिता देते। कभी-कभी वे दो-तीन दिनों तक पानी में डूबे रहते थे, किन्तु फिर भी उन्हें कोई असुविधा नहीं होती थी। इसी तरह वे पत्थर या काठ जैसा आचरण करते, किन्तु वे अपनी शक्ति का उपयोग हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने में करते रहते। कोई उनके विशिष्ट गुणों का वर्णन नहीं कर सकता, किन्तु कहा जाता है कि मुरारि चैतन्य दास जहाँ-जहाँ जाते और जो भी वहाँ उपस्थित होता, वह वहाँ के परिवेश से कृष्णभावनामृतमय हो उठता।"

नित्यानन्देर गण ग्रत,—सब व्रजसखा।
शृङ्ग-व्रजे-गोपवेश, शिरे शिखिपाखा॥२१॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के सारे संगी पहले व्रजभूमि के ग्वालबाल थे। उनके हाथों में शृंग तथा डंडे, उनकी वेशभूषा तथा उनके सिरों पर के मोर के पंख उनके प्रतीक थे।

तात्पर्य

नित्यानन्द के अनुचरों की सूची में जाह्नवा माता का भी नाम है। उनका वर्णन *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (६६) वृन्दावन की अनंगमंजरी के रूप में मिलता है। जाह्नवा माता के सारे भक्तों की गिनती श्री नित्यानन्द प्रभु के भक्तों की सूची में की जाती है।

रघुनाथ वैद्य उपाध्याय महाशय।
याँहार दर्शने कृष्णप्रेमभक्ति हय॥२२॥

अनुवाद

रघुनाथ वैद्य का अन्य नाम उपाध्याय भी था। वे इतने बड़े भक्त थे कि उनके दर्शन-मात्र से मनुष्य का सुप्त भगवत्प्रेम जाग्रत हो उठता था।

सुन्दरानन्द—नित्यानन्द शाखा, भृत्यमर्म।
याँर सङ्गे नित्यानन्द करे व्रजनर्म॥२३॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु की अन्य शाखा सुन्दरानन्द उनके घनिष्ठ दास थे। उनके संग में नित्यानन्द प्रभु को व्रजभूमि के जीवन की अनुभूति होती थी।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में (अन्त्यलीला, अध्याय ६) बतलाया गया है कि सुन्दरानन्द भगवत्प्रेम के सिन्धु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु के मुख्य संगी थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में उन्हें कृष्णलीला का सुदाम बतलाया गया है। इस प्रकार जब बलराम नित्यानन्द प्रभु के रूप में अवतरित हुए, तो उनके साथ के बारह गोपों में सुन्दरानन्द भी एक थे। जिस पवित्र स्थान में सुन्दरानन्द रहते थे, वह कलकत्ता से बर्दवान जाने वाली रेलवे के माजदिया स्टेशन से लगभग १४ मील पूर्व स्थित महेशपुर गाँव था। यह स्थान जेशोर जिले में है, जो अब बंगलादेश में है। इस गाँव के ध्वंसावशेष में एकमात्र सुन्दरानन्द का ही गाँव स्थित है। इस गाँव के सिरे पर एक *बाउल* रहता है और गाँव के सारे मन्दिर तथा घर नवनिर्मित प्रतीत होते हैं। महेशपुर में श्री राधावल्लभ तथा श्री श्री राधारमण के अर्चाविग्रह हैं। मन्दिर के निकट वेत्रवती नामक एक छोटी-सी नदी है।

सुन्दरानन्द प्रभु *नैष्ठिक ब्रह्मचारी* थे—उन्होंने विवाह नहीं किया। अतएव उनके शिष्यों के अतिरिक्त कोई सीधा वंशज नहीं था, किन्तु उनके परिवार के वंशज अब भी बीरभूम जिले के मंगलडीहि ग्राम में रह रहे हैं। उसी गाँव में बलराम का एक मन्दिर है, जहाँ अर्चाविग्रह की नियमित पूजा होती

है। महेशपुर का आदि विग्रह राधावल्लभ बरहामपुर के सैदाबाद गोस्वामियों द्वारा ले जाया गया और जब से वहाँ वर्तमान विग्रह की स्थापना हुई तब से उसकी पूजा की देख-रेख महेशपुर का जमींदार परिवार करता है। माघ मास (जनवरी-फरवरी) की पूर्णिमा के दिन सुन्दरानन्द का तिरोधान उत्सव मनाया जाता है और आसपास के लोग एकत्र होते हैं।

कमलाकर पिप्पलाइ—अलौकिक रीत।
अलौकिक प्रेम ताँर भुवने विदित॥२४॥

अनुवाद

कहा जाता है कि कमलाकर पिप्पलाइ तीसरे गोपाल थे। उनका व्यवहार तथा उनका भगवत्प्रेम अलौकिक था। इस रूप में वे विश्वविदित हैं।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में (१२८) कमलाकर पिप्पलाइ को तीसरा गोपाल कहा गया है। इनका पहले का नाम महाबल था। कमलाकर पिप्पलाइ ने ही श्रीरामपुर के महेश गाँव में जगन्नाथ-विग्रह की स्थापना की थी। महेश गाँव श्रीरामपुर रेलवे स्टेशन से ढाई मील दूरी पर है। कमलाकर पिप्पलाइ का वंश-वृक्ष इस प्रकार है—उनके पुत्र का नाम चतुर्भुज था जिसके दो पुत्र थे—नारायण तथा जगन्नाथ। नारायण के एक पुत्र हुआ जगदानन्द, जिसके पुत्र का नाम राजीवलोचन था। राजीवलोचन के समय में जगन्नाथ-विग्रह की पूजा करने के लिए धन की कमी हुई तो कहा जाता है कि ढाका के नवाब शाह सुजा ने १०६० बंगाब्द में १,१८५ बीघे जमीन दान की। यह जमीन जगन्नाथ के अधिकार में होने से गाँव का नाम जगन्नाथपुर पड़ा। कहा जाता है कि कमलाकर पिप्पलाइ ने घर छोड़ दिया, तो उनके छोटे भाई निधिपति ने उनकी खोज की और यथासमय महेश गाँव में ढूँढ़ निकाला। उसने भरसक प्रयत्न किया कि उसका बड़ा भाई गाँव लौट चले, किन्तु वैसा हो नहीं पाया। फलस्वरूप निधिपति अपना सारा परिवार लेकर महेश गाँव में रहने चले आये। आज भी इस परिवार के लोग महेश गाँव के पड़ोस में रह रहे हैं। उनका कुलनाम अधिकारी है और वे ब्राह्मण परिवार के हैं।

महेश गाँव में जगन्नाथ मन्दिर की कहानी इस प्रकार है। ध्रुवानन्द नामक भक्त एक बार जगन्नाथ पुरी जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करने

गया, क्योंकि वह जगन्नाथजी को अपने हाथ का पकाया भोजन अर्पित करना चाहता था। इसी तरह से एक रात को उसे स्वप्न में जगन्नाथजी दिखे जिन्होंने उससे गंगा नदी के तट पर महेश नामक स्थान में जाकर एक मन्दिर में उनकी पूजा शुरू करने के लिए कहा। इस तरह ध्रुवानन्द महेश गाँव गया, जहाँ उसने गंगा में जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा इन तीन अर्चाविग्रहों को तैरते देखा। वह इन्हें उठाकर ले आया और एक झोपड़ी में स्थापित करके जगन्नाथजी की प्रसन्न मन से पूजा की। जब वह बूढ़ा हो गया तो वह उत्सुक था कि इसका भार किसी को सौंप दे और स्वप्न में जगन्नाथजी ने अनुमति दे दी कि अगले दिन जो भी व्यक्ति मिले उसे यह भार सौंप दे। अगले सुबह उसकी भेंट कमलाकर पिप्पलाइ से हुई, जो पहले बंगाल के सुन्दरवन इलाके के ख़ालिजुलि गाँव का निवासी था, शुद्ध वैष्णव था तथा जगन्नाथजी का परम भक्त था। इस तरह उसने तुरन्त ही उसे यह भार सौंप दिया और कमलाकर पिप्पलाइ जगन्नाथजी का पुजारी बन गया। तब से उसके परिवार के लोग *अधिकारी* कहे जाते हैं, अर्थात् जिसे भगवान् की पूजा करने का अधिकार प्राप्त है। ये अधिकारी संभ्रान्त ब्राह्मण परिवार से सम्बन्धित हैं। पाँच प्रकार के कुलीन ब्राह्मण पिप्पलाइ कहलाते हैं।

सूर्यदास सरखेल, ताँर भाइ कृष्णदास।
नित्यानन्द दृढ़ विश्वास, प्रेमेर निवास ॥२५॥

अनुवाद

सूर्यदास सरखेल तथा उनके छोटे भाई कृष्णदास सरखेल को नित्यानन्द प्रभु में दृढ़ विश्वास था। वे दोनों भगवत्प्रेम के आगार थे।

तात्पर्य

भक्तिरत्नाकर (अध्याय १२) में कहा गया है कि नवद्वीप से कुछ मील दूरी पर शालिंग्राम नामक एक स्थान है, जो सूर्यदास सरलेख का आवास था। उस समय वे मुसलिम-सरकार में सचिव के पद पर थे और उन्होंने काफी धन एकत्र कर लिया था। सूर्यदास चार भाई थे और सब के सब शुद्ध वैष्णव थे। इनके दो पुत्रियाँ थीं—वसुधा तथा जाह्नवा।

गौरीदास पण्डित य़ाँर प्रेमोद्दण्डभक्ति।
कृष्णप्रेमा दिते, निते, धरे महाशक्ति ॥२६॥

अनुवाद

भगवत्प्रेम में सर्वोच्च भक्ति के प्रतीक गौरीदास पण्डित में ऐसा प्रेम प्राप्त करने और उसे प्रदान करने की महान् शक्ति थी।

तात्पर्य

कहा जाता है कि गौरीदास पण्डित को हरिहोड के पुत्र राजा कृष्णदास का राज्याश्रय प्राप्त था। वे शालिग्राम में रहते थे जो मुड़ागाछा रेलवे स्टेशन से कुछ दूरी पर है। बाद में वे अम्बिका कालना ग्राम में आकर रहने लगे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में कहा गया है कि वे पहले वृन्दावन में कृष्ण तथा बलराम के ग्वालमित्रों में से सुबल नामक गोप थे। गौरीदास पण्डित छोटे भाई थे सूर्य दास सरलेख के। वे अपने बड़े भाई की अनुमति से गंगा नदी के तट पर अम्बिका कालना नामक नगर में जा बसे। गौरीदास पण्डित के कुछ वंशजों के नाम इस प्रकार हैं—(१) श्री नृसिंह चैतन्य (२) कृष्णदास (३) विष्णुदास (४) बड़ बलरामदास (५) गोविन्द (६) रघुनाथ (७) बड़ु गंगादास (८) औलिया गंगाराम (९) यादवाचार्य (१०) हृदयचैतन्य (११) चान्द हालदार (१२) महेश पंडित (१३) मुकुट राय (१४)भातुया गंगाराम (१५) औलिया चैतन्य (१६) कालिया कृष्णदास (१७) पातुया गोपाल (१८) बड़ जगन्नाथ (१९) नित्यानन्द (२०) भावि (२१) जगदीश (२२) राइया कृष्ण दास तथा (२२ १/२) अन्नपूर्णा। गौरीदास पण्डित के सबसे बड़े पुत्र बड़ा बलराम और सबसे छोटे पुत्र रघुनाथ कहलाते थे। रघुनाथ के पुत्र थे महेश पण्डित तथा गोविन्द। गौरीदास पण्डित की पुत्री का नाम था अन्नपूर्णा।

अम्बिका कालना गाँव शान्तिपुर के सामने गंगा के उस पार पूर्वी रेलवे पर कालनाकोर्ट रेलवे स्टेशन से २ मील पूर्व है। अम्बिका कालना गाँव में बर्दवान के जमींदार द्वारा बनवाया हुआ एक मन्दिर है, जिसके सामने एक बड़ा-सा इमली का पेड़ है। कहा जाता है कि गौरीदास पण्डित तथा चैतन्य महाप्रभु इसी वृक्ष के नीचे मिले थे। जिस स्थान पर यह मन्दिर है, वह अम्बिका कहलाता है और चूँकि यह कालना क्षेत्र में है अतएव यह गाँव अम्बिका कालना कहलाता है। कहा जाता है कि इस मन्दिर में अब भी श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उतारी गई *भगवद्गीता* की प्रति है।

नित्यानन्द समर्पित जाति-कुल-पाँति।
श्रीचैतन्य-नित्यानन्दे करि प्राणपति ॥२७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य तथा नित्यानन्द को अपने जीवन का स्वामी बनाकर गौरीदास पण्डित ने नित्यानन्द की सेवा के लिए सब कुछ अर्पित कर दिया है, यहाँ तक कि अपने परिवार की सदस्यता भी।

नित्यानन्द प्रभुर प्रिय—पण्डित पुरन्दर।
प्रेमार्णवमध्ये फिरे ग्रैछन मन्दर॥२८॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द के तेरहवें मुख्य भक्त पण्डित पुरन्दर थे। वे भगवत्प्रेम के सागर में इस तरह हिलते-डुलते थे मानो मन्दर पर्वत हों।

तात्पर्य

पुरन्दर पण्डित खड़दह में नित्यानन्द प्रभु से मिले थे। जब नित्यानन्द इस गाँव में गये, तो वहाँ उन्होंने अलौकिक नृत्य किया जिस पर पुरन्दर पण्डित मोहित हो गये। वे उस समय पेड़ के ऊपर चढ़े थे और नित्यानन्द का नृत्य देख कर अपने को अंगद कहते हुए ऊपर से जमीन पर कूद पड़े। अंगद भगवान् रामचन्द्र की लीलाओं के समय हनुमान के खेमे में थे।

परमेश्वरदास—नित्यानन्देर-शरण ।
कृष्णभक्ति पाय, ताँरे ग्रे करे स्मरण॥२९॥

अनुवाद

परमेश्वर दास, जिन्हें कृष्णलीला का पाँचवा गोपाल कहा जाता है, नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों में पूरी तरह समर्पित थे। जो कोई उनके इस नाम (परमेश्वर दास) को स्मरण करता है, उसे सरलता से कृष्ण-प्रेम प्राप्त होता है।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में कहा गया है कि परमेश्वर दास, जिन्हें कभी-कभी परमेश्वरी दास कहा जाता था, नित्यानन्द प्रभु के सर्वस्व थे। परमेश्वर दास का शरीर नित्यानन्द प्रभु की लीलाओं का स्थल था। वे कुछ काल तक खड़दह में रहे। और वे सदैव गोपाल (ग्वालबाल) के भाव से अभिभूत रहते थे। पूर्वजन्म में वे कृष्ण तथा बलराम के मित्र अर्जुन थे। बारह गोपालों में

से वे पाँचवे थे। वे खेतुरी में सम्पन्न उत्सव में श्रीमती जाह्नवी देवी के साथ गये थे। *भक्तिरत्नाकर* में कहा गया है कि श्रीमती जाह्नवी माता के आदेश से उन्होंने हुगली जिले कें आटपुर स्थान पर राधा-गोपीनाथ मन्दिर की स्थापना की। आटपुर स्टेशन छोटी लाइन में हावड़ा तथा आमता के बीच स्थित है। आटपुर में एक दूसरा मन्दिर है, जिसे किसी मित्र परिवार ने स्थापित किया और वह राधागोविन्द मन्दिर कहलाता है। मन्दिर के सामने दो बकुल तथा एक कदम्ब वृक्ष के बीच परमेश्वर ठाकुर की समाधि है और उसके ऊपर तुलसी का बिरवा है। कहा जाता है कि कदम्ब में वर्ष में केवल एक फूल लगता है, जिसे अर्चाविग्रह पर चढ़ाया जाता है।

यह भी कहा जाता है कि परमेश्वरी ठाकुर वैद्य परिवार के थे। उनके भाई का एक वंशज इस समय मन्दिर का पुजारी है। उनके परिवार के कुछ लोग अब भी हुगली जिले में चण्डीतला डाकघर के पास रह रहे हैं। परमेश्वरी ठाकुर के वंशजों ने ब्राह्मण परिवारों से कई शिष्य बनाये, किन्तु धीरे-धीरे ये वंशज वैद्यक पेशा करने लगे, तो ब्राह्मण परिवारों के लोगों ने शिष्य बनना बन्द कर दिया। परमेश्वरी के वंशजों की कुल-उपाधियाँ अधिकारी तथा गुप्त हैं। दुर्भाग्यवश उनके परिवार के वंशज प्रत्यक्षत: अर्चाविग्रह की पूजा नहीं करते, किन्तु इस कार्य के लिए उन्होंने वेतन-भोगी ब्राह्मण लगा रखे हैं। इस मन्दिर में सिंहासन पर बलदेव तथा श्री-श्री राधागोपीनाथ एकसाथ हैं। माना जाता है कि बलदेव-विग्रह की स्थापना बाद में की गई क्योंकि रस की दृष्टि से बलदेव, कृष्ण तथा राधा एक ही सिंहासन पर नहीं रह सकते। वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन इस मन्दिर में परमेश्वरी ठाकुर का तिरोधान-उत्सव मनाया जाता है।

जगदीश पण्डित हय जगत्-पावन।
कृष्णप्रेमामृत वर्षे, ग्रेन वर्षा घन॥३०॥

अनुवाद

नित्यानन्द के अनुयायियों की पन्द्रहवीं शाखा जगदीश पण्डित सम्पूर्ण जगत के उद्धारक थे। उनसे कृष्ण-भक्ति की झड़ी लगी रहती थी।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत (आदिलीला अध्याय ४) तथा *चैतन्य-चरितामृत* (आदिलीला, अध्याय १४) में जगदीश पण्डित विषयक विवरण प्राप्त हैं। वे नदिया जिले

में चाकदह रेलवे स्टेशन के निकट यशदा ग्राम से सम्बन्धित थे। उनके पिता कमलाक्ष भट्ट नारायण के पुत्र थे। उनके माता-पिता दोनों ही भगवान् विष्णु के परम भक्त थे। उनकी मृत्यु के बाद जगदीश अपनी पत्नी दुःखिनी तथा भाई महेश के साथ अपनी जन्मभूमि छोड़ कर जगन्नाथ मिश्र तथा अन्य वैष्णवों की संगति में रहने के लिए श्री मायापुर आ गये। महाप्रभु चैतन्य ने उन्हें जगन्नाथ पुरी जाकर हरिनाम-संकीर्तन-आन्दोलन का प्रचार करने का आदेश दिया। जगन्नाथ पुरी से लौटने के बाद उन्होंने जगन्नाथ भगवान् के आदेश से यशदा ग्राम में जगन्नाथ के अर्चाविग्रहों की स्थापना की। कहा जाता है कि जगदीश पण्डित जगन्नाथ के भारी अर्चाविग्रह को एक लाठी में बाँध कर गाँव तक लाये। आज भी मंदिर के पुजारी उस लाठी को दिखलाते हैं।

नित्यानन्द-प्रियभृत्य पण्डित धनञ्जय।
अत्यन्त विरक्त, सदा कृष्णप्रेममय॥३१॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के सोलहवें प्रिय दास धनञ्जय पण्डित थे। वे अत्यधिक विरक्त थे और सदैव कृष्णप्रेम में निमग्न रहते थे।

तात्पर्य

पण्डित धनञ्जय कतवा में शीतल नामक गाँव के निवासी थे। वे बारह गोपालों में से एक थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* के अनुसार उनका पहले का नाम वसुदाम था। शीतल ग्राम बर्दवान जिले में मंगलकोट थाने तथा कैचर डाकखाने के निकट स्थित है। कैचर एक रेलवे स्टेशन है जो बर्दवान से कतवा जाने वाली रेलवे लाइन पर कतवा स्टेशन से लगभग ९ मील दूर है। शीतल पहुँचने के लिए इस स्टेशन से लगभग एक मील उत्तर पूर्व जाना पड़ता है। यहाँ का मन्दिर कच्ची दीवालों से बना और फूस से छाया हुआ था। कुछ वर्ष पूर्व मलिक जमीदारों ने मन्दिर के लिए एक बड़ा-सा घर बनवा दिया है, किन्तु विगत ६५ वर्षों से यह टूटा हुआ है और त्यक्त है। आज भी पुराने मन्दिर की नींव दिखती है। मन्दिर के पास एक तुलसी स्तम्भ है और प्रतिवर्ष जनवरी मास में धनञ्जय पण्डित का तिरोधान-दिवस मनाया जाता है। कहा जाता है कि कुछ काल तक धनञ्जय पण्डित चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन-आन्दोलन में सम्मिलित रहे। फिर वे वृन्दावन

चले गये। वृन्दावन आने के पूर्व वे कुछ समय तक मेमारी रेलवे स्टेशन से ६ मील दक्षिण साँचडापाँचड़ा नामक गाँव में रहे। इसीलिए कभी-कभी यह गाँव धनञ्जय-पाट भी कहलाता है। कुछ समय बाद वे पूजा का भार अपने शिष्य को सौंप कर वृन्दावन चले गये। वहाँ से शीतलग्राम वापस आने पर उन्होंने मन्दिर में गौरसुन्दर का विग्रह स्थापित किया। आज भी इस गाँव में पंडित धनञ्जय के वंशज रह रहे हैं और मन्दिर-पूजा का कार्य देखते हैं।

महेश पण्डित—व्रजेर उदार गोपाल।
ढक्कावाद्ये नृत्य करे प्रेमे मातोयाल॥३२॥

अनुवाद

महेश पण्डित बारह गोपालों में सातवें गोपाल थे। ये अत्यन्त उदार थे। ये ढक्का (नगाड़ा) बजने पर कृष्ण-प्रेम में उन्मत्त की तरह नाचा करते थे।

तात्पर्य

महेश पण्हित का गाँव पालपाड़ा नदिया जिले में चाकदह रेलवे स्टेशन से एक मील दक्षिण जंगल के भीतर स्थित है। पास ही गंगा नदी बहती है। कहा जाता है कि पहले महेश पण्डित जिराट के पूर्व में मसिपुर या यशीपुर नामक गाँव में रहते थे और जब मसिपुर गंगा नदी की तलहटी में डूब गया तो विग्रहों को पालपाड़ा गाँव लाया गया जो बेलडाँगा, बेरिग्राम, सुखसागर, चान्दुडे तथा मनसापोता नामक गाँवों के बीच बसा है। (कुल १४ गाँव हैं और पूरा पड़ोस पाँचनगर परगना कहलाता है)। कहा जाता है कि महेश पण्डित पाणिहाटी स्थान में नित्यानन्द प्रभु द्वारा सम्पन्न समारोह में सम्मिलित हुए थे। इस समारोह में नरोत्तम दास ठाकुर भी सम्मिलित हुए थे और महेश पण्डित ने इस अवसर पर उन्हें देखा था। महेश पण्डित के मन्दिर में गौर नित्यानन्द, श्री गोपीनाथ, श्री मदनमोहन, राधागोविन्द के विग्रहों के साथ-साथ शालग्राम शिला भी है।

नवद्वीपे पुरुषोत्तम पण्डित महाशय।
नित्यानन्द-नामे य़ाँर महोन्माद हय॥३३॥

अनुवाद

नवद्वीप निवासी पुरुषोत्तम पण्डित आठवें गोपाल थे। वे नित्यानन्द महाप्रभु का पवित्र नाम सुनते ही मदोन्मत्त हो उठते थे।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में बतलाया गया है कि पुरुषोत्तम पंडित का जन्म नवद्वीप में हुआ था और वे नित्यानन्द प्रभु के महान् भक्त थे। बारह गोपालों के रूप में उनका पहले का नाम स्तोककृष्ण था।

बलराम दास—कृष्णप्रेमरसास्वादी।
नित्यानन्द-नामे हय परम उन्मादी॥३४॥

अनुवाद

बलराम दास कृष्णप्रेम रूपी अमृत का सदैव आस्वादन करते थे। वे श्री नित्यानन्द प्रभु का नाम सुनते ही महोन्मत्त हो जाते थे।

महाभागवत य़दुनाथ कविचन्द्र।
य़ाँहार हृदये नृत्य करे नित्यानन्द॥३५॥

अनुवाद

यदुनाथ कविचन्द्र महान् भक्त थे। उनके हृदय में श्री नित्यानन्द प्रभु सतत नृत्य करते थे।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में (मध्यलीला, अध्याय १) कहा गया है कि रत्नगर्भ नामक एक महाशय श्री नित्यानन्द प्रभु के पिता के मित्र थे। दोनों एक ही गाँव, एकचक्र-ग्राम के निवासी थे। उनके चार पुत्र थे—कृष्णपद मकरन्द, कृष्णानन्द, जीव तथा यदुनाथ कविचन्द्र।

राढे य़ाँर जन्म कृष्णदास द्विजवर।
श्रीनित्यानन्देर तेँहो परम किङ्कर॥३६॥

अनुवाद

बंगाल में श्री नित्यानन्द के इक्कीसवें भक्त कृष्णदास ब्राह्मण थे, जो नित्यानन्द प्रभु के उच्च श्रेणी के दास थे।

तात्पर्य

राढ़ देश बंगाल के उस भाग का सूचक है जहाँ गंगा नदी नहीं बहती।

काला-कृष्णदास बड़ वैष्णवप्रधान।
नित्यान्द-चन्द्र विनु नाहि जाने आन॥३७॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के बाइसवें भक्त काला कृष्णदास थे, जो नवें गोपाल थे। वे महाभागवत थे और नित्यानन्द के सिवा अन्य किसी को नहीं जानते थे।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में (अन्त्य खण्ड, अध्याय ६) कहा गया है कि कृष्णदास, जो कालिया कृष्णदास के नाम से जाने जाते थे, पहले लवंग नामक गोपाल थे। वे बारह गोपालों में से थे। कालिया कृष्णदास का सदरस्थान आकाइहाट नामक गाँव में था, जो बर्दवान जिले में कतवा डाकघर तथा थाना के अन्तर्गत है। यह नवद्वीप जाने वाली सड़क पर स्थित है। आकाइहाट पहुँचने के लिए व्याण्डेल जंकशन से कतवा रेलवे स्टेशन पर उतर कर एक मील चलना पड़ता है। अथवा दाँइहाट स्टेशन पर उतर कर एक मील चलना होता है। आकाइहाट बहुत छोटा-सा गाँव है। चैत्र मास में, वारुणी के दिन काला कृष्णदास का तिरोधान-दिवस मनाया जाता है।

श्रीसदाशिव कविराज—बड़ महाशय।
श्रीपुरुषोत्तमदास—ताँहार तनय॥३८॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के तेइसवें और चौबीसवें भक्त सदाशिव राजं तथा उनके पुत्र पुरुषोत्तमदास थे, जो दसवें गोपाल थे।

आजन्म निमग्न नित्यानन्देर चरणे।
निरन्तर बाल्य-लीला करे कृष्ण-सने॥३९॥

अनुवाद

जन्म से ही पुरुषोत्तमदास नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की सेवा में निमग्न रहते थे और सदैव कृष्ण के संग बच्चों के खेल में लगे रहते

थे।

तात्पर्य

सदाशिव तथा नागर पुरुषोत्तम पिता-पुत्र थे, जिन्हें *चैतन्य भागवत* में *महाभाग्यवान* कहा गया है। वे वैद्य जाति के थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* (१५६) के अनुसार कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय गोपी चन्द्रावली ने बाद में सदाशिव कविराज के रूप में जन्म लिया। यह कहा जाता है कि सदाशिव कविराज के पिता कंसारि सेन पहले कृष्णलीला की रत्नावली नामक गोपी थे। सदाशिव कविराज के परिवार के सारे लोग चैतन्य महाप्रभु के परम भक्त थे। पुरुषोत्तमदास ठाकुर कभी-कभी सुखसागर में रहा करते थे, जो चाकदह तथा शिमुरालि स्टेशनों के निकट है। पुरुषोत्तमदास ठाकुर ने जितने विग्रहों की स्थापना की थी, वे सभी पहले बेलेडाँगा ग्राम में थे; किन्तु मन्दिर के ध्वस्त हो जाने पर वे विग्रह सुखसागर ले आये गये। जब मन्दिर गंगा नदी के पेटे में चला गया तो उन विग्रहों को जाह्नवा देवी के विग्रह समेत साहेबाडाँगा बेडिग्राम ले आया गया। चूँकि वह स्थान भी विनष्ट हो चुका है, अतएव सारे विग्रह चाँदुडेग्राम में स्थित हैं, जो पालपाडा से एक मील दूरी पर है।

ताँर पुत्र—महाशय श्रीकानु ठाकुर।
य़ाँर देहे रहे कृष्ण-प्रेमामृतपूर॥४०॥

अनुवाद

अत्यन्त सम्माननीय व्यक्ति श्री कानु ठाकुर पुरुषोत्तमदास ठाकुर के पुत्र थे। वे इतने बड़े भक्त थे कि भगवान् कृष्ण सदैव उनके शरीर में वास करते थे।

तात्पर्य

कानु ठाकुर के मुख्यालय पहुँचने के लिए झिकरगाछा घाट स्टेशन से बोट द्वारा कपोताक्ष नदी जाना होता है। अन्यथा झिकरगाछा घाट स्टेशन से २-२ १/२ मील सीधे जाने पर बोधखाना देखा जा सकता है, जहाँ कानु ठाकुर का मुख्यालय है। सदाशिव का पुत्र पुरुषोत्तम, एवं पुरूषोत्तम का पुत्र कानु ठाकुर था। कानु ठाकुर के वंशज उन्हें नागर पुरुषोत्तम के नाम से जानते हैं। वे कृष्णलीला के समय दाम नामक ग्वालबाल थे। कहा जाता है कि

कानु ठाकुर का जन्म होते ही उसकी माता जाह्नवा मर गईं। अभी वे बारह दिन के थे तभी श्री नित्यानन्द प्रभु उन्हें खड़दह-स्थित अपने घर ले गये। यह निश्चित हो चुका है कि कानु ठाकुर बंगाब्द ९४२ के आसपास उत्पन्न हुए थे। कहा जाता है कि उनका जन्म रथयात्रा के दिन हुआ था। चूँकि वे जन्म से ही भगवान् कृष्ण के बड़े भक्त थे, इसलिए नित्यानन्द प्रभु ने उनका नाम शिशु कृष्णदास रखा। जब वे पाँच साल के थे तो वे जाह्नवा माता के साथ वृन्दावन गये। कानु ठाकुर के भावमय लक्षणों को देख कर ही गोस्वामियों ने उनका नाम कानाइ ठाकुर रख दिया।

कानु ठाकुर के परिवार में राधा-कृष्ण-विग्रह है जिसका नाम प्राण-वल्लभ है। कहा जाता है कि उनके परिवार में इस विग्रह की पूजा चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के बहुत पहले से होती आ रही थी। जब बंगाल पर मरहठों का आक्रमण हुआ तो कानु ठाकुर का परिवार तितर-बितर हो गया, किन्तु आक्रमण के बाद उस परिवार का एक व्यक्ति हरि कृष्ण गोस्वामी अपने असली घर बोधखाना लौट आया और फिर से प्राण-वल्लभ विग्रह की स्थापना की। आज भी उस परिवार वाले इस विग्रह की पूजा करते हैं। कानु ठाकुर खेरि उत्सव के समय उपस्थित थे जिसमें जाह्नवा देवी तथा वीरभद्र गोस्वामी भी गये थे। कानु ठाकुर के परिवार के एक व्यक्ति ने श्री नित्यानन्द प्रभु की पुत्री गंगादेवी से विवाह कर लिया। पुरुषोत्तम ठाकुर तथा कानु ठाकुर दोनों ही के अनेक ब्राह्मण शिष्य थे। कानु ठाकुर के शिष्यों के वंशज मिदनापुर जिले में शिलावती नदी के किनारे स्थित गडबेटा नामक गाँव में रहते हैं।

महाभागवत-श्रेष्ठ दत्त उद्धारण।
सर्वभावे सेवे नित्यानन्देर चरण॥४१॥

अनुवाद

ग्यारहवें गोपाल उद्धारण दत्त ठाकुर श्री नित्यानन्द प्रभु के श्रेष्ठ भक्त थे। वे नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की सभी प्रकार से सेवा करते थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (१२९) के अनुसार उद्धारण दत्त ठाकुर पहले वृन्दावन के सुबाहु नामक ग्वालबाल थे। इनको पहले श्री उद्धारण दत्त कहते थे।

ये सप्त ग्राम के रहने वाले थे, जो हुगली जिले में त्रिशबिघा स्टेशन के निकट सरस्वती नदी के तट पर स्थित है। उनके समय में सप्तग्राम एक बहुत बड़ा नगर था जिसके अन्तर्गत वासुदेवपुर, बाँशबेडिया, कृष्णपुर, नित्यानन्दपुर, शिवपुर, शंखनगर तथा सप्तग्राम आते थे।

कलकत्ता का विकास ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत प्रभावशाली व्यापारिक जाति, विशेषतया *सुवर्ण-वणिक* जाति, के द्वारा किया गया, जो सप्तग्राम से पूरे कलकत्ता में अपना व्यापार जमाने तथा घर बनाने आई थी। वे कलकत्ता के सप्तग्रामी व्यापारी जन कहलाते थे और उनमें से अधिकांश लोग मलिक तथा सिल परिवारों के थे। श्रील उद्धारण ठाकुर की ही तरह आधे से ज्यादा कलकत्ता इसी जाति से सम्बन्धित था। कलकत्ता के मलिक दो परिवारों में विभाजित हैं—सिल तथा दे परिवार। दे परिवार के सारे मलिक मूलत: एक ही परिवार तथा गोत्र के हैं। हम भी पहले दे परिवार शाखा से सम्बद्ध थे, जिसके सदस्यों को मुसलमान शासकों से मलिक की पदवी प्राप्त हुई थी।

चैतन्य-भागवत में (अन्त्य खण्ड, अध्याय ६) कहा गया है कि उद्धारण दत्त एक महान् एवं उदार वैष्णव थे। वे नित्यानन्द प्रभु की पूजा करने अधिकार लेकर उत्पन्न हुए थे। यह भी कहा गया है कि नित्यानन्द प्रभु खड़दह में कुछ काल तक रहने के बाद सप्तग्राम गये और वहाँ पर उद्धारण दत्त के मकान में ठहरे। उद्धारण दत्त का सम्बन्ध जिस स्वर्ण-वणिक जाति से था वह वास्तव में वैष्णव जाति थी। इसके सदस्य साहुकार तथा स्वर्ण के व्यापारी थे। बहुत काल पूर्व बल्लसेन तथा सुवर्णवणिक जाति में बहुत बड़े साहुकार गौरीसेन के कारण अनबन हो गई। बल्लसेन गौरी सेन से उधार लेकर मनमाना खर्च करते थे। इसलिए गौरी सेन ने धन देना बन्द कर दिया। बल्लसेन ने इसका बदला स्वर्णवणिकों को जाति से बहिष्कृत कराने का षड्यन्त्र बना कर लिया। तब से वे उच्च जाति से बहिष्कृत कर दिये गये। किन्तु श्री नित्यानन्द प्रभु की कृपा से स्वर्ण-वणिक जाति फिर से ऊपर उठ गई। *चैतन्य भागवत* में कहा गया है—*य़तेक वणिक कुल उद्धारण हैते पवित्र हइल द्विधा नाहिक इहाते*—इसमें सन्देह नहीं कि सुर्वणवणिक समाज के सारे सदस्य श्री नित्यानन्द प्रभु द्वारा फिर से पवित्र बना दिये गये।

सप्तग्राम में अब भी श्री चैतन्य महाप्रभु का षड्भुजी विग्रह है, जिसकी

पूजा उद्धारण दत्त ठाकुर स्वयं करते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के दाएँ नित्यानन्द प्रभु का और बाएँ गदाधर प्रभु का विग्रह है। इसके अतिरिक्त राधागोविन्द मूर्ति तथा शालग्राम शिला भी है और सिंहासन के नीचे श्री उद्धारण दत्त ठाकुर की तस्वीर है। अब मन्दिर के सामने एक बड़ा-सा हाल है और इसके सामने माधवीलता लगी है। यह मन्दिर अत्यन्त छायादार, शीतल तथा अच्छी जगह पर स्थित है। सन् १९६७ में जब हम अमरीका से लौटे तो इस मन्दिर की कार्यकारिणी समिति के सदस्यों ने यहाँ आने के लिए हमें भी बुलाया और इस तरह हमें अपने कुछ अमरीकी शिष्यों सहित इस मन्दिर को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। अपने बाल्यकाल में हमने अपने माता-पिता के साथ इस मन्दिर के दर्शन किये थे, क्योंकि सुवर्ण-वणिक जाति के सारे लोग उद्धारण दत्त के इस मन्दिर में विशेष रुचि दिखलाते हैं। १२८३ बंगाब्द में निताई दास नामक एक बाबाजी ने इस मन्दिर के लिए १२ बीघे भूमि दान में प्राप्त की। बाद में इस मन्दिर की व्यवस्था गड़बड़ा गई किन्तु १३०६ में हुगली के उपन्यायाधीश सुप्रसिद्ध बलराम मलिक तथा धनी सुवर्ण-वणिक जाति के अनेक सदस्यों के सहयोग से मन्दिर का प्रबन्ध काफी सुधर गया। अभी पचास वर्ष भी नहीं हुए, उद्धारण दत्त ठाकुर के परिवार के एक सदस्य जगमोहन दत्त ने मन्दिर में उद्धारण दत्त ठाकुर का काष्ठ का विग्रह स्थापित किया था, किन्तु अब वह वहाँ नहीं है। इस समय उद्धारण दत्त ठाकुर की तस्वीर की पूजा की जाती है। कहा जाता है कि उद्धारण दत्त ठाकुर का काष्ठ-विग्रह श्री मदनमोहन दत्त उठा ले गये और श्रीनाथ दत्त द्वारा उसकी पूजा शालग्राम शिला के साथ-साथ की जाती है।

उद्धारण दत्त ठाकुर नैहाटी में एक बड़े जमींदार की जायदाद के प्रबन्धक (दीवान) थे। इस शाही परिवार के ध्वंसावशेष अब भी दैहाट स्टेशन के निकट देखे जा सकते हैं। चूँकि उद्धारण दत्त ठाकुर जायदाद के प्रबन्धक थे, अतएव इसे उद्धारणपुर भी कहते हैं। उद्धारण दत्त ठाकुर ने निताई गौर विग्रहों की स्थापना की थी, जिन्हें बाद में जमींदार के घर ले जाया गया जो वनओयारीबाड़ कहलाता है। श्री उद्धारण दत्त ठाकुर आजीवन गृहस्थ बने रहे। उनके पिता का नाम श्रीकर दत्त, माता का नाम भद्रावती और पुत्र का नाम श्रीनिवास दत्त था।

आचार्य वैष्णवानन्द भक्ति-अधिकारी।
पूर्वे नाम छिल याँर 'रघुनाथ पुरी'॥४२॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के सत्ताइसवें प्रमुख भक्त आचार्य वैष्णवानन्द थे, जो भक्ति के अधिकारी थे। वे पहले रघुनाथ पुरी नाम से प्रसिद्ध थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (९७) में बतलाया गया है कि पहले रघुनाथ पुरी अष्ट-सिद्धियों में अत्यन्त प्रबल थे। वे इन सिद्धियों में से एक के अवतार थे।

विष्णुदास, नन्दन, गङ्गादास,—तिन भाइ।
पूर्वे याँर घरे छिला ठाकुर निताइ॥४३॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के अन्य महत्वपूर्ण भक्त विष्णुदास थे जिनके दो भाई थे—नन्दन तथा गंगादास। कभी-कभी नित्यानन्द प्रभु इनके घर में ठहरते थे।

तात्पर्य

विष्णुदास, नन्दन तथा गंगादास— ये तीनों भाई नवद्वीप के निवासी थे और भट्टाचार्य ब्राह्मण-कुल के थे। विष्णुदास तथा गंगादास कुछ काल तक जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ टिके थे। *चैतन्य-भागवत* में लिखा है कि पहले नित्यानन्द उनके घर में रुका करते थे।

नित्यानन्दभृत्य परमानन्द उपाध्याय।
श्रीजीव पण्डित नित्यानन्द-गुण गाय॥४४॥

अनुवाद

परमानन्द उपाध्याय नित्यानन्द प्रभु के परम सेवक थे और श्री जीव पण्डित नित्यानन्द प्रभु के गुणों का गान करते थे।

तात्पर्य

श्री परमानन्द उपाध्याय महान् भक्त थे। उनका नामोल्लेख *चैतन्य-भागवत* में हुआ है। वहीं यह भी उल्लेख है कि श्री जीव पण्डित रत्नगर्भ आचार्य

के पुत्र तथा नित्यानन्द प्रभु के पिता हाड़ाइ ओझा के बालपन के मित्र थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (१६९) कहा गया है कि जीव पण्डित पूर्वजन्म में इन्दिरा नाम की गोपी थे।

परमानन्द गुप्त—कृष्णभक्त महामति।
पूर्वे य़ाँर घरे नित्यानन्देर वसति॥४५॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के इकतीसवें भक्त श्री परमानन्द गुप्त थे, जो कृष्ण-भक्त थे और आध्यात्मिक चेतना में अग्रणी थे। पहले नित्यानन्द प्रभु कुछ काल तक उनके घर रह चुके थे।

तात्पर्य

परमानन्द गुप्त ने *कृष्ण स्तवावली* नामक ग्रंथ की रचना की है, जिसमें भगवान् कृष्ण की स्तुति है। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में (१९४) इन्हें पूर्वजन्म मञ्जुमेधा नामक गोपी बतलाया गया है।

नारायण, कृष्णदास आर मनोहर।
देवानन्द चारि भाइ निताइ-किङ्कर॥४६॥

अनुवाद

नारायण, कृष्णदास, मनोहर तथा देवानन्द—ये चारों भाई सदैव नित्यानन्द की सेवा में लगे रहने वाले बत्तीसवें, तैंतीसवें, चौंतीसवें और पैंतीसवें प्रभुख भक्त थे।

होड़ कृष्णदास—नित्यानन्द-प्रभु-प्राण।
नित्यानन्द-पद विनु नाहि जाने आन॥४७॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द के छत्तीसवें भक्त होड़ कृष्णदास थे, जिनके लिए नित्यानन्द प्रभु प्राण थे। वे श्री नित्यानन्द के चरणकमलों पर सदैव समर्पित रहते थे और उनके अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानते थे।

तात्पर्य

कृष्णदास होड़ बड़गाछि के निवासी थे जो अब बंगलादेश में है।

नकडि, मुकुन्द, सूर्य, माधव, श्रीधर।
रामानन्द वसु, जगन्नाथ, महीधर॥४८॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के भक्तों में नकडि, मुकुन्द, सूर्य, माधव, श्रीधर, रामानन्द, जगन्नाथ तथा महीधर क्रमशः सैंतीसवें, अडतीसवें, उन्तालीसवें, चालीसवें, इकतालीसवें, बयालीसवें, तैंतालीसवें तथा चवालीसवें क्रम पर थे।

तात्पर्य

श्रीधर बारहवें गोपाल थे।

श्रीमन्त, गोकुलदास, हरिहरानन्द।
शिवाइ, नन्दाइ, अवधूत परमानन्द॥४९॥

अनुवाद

श्रीमन्त, गोकुलदास, हरिहरानन्द, शिवाई, नन्दाइ तथा परमानन्द क्रमशः पैंतालीसवें से लेकर पचासवें भक्त थे।

वसन्त, नवनी होड़, गोपाल, सनातन।
विष्णाइ हाजरा, कृष्णानन्द, सुलोचन॥५०॥

अनुवाद

वसन्त, नवनी होड़, गोपाल, सनातन, विष्णाइ, कृष्णानन्द एवं सुलोचन क्रमशः इक्यानवें से लेकर सत्तावनवें भक्त थे।

तात्पर्य

नवली होड़ बड़गाछि के राजा के पुत्र होड़ कृष्णदास ही प्रतीत होते हैं। उनके पिता का नाम हरि होड़ था। लाल गोलाघाट रेलवे लाइन से होकर बड़गाछि जाया जा सकता है। पहले बड़गाछि से होकर गंगा नदी बहती थीं, लेकिन अब उसने कालशिर खाल नहर का रूप धारण कर लिया है। मुडागाछा स्टेशन के पास शालिग्राम नामक गाँव है, जहाँ राजा कृष्णदास ने श्री नित्यानन्द प्रभु के विवाह की व्यवस्था की थी। ऐसा वर्णन *भक्तिरत्नाकर* की बारहवीं तरंग में मिलता है। कभी-कभी कहा जाता है कि नवनी होड राजा कृष्णदास के पुत्र थे। उनके वंशज आज भी बहिरगाछि के निकट रुकुणपुर में रहते हैं। वे दक्षिण राढ़ीय कायस्थ जाति के हैं, किन्तु उन्हें

ब्राह्मण बना दिया गया है और वे अब भी सभी जातियों को दीक्षा देते हैं।

कंसारि सेन, रामसेन, रामचन्द्र कविराज।
गोविन्द, श्रीरंग, मुकुन्द, तिन कविराज।।५१।।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द के अट्ठावनवें भक्त कंसारि सेन, उनसठवें रामसेन, साठवें रामचन्द्र कविराज तथा इकसठवें, बासठवें एवं तिरसठवें भक्त गोविन्द, श्रीरंग तथा मुकुन्द नामक वैद्य थे।

तात्पर्य

श्री रामचन्द्र कविराज खण्डवासी चिरञ्जीव के पुत्र थे और सुनन्द श्रीनिवास आचार्य के शिष्य तथा नरोत्तमदास ठाकुर के घनिष्ठ मित्र थे। उनका सब से छोटा भाई गोविन्द कविराज था। श्रील जीव गोस्वामी ने श्री रामचन्द्र कविराज की कृष्ण-भक्ति की अत्यधिक प्रशंसा की और उन्हें *कविराज* की उपाधि दी। श्री रामचन्द्र कविराज गृहस्थी के कार्यों से विरत रहते थे और श्रीनिवास आचार्य तथा नरोत्तमदास ठाकुर के प्रचार-कार्य में सहायता करते थे। पहले वे श्रीखंड में रहते थे, किन्तु बाद में गंगा के तट पर कुमारनगर में रहने लगे।

गोविन्द कविराज श्रीखंड के गिरञ्जीव के सबसे छोटे पुत्र तथा रामचन्द्र कविराज के भाई थे। यद्यपि वे प्रारम्भ में *शाक्त* थे किन्तु बाद में श्री निवास आचार्य प्रभु ने उन्हें दीक्षा दी। गोविन्द कविराज भी पहले श्रीखंड में और बाद में कुमारनगर में रहे किन्तु बाद में वे पद्मानदी के दक्षिणी तट पर स्थित तेलिया बुधरि नामक गाँव चले गये। गोविन्द कविराज की लिखी दो पुस्तकें हैं—*संगीतमाधव* तथा *गीतामृत*। वे महान् वैष्णव कवि थे इसलिए श्रील जीव गोस्वामी ने उन्हें कविराज की उपाधि प्रदान की। इनका उल्लेख *भक्तिरत्नाकर* की नवम तरंग में है।

गौरगणोद्देश-दीपिका (१९४, २००) के अनुसार कंसारि सेन पूर्वजन्म में व्रज की रत्नावली गोपी थे।

पीताम्बर, माधवाचार्य, दास दामोदर।
शंकर, मुकुन्द, ज्ञानदास, मनोहर।।५२।।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के भक्तों में चौसठवें से लेकर सत्तरवें भक्त पीताम्बर, माधवाचार्य, दामोदर दास, शंकर, मुकुन्द, ज्ञानदास तथा मनोहर थे।

नर्तक गोपाल, रामभद्र, गौराङ्गदास।
नृसिंहचैतन्य, मीनकेतन रामदास॥५३॥

अनुवाद

नर्तक गोपाल, रामभद्र, गौरंग दास, नृसिंह चैतन्य, मीनकेतन तथा रामदास इकहत्तरवें से लेकर पचहत्तरवें भक्त थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका (६८) में मीनकेतन रामदास संकर्षण के अवतार थे।

वृन्दावनदास—नारायणीर नन्दन।
'चैतन्यमङ्गल' य़ेँहो करिल रचन॥५४॥

अनुवाद

श्रीमती नारायणी के पुत्र वृन्दावन दास ठाकुर ने चैतन्य मंगल (बाद में चैतन्य भागवत नाम से प्रसिद्ध) की रचना की।

भागवते कृष्णलीला वर्णिला वेदव्यास।
चैतन्य-लीलाते व्यास—वृन्दावनदास॥५५॥

अनुवाद

श्रील वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत में कृष्ण-लीलाओं का वर्णन किया और श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के व्यास हुए वृन्दावन दास।

तात्पर्य

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर वेदव्यास के अवतार थे और कृष्ण-लीला के कुसुमापीड़ नामक गोपाल थे। दूसरे शब्दों में, श्री चैतन्य-भागवत के लेखक श्रील वृन्दावन दास ठाकुर, जो श्रीवास ठाकुर की भांजी नारायणी के पुत्र थे, वेदव्यास तथा गोपाल कुसुमापीड़ के संयुक्त अवतार थे भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्री चैतन्य-भागवत के अपने भाष्य में वृन्दावन दास ठाकुर का विस्तृत जीवन-परिचय दिया है।

सर्वशाखा-श्रेष्ठ वीरभद्र गोसाञि।
ताँर उपशाखा ग्रत, तार अन्त नाइ॥५६॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु की समस्त शाखाओं में वीरभद्र गोसाईं सर्वोपरि थे। उनकी उपशाखाएँ अनन्त थीं।

अनन्त नित्यानन्दगण—के करु गणन।
आत्मपवित्रता-हेतु लिखिलाङ् कत जन॥५७॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के असंख्य अनुयायियों की कोई गणना नहीं कर सकता। मैंने तो आत्म शुद्धि के लिए उनमें से कुछ का ही उल्लेख किया है।

एइ सर्वशाखा पूर्ण—पक्व प्रेमफले।
ग्रारे देखे, तारे दिया भासाइल सकले॥५८॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के भक्तों की ये सारी शाखाएँ कृष्णप्रेम के पके फलों से पूर्ण थीं और उन्हें जो भी मिला उन सबों को ये फल बाँट दिये और कृष्णप्रेम से आप्लावित कर दिया।

अनर्गल प्रेम सबार, चेष्टा अनर्गल।
प्रेम दिते, कृष्ण दिते धरे महाबल॥५९॥

अनुवाद

इन सारे भक्तों में अबाध कृष्णप्रेम प्रदान करने की असीम शक्ति थी। वे अपनी शक्ति से किसी को भी कृष्ण तथा कृष्णप्रेम प्रदान कर सकते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है—*कृष्ण से तोमार, कृष्ण दिते पार, तोमार शकति आछे*। जिसका अर्थ है कि शुद्ध वैष्णव कृष्ण तथा कृष्णप्रेम का स्वामी होता है। वह जिस किसी को भी चाहे, उसको तार सकता है। अतएव कृष्ण तथा कृष्णप्रेम प्राप्त करने के लिए शुद्ध भक्तों की कृपा खोजनी

चाहिए। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर भी कहते हैं, "गुरु की कृपा से कृष्ण-कृपा प्राप्त होती है। गुरु की कृपा के बिना कोई उन्नति नहीं कर सकता (*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्यप्रसादम् न गतिः कुतोपि*)। वैष्णव या प्रामाणिक गुरु की कृपा से कृष्ण-प्रेम तथा कृष्ण दोनों प्राप्त किये जा सकते हैं।

संक्षेपे कहिलाङ् एइ नित्यानन्दगण।
य़ाँहार अवधि ना पाय 'सहस्र-वदन'॥६०॥

अनुवाद

मैंने श्री नित्यानन्द प्रभु के कुछेक अनुयायियों और भक्तों का ही संक्षेप में वर्णन किया है। एक हजार मुखों वाले शेषनाग भी इन असंख्य भक्तों का वर्णन नहीं कर सकते।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे य़ार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥६१॥

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के मन्तव्य की पूर्ति की प्रबल इच्छा से मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चल कर श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के ग्यारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें नित्यानन्द के अंशों का वर्णन है।

अध्याय १२

ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में *आदिलीला* के बारहवें अध्याय
दिया है। इस अध्याय में अद्वैत आचार्य के अनुयायियों का वर्णन
जिनमें से अद्वैत आचार्य के पुत्र अच्युतानन्द के अनुयायियों को
जाता है, क्योंकि उन्हें अद्वैत आचार्य द्वारा प्रतिपादित दर्शन का
ाप्त हुआ था। अद्वैत आचार्य के अन्य तथाकथित वंशजों तथा
ं को मान्यता प्राप्त नहीं है। इस अध्याय में अद्वैत आचार्य के
त मिश्र तथा उनके नौकर कमलाकान्त विश्वास की भी गाथा दी
ोपाल अपने बाल्यकाल में जगन्नाथ पुरी में गुण्डीचा मन्दिर बुहारते
र्च्छित हो गया था और इस तरह उसे चैतन्य महाप्रभु की कृपा
थी। कमलाकान्त विश्वास की कथा इस रूप में आती है कि
ापरुद्र महाराज से अद्वैत आचार्य का ऋण चुकाने के लिए तीन
उधार लिए थे और जब चैतन्य महाप्रभु को पता चला तो उन्होंने
फटकारा। तब अद्वैत आचार्य के प्रार्थना करने पर कमलाकान्त
ा था। अद्वैत आचार्य के वंशजों का वर्णन करने के बाद इस
के अन्त में गदाधर पंडित गोस्वामी के अनुयायियों का भी विवरण
ा है।

अद्वैताङ्घ्र्यब्जभृङ्गांस्तान् सारासारभृतोऽखिलान्।
हित्वाऽसारान् सारभृत्यो नौमि चैतन्यजीवनान्॥१॥

अनुवाद

ैत प्रभु के अनुयायी दो प्रकार के थे। कुछ तो असली थे छ नकली। मैं नकली अनुयायियों का बहिष्कार करते हुए श्री आचार्य के असली अनुयायियों को सादर नमस्कार करता हूँ, श्री चैतन्य महाप्रभु जीवनाधार थे।

जय जय महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य।
जय ज़य नित्यानन्द जयाद्वैत धन्य॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। नित्यानन्द प्रभु की जय हो और जय हो श्री अद्वैत प्रभु की। ये सभी धन्य हैं।

श्रीचैतन्यामरतरोर्द्वितीयस्कन्धरूपिण: ।
श्रीमद्वैतचन्द्रस्य शाखारूपान् गणान्नुम:॥३॥

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य रूपी नित्य वृक्ष की द्वितीय शाखा रूप सर्वयशस्वी अद्वैत प्रभु को तथा उनकी उपशाखा रूप उनके अनुयायियों को सादर नमस्कार करता हूँ।

वृक्षेर द्वितीय स्कन्ध—आचार्य गोसाञि।
ताँर ग्रत शाखा हइल, तार लेखा नाञि॥४॥

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु जिस वृक्ष की द्वितीय बड़ी शाखा थे उस वृक्ष की अनेक उपशाखाएँ हैं जिनका वर्णन कर सकना असम्भव है।

चैतन्य-मालीर कृपाजलेर सेचने।
सेइ जले पुष्ट स्कन्ध बाड़ दिने दिने॥५॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु माली भी थे और ज्यों-ज्यों वे अपने कृपा-रूपी जल से इस वृक्ष को सींचते त्यों-त्यों नित्यप्रति उसकी सारी शाखाएँ तथा उपशाखाएँ बढ़ती जातीं।

सेइ स्कन्धे ग्रत प्रेमफल उपजिल।
सेइ कृष्णप्रेमफले जगत् भरिल॥६॥

अनुवाद

इस चैतन्य-रूपी वृक्ष की शाखाओं में जो भगवत्प्रेम रूपी फल लगे, वे इतने अधिक थे कि सारा संसार कृष्णप्रेम से आप्लावित हो उठा।

किया जाय, फिर भी दोनों अवैध दलों में मुकदमा चल पड़ा, जो ४० वर्षों बाद भी बिना किसी फैसले के चल रहा है।

इसीलिए हम किसी दल से सम्बद्ध नही हैं। लेकिन चूँकि दोनों दलों ने गौड़ीय मठ संस्थान की भौतिक सम्पत्ति बाँटने में व्यस्त रहने के कारण प्रचार-कार्य बन्द कर दिया था, इसलिए हमने समस्त पूर्ववर्ती आचार्यों के संरक्षण में चैतन्य सम्प्रदाय का विश्व-भर में प्रचार करने के भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर तथा भक्तिविनोद ठाकुर के व्रत को अपनाया और हम देख रहे हैं कि हमारा अकिंचन प्रयास सफल रहा है। हमने उन सिद्धान्तों का पालन किया है, जिन्हें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *भगवद्गीता* के श्लोक *व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन* की व्याख्या में दिया है। विश्वनाथ चक्रवर्ती के इस आदेश के अनुसार शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन करे। आध्यात्मिक जीवन में प्रगति की सफलता का रहस्य शिष्य द्वारा गुरु के आदेशों में दृढ़ विश्वास रखना है। वेदों द्वारा इसकी पुष्टि हुई है—

यस्यदेवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशान्ते महात्मनः॥

''जो व्यक्ति गुरु तथा भगवान् के वचनों पर अटूट श्रद्धा रखता है उसे वैदिक ज्ञान प्राप्त होता है।'' कृष्णभावनामृत-आन्दोलन का प्रसार इसी सिद्धान्त के अनुसार किया जा रहा है। इसीलिए अनेक विरोधी असुरों के व्यवधानों के बावजूद हमारा प्रचार-कार्य सफलतापूर्वक चल रहा है, क्योंकि हमें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से सकारात्मक सहायता मिल रही है। मनुष्य को चाहिए कि हर काम का मूल्यांकन उसके फल से करे। स्वतः-नियुक्त आचार्य दल के सदस्य, जिन्होंने गौड़ीय मठ की सम्पत्ति हथियाई थी सन्तुष्ट तो हैं किन्तु वे प्रचार-कार्य में कोई प्रगति नहीं कर सके। अतएव उनके कार्यों के अनुसार उन्हें *असार* या व्यर्थ कहा जायेगा, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (**इस्कॉन**) की सफलता गुरु तथा गौरांग की अनुगामिनी होने से दिन-प्रतिदिन सारे संसार में बढ़ती जा रही है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती चाहते थे कि अधिक से अधिक पुस्तकें छाप कर उन्हें विश्व-भर में वितरित किया जाय। हमने इस कार्य को करने का यथाशक्ति प्रयास किया है और हमें आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है।

कहे त' आचार्य आज्ञाय, कहे त स्वतन्त्र।
स्वमत कल्पना करे दैव-परतन्त्र॥९॥

अनुवाद

कुछ शिष्यों ने आचार्य के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन किया और कुछ दैवीमाया के वशीभूत होकर अपना मत गढ़ने के कारण विपथ हो गये।

तात्पर्य

यह श्लोक *वाद* की शुरुआत को बताने वाला है। जब शिष्यगण गुरु के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन नहीं करते, तो तुरन्त दो मत हो जाते हैं। किन्तु गुरु के मत से भिन्न कोई भी मत व्यर्थ (असार) होता है। आध्यात्मिक उन्नति में भौतिकवादी मनमाने विचारों को प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। यही विपथन है। भौतिक विचारों में आध्यात्मिक उन्नति समंजित करने के लिए कोई स्थान नहीं है।

आचार्येर मत येइ, सेइ मत सार।
ताँर आज्ञा लङ्घिऽले, सेइ त' असार॥१०॥

अनुवाद

आध्यात्मिक जीवन में गुरु का आदेश मुख्य है। जो कोई गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करता है, वह तुरन्त व्यर्थ (असार) हो जाता है।

तात्पर्य

यह श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी का मत है। जो व्यक्ति गुरु के आदेशों का कठोरता से पालन करते हैं, वे भगवान् की इच्छा को पूरा करने में उपयोगी होते हैं, किन्तु जो गुरु के आदेशों से विपथ होते हैं, वे असार हैं।

असारेर नामे इहाँ नाहि प्रयोजन।
भेद जानिबारे करि एकत्र गणन॥११॥

अनुवाद

जो असार हैं, उनका नाम लेना व्यर्थ है। मैंने उनका उल्लेख केवल उपयोगी भक्तों से अन्तर दिखलाने के लिए किया है।

धान्यराशि मापे य़ैछे पात्ना सहिते।
पश्चाते पात्ना उडाञा संस्कार करिते॥१२॥

अनुवाद

पहले धान पुआल के साथ मिला रहता है और धान को पुआल से विलग करने के लिए उसे ओसाना पड़ता है।

तात्पर्य

कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा दिया गया यह उदाहरण अत्यन्त सटीक है। गौड़ीय मठ के सदस्यों पर ऐसी ही विधि लागू होती है। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के शिष्य तो अनेक हैं; किन्तु यह निर्णय करने के लिए कि वास्तव में कौन उनका शिष्य है और उन्हें उपयोगी तथा असार में विभाजित करने के लिए ऐसे शिष्यों द्वारा गुरु की इच्छा पूरी करने वाले कार्यकलापों को जानना होगा। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने भारत के बाहर श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय को फैलाने का भरसक प्रयत्न किया। जब वे जीवित थे, तो वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए शिष्यों को भारत से बाहर के देशों में भेजने के समर्थक थे। किन्तु इन शिष्यों को सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे लोग विदेशों में अपने सम्प्रदाय का प्रचार करने के प्रति सचेष्ट नहीं थे। वे तो विदेशों में जाने का श्रेय लूटना चाहते थे और भारत में उसी बल पर अपने को विदेश से लौटे प्रचारकों के रूप में विज्ञापित करना चाहते थे। अनेक संन्यासियों ने प्रचार की इस दिखावटी विधि को विगत ८० वर्षों से भी अधिक समय से अपना रखा है। किन्तु इनमें से कोई भी कृष्णभावनामृत के असली सम्प्रदाय का प्रचार सारे विश्व में नहीं कर पाया। वे भारत लौट कर यह झूठा विज्ञापन करते रहे कि उन्होंने सारे विदेशियों को वेदान्त या कृष्णभावनामृत के विचारों वाला बना दिया है। इसके बाद वे भारत में चन्दा एकत्र करके विलासी जीवन बिताने लगे। जिस प्रकार व्यर्थ पुआल से धान अलग करने के लिए ओसाना पड़ता है, उसी तरह कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा संस्तुत विधि स्वीकार करके यह जाना जा सकता है कि कौन असली विश्व-प्रचारक है और कौन असार है।

अच्युतानन्द—बड़ शाखा, आचार्य-नन्दन।
आजन्म सेविला तेँहो चैतन्य-चरण॥१३॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की एक विशाल शाखा थे उनके पुत्र अच्युतानन्द। वे अपने जीवन के प्रारम्भ से ही चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा में संलग्न रहे।

चैतन्य गोसाञिर गुरु-केशव भारती।
एइ पितार वाक्य शुनि' दुःख पाइल अति॥१४॥

अनुवाद

जब अच्युतानन्द ने अपने पिता से यह सुना कि केशव भारती चैतन्य महाप्रभु के गुरु थे, तो वे अत्यधिक अप्रसन्न हुए।

जगद्‌गुरुते तुमि कर ऐछे उपदेश।
तोमार एइ उपदेशे नष्ट हइल देश॥१५॥

अनुवाद

उन्होंने अपने पिता से कहा, "आपका यह उपदेश कि केशव भारती श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु हैं सारे देश को बर्बाद कर देगा।

चोद्द भुवनेर गुरु—चैतन्य-गोसाञि।
ताँर गुरु—अन्य, एइ कोन शास्त्रे नाइ॥१६॥

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु तो चौदहों लोकों के गुरु हैं किन्तु आप बतलाते हैं कि उनका गुरु अन्य कोई है। इसकी पुष्टि किसी शास्त्र द्वारा नहीं होती।"

पञ्चम वर्षेर बालक कहे सिद्धान्तेर सार।
शुनिया पाइला आचार्य सन्तोष अपार॥१७॥

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य ने अपने पाँच वर्ष के पुत्र अच्युतानन्द से यह वाक्य सुना, तो उन्हें परम सन्तोष हुआ, क्योंकि यह उनके निर्णय का सार

था।

तात्पर्य

तेरहवें से सत्रहवें श्लोक की टीका करते हुए भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अद्वैत आचार्य की वंशावली का विस्तृत वर्णन किया है। *चैतन्य-भागवत* के अन्त्य खण्ड के नवम अध्याय में बतलाया गया है कि अच्युतानन्द अद्वैत आचार्य के ज्येष्ठ पुत्र थे। *अद्वैत-चरित* नामक एक संस्कृत ग्रंथ में कहा गया है, "अद्वैत आचार्य के तीन पुत्र हुए—अच्युत, कृष्ण मिश्र तथा गोपाल दास। ये तीनों उनकी पत्नी सीतादेवी की कोख से जन्मे थे और तीनों ही चैतन्य महाप्रभु के भक्त थे। अद्वैत आचार्य के तीन पुत्र और थे जिनके नाम थे बलराम, स्वरूप तथा जगदीश। इस तरह उनके कुल छह पुत्र थे।" इन छहों में से तीन चैतन्य महाप्रभु के कट्टर अनुयायी थे और इनमें से अच्युतानन्द सबसे बड़े थे।

अद्वैत प्रभु का विवाह १५०० शकाब्द के प्रारम्भ में हुआ था। जब चैतन्य महाप्रभु १४३३-१४३४ शकाब्द में जगन्नाथ पुरी से वृन्दावन जा रहे थे, तो उन्होंने रामकेलि गाँव देखने की इच्छा व्यक्त की थी। तब अच्युतानन्द केवल पाँच वर्ष के थे। चैतन्य भागवत (अन्त्य खण्ड, चतुर्थ अध्याय) के अनुसार अच्युतानन्द उस समय केवल पाँच वर्ष के थे और नंगे खड़े थे (*पञ्चवर्ष वयस मधुर दिगम्बर*)। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि अच्युतानन्द का जन्म १४२८ ई. में हुआ होगा। अच्युतानन्द के जन्म के पूर्व अद्वैत प्रभु की पत्नी सीतादेवी चैतन्य महाप्रभु को जन्म के समय देखने गई थीं। अतएव असम्भव नहीं है कि १४०७ से १४२८ शकाब्द के बीच के २१ वर्षों में उन्हें तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई हो। *सीताद्वैत चरित* नामक एक अप्रामाणिक बंगला पुस्तक में, जो १७९२ शकाब्द में *नित्यानन्ददायिनी* नामक अप्रामाणिक अखबार में छपी थी, यह बतलाया गया है कि अच्युतानन्द श्री चैतन्य महाप्रभु के सहपाठी थे। *चैतन्य-भागवत* के अनुसार यह कथन तनिक भी विश्वसनीय नहीं है। संन्यास ग्रहण करने के बाद चैतन्य महाप्रभु १४३१ शकाब्द में शान्तिपुर स्थित अद्वैत प्रभु के घर पधारे थे। उस समय अच्युतानन्द की आयु केवल तीन वर्ष की थी, ऐसा कथन *चैतन्य-भागवत* के अन्त्य खण्ड के प्रथम अध्याय में मिलता है। इसमें यह भी कहा गया है कि अद्वैत प्रभु का नंगा बालक आकर चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा।

महाप्रभु ने तुरन्त ही उसे गोद में उठा लिया, यद्यपि वह बालक गंदा था और उसके पूरे शरीर में धूल लगी थी। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अच्युत! आचार्य मेरे पिता तुल्य हैं, अतएव हम दोनों भाई हुए।"

नवद्वीप में अपने निवास-स्थान पर अपना आध्यात्मिक स्वरूप प्रकट करने के पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीनिवास आचार्य के भाई श्री राम पंडित से कहा था कि तुम शान्तिपुर जाकर अद्वैत आचार्य को ले आओ। उस समय अच्युतानन्द अपने पिता के साथ हो लिये। कहा जाता है—*अद्वैतेर तनय 'अच्युतानन्द' नाम / परम बालक, सेहो कान्दे अविराम*। अच्युतानन्द भी दिव्य आनन्द में चिल्लाने में शरीक थे। यही नहीं, जब चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य को *भक्तियोग* के विरोधी निर्विशेष दृष्टिकोण से *श्रीमद्भागवत* की व्याख्या करने के लिए फटकारा था, तब भी अच्युतानन्द उपस्थित थे। अतएव ये सारी घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास-ग्रहण करने के दो-तीन वर्ष पूर्व घटी होंगी। *चैतन्य-भागवत* के अन्त्य खण्ड के उन्नीसवें अध्याय में कहा गया है कि अद्वैत आचार्य के पुत्र ने महाप्रभु को नमस्कार किया। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि अच्युतानन्द अपने जीवन के प्रारम्भ से ही चैतन्य महाप्रभु के बड़े भक्त थे।

इसकी तो सूचना नहीं है कि अच्युतानन्द का कभी विवाह हुआ, किन्तु उन्हें अद्वैत आचार्य वंश की सब से बड़ी शाखा कहा गया है। *शाखानिर्णयामृत* नामक पुस्तक से ज्ञात होता है कि अच्युतानन्द गदाधर के शिष्य थे और उन्होंने जगन्नाथ पुरी में चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण की तथा भक्ति में लग गये। *चैतन्य-चरितामृत* में (आदिलीला, अध्याय दस) बतलाया गया है कि अद्वैत आचार्य के पुत्र अच्युतानन्द चैतन्य महाप्रभु की शरण में जगन्नाथ पुरी में रहते थे। इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि वे पण्डित गदाधर के शिष्य थे। रथयात्रा के समय रथ के समक्ष श्री चैतन्य महाप्रभु के नाचने का जो विवरण मिलता है, उसमें कई बार अच्युतानन्द का भी नामोल्लेख हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि शान्तिपुर से आई अद्वैत आचार्य की मंडली में अच्युतानन्द नाच रहे थे और बाकी लोग गा रहे थे। उस समय वे केवल छह वर्ष के बालक थे। श्री कविकर्णपूर द्वारा रचित *गौरगणोद्देश-दीपिका* में बतलाया गया है कि अच्युतानन्द गदाधर पण्डित के शिष्य थे और चैतन्य महाप्रभु के प्रिय महान् भक्त थे। कुछेक के अनुसार वे शिवजी के पुत्र कार्तिकेय के अवतार थे। कुछ लोगों के अनुसार वे

पूर्वजन्म में अच्युत नामक गोपी थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में इन दोनों मतों का समर्थन हुआ है। एक अन्य पुस्तक *नरोत्तम-विलास* में, जिसे श्री नरहरि दास ने संकलित किया है, खेटरि-उत्सव के समय अच्युतानन्द की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार अच्युतानन्द अपने जीवन के अन्तिम समय शान्तिपुर वाले घर में रहते थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में वे गदाधर पंडित के साथ जगन्नाथ पुरी में रहते थे।

अद्वैत आचार्य के छह पुत्रों में से तीन—अच्युतानन्द, कृष्ण मिश्र तथा गोपाल दास आज्ञापूर्वक चैतन्य महाप्रभु की सेवा करते रहे। चूँकि अच्युतानन्द ने विवाह नहीं किया, इसलिए उनके कोई सन्तान नहीं थी। अद्वैत आचार्य के द्वितीय पुत्र कृष्ण मिश्र के दो पुत्र थे—रघुनाथ चक्रवर्ती तथा दोलगोविन्द। रघुनाथ के वंशज आज भी मदनगोपालपाड़, गणकर, मृजापुर तथा कुमारखालि के पड़ोस में शान्तिपुर में रहते हैं। दोलगोविन्द के तीन पुत्र हुए—चाँद, कन्दर्प तथा गोपीनाथ। कन्दर्प के वंशज मल्दाह में जिकाबाड़ी गाँव में रहते हैं। गोपीनाथ के भी तीन पुत्र हुए—श्री वल्लभ, प्राणवल्लभ तथा केशव। श्री वल्लभ के वंशज मशियाडारा (महिषडेरा), दामुकदिया तथा चण्डीपुर नामक गाँवों में रहते हैं। श्री वल्लभ के वंश का वंश-वृक्ष प्राप्त है जो उनके ज्येष्ठ पुत्र गंगानारायण से शुरू होता है। श्री वल्लभ के सबसे छोटे पुत्र रामगोपाल के वंशज अभी भी दामुकदिया, चण्डीपुर, शोलमारी आदि गाँवों में रह रहे हैं। प्राणवल्लभ तथा केशव के वंशज उथली में रहते हैं। प्राणवल्लभ का पुत्र रत्नेश था, जिसका पुत्र कृष्णराम हुआ और इसके सब से छोटे पुत्र का नाम लक्ष्मीनारायण था। इसका पुत्र नवकिशोर हुआ और नवकिशोर का दूसरा पुत्र राममोहन हुआ, जिसका ज्येष्ठ पुत्र जगबन्धु था, जिसके तीसरे पुत्र वीरचन्द्र ने संन्यास ग्रहण कर कटवा में चैतन्य महाप्रभु का विग्रह स्थापित किया। राममोहन के अन्य दो पुत्रों के नाम थे बड़ प्रभु तथा छोट प्रभु। इन्होंने नवद्वीप धाम की परिक्रमा का उद्घाटन किया। कृष्ण मिश्र की परम्परा में अद्वैत प्रभु के वंश-वृक्ष के लिए *वैष्णव-मञ्जूषा* नामक ग्रंथ देखना चाहिए।

कृष्णमिश्र-नाम आर आचार्य-तनय।
चैतन्य-गोसाञि बैसे याँहार हृदय ॥१८॥

अनुवाद

कृष्ण मिश्र अद्वैत आचार्य के पुत्र थे। उनके हृदय में श्री चैतन्य महाप्रभु

सदैव विराजमान रहते थे।

श्रीगोपाल-नामे आर आचार्येर सुत।
ताँहार चरित्र, शुन, अत्यन्त अद्‌भुत॥१९॥

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य प्रभु के दूसरे पुत्र थे श्री गोपाल। अब उनकी विशेषताओं के बारे में सुनिये क्योंकि वे अत्यन्त अद्‌भुत हैं।

तात्पर्य

श्री गोपाल अद्वैत आचार्य के तीन भक्त पुत्रों में से थे। *चैतन्य-चरितामृत* में (मध्यलीला, अध्याय १२, श्लोक १४३-१४९) उनके जीवन तथा चरित्र का वर्णन हुआ है।

गुण्डिचा-मन्दिरे महाप्रभु सम्मुखे।
कीर्तन नर्तन करे बड़ प्रेम-सुखे॥२०॥

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु अपने हाथ से जगन्नाथ पुरी में गुण्डीचा मन्दिर की सफाई करते थे, तो गोपाल बड़े प्रेम और सुख से भगवान् के समक्ष नाचता था।

तात्पर्य

गुण्डीचा मन्दिर जगन्नाथ पुरी में स्थित है और प्रतिवर्ष जगन्नाथ, बलभद्र तथा सुभद्रा जगन्नाथ मन्दिर से निकल कर यहाँ आठ दिनों तक रुकते हैं। जब चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रह रहे थे, तो वे प्रतिवर्ष अपने प्रमुख भक्तों के साथ इस मन्दिर की सफाई करते थे। *चैतन्य-चरितामृत* के *गुण्डीचामर्जन* अध्याय में इसका विशद वर्णन हुआ है।

नाना-भावोद्‌गम देहे अद्‌भुत नर्तन।
दुइ गोसाञि 'हरि' बले, आनन्दित मन॥२१॥

अनुवाद

जिस समय चैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत प्रभु नाचते तथा हरे कृष्णमन्त्र का कीर्तन करते थे, तो उनके शरीरों में विविध भावमय लक्षण प्रकट

होने लगते और उनके मन अत्यन्त प्रमुदित होते थे।

नाचिते नाचिते गोपाल हइल मूर्च्छित।
भूमेते पड़िल, देहे नाहिक सँवित॥२२॥

अनुवाद

जब वे सब नाच रहे थे तो गोपाल नाचते-नाचते मूर्छित हो गया और भूमि पर गिर कर अचेत हो गया।

दुःखित हइला आचार्य पुत्र कोले लञा।
रक्षा करे नृसिंहेर मन्त्र पड़िया॥२३॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य अत्यन्त दुखी हुए। वे अपने पुत्र को अपनी गोद में उठाकर उसकी रक्षा के लिए नृसिंह-मन्त्र का उच्चारण करने लगे।

नाना मन्त्र पड़ेन आचार्य, ना हय चेतन।
आचार्येर दुःखे वैष्णव करेन क्रन्दन॥२४॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने विविध मन्त्रों का उच्चारण किया, किन्तु गोपाल को होश नहीं आया। अतएव वहाँ पर उपस्थित सारे वैष्णव उनकी व्यथा से शोकातुर होकर रुदन करने लगे।

तबे महाप्रभु, ताँर हृदे हस्त धरि'।
'उठह, गोपाल' कैल बल 'हरि' 'हरि'॥२५॥

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने गोपाल की छाती पर अपना हाथ रखा और उससे कहा, "हे गोपाल! उठो और भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करो।"

उठिल गोपाल प्रभुर स्पर्श-ध्वनि शुनि'।
आनन्दित हञा सबे करे हरि ध्वनि॥२६॥

अनुवाद

जब गोपाल ने महाप्रभु की आवाज सुनी और उनके स्पर्श का अनुभव

किया तो वह तुरन्त उठ बैठा सारे वैष्णव खुशी में हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगें।

आचार्येर आर पुत्र—श्रीबलराम।
आर पुत्र—'स्वरूप' शाखा, 'जगदीश' नाम॥२७॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य के अन्य पुत्र श्री बलराम, स्वरूप तथा जगदीश थे।

तात्पर्य

अद्वैत-चरित नामक संस्कृत पोथी में लिखा है कि बलराम, स्वरूप तथा जगदीश अद्वैत आचार्य के चौथे, पाँचवे तथा छठे पुत्र थे। इस तरह उनके छह पुत्र थे। ये तीनों स्मार्त या मायावादी थे, अतएव वैष्णव समाज द्वारा परित्यक्त थे। कभी-कभी मायावादी अपने को वैष्णव अर्थात् विष्णुपूजक होने का ढोंग करते हैं, किन्तु वास्तव में वे विष्णु को परमेश्वर नहीं मानते, क्योंकि वे शिव, दुर्गा, सूर्यदेव तथा गणेश को परमेश्वर तुल्य समझते हैं। ये लोग सामान्यतया *पञ्चोपासक स्मार्त* कहलाते हैं। इनकी गणना वैष्णवों में नहीं की जानी चाहिए।

बलराम के तीन पत्नियाँ तथा नौ पुत्र थे। पहली पत्नी से उत्पन्न उनके सबसे छोटे पुत्र का नाम मधुसुदन गोस्वामी था। उन्होंने भट्टाचार्य उपाधि ग्रहण की और स्मार्त-पंथ या मायावादी दर्शन स्वीकार किया। श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती लिखते हैं कि गोस्वामी भट्टाचार्य के पुत्र श्री राधारमण गोस्वामी भट्टाचार्य ने गोस्वामी की पदवी अस्वीकार कर दी क्योंकि यह संन्यासियों की सूचक पदवी है। जो व्यक्ति अब भी गृहस्थाश्रम में हो, उसे *गोस्वामी* पदवी का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने गोस्वामी जाति को मान्यता नहीं दी है क्योंकि वे उन षड् गोस्वामियों की पंक्ति में नहीं हैं जो चैतन्य महाप्रभु के प्रत्यक्ष शिष्य थे। इन षड् गोस्वामियों के नाम थे—श्रील रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्रील भट्ट रघुनाथ गोस्वामी, श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी तथा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने कहा कि गृहस्थआश्रम तो इन्द्रियतृप्ति के लिए एक प्रकार की छूट है। अतएव गृहस्थ को चाहिए कि वह झूठे ही गोस्वामी पदवी न ग्रहण करे। **इस्कान** आन्दोलन ने कभी-भी गोस्वामी की पदवी किसी गृहस्थ को प्रदान नहीं की। यद्यपि

इस्कान में दीक्षित सारे संन्यासी तरुण हैं किन्तु हमने उन्हें *स्वामी* एवं गोस्वामी पदवियाँ इसलिए प्रदान की हैं क्योंकि श्री चैतन्य सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर उल्लेख करते हैं कि गृहस्थ गोस्वामी जाति न केवल गोस्वामी उपाधि का अनादर करती है, अपितु श्राद्धकर्म के समय वे अद्वैत आचार्य का तिनके का पुतला जलाते हैं और इस तरह राक्षसी कर्म करते हैं तथा वैष्णवों के मार्गदर्शक *हरिभक्ति-विलास* के *जनक* का अनादर करते हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि कभी-कभी ये स्मार्त जाति के गोस्वामी वैष्णव दर्शन पर पुस्तक लिखते हैं या मूल शास्त्रों की टीका करते हैं, किन्तु शुद्ध भक्तों को चाहिए कि इनको पढ़ने से अपने को बचायें।

'कमलाकांत विश्वास'-नाम आचार्यकिङ्कर।
आचार्य-व्यवहार-सब—ताँहार गोचर॥२८॥

अनुवाद

आचार्य अद्वैत का अत्यन्त विश्वासपात्र नौकर कमलाकान्त विश्वास अद्वैत आचार्य के सारे आचारों-व्यवहारों को जानता था।

तात्पर्य

आदिलीला (१०.१४९) तथा मध्यलीला (१०.९४) में क्रमश: उल्लिखित कमलानन्द तथा कमलाकान्त एक ही व्यक्ति हैं। कमलाकान्त चैतन्य महाप्रभु का अत्यन्त विश्वस्त नौकर था, वह ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न था और अद्वैत आचार्य के निजी सचिव के रूप में कार्य करता था। जब परमानन्द पुरी नवद्वीप से जगन्नाथ पुरी गये तो वे अपने साथ कमलाकान्त विश्वास को लेते गये और वे दोनों चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गये। मध्यलीला में (१०.९४) उल्लेख है कि चैतन्य महाप्रभु का एक ब्राह्मण-भक्त कमलाकान्त परमानन्द पुरी के साथ जगन्नाथ पुरी गया।

नीलाचले तेंहो एक पत्रिका लिखिया।
प्रतापरुद्रेर पाश दिल पाठाइया॥२९॥

अनुवाद

जब कमलाकान्त विश्वास जगन्नाथ पुरी में था तो उसने किसी के हाथों एक चिठ्ठी महाराज प्रतापरुद्र के पास भेजी।

सेइ पत्रीर कथा आचार्य नाहि जाने।
कोन पाके सेइ पत्री आइल प्रभुस्थाने॥३०॥

अनुवाद

किसी को इस चिट्ठी का पता नहीं था, किन्तु यह चिट्ठी किसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के हाथ लग गई।

से पत्रीते लेका आछे—एइ त' लिखन।
ईश्वरत्वे आचार्येर करियाछे स्थापन॥३१॥

अनुवाद

इस चिट्ठी में यह स्थापना की गई थी कि अद्वैत आचार्य भगवान् के अवतार हैं।

किन्तु ताँर दैवे किछु हइयाछे ऋण।
ऋण शोधिबारे चाहि टङ्का शत-तिन॥३२॥

अनुवाद

किन्तु साथ ही यह भी उल्लेख था कि अद्वैत आचार्य के ऊपर हाल ही में तीन सौ रुपये का ऋण चढ़ गया है जिसे कमलाकान्त समाप्त करना चाहता है।

पत्र पड़िया प्रभुर मने हैल दुःख।
बाहिरे हासिया किछु बले चन्द्रमुख॥३३॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु यह चिट्ठी पढ़ कर अत्यन्त दुखी हुए, यद्यपि ऊपर से उनका मुख अब भी चन्द्रमा के समान चमक रहा था। इस प्रकार हँसते हुए महाप्रभु ने यह कहा।

आचार्येर स्थापियाछे करिया ईश्वर।
इथे दोष नाहि, आचार्य—दैवत ईश्वर॥३४॥

अनुवाद

"उसने अद्वैत आचार्य को भगवान् का अवतार स्थापित कर दिया है। इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि वे सचमुच साक्षात् भगवान् हैं।"

ऐश्वरेर दैन्य करि' करियाछे भिक्षा।
अतएव दण्ड करि' कराइब शिक्षा॥३५॥

अनुवाद

"किन्तु उसने भगवान् को दीन भिक्षुक बना दिया है, अतएव मैं उसकी इस भूल के लिए उसे पाठ पढ़ाऊँगा।"

तात्पर्य

किसी व्यक्ति को ईश्वर या नारायण का अवतार कहना और साथ ही साथ उसे गरीब बतलाना विरोधात्मक है और यह सब से बड़ा अपराध भी है। मायावादी दार्शनिक यह प्रचार करके कि हर व्यक्ति ईश्वर है वैदिक संस्कृति को विनष्ट कर रहे हैं। ये गरीब मनुष्य को *दरिद्रनारायण* कह कर बखानते हैं। चैतन्य महाप्रभु को कभी-भी ऐसे मूर्ख और अप्रामाणिक विचार स्वीकार नहीं थे। उन्होंने दृढ़तापूर्वक आगाह किया है—*मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश*—जो कोई मायावादी दर्शन का पालन करता है, समझ लो उसका विनाश हो चुका। ऐसे मूर्ख को दण्ड द्वारा सुधारे जाने की आवश्यकता है।

यद्यपि यह कहना विरोधमूलक है कि भगवान् या उसका अवतार दरिद्र है किन्तु शास्त्रों में हम पाते हैं कि जब भगवान् ने वामन के रूप में अवतार लिया तो उन्होंने महाराज बलि से भूमि माँगी। किन्तु हर कोई यह जानता है कि वामनदेव दरिद्र न थे। महाराज बलि से भीख माँगना तो उन पर कृपा करने की चाल थी। जब महाराज बलि ने सचमुच भूमि दे दी तो वामनदेव ने अपने सर्वशक्तिमान पद का प्रदर्शन तीनों लोकों को अपने तीन चरणों से नाप कर किया। हमें चाहिए कि ऐसे तथाकथित दरिद्रनारायणों को अवतार न मानें, क्योंकि ये असली ईश्वर के अवतार के ऐश्वर्य को प्रदर्शित करने में पूर्णतया अक्षम रहते हैं।

गोविन्देर आज्ञा दिल,—"इँहा आजि हैते।
बाउलिया विश्वासे एथा ना दिबे आसिते॥"३६॥

अनुवाद

महाप्रभु ने गोविन्द को आज्ञा दी, "आज से उस बाउलिया कमलाकान्त विश्वास को यहाँ मत आने देना।"

तात्पर्य

बाउलिया बाउल उन तेरह अवैध सम्प्रदायों में से हैं, जो अपने को चैतन्य महाप्रभु का अनुयायी बतलाते हैं। महाप्रभु ने अपने निजी सहायक गोविन्द को आज्ञा दी कि जब वे रहें तो कमलकान्त विश्वास को उनके सामने न आने दे क्योंकि वह बाउलिया बन गया है। इस तरह भले ही बाउल सम्प्रदाय, आउल सम्प्रदाय तथा सहजिया सम्प्रदाय के साथ-साथ स्मार्त, जात-गोसाईं, अतिबाड़ि, चूड़ाधारी तथा गौरांग-नागरी अपने को चैतन्य महाप्रभु की परम्परा में बतलाते हैं, किन्तु महाप्रभु ने उन सबों का बहिष्कार किया था।

दण्ड शुनि 'विश्वास' हइल परम दुःखित।
शुनिया प्रभुर दण्ड आचार्य हर्षित॥३७॥

अनुवाद

जब कमलाकान्त विश्वास ने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिये गये इस दण्ड के बारे में सुना तो वह बहुत दुखी हुआ, किन्तु जब अद्वैत प्रभु ने सुना तो परम प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

भगवद्गीता में (९.२९) भगवान् कहते हैं—*समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः*—न मैं किसी से द्वेष करता हूँ, न किसी का पक्षपात करता हूँ। मैं सबों के प्रति समभाव रखता हूँ। चूँकि भगवान् सबों के लिए सम हैं अतएव न तो उनका कोई शत्रु है, न कोई मित्र। चूँकि प्रत्येक जीव भगवान् का अंश या पुत्र है, अतएव वे किसी का पक्षपात करके न तो उसे शत्रु मान सकते हैं न मित्र। अतएव जब महाप्रभु ने कमलाकान्त को दण्ड दिया कि वह उनके पास न आने पाये, तो यह दण्ड उसके लिए अत्यन्त कठोर था; किन्तु अद्वैत आचार्य इस दण्ड का आशय समझ कर प्रसन्न थे; क्योंकि वे समझ गये थे कि महाप्रभु ने वास्तव में कमलाकान्त विश्वास पर कृपा की है। इसीलिए वे तनिक भी दुखी नहीं थे। भक्तों को चाहिए कि अपने स्वामी भगवान् के साथ सारे व्यवहारों के समय सदैव प्रसन्न रहें। भक्त भले ही विपत्ति या संपत्ति प्राप्त करे, किन्तु उसे भगवान् के इन उपहारों को स्वीकार करना चाहिए और सभी परिस्थितियों में हँसी-खुशी भगवान् की सेवा में लगे रहना चाहिए।

विश्वासेर कहे,—तुमि बड़ भाग्यवान्।
तोमारे करिल दण्ड प्रभु भगवान्॥३८॥

अनुवाद

कमलाकान्त विश्वास को अप्रसन्न देख कर अद्वैत आचार्य ने उससे कहा "तुम परम भाग्यशाली हो कि भगवान् चैतन्य महाप्रभु द्वारा दण्डित हुए हो।"

तात्पर्य

श्री अद्वैत आचार्य का यह साधिकार निर्णय है। उन्होंने स्पष्ट सलाह दी है कि जब भगवान् की आज्ञा से किसी पर विपत्तियाँ आयें तो उसे दुखी नहीं होना चाहिए। भक्त को भगवान् द्वारा प्रदान की गई सम्पत्ति या विपत्ति को ग्रहण करके प्रसन्न होना चाहिए, भले ही वह उसे अपने हिसाब से अनुकूल या प्रतिकूल क्यों न लगे।

पूर्वे महाप्रभु मोरे करेन सम्मान।
दुःख पाइ' मने आमि कैलूँ अनुमान॥३९॥

अनुवाद

"पहले तो चैतन्य महाप्रभु अपने गुरुजन की तरह मेरा आदर करते थे, किन्तु मुझे यह सब पसन्द न था। अतएव मैंने मन दुखित होने के कारण योजना बनाई है।

मुक्ति—श्रेष्ठ करि' कैनु वाशिष्ठ व्याख्यान।
क्रुद्ध हञा प्रभु मोरे कैल अपमान॥४०॥

अनुवाद

"मैंने मुक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य मानने वाले ग्रंथ योगवाशिष्ठ की व्याख्या की, इसीलिए महाप्रभु मुझ पर क्रुद्ध हुए हैं और उन्होंने मेरे प्रति दिखावटी असम्मान प्रदर्शित किया है।"

तात्पर्य

योगवाशिष्ठ नामक ग्रंथ को मायावादी जन अत्यधिक महत्व देते हैं, क्योंकि यह भगवान्-विषयक निर्विशेष भ्रान्तियों से परिपूर्ण है। इसमें वैष्णवता का लेश भी नहीं है। यथार्थ में सारे वैष्णवों को ऐसी पुस्तक से बचना चाहिए

किन्तु अद्वैत आचार्य चाहते थे कि महाप्रभु उन्हें दण्ड दें, इसलिए वे योगवाशिष्ठ के निर्विशेषवादी कथनों का समर्थन करने लगे। इसलिए महाप्रभु उन पर क्रुद्ध हो गये और एक तरह से उनका अपमान किया।

दण्ड पाञा हैल मोर परम उपकार।
य़े दण्ड पाइल भाग्यवान् श्रीमुकुन्द॥४१॥

अनुवाद

"चैतन्य महाप्रभु से प्रताड़ित होकर मैं परम प्रसन्न हुआ कि मुझे भी श्री मुकुन्द जैसा दण्ड प्राप्त हुआ है।"

तात्पर्य

श्री मुकुन्द महाप्रभु के परम मित्र एवं संगी थे और वे ऐसे स्थानों में जाते रहते थे जहाँ के लोग वैष्णव-सम्प्रदाय के विरुद्ध थे। जब महाप्रभु को इसका पता चला तो उन्होंने मुकुन्द को दण्ड दिया और मना कर दिया कि वह फिर से अपना मुँह नहीं दिखाये। यद्यपि महाप्रभु फूल के समान कोमल थे, किन्तु वज्र के समान कठोर भी थे और हर व्यक्ति मुकुन्द को महाप्रभु के समक्ष भेजने में भय खाता था। इसलिए मुकुन्द ने अत्यधिक दुखी होने के कारण अपने मित्रों से पूछा कि क्या कभी उसे महाप्रभु का दर्शन करने दिया जायेगा या नहीं। जब लोग यह प्रश्न लेकर महाप्रभु के पास पहुँचे तो उन्होंने उत्तर दिया, "मुकुन्द लाखों वर्षों बाद मेरा दर्शन करने की अनुमति पा सकेगा।" जब लोगों ने यह सूचना मुकुन्द को दी तो वह हर्ष से नाचने लगा और जब महाप्रभु ने सुना कि लाखों वर्षों बाद दर्शन पाने के समाचार से वह इतना पुलकित है तो उन्होंने उसे वापस आने को कहा। *चैतन्य-भागवत* मध्यलीला दशम अध्याय में मुकुन्द के दण्ड से सम्बन्धित एक विवरण है।

य़े दण्ड पाइल श्रीशची भाग्यवती।
से दण्ड प्रसाद अन्य लोक पाबे कति॥४२॥

अनुवाद

"ऐसा ही दण्ड माता शचीदेवी को मिला था। भला ऐसा दण्ड पाकर उनसे अधिक कौन भाग्यवान हो सकेगा?"

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत मध्यलीला, अध्याय बाईस में उल्लेख है कि माता शचीदेवी को इसी प्रकार दण्ड मिला था। माता शचीदेवी ने अपनी स्त्री-प्रकृति दिखलाते हुए अद्वैत प्रभु पर आरोप लगाया था कि उन्होंने उनके पुत्र को संन्यासी बनने के लिए प्रोत्साहित किया है। चैतन्य महाप्रभु ने इस आरोप को अपराध मानते हुए शचीदेवी से कहा कि वे अपना अपराध समाप्त करने के लिए अद्वैत प्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करें।

एत कहि' आचार्य ताँरे करिया आश्वास।
आनन्दित हइया आइल महाप्रभु-पाश॥४३॥

अनुवाद

इस प्रकार से कमलाकान्त को शान्त करने के बाद श्री अद्वैत प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गये।

प्रभुके कहेन,—तोमार ना बूझि ए लीला।
आमा हैते प्रसादपात्र करिला कमला॥४४॥

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु से कहा, ''आपकी लीला मेरी समझ में नहीं आती। आपने तो मुझ से भी बढ़ कर कमलाकान्त पर कृपा की है।

आमारेह कभु ग्रेइ ना हय प्रसाद।
तोमार चरणे आमि कि कैनु अपराध॥४५॥

अनुवाद

''आपने कमलाकान्त पर जो कृपा की है, वह इतनी महान् है कि आपने मुझ पर भी कभी ऐसी कृपा नहीं की। भला मैंने आपके चरणकमलों पर कौन-सा ऐसा अपराध किया है कि आपने यह कृपा मुझ पर नहीं दिखलाई?''

तात्पर्य

यहाँ पर अद्वैत आचार्य को पहले जो दण्ड दिया गया है, उसका सन्दर्भ है। जब अद्वैत आचार्य प्रभु *योगवाशिष्ठ* पढ़ रहे थे, तो चैतन्य महाप्रभु

ने उन्हें पीटा था, किन्तु उन्होंने कभी यह नहीं कहा था कि तुम मेरे पास मत आना। किन्तु कमलाकान्त को यह आदेश मिला था कि वह कभी उनके पास न जाये। इसलिए अद्वैत आचार्य चैतन्य महाप्रभु को यह बतलाना चाह रहे थे कि उन्होंने कमलाकान्त विश्वास पर अधिक कृपा की है क्योंकि उसे अपने पास आने से मना कर दिया है जबकि उनके साथ उन्होंने वैसा नहीं किया। इसलिए कमलाकान्त के प्रति प्रदर्शित कृपा अद्वैत आचार्य की अपेक्षा अधिक थी।

एत शुनि' महाप्रभु हासिते लागिला।
बोलाइया कमलाकान्ते प्रसन्न हइला॥४६॥

अनुवाद

यह सुन कर चैतन्य महाप्रभु प्रसन्नता की हँसी हँसे और तुरन्त ही उन्होंने कमलाकान्त को बुलाया।

आचार्य कहे, इहाके केने दिले दरशन।
दुइ प्रकारेते करे मोरे विडम्बन॥४७॥

अनुवाद

तब अद्वैत आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, "आपने इस व्यक्ति को फिर से क्यों बुलाया और इसे अपना दर्शन करने की क्यों अनुमति दी है? इसने तो मुझे दो प्रकार से धोखा दिया है।"

शुनिया प्रभुर मन प्रसन्न हइल।
दुँहार अन्तर-कथा दुँहे से जानिल॥४८॥

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना तो उनका मन प्रसन्न हो गया। केवल वे ही एक दूसरे के मन की बातें समझ सकते थे।

प्रभु कहे,—बाउलिया, ऐछे काहे कर।
आचार्येर लज्जा-धर्म-हानि से आचर॥४९॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने कमलाकान्त को आदेश दिया, "तुम तो बाउलिया हो जो यह भी नहीं जानता कि कौन वस्तु क्या है। तुम इस तरह

क्यों करते हो? तुम अद्वैत आचार्य की एकान्तता को क्यों भंग करते हो तथा उनके धार्मिक सिद्धान्तों को क्षति पहुँचाते हो?"

तात्पर्य

कमलाकान्त विश्वास ने अज्ञानवश जगन्नाथ पुरी के राजा महाराज प्रतापरुद्र से अद्वैत आचार्य के तीन सौ रुपयों का ऋण समाप्त करने की याचना की थी, किन्तु साथ ही यह भी स्थापित किया था कि अद्वैत आचार्य भगवान् के अवतार हैं। यह विरोधात्मक है। भगवान् का अवतार इस भौतिक जगत के किसी भी व्यक्ति का ऋणी नहीं हो सकता। चैतन्य महाप्रभु इस प्रकार के विरोध से, जिसे *रसाभास* कहते हैं, कभी भी प्रसन्न नहीं होते। यह उसी प्रकार का विचार है जिस प्रकार कि नारायण का दरिद्र होना (*दरिद्रनारायण*)।

प्रतिग्रह कभु ना करिबे राजधन।
विषयीर अन्न खाइल दुष्ट हय मन॥५०॥

अनुवाद

"मेरे गुरु अद्वैत आचार्य को धनी पुरुषों या राजाओं का दान कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिए था, क्योंकि यदि गुरु ऐसे भौतिकतावादियों का धन या अन्न स्वीकार करता है तो उसका मन दूषित हो जाता है।"

तात्पर्य

भौतिकतावादी व्यक्तियों का धन या भोज्य पदार्थ स्वीकार करना अत्यन्त घातक है, क्योंकि ऐसा करने से दान लेने वाले का मन दूषित हो जाता है। वैदिक प्रथा के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि संन्यासियों तथा ब्राह्मणों को दान दे क्योंकि ऐसा करने से वह पापमुक्त हो जाता है। इसीलिए पुराने जमाने में ब्राह्मण ऐसे व्यक्ति से दान नहीं लेते थे जो अत्यन्त पवित्र न हो। चैतन्य महाप्रभु ने सभी गुरुओं के लिए यह आदेश दिया। ऐसे भौतिकतावादी व्यक्ति जो यौनाचार, नशा, द्यूतक्रीड़ा तथा मांसाहार जैसे पापपूर्ण कार्य त्यागना नहीं चाहते, कभी-कभी हमारे शिष्य बनना चाहते हैं, किन्तु उन पेशेवर गुरुओं की तरह वैष्णवजन सस्ते शिष्य नहीं बनाते जो शिष्यों की अवस्था का ध्यान न रखते हुए शिष्य स्वीकार करते हैं। इसके पूर्व कि कोई वैष्णव

आचार्य किसी को अपना शिष्य बनाये, उसे शिष्य द्वारा विधि-विधानों का पालन करवाना चाहिए। वस्तुत: वैष्णवों को चाहिए कि वह ऐसे व्यक्तियों का दान या अन्न तक न ग्रहण करें जो वैष्णव-नियमों का पालन नहीं करते।

मन दुष्ट हइले नहे कृष्णेर स्मरण।
कृष्णस्मृति विनु हय निष्फल जीवन॥५१॥

अनुवाद

"जब मनुष्य का मन दूषित रहता है तो कृष्ण का स्मरण बड़ी कठिनाई से होता है और जब कृष्ण के स्मरण में बाधा आती है तो जीवन निष्फल हो जाता है।

तात्पर्य

भक्त को सदैव सतर्क रहना चाहिए कि मन शुद्ध रहे जिससे वह सदैव भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण कर सके। शास्त्रों का कथन है—*स्मर्तव्यं सततं विष्णु:*—भक्त होने पर मनुष्य को सदैव भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए। श्रील शुकदेव गोस्वामी ने भी महाराज परीक्षित को यही उपदेश दिया था—*स्मर्तव्यो नित्यश:*। *श्रीमद्भागवत* में (२.१.५) शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को सलाह दी—

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् ईश्वरो हरि:।
श्रोतव्य: कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्॥

"हे राजा भरत के वंशज! जो व्यक्ति सारे कष्टों से छूटना चाहता है उसे चाहिए कि भगवान् का श्रवण करे, उसकी महिमा का गान करे और उसका स्मरण भी करे क्योंकि वह परमात्मा है, नियन्ता है और सारे कष्टों से बचाने वाला है।" यह सारांश है वैष्णव के सारे कार्यों का और यही उपदेश यहाँ भी दुहराया गया है। (*कृष्णस्मृति विनु हय निष्फल जीवन*)। श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में कहा है—*अव्यर्थ कालत्वम:*—वैष्णव को चाहिए कि अपने बहुमूल्य जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ न जाने दे। यह वैष्णव का लक्षण है। किन्तु ऐसे धनी या विषयी व्यक्ति की संगति से, जो इन्द्रियतृप्ति में ही रुचि रखते हैं, मनुष्य का मन दूषित हो जाता है और कृष्ण के सतत स्मरण में बाधा पहुँचती है। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु

ने सलाह दी है—*असत्संगत्याग—एइ वैष्णव-आचार:*—वैष्णव को ऐसा आचरण करना चाहिए कि कभी-भी अभक्तों या भौतिकतावादियों की संगति न हो (चैतन्य-चरितामृत मध्य २२-८७)। ऐसी संगति से बचने का उपाय है कि अपने मन में निरन्तर कृष्ण का स्मरण किया जाय।

लोक लज्जा हय, धर्म-कीर्ति हय हानि।
ऐछे कर्म ना करिह कभु इहा जानि'॥५२॥

अनुवाद

"इस तरह मनुष्य जनता की दृष्टि में बदनाम हो जाता है, क्योंकि इससे उसकी धार्मिकता तथा यश को हानि पहुँचती है। एक वैष्णव को, विशेष कर जो गुरु का कार्य करता हो, उसे ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए। उसे इस तथ्य के प्रति सदैव जागरूक रहना चाहिए।"

एइ शिक्षा सबाकारे, सबे मने कैल।
आचार्य-गोसाञि मने आनन्द पाइल॥५३॥

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु ने कमलाकान्त को यह शिक्षा दी तो वहाँ पर उपस्थित सारे लोगों ने यही माना कि यह हर एक के लिए है। इस प्रकार अद्वैत आचार्य अत्यधिक प्रसन्न हुए।

आचार्येर अभिप्राय प्रभुमात्र बूझे।
प्रभुर गम्भीर वाक्य आचार्य समुझे॥५४॥

अनुवाद

केवल चैतन्य महाप्रभु ही अद्वैत आचार्य के मनोभाव समझ सके और अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु के गम्भीर उपदेश को समझा।

एइ त' प्रस्तावे आछे बहुत विचार।
ग्रन्थ-बाहुल्य-भये नारि लिखिबार॥५५॥

अनुवाद

इस कथन में अनेक गुह्य विचार हैं। मैं उन सबों को नहीं लिख रहा, क्योंकि भय है कि इससे पुस्तक का कलेवर व्यर्थ ही बढ़ जायेगा।

श्रीयदुनन्दनाचार्य-अद्वैतेर शाखा।
तँार शाखा-उपशाखार नाहि हय लेखा॥५६॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की पाँचवीं शाखा श्री यदुनन्दन आचार्य थे, जिनसे इतनी शाखाएँ तथा उपशाखाएँ निकलीं कि उन सबको लिपिबद्ध करना असम्भव है।

तात्पर्य

यदुनन्दन आचार्य रघुनाथ दास गोस्वामी के वैध दीक्षा-गुरु थे। दूसरे शब्दों में जब रघुनाथ दास गोस्वामी गृहस्थ थे तो यदुनन्दन आचार्य ने उन्हें घर ही में दीक्षा दी थी। बाद में रघुनाथ दास गोस्वामी ने जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण की।

वासुदेवदत्तेर तेँहो कृपार भाजन।
सर्व भावे आश्रियाछे चैतन्य-चरण॥५७॥

अनुवाद

श्री यदुनन्दन आचार्य वासुदेव दत्त के शिष्य थे और उन्हें उनकी पूरी कृपा प्राप्त थी। अतएव उन्होंने सभीयों दृष्टि से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों को परम आश्रय के रूप में स्वीकार किया।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका के १४०वें श्लोक में बतलाया गया है कि वासुदेव दत्त पहले वृन्दावन का गायक मधुव्रत था।

भागवताचार्य, आर विष्णुदासाचार्य।
चक्रपाणि आचार्य, आर अनन्त आचार्य॥५८॥

अनुवाद

भागवत आचार्य, विष्णुदास आचार्य, चक्रपाणि आचार्य तथा अनन्त आचार्य अद्वैत की क्रमश: छठी, सातवीं, आठवीं तथा नवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद अपने ग्रंथ *अनुभाष्य* में कहते

हैं कि भागवत आचार्य पहले अद्वैत आचार्य के अनुयायी थे, किन्तु बाद में वे गदाधर पंडित के अनुयायियों में परिगणित किये जाते थे। यदुनन्दन दास द्वारा लिखित *शाखानिर्णयामृत* के छठे श्लोक में कहा गया है कि भागवत आचार्य ने *प्रेमतरंगिणी* नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की। *गौरगणोद्देश-दीपिका* के श्लोक १९५ के अनुसार भागवत आचार्य वृन्दावन में श्वेतमंजरी के रूप में रहते थे। विष्णुदास आचार्य खेटरी-महोत्सव के समय उपस्थित थे। वे अच्युतानन्द के साथ वहाँ गये थे, ऐसा *भक्ति रत्नाकर* के दशम तरंग में बतलाया गया है। अनन्त आचार्य आठ प्रमुख गोपियों में से थे। उनका पहले का नाम सुदेवी था। यद्यपि वे अद्वैत आचार्य के अनुयायियों में से थे, किन्तु बाद में वे गदाधर पंडित के एक प्रमुख भक्त बन गये।

नन्दिनी, आर कामदेव, चैतन्यदास।
दुर्लभ विश्वास, आर वनमालिदास॥५९॥

अनुवाद

नन्दिनी, कामदेव, चैतन्य दास, दुर्लभ विश्वास तथा वनमाली दास श्री अद्वैत आचार्य की क्रमशः दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं, तेरहवीं तथा चौदहवीं शाखाएँ थे।

जगन्नाथ कर, आर कर भवनाथ।
हृदयानन्द सेन, आर दास भोलानाथ॥६०॥

अनुवाद

इसी तरह जगन्नाथ कर, भवनाथ कर, हृदयानन्द सेन तथा भोलानाथ दास क्रमशः पंद्रहवीं, सोलहवीं, सत्रहवीं तथा अठारहवीं शाखाएँ थे।

य़ादवदास, विजयदास, दास जनार्दन।
अनन्तदास, कानुपण्डित, दास नारायण॥६१॥

अनुवाद

यादव दास, विजय दास, जनार्दन दास, अनन्त दास, कानु पण्डित तथा नारायण दास क्रमशः उन्नीसवीं से लेकर चौबीसवीं शाखाएँ थे।

श्रीवास पण्डित, ब्रह्मचारी हरिदास।
पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी, आर कृष्णदास॥६२॥

अनुवाद

श्रीवास पण्डित, हरिदास ब्रह्मचारी, पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी तथा कृष्णदास क्रमश: पच्चीसवीं, छब्बीसवीं, सत्ताइसवीं तथा अट्ठाइसवीं शाखाएँ थे।

पुरुषोत्तम पण्डित, आर रघुनाथ।
वनमाली कविचन्द्र, आर वैद्यनाथ॥६३॥

अनुवाद

उसके आगे उन्तीसवीं से बत्तीसवीं शाखाएँ क्रमश: पुरुषोत्तम पण्डित, रघुनाथ, वनमाली कविचन्द्र तथा वैद्यनाथ थे।

लोकनाथ पण्डित, आर मुरारि पण्डित।
श्रीहरिचरण, आर माधव पण्डित॥६४॥

अनुवाद

लोकनाथ पण्डित, मुरारी पण्डित, श्री हरिचरण तथा माधव पण्डित क्रमश: तैंतीसवीं से छत्तीसवीं शाखाएँ थे।

विजय पण्डित, आर पण्डित श्रीराम।
असंख्य अद्वैत-शाखा कत लइब नाम॥६५॥

अनुवाद

विजय पण्डित तथा श्रीराम पण्डित अद्वैत आचार्य की दो महत्वपूर्ण शाखाएँ थे। शाखाएँ तो असंख्य हैं, लेकिन मैं उन सब का नाम ले सकने में असमर्थ हूँ।

तात्पर्य

चूँकि श्रीवास पण्डित नारद मुनि के अवतार थे, अतएव उनके छोटे भाई श्रीराम पण्डित को नारद मुनि के घनिष्ठतम मित्र पर्वत मुनि का अवतार माना जाता है।

माली-दत्त जल अद्वैत-स्कन्ध य़ोगाय।
सेइ जले जीये शाखा,—फूल-फल पाय॥६६॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की शाखा को आदि माली श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदत्त जल प्राप्त हुआ। इस तरह उपशाखाओं का प्रतिपालन हुआ और उनमें प्रचुर फल-फूल लगे।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य की उन शाखाओं को जो श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदत्त जल से फली-फूलीं, प्रामाणिक आचार्य मानना चाहिए। जैसा कि इसके पूर्व बतलाया जा चुका है, अद्वैत आचार्य के प्रतिनिधि दो समूहों में बाँट गये—आचार्य की शिष्य-परम्परा की प्रामाणिक शाखाएँ तथा बनावटी शाखाएँ। जिन्होंने चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का पालन किया वे तो फली-फूलीं, किन्तु अन्य शाखाएँ, जिनका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है, सूख गईं।

इहार मध्ये माली पाछे कोन शाखागण।
ना माने चैतन्यमाली दुर्दैव कारण॥६७॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु के तिरोधान के बाद कुछ शाखाएँ, दुर्भाग्यवश, उनके पथ से हटने लगीं।

सृजाइल, जीयाइल, ताँरे ना मानिल।
कृतघ्न हइला, ताँरे स्कन्ध क्रुद्ध हइल॥६८॥

अनुवाद

कुछ शाखाओं ने उस आदि तने को स्वीकार नहीं किया जो सम्पूर्ण वृक्ष का जीवनदाता तथा पालनकर्ता था। जब वे इस प्रकार कृतघ्न बन गईं तो आदि तना उन पर क्रुद्ध हो गया।

क्रुद्ध हञा स्कन्ध तारे जल ना सञ्चारे।
जलाभावे कृश शाखा शुकाइया मरे॥६९॥

अनुवाद

इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु ने उन पर अपना कृपा रूपी जल नहीं छिड़का और वे क्रमशः मुरझाकर मर गईं।

चैतन्य-रहित देह—शुष्ककाष्ठ-सम।
जीवितेइ मृत सेइ, मैले दण्डे यम॥७०॥

अनुवाद

कृष्णभावनामृतविहीन पुरुष शुष्क काठ या मृत शरीर के तुल्य है। वह जीवित होकर भी मृत माना जाता है और मरने के बाद उसे यमराज दण्डित करते हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में (६.३.२९) मृत्यु के अधीक्षक यमराज अपने सहायकों को बतलाते हैं कि वे किस तरह के लोगों को पकड़ कर उनके पास लायें। वे कहते हैं, "ऐसा व्यक्ति जिसकी जीभ भगवान् के गुणों और पवित्र नाम का कभी वर्णन नहीं करती, जिसका हृदय कृष्ण तथा उनके चरणकमलों का स्मरण करके पुलकित नहीं होता, तथा जिसका सिर कभी भगवान् को नमस्कार करने के लिए नहीं झुकता, उसे दण्ड के लिए मेरे पास अवश्य लाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अभक्तों को दण्ड के लिए यमराज के पास ले जाना चाहिए और तब प्रकृति उन्हें तरह-तरह के शरीर प्रदान करती है। मृत्यु के बाद, अर्थात् देहान्तर होने पर अभक्तों को निर्णय के लिए यमराज के पास ले जाया जाता है। यमराज के निर्णय से वे अपने पूर्वजन्म में जैसा कर्म किये रहते हैं उसी के अनुसार प्रकृति उन्हें शरीर प्रदान करती है। यह देहान्तर की विधि है अर्थात् आत्मा का एक शरीर से दूसरे में स्थानान्तरण है। किन्तु कृष्णभावनाभावित भक्तों पर यमराज का निर्णय लागू नहीं होता। भक्तों के लिए खुला हुआ मार्ग है, जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में हुई है। शरीर त्यागने के बाद (*त्यक्त्वादेहम्*) भक्त को दूसरा शरीर धारण नहीं करना पड़ता, क्योंकि वह आध्यात्मिक शरीर पाकर भगवद्धाम वापस जाता है। यमराज का दण्ड तो उन्हें मिलता है जो कृष्णभावनाभावित नहीं हैं।

केवल ए गण-प्रति नहे एइ दण्ड।
चैतन्य-विमुख येइ सेइ त' पाषण्ड॥७१॥

अनुवाद

न केवल अद्वैत आचार्य के दिग्भ्रान्त वंशज, अपितु जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय के विरुद्ध है, उसे नास्तिक मानना चाहिए और

वह यमराज के दण्ड का भागी है।

कि पण्डित, कि तपस्वी, किबा गृही, य़ति।
चैतन्यविमुख य़ेइ, तार एइ गति॥७२॥

अनुवाद

चाहे कोई पण्डित, तपस्वी अथवा सफल गृहस्थ या प्रसिद्ध संन्यासी ही क्यों न हो, किन्तु यदि वह चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के विरुद्ध है, तो उसे यमराज के द्वारा दिये जाने वाला कष्ट भोगना होगा।

य़े य़े लैल श्रीअच्युतानन्देर मत।
सेइ आचार्येर गण—महाभागवत॥७३॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य के जिन वंशजों ने श्री अच्युतानन्द के मार्ग को अपनाया, वे सबके सब महान् भक्त हुए।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनाद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में टिप्पणी दी है, जो इस प्रकार है, "श्री अद्वैत आचार्य *भक्तिकल्पतरु* के प्रधान तने हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु-रुपी माली ने भक्ति के वृक्ष की जड़ों में जल सींचा और इसके तने तथा शाखाओं का परिपोषण किया। फिर भी जीव ने सब से दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था, जिसे माया कहते हैं के वशीभूत होकर कुछ शाखाओं में माली द्वारा डाले गये जल को स्वीकार न करने के कारण तने को ही महान् भक्तिकल्पतरु का कारण मान लिया। दूसरे शब्दों में अद्वैत आचार्य की शाखाएँ या वंशज जिन्होंने उन्हें ही भक्तिलता का आदि कारण माना तथा जिन्होंने इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों की अवमानना की या उनका उल्लंघन किया, सींचे गये जल के प्रभाव से वंचित रहे और सूख कर नष्ट हो गये। यही नहीं, यह भी जान लेना चाहिए कि न केवल अद्वैत आचार्य के दिग्भ्रमित वंशज, अपितु जो कोई भी चैतन्य महाप्रभु से सम्बन्ध नहीं रखता, वह चाहे स्वतन्त्र रूप से महान् संन्यासी, विद्वान् या तपस्वी ही क्यों न हो, वृक्ष की मृत शाखा के तुल्य है।"

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा दिया गया यह विश्लेषण, जो श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी के कथनों का समर्थक है, वर्तमान तथाकथित हिन्दू धर्म

की स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करता है, जो प्रधानत: मायावादी दर्शन से संचालित होने के कारण विभिन्न कपोलकल्पित विचारधाराओं की खिचड़ी बन चुका है। मायावादीजन कृष्णभावनामृत-आन्दोलन से अत्यधिक डरते हैं और आरोप लगाते हैं कि यह हिन्दू धर्म को बिगाड़ रहा है, क्योंकि यह विश्व के कोने-कोने के लोगों को तथा सभी धार्मिक सम्प्रदायों को स्वीकार करता है और उन्हें वैज्ञानिक रीति से *दैव-वर्णाश्रम-धर्म* में प्रवृत्त करता है। किन्तु जैसा कि हम अनेक बार बतला चुके हैं, हमें वैदिक साहित्य में *हिन्दू* जैसा कोई शब्द प्राप्त नहीं होता। यह शब्द सम्भवतया अफगानिस्तान से आया और सबसे पहले हिन्दूकुश दर्रे के लिए प्रयुक्त हुआ, जो आज भी भारत तथा विभिन्न मुस्लिम देशों के बीच व्यापारिक मार्ग का अंग बना हुआ है।

धर्म की वास्तविक वैदिक प्रणाली *वर्णाश्रम धर्म* है जिसकी पुष्टि *विष्णु पुराण* में (३.८.९) इस प्रकार हुई हैं—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत् तत्तोषकारणम्॥

वैदिक साहित्य की संस्तुति है कि मानव जाति वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्तों का पालन करे। वर्णाश्रम धर्म की विधि को अपनाने से मनुष्य जीवन सफल बनेगा क्योंकि यह उसे भगवान् से जोड़ेगा, जो मानव जीवन का लक्ष्य है। अत: कृष्णभावनामृत-आन्दोलन सारी मानवता के निमित्त है। यद्यपि मानव समाज में तमाम विभाग या उपविभाग हैं, किन्तु सारे मनुष्य एक ही जाति से सम्बन्धित हैं। इसलिए हम मानते हैं कि उन सबों में भगवान् विष्णु से जुड़ने की अपनी वैधानिक स्थिति को समझने की शक्ति है। श्री चैतन्य महाप्रभु पुष्टि करते हैं—*जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर नित्यदास*—हर जीव भगवान् का नित्य अंश है, नित्य दास है। मानव रूप धारण करने वाला हर जीव अपनी स्थिति की महत्ता को समझ सकता है और इस तरह वह कृष्ण-भक्त होने का पात्र है। अतएव हम यह मान कर चलते हैं कि सारी मानवता को कृष्णभावनामृत की शिक्षा मिलनी चाहिए। निस्सन्देह, हम संसार के सभी भागों में और हर देश में जहाँ भी संकीर्तन-आन्दोलन का प्रचार करते हैं वहाँ हम देखते हैं कि लोग बिना हिचक के हरे-कृष्ण-महामन्त्र को सरलता से स्वीकार कर लेते हैं। इस कीर्तन का प्रभाव यह होता है

हो गये।

सेइ आचार्यगणेर मोर कोटि नमस्कार।
अच्युतानन्द-प्राय, चैतन्य-जीवन ग्याँहार॥७६॥

अनुवाद

मैं उन अच्युतानन्द के असली अनुगामियों को कोटि-कोटि नमस्कार करता हूँ, जिनके जीवनाधार श्री चैत्य महाप्रभु थे।

एइ त' कहिलाङ् आचार्य-गोसाञिर गण।
तिन स्कन्ध-शाखार कैल संक्षेप गणन॥७७॥

अनुवाद

इस तरह मैंने संक्षेप में श्री अद्वैत आचार्य के वंशजों की तीन शाखाओं (अच्युतानन्द, कृष्ण मिश्र तथा गोपाल) का वर्णन किया।

शाखा-उपशाखा, तार नाहिक गणन।
किछुमात्र कहि' करि दिग्दर्शन॥७८॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की असंख्य शाखाएँ तथा उपशाखाएँ हैं। उन सब की ठीक से गणना कर पाना अत्यन्त कठिन है। मैंने तो पूरे तने तथा इसकी शाखाओं-उपशाखाओं की झाँकी मात्र प्रस्तुत की है।

श्रीगदाधर पण्डित शाखाते महोत्तम।
ताँर उपशाखा किछु करि ग्ये गणन॥७९॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य की शाखाओं-उपशाखाओं का वर्णन करने के बाद मैं श्री गदाधर पंडित के कुछ वंशजों का वर्णन करने का प्रयास करूँगा क्योंकि यह प्रधान शाखाओं में से है।

शाखा-श्रेष्ठ ध्रुवानन्द, श्रीधर ब्रह्मचारी।
भागवताचार्य, हरिदास ब्रह्मचारी॥८०॥

अनुवाद

श्री गदाधर पंडित की मुख्य शाखाएँ थीं (१) श्री ध्रुवानन्द (२) श्रीधर

ब्रह्मचारी (३) हरिदास ब्रह्मचारी तथा (४) रघुनाथ भागवताचार्य।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका के श्लोक १५२ में ध्रुवानन्द ब्रह्मचारी को ललिता का अवतार कहा गया है और श्लोक १९४ में श्रीधर ब्रह्मचारी को चन्द्रलतिका गोपी का।

अनन्त आचार्य, कविदत्त, मिश्रनयन।
गङ्गामन्त्री, मामु ठाकुर, कण्ठाभरण॥८१॥

अनुवाद

पाँचवी शाखा थे अनन्त आचार्य, छठी कविदत्त, सातवीं नयन मिश्र, आठवीं गंगामन्त्री, नवीं मामु ठाकुर तथा दसवीं शाखा कण्ठाभरण थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में कविदत्त को कलकण्ठी गोपी के रूप में (श्लोक १९७ तथा २०७), नयन मिश्र को नित्यमञ्जरी गोपी के रूप में (श्लोक १९६ तथा २०५) बतलाया गया है। मामु ठाकुर का असली नाम जगन्नाथ चक्रवर्ती था। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के पितामह श्री नीलम्बर चक्रवर्ती के भांजे थे। बंगाल का *मामा* का रिश्ता पूर्वी बंगाल तथा उड़ीसा में *मामु* हो जाता है। इस तरह जगन्नाथ चक्रवर्ती मामु या मामा ठाकुर कहलाते थे। मामु ठाकुर का निवास स्थान फरीदपुर जिले के मगडोबा गाँव में था। श्री गंगाधर पंडित की मृत्यु के बाद मामु ठाकुर जगन्नाथ पुरी के टोटा गोपीनाथ मन्दिर के महन्त बन गये। कुछ वैष्णवों के मतानुसार मामु ठाकुर पहले श्री रूपमञ्जरी के नाम से विख्यात थे। मामु ठाकुर के अनुगामियों में रघुनाथ गोस्वामी, रामचन्द्र राधावल्लभ, कृष्णजीवन, श्यामसुन्दर, शान्तामणि, हरिनाथ, नवीनचन्द्र, मतिलाल, दयामयी तथा कुञ्जबिहारी मुख्य हैं।

कान्तिभरण का मूल नाम श्री अनन्त चट्टराज था और वह कृष्णलीला में गोपाली नामक गोपी थे।

भूगर्भ गोसाञि, आर भागवतदास।
ग्रेइ दुइ आसि' कैल वृन्दावने वास॥८२॥

अनुवाद

गदाधर गोस्वामी की ग्यारहवीं शाखा में भूगर्भ गोसाईं हुए और बारहवीं में भागवतदास। इन दोनों ने ही वृन्दावन जाकर वहीं जीवन-भर वास किया।

तात्पर्य

भूगर्भ गोसाईं पहले प्रेममञ्जरी नाम से जाने जाते थे। वे लोकनाथ गोस्वामी के घनिष्ठ मित्र थे, जिन्होंने वृन्दावन के सात महत्वपूर्ण मन्दिरों में से गोकुलानन्द नामक मन्दिर बनवाया। ये सातों मन्दिर हैं—गोविन्द, गोपीनाथ, मदनमोहन, राधारमण, श्यामसुन्दर, राधादामोदर तथा गोकुलानन्द मन्दिर। ये गौड़ीय वैष्णवों के प्रामाणिक संस्थान हैं।

वाणीनाथ ब्रह्मचारी—बड़ महाशय।
वल्लभचैतन्यदास—कृष्णप्रेममय ॥८३॥

अनुवाद

तेरहवीं शाखा थे वाणीनाथ ब्रह्मचारी और चौदहवीं वल्लभ चैतन्य दास। ये दोनों महापुरुष सदैव कृष्णप्रेम से पूरित रहते थे।

तात्पर्य

आदिलीला (१०.११४) में श्रीवाणीनाथ ब्रह्मचारी का वर्णन आया है। वल्लभ चैतन्य के शिष्य नलिनीमोहन गोस्वामी ने नवद्वीप में मदनगोपाल का एक मन्दिर स्थापित किया।

श्रीनाथ चक्रवर्ती, आर उद्धवदास।
जितामित्र, काष्ठकाटा-जगन्नाथदास ॥८४॥

अनुवाद

श्रीनाथ चक्रवर्ती, उद्धव, जितामित्र तथा जगन्नाथ दास क्रमशः पंद्रहवीं, सोलहवीं, सत्रहवीं तथा अठारहवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

शाखानिर्णय (श्लोक १३) में श्रीनाथ चक्रवर्ती को सद्गुणों की खान तथा कृष्णसेवा में पटु बतलाया गया है। इसी प्रकार श्लोक ३५ में उल्लेख है कि उद्धव दास सबों को भगवत्प्रेम वितरित करने में अत्यन्त योग्य थे।

गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक २०२ में) में जितामित्र को श्याममञ्जरी गोपी कहा गया है। जितामित्र ने *कृष्ण-माधुर्य* नामक एक पुस्तक लिखी। जगन्नाथ दास ढाका के निकट विक्रमपुर के निवासी थे। उनका जन्मस्थान काष्ठकाटा या काठाड़िया नामक गाँव था। अब उनके वंशज आड़ियल, कामारपाड़ा तथा पाइकपाड़ा गाँवों में रहते हैं। उन्होंने यशोमाधव मन्दिर की स्थापना की। इस मंदिर के पुजारी आड़ियल गाँव के गोस्वामी हैं। चौंसठ सखियों में से वे चित्रदेवी गोपी की सहायिका तिलकिनी थे। उनके वंशजों की सूची इस प्रकार है—रामनृसिंह, रामगोपाल, रामचन्द्र, सनातन, मुक्ताराम, गोपीनाथ, गोलोक, हरिमोहन शिरोमणि, राखालराज, माधव तथा लक्ष्मीकान्त। *शाखानिर्णय* के अनुसार जगन्नाथ दास ने त्रिपुर जिले में हरे-कृष्ण-आन्दोलन का प्रचार किया।

श्रीहरि आचार्य, सादि-पुरिया गोपाल।
कृष्णदास ब्रह्मचारी, पुष्पगोपाल॥८५॥

अनुवाद

श्री हरि आचार्य, सादिपुरिया गोपाल, कृष्णदास ब्रह्मचारी तथा पुष्पगोपाल क्रमशः उन्नीसवीं, बीसवीं, इक्कीसवीं तथा बाइसवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका के श्लोक १९६ तथा २०७ में उल्लेख हुआ है कि हरि आचार्य पहले कालाक्षी नामक गोपी थे। सादिपुरिया गोपाल पूर्वी बंगाल के विक्रमपुर में हरे-कृष्ण-आन्दोलन के प्रचारक के नाम से विख्यात हैं। कृष्णदास ब्रह्मचारी पूर्वजन्म में अष्टसखियों में से इन्दुलेखा नाम की सखी थे। वे वृन्दावन में रहते थे। राधा-दामोदर मन्दिर के भीतर एक समाधि है जो कृष्णदास की समाधि के नाम से विख्यात है। कुछ लोग इसे कृष्णदास ब्रह्मचारी की समाधि बतलाते हैं, तो कुछ लोग कृष्णदास कविराज गोस्वामी की। हम दोनों को ही नमस्कार करते हैं, क्योंकि वे दोनों उस युग की पतितात्माओं को भगवत्प्रेम का वितरण करने में दक्ष थे। *शाखा-निर्णय* में उल्लेख है कि पुष्पगोपाल पहले स्वर्णग्रामक नाम से विख्यात थे।

श्रीहर्ष, रघुमिश्र, पण्डित लक्ष्मीनाथ।
बङ्गवाटी-चैतन्यदास, श्रीरघुनाथ॥८६॥

अनुवाद

श्रीहर्ष, रघु मिश्र, लक्ष्मीनाथ पण्डित, चैतन्य दास तथा रघुनाथ क्रमशः तेईसवीं से लेकर सत्ताइसवीं शाखाएँ थे।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में (श्लोक १९५ तथा २०१) रघु मिश्र को कर्पूरमञ्जरी कहा गया है। इसी प्रकार लक्ष्मीनाथ पण्डित को रसोन्मादा तथा भगवती चैतन्य दास को काली बतलाया गया है। *शाखा-निर्णय* का कथन है कि भगवती चैतन्य दास सदैव अश्रुपूरित रहते थे। उनके वंशजों की भी एक शाखा थी। उनके नाम थे मथुराप्रसाद, रुक्मिणीकान्त, जीवनकृष्ण, युगलकिशोर, रत्नकृष्ण, राधामाधव, ऊषामणि, वैकुण्ठनाथ तथा लालमोहन या लालमोहन साहा शंखनिधि। लालमोहन ढाका के बड़े व्यापारी थे। *गौरगणोद्देश-दीपिका* (श्लोक १९४ तथा २००) में उल्लेख है कि रघुनाथ पूर्वजन्म में वरांगदा थे।

अमोघ पण्डित, हस्तिगोपाल, चैतन्यवल्लभ।
यदु गांगुलि आर मंगल वैष्णव॥८७॥

अनुवाद

अट्ठाइसवीं शाखा अमोघ पंडित थे, उन्तीसवीं हस्तिगोपाल, तीसवीं चैतन्यवल्लभ, इकतीसवीं यदु गांगुली तथा बत्तीसवीं शाखा मंगल वैष्णव थे।

तात्पर्य

श्री मंगल वैष्णव मुर्शिदाबाद जिले के टिटकणा गाँव के निवासी थे। उनके पूर्वज शाक्त थे और वे किरीटेश्वरी देवी की पूजा करते थे। कहा जाता है कि मंगल वैष्णव पहले बाल-ब्रह्मचारी थे, किन्तु घर छोड़ने के बाद उन्होंने अपने शिष्य प्राणनाथ अधिकारी की पुत्री से मयनाडाल ग्राम में विवाह कर लिया। इस परिवार के वंशज कान्दडा के ठाकुर कहलाते हैं। कान्दडा कटवा के निकट बर्दवान जिले में एक गाँव है। यहाँ पर मंगल वैष्णव के वंशजों के छत्तीस परिवार एकसाथ रहते हैं। मंगल ठाकुर के प्रसिद्ध शिष्य हैं प्राणनाथ अधिकारी, कांकड़ा गाँव के पुरुषोत्तम चक्रवर्ती तथा नृसिंह प्रसाद मित्र, जिनके परिवार वाले विख्यात मृदंगवादक हैं। सुधाकृष्ण मित्र तथा निकुंज

बिहारी मित्र दोनों ही विख्यात मृदंगवादक हैं। पुरुषोत्तम चक्रवर्ती के परिवार में कुंजबिहारी चक्रवर्ती तथा अधुना बीरभूम निवासी राधावल्लभ चक्रवर्ती प्रमुख व्यक्ति हुए हैं। वे *चैतन्य मंगल* के गीतों को गाते हैं। कहा जाता है कि जब मंगल ठाकुर बंगाल से जगन्नाथ पुरी तक सड़क बनवा रहे थे तो एक झील की खुदाई करते समय राधावल्लभ की मूर्ति मिली। उस समय वे कान्दडा स्थान में राणीपुर गाँव में रह रहे थे। मंगल ठाकुर जिस शालिग्राम शिला की पूजा करते थे, वह आज भी कांदडा गाँव में विद्यमान है। वहाँ पर वृन्दावन चन्द्र की पूजा के लिए एक मन्दिर बनवा दिया गया है। मंगल ठाकुर के तीन पुत्र थे—राधिकाप्रसाद, गोपीरमण तथा श्यामकिशोर। इन तीनों के वंशज अब भी जीवित हैं।

चक्रवर्ती शिवानन्द सदा व्रजवासी।
महाशाखा-मध्ये तेंहो सुदृढ़ विश्वासी॥८८॥

अनुवाद

शिवानन्द चक्रवर्ती तैंतीसवीं शाखा थे। वे दृढ़ विश्वास के साथ वृन्दावन में रहे और गदाधर पंडित की एक महत्वपूर्ण शाखा माने जाते हैं।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका के अनुसार (श्लोक १८३) शिवानन्द चक्रवर्ती पहले लवंगमञ्जरी थे। यदुनन्दन दास द्वारा लिखित *शाखा-निर्णय* में भी अन्य शाखाओं के नाम गिनाये गये हैं जो इस प्रकार हैं—(१) माधव आचार्य (२)गोपालदास (३)हृदयानन्द (४) वल्लभ भट्ट (वल्लभ-सम्प्रदाय या पुष्टिमार्ग अत्यन्त प्रसिद्ध है) (५) मधु पण्डित (ये खडदह के निकट साईंबोना ग्राम में रहते थे, जो खडदह स्टेशन से लगभग दो मील दूर है। इन्होंने वृन्दावन में गोपीनाथजी का मन्दिर बनवाया)। (६) अच्युतानन्द (७) चन्द्रशेखर (८) वक्रेश्वर पण्डित (९) दामोदर (१०) भगवान् आचार्य (११) अनन्त आचार्य (१२) कृष्णदास (१३) परमानन्द भट्टाचार्य (१४) भवानन्द गोस्वामी (१५) चैतन्यदास (१६) लोकनाथ भट्ट (ये यशोहर जिले के तालखडि गाँव में रहते थे और इन्होंने राधाविनोद का मन्दिर बनवाया। ये नरोत्तमदास ठाकुर के गुरु तथा भूगर्भ गोस्वामी के पक्के मित्र थे) (१७) गोविन्द आचार्य (१८) अक्रूर ठाकुर (१९) संकेत आचार्य (२०) प्रतापादित्य (२१) कमलाकान्त आचार्य (२२) यादव आचार्य (२३) नारायण पडिहारी (जगन्नाथ पुरीवासी)।

एइ त' संक्षेप कहिलाङ् पण्डितेर गण।
ऐछे आर शाखा-उपशाखा गणन॥८९॥

अनुवाद

इस तरह मैंने गदाधर पंडित की शाखाओं तथा उपशाखाओं का संक्षेप में वर्णन किया है। अभी भी ऐसी अनेक शाखाएँ हैं जिनका उल्लेख मैंने यहाँ नहीं किया।

पण्डितेर गण सब,—भागवत धन्य।
प्राणवल्लभ—सबार श्रीकृष्णचैतन्य॥९०॥

अनुवाद

गदाधर पण्डित के सारे अनुयायी महान् भक्त माने जाते हैं, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु इन सबों के जीवनाधार थे।

एइ तिन स्कन्धेर कैलूँ शाखार गणन।
य़ाँ-सबा-स्मरणे भवबन्ध-विमोचन॥९१॥

अनुवाद

मैंने जिन तीन तनों (नित्यानन्द, अद्वैत तथा गदाधर) की शाखाओं तथा उपशाखाओं का वर्णन किया है, उनके नामों का स्मरण करने से ही मनुष्य भवबन्धन से छूट जाता है।

य़ाँ-सबा-स्मरणे पाइ चैतन्यचरण।
य़ाँ-सबा-स्मरणे हय वाञ्छित पूरण॥९२॥

अनुवाद

इन सारे वैष्णवों के नामों का स्मरण करने से ही मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल प्राप्त हो सकते हैं। निस्सन्देह, उनके पवित्र नामों के स्मरण मात्र से सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं।

अतएव ताँ-सबार वन्दिये चरण।
चैतन्य-मालीर कहि लीला-अनुक्रम॥९३॥

अनुवाद

अतएव उन सबों के चरणकमलों को सादर नमस्कार करते हुए मैं माली-रूप

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का क्रमवार वर्णन करूँगा।

गौरलीलामृतसिन्धु—अपार अगाध।
के करिते पारे ताहाँ अवगाह-साध॥९४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का समुद्र अमाप्य तथा अगाध है। भला ऐसे विशाल समुद्र को मापने का साहस कौन कर सकता है?

ताहार माधुर्य-गन्धे लुब्ध हय मन।
अतएव तटे रहि' चाकि एक कण॥९५॥

अनुवाद

उस विशाल समुद्र में गोता लगाना सम्भव नहीं है किन्तु उसका माधुर्य गन्ध मेरे मन को आकृष्ट करता है। अतएव मैं उस समुद्र के तट पर केवल एक बूँद चखने के लिए खड़ा हूँ।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे य़ार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥९६॥

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के बारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें अद्वैत आचार्य तथा गदाधर पंडित के अंशों का वर्णन है।

आदि-लीला

अध्याय १३

श्रीचैतन्य-चरितामृत के इस तेरहवें अध्याय में चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का वर्णन हुआ है। सम्पूर्ण *आदिलीला* खण्ड में महाप्रभु के गृहस्थ-जीवन का वर्णन है और *अन्त्यलीला* में उनके संन्यासी जीवन का। *अन्त्यलीला* के अन्तर्गत उनके संन्यासी जीवन के प्रथम छह वर्ष *मध्यलीला* कहलाते हैं। इस अवधि में महाप्रभु ने दक्षिण भारत का भ्रमण किया, वे वृन्दावन गये, वृन्दावन से लौटे और संकीर्तन-आन्दोलन का प्रचार किया।

श्रीहट्ट जिले के निवासी उपेन्द्र एक विद्वान् ब्राह्मण थे। वे जगन्नाथ मिश्र के पिता थे, जो नीलाम्बर चक्रवर्ती के निर्देशन में अध्ययन करने के लिए नवद्वीप आए। तत्पश्चात् नीलाम्बर चक्रवर्ती की बेटी शचीदेवी के साथ विवाह करने के बाद जगन्नाथ मिश्र वहीं टिक गए। शचीदेवी के आठ सन्तानें हुईं जो सभी लड़कियाँ थीं और जन्म के बाद ही एक-एक करके मर गईं। नवें गर्भ से एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम विश्वरूप रखा गया। तत्पश्चात् १४०७ शक सम्बत में फाल्गुन की पूर्णिमासी को संध्या-समय सिंह लग्न में श्री शचीदेवी और जगन्नाथ मिश्र के पुत्र के रूप में चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव हुआ। उनके जन्म की खबर सुन कर पंडितजन तथा सारे ब्राह्मणजन उपहार ले-लेकर नवजात शिशु को देखने आये। नीलाम्बर चक्रवर्ती स्वयं एक महान् ज्योतिषाचार्य थे, अतएव तुरन्त ही उन्होंने जन्मकुण्डली तैयार की और फलित ज्योतिष गणना द्वारा देखा कि यह शिशु एक महापुरुष है। इस अध्याय में इस महापुरुष के लक्षणों का वर्णन हुआ है।

स प्रसीदतु चैतन्यदेवो यस्य प्रसादतः।
तल्लीलावर्णने योग्यः सद्यः स्यादधमोऽप्ययम्॥१॥

अनुवाद

मैं चैतन्य महाप्रभु की कृपा की कामना करता हूँ, जिनकी कृपा से अधम भी उनकी लीलाओं का वर्णन कर सकता है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु या भगवान् श्रीकृष्ण का वर्णन करने के लिए जिस दैवी शक्ति की आवश्यकता होती है, वह भगवान् की कृपा है। बिना इस कृपा के कोई भी व्यक्ति दिव्य साहित्य की रचना नहीं कर सकता। किन्तु भगवान् की कृपा के बल पर साहित्यिक जीवन के अयोग्य व्यक्ति भी अद्भुत दिव्य विषयों का वर्णन कर सकता है। *कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन* (चै. च. अन्त्य ७.११) भगवान् की कृपा प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति भगवान् के नाम, यश, गुण, रूप, परिकर आदि का वर्णन नहीं कर सकता। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा *चैतन्य-चरितामृत* का वर्णन लेखक पर विशेष कृपावृष्टि का सूचक है, यद्यपि वे अपने को अधम मानते हैं। किन्तु उन्हें इसलिए अधम नहीं मान लेना चाहिए क्योंकि वे ऐसा स्वयं कर रहे हैं। प्रत्युत, जो भी ऐसे दिव्य साहित्य की रचना करता है, वह हमारा पूज्य स्वामी है।

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य गौरचन्द्र।
जयाद्वैतचन्द्र ज़य जय नित्यानन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो। श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो।

जय जय गदाधर जय श्रीनिवास।
जय मुकुन्द वासुदेव जय हरिदास॥३॥

अनुवाद

गदाधर प्रभु की जय हो। श्रीनिवास आचार्य प्रभु की जय हो। मुकुन्द प्रभु तथा वासुदेव प्रभु की जय हो। हरिदास ठाकुर की जय हो।

जय दामोदर-स्वरूप जय मुरारि गुप्त।
एइ सब चन्द्रोदये तमः कैल लुप्त॥४॥

अनुवाद

स्वरूप दामोदर तथा मुरारि गुप्त की जय हो। इन सारे चमकीले चन्द्रमाओं ने मिल कर इस भौतिक जगत के अंधकार को दूर भगाया है।

जय श्रीचैतन्यचन्द्रेर भक्त चन्द्रगण।
सबार प्रेम-ज्योत्स्नाय उज्ज्वल त्रिभुवन॥५॥

अनुवाद

उन सारे चन्द्रमाओं की जय हो, जो चैतन्यचन्द्र रूपी प्रमुख चन्द्रमा के भक्त हैं! उनकी उज्ज्वल चांदनी समूचे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करती है।

तात्पर्य

इस श्लोक में *चन्द्रगण* बहुवचन सूचक है। इससे सूचित होता है कि चन्द्रमा अनेक हैं। *भगवद्गीता* में (१०.२१) भगवान् कहते हैं—*नक्षत्राणां अहं शशी*—मैं नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ। सारे नक्षत्र चन्द्रमा के समान हैं। पाश्चात्य ज्योतिर्विद नक्षत्रों को सूर्य मानते हैं, किन्तु वैदिक ज्योतिर्विद वैदिक शास्त्रों का अनुगमन करने के फलस्वरूप इन्हें चन्द्रमा मानते हैं। सूर्य में तेजी से चमकने की शक्ति होती है और चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करने के कारण उज्ज्वल प्रतीत होता है। *चैतन्य-चरितामृत* में कृष्ण को सूर्य की भाँति बतलाया गया है। परम शक्तिमान तो भगवान् श्रीकृष्ण या श्री चैतन्य महाप्रभु हैं और उनके भक्तगण भी उज्ज्वल तथा प्रकाशित हैं, क्योंकि वे परम सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करते हैं। *चैतन्य-चरितामृत* का कथन है (मध्य २२.३१)—

कृष्ण-सूर्य-सम, माया हय अन्धकार।
याहाँ कृष्ण, ताहाँ नाहि मायार अन्धकार॥

"कृष्ण तेजस्वी सूर्य के समान हैं। सूर्य के उदय होते ही अंधकार या अज्ञान नहीं रह पाता।" इसी प्रकार इस श्लोक में यह भी वर्णन हुआ है कि कृष्ण-रूपी सूर्य-प्रकाश के परावर्तन से प्रकाशित इन चन्द्रमाओं के प्रकाश से या चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की कृपा से यह सारा जगत, कलियुग के अंधकार के बावजूद, प्रकाशित हो उठेगा। केवल चैतन्य महाप्रभु के शिष्य ही कलियुग के अन्धकार को, इस युग की जनता के अज्ञान को दूर कर सकते हैं। अतएव हमारी यही कामना है कि कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के सारे भक्त परम सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करते हुए सारे जगत के अंधकार को दूर करें।

एइ त' कहिल ग्रन्थारम्भे मुखबन्ध।
एबे कहि चैतन्य-लीलाक्रम-अनुबन्ध॥६॥

अनुवाद

इस प्रकार मैंने चैतन्य-चरितामृत का प्राक्कथन कहा है। अब मैं सारी पुस्तक की प्रस्तावना (रूपरेखा) सूत्र-रूप में प्रस्तुत करूँगा।

प्रथमे त' सूत्ररूपे करिये गणन।
पाछे ताहा विस्तारि करिब विवरण॥७॥

अनुवाद

सर्वप्रथम मैं महाप्रभु की लीलाओं को सूत्र-रूप में कहता हूँ। तब मैं उनका वर्णन विस्तार से करूँगा।

श्रीकृष्णचैतन्य नवद्वीपे अवतरि।
आटचल्लिश वत्सर प्रकट विहरि॥८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप में अवतरित होकर अड़तालीस वर्षों तक प्रकट रहे और लीलाएँ करते रहे।

चौद्दशत सात शके जन्मेर प्रमाण।
चौद्दशत पञ्चान्ने हइल अन्तर्धान॥९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु शक सम्बत् १४०७ में प्रकट हुए और १४५५ में इस जगत से अन्तर्धान हो गये।

चब्बिशवत्सर प्रभु कैल गृहवास।
निरन्तर कैल कृष्ण-कीर्तन-विलास॥१०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु चौबीस वर्षों तक गृहस्थाश्रम में रह कर सदा हरे-कृष्ण-आन्दोलन की लीलाओं में व्यस्त रहे।

चब्बिश वत्सर-शेष करिया संन्यास।
आर चब्बिश वत्सर कैल नीलाचल वास॥११॥

अनुवाद

उन्होंने चौबीस वर्ष बाद संन्यास ग्रहण कर लिया और अगले चौबीस वर्षों तक वे जगन्नाथ पुरी में रहे।

तार मध्ये छय वत्सर—गमनागमन।
कभु दक्षिण, कभु गौड़, कभु वृन्दावन॥१२॥

अनुवाद

इन अन्तिम चौबीस वर्षों में से छह वर्षों तक वे लगातार भारत का भ्रमण करते रहे—कभी दक्षिण भारत, कभी बंगाल तो कभी वृन्दावन।

अष्टादश वत्सर रहिला नीलाचले।
कृष्णप्रेम-नामामृत भासा'ल सकले॥१३॥

अनुवाद

शेष अठारह वर्षों तक वे निरन्तर जगन्नाथ पुरी में ही रहे। वहाँ उन्होंने अमृततुल्य हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करते हुए हर एक को कृष्णप्रेम की बाढ़ से सराबोर कर दिया।

गार्हस्थ्य प्रभुर लीला—'आदि'-लीलाख्यान।
'मध्य'-'अन्तय'-लीला—शेषलीलार दुइ नाम॥१४॥

अनुवाद

उनके गृहस्थ-जीवन की लीलाएँ आदिलीला कहलाती हैं और परवर्ती लीलाएँ मध्यलीला तथा अन्त्यलीला कहलाती हैं।

आदिलीला-मध्ये प्रभुर यतेक चरित।
सूत्ररूपे मुरारि गुप्त करिला ग्रथित॥१५॥

अनुवाद

आदिलीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु ने जितनी लीलाएँ कीं, उन्हें मुरारि गुप्त ने सूत्र रूप में अंकित किया है।

प्रभुर ये शेषलीला स्वरूप-दामोदर।
सूत्र करि' ग्रन्थिलेन ग्रन्थेर भितर॥१६॥

अनुवाद

उनकी परवर्ती (शेष) लीलाएँ (मध्यलीला तथा अन्त्यलीला) उनके सचिव स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने लिपिबद्ध कीं और वे पुस्तकाकार रूप में प्राप्त हैं।

एइ दुइ जनेर सूत्र देखिया शुनिया।
वर्णना करेन वैष्णव क्रम ग्रे करिया॥१७॥

अनुवाद

इन दो महापुरुषों द्वारा अंकित वर्णनों को देख कर तथा सुन कर कोई भी वैष्णव अर्थात् भगवद्भक्त इन लीलाओं को क्रमवार जान सकता है।

बाल्य, पौगण्ड, कैशोर, ग़ौवन—चारि भेद।
अतएव आदिखण्डे लीला चारि भेद॥१८॥

अनुवाद

उनकी आदिलीला में चार विभाग हैं—बाल्य, पौगण्ड, कैशोर तथा यौवन।

सर्वसद्गुणपूर्णां तां वन्दे फाल्गुनपूर्णिमाम्।
यस्यां श्रीकृष्णचैतन्याऽवतीर्णः कृष्णनामभिः॥१९॥

अनुवाद

मैं फाल्गुन महीने की पूर्णिमा की संध्या को सादर नमस्कार करता हूँ, जो शुभ-लक्षणों से पूर्ण शुभ घड़ी है, जब श्री चैतन्य महाप्रभु हरे-कृष्ण नाम का उच्चारण करते हुए अवतीर्ण हुए।

फाल्गुन-पूर्णिमा-सन्ध्याय प्रभुर जन्मोदय।
सेइकाले दैवयोगे चन्द्रग्रहण हय॥२०॥

अनुवाद

फाल्गुन पूर्णिमा की संध्या के समय जब महाप्रभु ने जन्म लिया, संयोगवश चन्द्रग्रहण भी लगा था।

'हरि' 'हरि' बले लोक हरषित हञा।
जन्मिला चैतन्य प्रभु 'नाम' जन्माइया॥२१॥

अनुवाद

हर्ष से हर व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम 'हरि' 'हरि' का उच्चारण कर रहा था और अपने प्रकट होने के पूर्व महाप्रभु पवित्र नाम को प्रकट कर चुके थे।

जन्म-बाल्य-पौगण्ड-कैशोर-युवाकाले ।
हरिनाम लओयाइला प्रभु नाना छले॥२२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने जन्म, बाल्य, पौगण्ड, कैशोर तथा युवावस्था में भिन्न-भिन्न बहानों से लोगों को हरि-नाम (हरे-कृष्ण-महामन्त्र) का कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया।

बाल्यभाव छले प्रभु करेन क्रन्दन।
'कृष्ण' 'हरि' नाम शुनि' रहये रोदन॥२३॥

अनुवाद

अपने बाल्यकाल में जब महाप्रभु रोते थे, तो कृष्ण तथा हरि नामों को सुन कर तुरन्त रोना बन्द कर देते थे।

अतएव 'हरि' 'हरि' बले नारीगण।
देखिते आइसे ग़ेबा सर्व बन्धुजन॥२४॥

अनुवाद

जितनी सारी औरतें बालक को देखने आती थीं वे उसके रोते ही 'हरि' 'हरि' नाम का उच्चारण करती थीं।

'गौर हरि' बलि तारे हासे सर्व नारी।
अतएव हैल ताँर नाम 'गौरहरि'॥२५॥

अनुवाद

जब औरतों ने यह तमाशा देखा तो वे हँसी-हँसी में महाप्रभु को 'गौरहरि' कह कर पुकारने लगीं। तभी से उनका अन्य नाम 'गौरहरि' पड़ गया।

बाल्य वयस—ग़ावत् हाते खड़ि दिल।
पौगण्ड वयस—ग़ावत् विवाह ना कैल॥२६॥

अनुवाद

उनकी शिक्षा शुभारम्भ होने तक (हाते खड़ि) उनका बाल्यकाल था, और बाल्यकाल समाप्ति से लेकर उनके विवाहित होने तक की उम्र पौगण्ड कहलाती है।

विवाह करिले हैल नवीन य़ौवन।
सर्वत्र लओयाइल प्रभु नाम-संकीर्तन॥२७॥

अनुवाद

उनके विवाह के बाद उनका यौवन प्रारम्भ हुआ, और अपनी युवावस्था में उन्होंने हर एक को सर्वत्र हरे-कृष्ण-महामन्त्र कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया।

पौगण्ड-वयसे पड़ेन, पड़ान शिष्यगणे।
सर्वत्र करेन कृष्णनामेर व्याख्याने॥२८॥

अनुवाद

पौगण्ड अवस्था में वे गम्भीर विद्यार्थी बन गये और शिष्यों को पढ़ाते भी थे। इस तरह वे सर्वत्र कृष्णनाम की व्याख्या करते थे।

सूत्र-वृत्ति-पाँजि-टीका कृष्णेते तात्पर्य।
शिष्येर प्रतीत हय,—प्रभाव आश्चर्य॥२९॥

अनुवाद

व्याकरण पढ़ाते समय तथा टीका करके बताते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिष्यों को भगवान् कृष्ण की महिमा के विषय में शिक्षा दी। चूँकि उनकी सारी व्याख्याएँ कृष्ण में अन्त होती थीं, अतएव शिष्यगण उन्हें आसानी से समझ सकते थे। इस तरह उनका प्रभाव आश्चर्यजनक था।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने दो भागों में व्याकरण का संग्रह किया है, जिनके नाम थे—*लघुहरिनामामृत व्याकरण* तथा *बृहद्धरिनामामृत व्याकरण*। यदि कोई इन दोनों व्याकरण ग्रंथों को पढ़ लेता है, तो वह संस्कृत भाषा के व्याकरण-नियमों को जानने के साथ-साथ यह भी सीख लेता है, कि कृष्ण का महान् भक्त

कैसे बना जाय।

चैतन्य-भागवत के प्रथम अध्याय में उस विधि का उल्लेख हुआ है जिससे श्री चैतन्य महाप्रभु व्याकरण पढ़ाते थे। वे व्याकरण के सूत्रों को उसी तरह शाश्वत बतलाते थे जिस प्रकार कृष्ण का पवित्र नाम है। जैसा कि *भगवद्गीता* में (१५.१५) कहा गया है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*। सारे वेदों का सार कृष्ण को समझ लेना है। अतएव यदि कोई ऐसी बात बताता है, जो कृष्ण नहीं है, तो वह व्यर्थ ही श्रम करता है, और उसके जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं होता। यदि कोई केवल शिक्षक या प्राचार्य बन जाता है, किन्तु कृष्ण को नहीं समझता, तो यह समझना चाहिए कि वह अधम व्यक्ति है, जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*नराधमाः माययापहृतज्ञानाः*)। यदि कोई मनुष्य समस्त शास्त्रों का सार जाने बिना शिक्षक बन जाता है, तो उसका अध्यापन गधे के रेंकने की तरह दुखदायी होता है।

य़ारे देखे, तारे कहे,—कह कृष्णनाम।
कृष्णनामे भासाइल नवद्वीप-ग्राम॥३०॥

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु विद्यार्थी थे तो उन्हें जो कोई मिलता था उसी को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए कहते थे। इस तरह उन्होंने पूरे नवद्वीप ग्राम को हरे कृष्ण कीर्तन से आप्लावित कर दिया।

तात्पर्य

वर्तमान नवद्वीप धाम सम्पूर्ण नवद्वीप का अंश मात्र है। नवद्वीप का अर्थ है "नौद्वीप समूह"। ये नवो द्वीप जो कुल मिलाकर ३२ वर्गमील भूमि में हैं, गंगा की विभिन्न धाराओं द्वारा घिरे हैं। नवद्वीप क्षेत्र के इन नवों द्वीपों में भक्ति का अनुशीलन करने वाले विभिन्न स्थान हैं। *श्रीमद्भागवत* में बतलाया गया है कि *भक्ति नवविध* होती है, अर्थात् नौ प्रकार के भक्ति-कार्य होते हैं—*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं अर्चनं वन्दनं दास्यं स्वख्यमात्मनिवेदनम्*। नौ प्रकार की भक्ति के अनुशीलन के लिए नवद्वीप क्षेत्र में विभिन्न द्वीप हैं। वे इस प्रकार है— (१) अन्तरद्वीप (२) सीमन्तद्वीप (३) गोद्रुमद्वीप (४) मध्यद्वीप (५) कोलद्वीप (६) ऋतुद्वीप (७)जह्नुद्वीप (८) मोदद्रुमद्वीप तथा (९) रुद्रद्वीप। बन्दोबस्त नक्शे के अनुसार हमारा **इस्कान** नवद्वीप-केन्द्र, रुद्रद्वीप में स्थित है। रुद्रद्वीप के नीचे अन्तरद्वीप में मायापुर

है। वहीं चैतन्य महाप्रभु के पिता श्री जगन्नाथ मिश्र रहा करते थे। युवक चैतन्य महाप्रभु इन सारे द्वीपों में अपनी संकीर्तन-मंडली का नेतृत्व करते थे। इस तरह उन्होंने सारे क्षेत्र को कृष्णप्रेम की लहरों से आप्लावित किया।

किशोर वयसे आरम्भिला संकीर्तन।
रात्र-दिने प्रेमे नृत्य, सङ्गे भक्तगण॥३१॥

अनुवाद

युवावस्था के कुछ पहले उन्होंने संकीर्तन-आन्दोलन प्रारम्भ किया। वे अपने भक्तों के साथ भावविभोर होकर अहर्निश नृत्य किया करते थे।

नगरे नगरे भ्रमे कीर्तन करिया।
भासाइल त्रिभुवन प्रेमभक्ति दिया॥३२॥

अनुवाद

ज्यों-ज्यों महाप्रभु सर्वत्र कीर्तन करते हुए भ्रमण करने लगे त्यों-त्यों संकीर्तन- आन्दोलन नगर के एक छोर से दूसरे छोर तक बढ़ता गया। इस तरह उन्होंने सारे विश्व को भगवत्प्रेम का वितरण करके आप्लावित कर दिया।

तात्पर्य

कोई प्रश्न कर सकता है कि कृष्णप्रेम से तीनों जगत् किस प्रकार अप्लावित हो गये, क्योंकि चैतन्य महाप्रभु तो नवद्वीप क्षेत्र में ही कीर्तन कर रहे थे। इसका उत्तर यह है कि चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं। सर्वप्रथम भगवान् द्वारा गतिमान (सक्रिय) बनाये जाने पर अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है। इसी प्रकार ५०० वर्ष पूर्व चैतन्य महाप्रभु की इच्छा हुई कि संकीर्तन-आन्दोलन विश्व-भर में फैले तो इस आन्दोलन को गति मिली और आज उसी गति की निरन्तरता में कृष्णभावनामृत-आन्दोलन सारे विश्व में फैल रहा है। और इसी तरह यह धीरे-धीरे अखिल ब्रह्माण्ड में फैल जायेगा। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के इस प्रकार फैलने से हर व्यक्ति कृष्ण-प्रेम के सागर में निमग्न हो जायेगा।

चब्बिश वत्सर ऐछे नवद्वीप-ग्रामे।
लओयाइला सर्वलोके कृष्णप्रेम-नामे॥३३॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप क्षेत्र में चौबीस वर्षों तक रहे और उन्होंने हर व्यक्ति को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने तथा इस तरह कृष्णप्रेम में निमग्न होने के लिए प्रेरित किया।

चब्बिश वत्सर छिला करिया संन्यास।
भक्तगण लञा कैला नीलाचले वास॥३४॥

अनुवाद

शेष चौबीस वर्षों तक श्री चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेकर अपने भक्तों के साथ जगन्नाथ पुरी में वास करते रहे।

तार मध्ये नीलाचले छय वत्सर।
नृत्य, गीत, प्रेमभक्ति-दान निरन्तर॥३५॥

अनुवाद

नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) के इन चौबीस वर्षों में से छह-छह वर्षों तक उन्होंने सदैव कीर्तन और नृत्य द्वारा भगवत्प्रेम का वितरण किया।

सेतुबन्ध, आर गौड़-व्यापि वृन्दावन।
प्रेम-नाम प्रचारिया करिला भ्रमण॥३६॥

अनुवाद

इन छह वर्षों में कुमारी अन्तरीप से लेकर बंगाल होते हुए वृन्दावन तक कीर्तन करते, नाचते और कृष्णप्रेम का वितरण करते हुए उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया।

एइ 'मध्यलीला' नाम—लीला-मुख्यधाम।
शेष अष्टादश वर्ष—'अन्त्यलीला' नाम॥३७॥

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद चैतन्य महाप्रभु के भ्रमण के समय के कार्यकलाप ही उनकी लीलाएँ हैं। शेष अठारह वर्षों के कार्यकलाप अन्त्यलीला कहलाते हैं।

तार मध्ये छय वत्सर भक्तगण-सङ्गे।
प्रेमभक्ति लओयाइल नृत्य-गीत-रङ्गे॥३८॥

अनुवाद

इन अठारह वर्षों में से वे छः वर्षों तक लगातार जगन्नाथ पुरी में रहते हुए नियमित रूप से कीर्तन करते रहे और सारे भक्तों को कीर्तन तथा नृत्य द्वारा कृष्णप्रेम के लिए प्रेरित करते रहे।

द्वादश वत्सर शेष रहिला नीलाचले।
प्रेमावस्था शिखाइला आस्वादन-च्छले॥३९॥

अनुवाद

शेष बारह वर्ष वे जगन्नाथ पुरी में हर एक को कृष्णप्रेम के दिव्य भाव का आस्वादन कराते रहे और स्वयं भी उसका आस्वादन करते रहे।

तात्पर्य

कृष्णभावनामृत—प्राप्त पुरुष को सदैव कृष्ण का विरह सताता रहता है, क्योंकि यह विरह की अनुभूति कृष्ण-मिलन की अनुभूति से बढ़ कर है। श्री चैतन्य महाप्रभु इस धराधाम में अपने जीवन-काल के अन्तिम बारह वर्षों में जगन्नाथ-पुरी में संसार के लोगों को यह सिखाते रहे कि किस तरह विरह-अनुभूति के साथ मनुष्य सुप्त कृष्णप्रेम को उत्पन्न कर सकता है। ऐसी विरह-अनुभूति या कृष्ण-मिलन भगवत्प्रेम की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। ये अनुभूतियाँ गम्भीरतापूर्वक भक्ति में लगने पर समयानुसार विकसित होती हैं। इसकी सर्वोच्च अवस्था *प्रेम-भक्ति* है; किन्तु यह अवस्था *साधन भक्ति* करने पर ही प्राप्त होती है। अतएव साधन-भक्ति के विधि-विधानों का पालन किये बिना कृत्रिम ढंग से प्रेम-भक्ति-अवस्था प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। प्रेम-भक्ति तो आस्वाद लेने की अवस्था है, जबकि साधन-भक्ति सुधारने की अवस्था है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने जीवन में भक्ति के इस सम्प्रदाय को व्यवहृत करके लोगों को इसकी विशद शिक्षा दी। इसीलिए कहा जाता है—*आपनि आचरिऽभक्ति शिखाइमु सबारे*। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं और उन्होंनें *कृष्णभक्त* वे रूप में सारे जगत को यह शिक्षा दी कि किस तरह भक्ति सम्पन्न करके समय आने पर भगवद्धाम वापस जाया जा सकता हैं।

रात्रि-दिवसे कृष्णविरह-स्फुरण।
उन्मादेर चेष्टा करे प्रलाप-वचन॥४०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को दिन-रात कृष्ण का विरह सताता रहता। वे इस विरह के लक्षणों को प्रकट करते हुए चिल्लाते, और पागल की तरह बड़बड़ाते।

श्रीराधार प्रलाप यैछे उद्धव-दर्शने।
सेइमत उन्माद-प्रलाप करे रात्रि-दिने॥४१॥

अनुवाद

जिस प्रकार उद्धव से भेंट होने पर श्रीमती राधारानी असम्बद्ध बातें करती थीं, उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधारानी के भाव में रात-दिन वैसा ही आस्वादन करते थे।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में हमें चाहिए कि वृन्दावन में उद्धव से भेंट करने के बाद श्रीमती राधारानी के स्वागत-भाषण का ध्यान करें। महाप्रभु भी वैसा ही, भावमयी काल्पनिक बातों का, दृश्य उपस्थित करते थे। भौंरे को उलाहना देते हुए कृष्ण की उपेक्षा के सूचक द्वेष तथा उन्माद से पूर्ण राधारानी एक पगली जैसी बातें करती थीं। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में महाप्रभु में ऐसे भाव के सारे लक्षण प्रकट होते थे। इस प्रसंग में आदिलीला के चौथे अध्याय के श्लोक १०७-१०८ देखने चाहिए।

विद्यापति, जयदेव, चण्डीदासेर गीत।
आस्वादेन रामानन्द-स्वरूप-सहित॥४२॥

अनुवाद

वे विद्यापति, जयदेव तथा चण्डीदास की कृतियाँ पढ़ा करते थे और अपने विश्वस्त संगीजनों, रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी, के साथ उनके गीतों का रसास्वादन करते थे।

तात्पर्य

विद्यापति राधाकृष्ण की लीलाओं के विषय में गीतों की रचना करने वाले

कवि थे। वे मिथिला के निवासी थे और ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। ऐसा अनुमान है कि उन्होंने अपने गीतों की रचना राजा शिवसिंह तथा रानी लछिमादेवी के शासन काल में चौदहवीं शती शक सम्वत् में की होगी—अर्थात् चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व। विद्यापति की बारहवीं पीढ़ी के वंशज अब भी रह रहे हैं। विद्यापति के गीतों में कृष्ण के गहन विरह को व्यक्त करने वाली कृष्ण की लीलाएँ हैं और श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के विरह-भाव के समय इन सारे गीतों का रसास्वादन करते थे।

जयदेव ग्यारहवीं या बारहवीं शती शक सम्वत् में बंगाल के राजा-महाराजा लक्ष्मणसेन के राज्यकाल में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम वामादेवी था। वे वर्षों तक नवद्वीप में रहे, जो उस समय बंगाल की राजधानी था। बीरभूम जिले का केन्दुबिल्व नामक ग्राम उनकी जन्मभूमि था। किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार वे उड़ीसा में उत्पन्न हुए थे और कुछेक उन्हें दक्षिण भारत में उत्पन्न बताते हैं। उन्होंने अपना अन्तिम समय जगन्नाथपुरी में बिताया। *गीतगोविन्द* उनकी सुप्रसिद्ध कृति है, जो कृष्ण के विरह-रस से ओतप्रोत है। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में उल्लेख मिलता है, गोपियों को रासनृत्य के पूर्व कृष्ण के विरह की अनुभूति हुई और *गीतगोविन्द* में ये ही अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। *गीतगोविन्द* पर अनेक वैष्णवों ने टीकाएँ लिखी हैं।

चण्डीदास का जन्म नान्नुरा ग्राम में हुआ था और वह भी बंगाल के बीरभूम जिले में है। ये ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे और बतलाया जाता है कि इनका भी जन्म चौदहवीं शती शकाब्द के प्रारम्भ में हुआ था। ऐसा सुझाव दिया जाता है कि चण्डीदास तथा विद्यापति घनिष्ठ मित्र थे, क्योंकि दोनों ने ही विरह की दिव्य अनुभूतियों का विशद वर्णन किया है। इनके द्वारा व्यक्त भावों का वास्तविक प्रदर्शन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा हुआ। उन्होंने राधारानी की भूमिका में उन सारी अनुभूतियों का आस्वादन किया और इस कार्य में उनके संगी थे श्री रामानन्द राय तथा श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी। चैतन्य महाप्रभु के इन घनिष्ठ संगियों ने राधारानी के रूप में अनुभव की जाने वाली लीलाओं में उनका हाथ बँटाया है।

इस सम्बन्ध में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि विद्यापति, चण्डीदास तथा जयदेव की कृतियों से चैतन्य महाप्रभु ने विरह की ऐसी

अनुभूतियों का आस्वादन किया जो रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर जैसे परमहंसों को ही शोभा देती हैं, क्योंकि उनकी आध्यात्मिक चेतना बहुत बढ़ी हुई थी। ऐसी कथाएँ सामान्य व्यक्तियों द्वारा चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों की नकल करके व्याख्यायित नहीं की जानी चाहिए। काव्य आलोचकों तथा ईश-चेतनाविहीन साहित्यिक व्यक्तियों को ऐसा आदर्श दिव्य साहित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग इन्द्रियतृप्ति के पीछे दीवाने रहते हैं, उन्हें *रागानुग* भक्ति की नकल नहीं उतारनी चाहिए। चण्डीदास तथा जयदेव ने अपने गीतों में भगवान् के दिव्य कार्याकलापों का वर्णन किया है। विद्यापति, जयदेव तथा चण्डीदास के गीतों के संसारी आलोचक सामान्य लोगों को लम्पट बनाते हैं, और इससे संसार में सामाजिक कलंक तथा नास्तिकता का जन्म होता है। राधा तथा कृष्ण की लीलाओं को संसारी एक युवक तथा युवती का प्रेमालाप समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। युवकों तथा युवतियों की संसारी कामकलाएँ अत्यन्त गर्हित होती हैं। अतएव देहात्म बुद्धि वालों तथा इन्द्रियतृप्ति के इच्छुकों को श्री राधा तथा कृष्ण की दिव्य लीलाओं की व्याख्या में नहीं पड़ना चाहिए।

कृष्णेर वियोगे यत प्रेम-चेष्टित।
आस्वादिया पूर्ण कैल आपन वाञ्छित॥४३॥

अनुवाद

कृष्ण के वियोग में श्री चैतन्य महाप्रभु इन सारे भावाविष्ट कार्यकलापों का आस्वादन करते थे, और इस तरह वे अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते थे।

तात्पर्य

चैतन्य-चरितामृत के प्रारम्भ में यह कहा गया है कि कृष्ण-दर्शन से राधारानी ने जिन भावों का अनुभव किया था चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव उनके आस्वादन हेतु हुआ था। स्वयं कृष्ण अपने प्रति राधारानी के भावों को नहीं समझ सके, अतएव उन्होंने राधारानी की भूमिका सम्पन्न करने की इच्छा प्रकट की, जिससे वे उन भावनाओं का आस्वादन कर सकें। चैतन्य महाप्रभु राधारानी की अनुभूतियों से युक्त कृष्ण हैं। दूसरे शब्दों में वे राधा और कृष्ण के संयोग हैं। इसीलिए यह कहा जाता है—*श्रीकृष्णचैतन्य राधाकृष्ण नहे अन्य*। श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने से राधा तथा कृष्ण के सम्मिलित

प्रेम-व्यापार का आस्वादन किया जा सकता है। अतएव राधा-कृष्ण को समझने का प्रत्यक्ष प्रयास न करके श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों के माध्यम से ऐसा करना चाहिए। इसीलिए श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*रूपरघुनाथपदे हैबे आकुति, कबे हम बुझब से युगलपिरीति*—कब मैं श्री रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रघुनाथ गोस्वामी तथा श्री चैतन्य के अन्य भक्तों के प्रति सेवा-भाव उत्पन्न कर सकूँगा, और इस तरह श्री राधा तथा कृष्ण की लीलाओं को समझने का पात्र बन सकूँगा?"

अनन्त चैतन्यलीला क्षुद्र जीव हञा।
के वर्णिते पारे, ताहा विस्तार करिया॥४४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अनन्त हैं। भला एक क्षुद्र जीव उन दिव्य लीलाओं को कितना विस्तार दे सकता है?

सूत्र करि' गणे य़दि आपने अनन्त।
सहस्र-वदने तेँहो नाहिं पाय अन्त॥४५॥

अनुवाद

यदि साक्षात् शेषनाग अनन्त को चैतन्य की लीलाएँ सूत्रबद्ध करनी पड़ें, तो वे अपने हजारों मुखों से भी उनकी सीमा पा सकने में समर्थ नहीं हो सकते।

दामोदर-स्वरूप, आर गुप्त मुरारि।
मुख्यमुख्यलीला सूत्रे लिखियाछे विचारि'॥४६॥

अनुवाद

श्री स्वरूप दामोदर तथा मुरारि गुप्त जैसे भक्तों ने पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद चैतन्य महाप्रभु की प्रमुख लीलाओं को सूत्रबद्ध किया है।

सेइ, अनुसारे लिखि लीला-सूत्रगण।
विस्तारि' वर्णियाछेन ताहा दास-वृन्दावन॥४७॥

अनुवाद

श्री स्वरूप दामोदर तथा मुरारि गुप्त ने जो सूत्र लिखे थे, वे ही इस पुस्तक के आधारस्वरूप हैं। उन्हीं सूत्रों का अनुसरण करते हुए मैं महाप्रभु

की सारी लीलाएँ लिख रहा हूँ। इन सूत्रों का विशद् वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा हुआ है।

चैतन्यलीलार व्यास—दास वृन्दावन।
मधुर करिया लीला करिला रचन॥४८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के प्रामाणिक लेखक श्रील वृन्दावन दास ठाकुर श्रील व्यासदेव के तुल्य हैं। उन्होंने इन लीलाओं का वर्णन इस प्रकार किया है कि वे अधिक मधुर बन गई हैं।

ग्रन्थ-विस्तार-भये छाड़िला ये ये स्थान।
सेइ सेइ स्थाने किछु करिब व्याख्यान॥४९॥

अनुवाद

इस भय से कि उनका ग्रंथ कहीं बहुत विशद् न हो जाय, उन्होंने कुछ स्थानों का विस्तृत वर्णन छोड़ दिया है। मैं उन्हीं-उन्हीं स्थानों को यथाशक्ति पूरा करने का प्रयास करूँगा।

प्रभुर लीलामृत तेँहो कैल आस्वादन।
ताँर भुक्त-शेष किछु करिये चर्वण॥५०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वास्तविक आस्वादन तो श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने किया है। मैं तो उन्हीं के छोड़े हुए अन्न (जूठन) को खाने का प्रयास-मात्र कर रहा हूँ।

आदिलीला-सूत्र लिखि, शुन, भक्तगण।
संक्षेप लिखिये सम्यक् ना याय लिखन॥५१॥

अनुवाद

हे चैतन्य-भक्तो! अब मैं आदिलीला के सूत्रों को संक्षेप में लिख रहा हूँ, क्योंकि इन लीलाओं का सम्यक् वर्णन करना सम्भव नहीं है।

कोन वाञ्छा पूरण लागि' व्रजेन्द्रकुमार।
अवतीर्ण हैते मने करिला विचार॥५२॥

अनुवाद

अपने मन की विशेष इच्छा पूरी करने के लिए व्रजेन्द्रकुमार भगवान् कृष्ण ने काफी विचार करने के बाद इस लोक में अवतरित होने का निश्चय किया।

आगे अवतारिला ग्रे ग्रे गुरु-परिवार।
संक्षेपे कहिये, कहा ना ग्रेय विस्तार ॥५३॥

अनुवाद

अतएव भगवान् कृष्ण ने सबसे पहले अपने गुरुजनों के परिवार को पृथ्वी पर अवतरित होने दिया। मैं उनका संक्षेप में ही वर्णन करूँगा क्योंकि उनका पूर्णतया वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

श्रीशची-जगन्नाथ, श्रीमाधव पुरी।
केशवभारती, आर श्रीईश्वर पुरी॥५४॥
अद्वैत आचार्य, आर पण्डित श्रीवास।
आचार्यरत्न, विद्यानिधि, ठाकुर हरिदास॥५५॥

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण ने चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होने के पूर्व निम्नलिखिक भक्तों को अपने से पहले प्रकट होने का आग्रह किया—श्री शचीदेवी, जगन्नाथ मिश्र, माधवेन्द्र पुरी, केशव भारती, ईश्वर पुरी, अद्वैत आचार्य, श्रीवास पण्डित, आचार्यरत्न, विद्यानिधि, तथा ठाकुर हरिदास।

श्रीहट्ट-निवासी श्रीउपेन्द्रमिश्र-नाम।
वैष्णव, पण्डित, धनी, सद्गुण-प्रधान॥५६॥

अनुवाद

श्रीहट्ट जिले का एक निवासी था जिसका नाम श्री उपेन्द्र मिश्र था। वह भगवान् विष्णु का महान् भक्त, विद्वान् पंडित, धनी तथा सद्गुणों की खान था।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में (श्लोक ३५) उपेन्द्र मिश्र को पर्जन्य नामक गोपाल कहा गया है। पूर्वकाल में जो व्यक्ति कृष्ण का पितामह था, वही श्रीहट्ट

में उपेन्द्र मिश्र के नाम से उत्पन्न हुआ और उसके सात पुत्र हुए। वह श्रीहट्ट जिले के ढाका-दक्षिण-ग्राम का निवासी था। अब भी उस भूभाग के अनेक निवासी अपने को श्री चैतन्य महाप्रभु के मिश्र परिवार से सम्बन्धित बतलाते हैं।

सप्त मिश्र ताँर पुत्र-सप्त ऋषीश्वर।
कंसारि, परमानन्द, पद्मनाभ, सर्वेश्वर॥५७॥
जगन्नाथ, जनार्दन, त्रैलोक्यनाथ।
नदीयाते गङ्गावास कैल जगन्नाथ॥५८॥

अनुवाद

उपेन्द्र मिश्र के सात पुत्र थे और वे सभी परम सन्त तथा अत्यन्त प्रभावशाली थे। इनके नाम थे— (१) कंसारि (२) परमानन्द (३) पद्मनाभ (४) सर्वेश्वर (५) जगन्नाथ (६) जनार्दन (७) त्रैलोक्यनाथ। पाँचवें पुत्र जगन्नाथ ने गंगा नदी के तट पर नदिया में रहने का निश्चय किया।

जगन्नाथ मिश्रवर—पदवी 'पुरन्दर'।
नन्द-वसुदेव-रूप सद्गुण-सागर॥५९॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र की उपाधि 'पुरन्दर' थी। वह नन्द तथा वसुदेव की ही भाँति समस्त सद्गुणों के सागर थे।

ताँर पत्नी 'शची'-नाम, पतिव्रता सती।
य़ाँर पिता 'नीलाम्बर' नाम चक्रवर्ती॥६०॥

अनुवाद

उसकी पत्नी श्रीमती शचीदेवी सती स्त्री थीं और पतिव्रता थीं। उनके पिता का नाम नीलाम्बर था तथा उनकी उपाधि 'चक्रवर्ती' थी।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका में (श्लोक १०४) उल्लेख है कि नीलाम्बर चक्रवर्ती पूर्वजन्म में गर्गमुनि थे। नीलाम्बर चक्रवर्ती के कुछ वंशज आज भी बंगलादेश के फरीदपुर जिले में मगडोबा नामक गाँव में रहते हैं। उनका भांजा जगन्नाथ

मिश्र मामु ठाकुर नाम से भी जाना जाता था और वह पण्डित गोस्वामी का शिष्य बन कर जगन्नाथ पुरी में टोटागोपीनाथ मन्दिर के पुजारी के रूप में रहता था। नीलाम्बर चक्रवर्ती बेलपुकुरिया के निकट नवद्वीप में रहते थे। यह बात *प्रेमविलास* ग्रंथ में उल्लिखित है। चूँकि वह काजी के मकान के निकट रहते थे, इसीलिए वह काजी भी चैतन्य महाप्रभु का मामा लगता था। काजी निलाम्बर चक्रवर्ती को काका या चाचा कहता था। कोई व्यक्ति काजी के मकान को वामनपुकुर से पृथक् नहीं कर सकता, क्योंकि आज भी काजी की कब्र वहाँ विद्यमान है। पहले यह स्थान बेलपुकुरिया कहलाता था और अब वामनपुकुर कहलाता है। पुरातत्त्व के साक्ष्यों से ऐसा निश्चित हो चुका है।

राढ़देशे जन्मिला ठाकुर नित्यानन्द।
गङ्गादास पण्डित, गुप्त मुरारि, मुकुन्द॥६१॥

अनुवाद

राढ़ देश बंगाल का वह भाग है जहाँ गंगा दिखाई नहीं पड़तीं। उसी राढ़ देश में नित्यानन्द प्रभु, गंगाधर दास पंडित, मुरारि गुप्त तथा मुकुन्द ने जन्म लिया।

तात्पर्य

यहाँ पर *राढ़देशे* से बीरभूम जिले के एकचक्रा नामक गाँव का बोध होता है जो बर्दवान के आगे है। बर्दवान रेलवे स्टेशन के बाद एक दूसरी शाखा है, जो पूर्वी रेलवे में लूप लाइन कहलाती है। उसी में मल्लारपुर नाम का एक रेलवे स्टेशन है। इस स्टेशन से आठ मील पूर्व की ओर एकचक्रा गाँव अब भी स्थित है। यह गाँव उत्तर से दक्षिण तक लगभग आठ मील के क्षेत्रफल में फैला हुआ है। वीरचन्द्रपुर तथा वीरभद्रपुर नामक गाँव इसी गाँव की सीमा में बसे हैं। वीरभद्र गोस्वामी के पवित्र नाम पर ये स्थान वीरचन्द्रपुर तथा वीरभद्रपुर के नाम से विख्यात है।

बंगला वर्ष १३३१ में एकचक्रा ग्राम के मन्दिर पर बिजली गिर गई, अतएव यह मन्दिर भग्न अवस्था में है। इसके पूर्व इस तरह की कोई दुर्घटना नहीं हुई थी। इस मन्दिर के भीतर नित्यानन्द प्रभु के हाथों से स्थापित श्रीकृष्ण की मूर्ति है। इस मूर्ति का नाम बंकिम राय या बाँका राय है। बंकिम राय के दाहिनी ओर जाह्नवा की और बाईं ओर श्रीमती राधारानी

की मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिर का पुजारी बतलाता है कि नित्यानन्द प्रभु बाँका राय के शरीर के भीतर प्रविष्ट हो गये और जाह्नवा माता की मूर्ति इसीलिए बाद में बाँका राय के दाईं ओर रख दी गई। इसके बाद उस मन्दिर में अनेक मूर्तियाँ स्थापित की गईं। इस मन्दिर के भीतर एक अन्य सिंहासन पर मुरलीधर तथा राधामाधव की मूर्तियाँ हैं। एक और सिंहासन पर मनमोहन, वृन्दावनचन्द्र तथा गौर निताई की मूर्तियाँ हैं किन्तु नित्यानन्द प्रभु ने बाँका राय की ही स्थापना मूल रूप से की थी।

मन्दिर के पूर्व में एक घाट है, जो यमुना तट पर स्थित कदम्ब खण्डी के नाम से विख्यात है। कहा जाता है कि बाँका राय की मूर्ति जल में तैर रही थी, जिसे नित्यानन्द प्रभु ने पकड़ कर इस मन्दिर में स्थापित किया था। फिर वीरचन्द्रपुर गाँव में भड्डापुर नामक स्थान में, जो लगभग आधा मील पश्चिम है, एक नीम के पेड़ के नीचे श्रीमती राधारानी की मूर्ति पाई गई। इसीलिए बंकिम राय की राधारानी भड्डपुरेर ठाकुराणी कहलाती हैं। एक अन्य सिंहासन में बाँका राय के दाईं ओर योगमाया की मूर्ति है।

इस समय यह मन्दिर तथा मन्दिर की बारादरी ऊँचे चबूतरे पर स्थित है, और मन्दिर के सामने एक कंक्रीट का बना सभाभवन है। कहा जाता है कि मन्दिर के उत्तर में शिवजी की मूर्ति थी, जिसका नाम भाण्डीश्वर था और जिसकी पूजा नित्यानन्द के पिता हाड़ाई पंडित करते थे। किन्तु सम्प्रति यह मूर्ति नदारद है और उसके स्थान पर जगन्नाथ स्वामी की मूर्ति स्थापित की गई है। वास्तविकता तो यह है कि नित्यानन्द प्रभु ने कोई भी मन्दिर नहीं बनवाया। यह मन्दिर वीरभद्र प्रभु के समय में बनाया गया था। बंगला वर्ष १२९८ में यह मन्दिर जीर्ण अवस्था में था, अतएव शिवानन्द स्वामी नामक ब्रह्मचारी ने इसका जीर्णोद्धार कराया।

इस मन्दिर में सत्रह सेर चावल तथा आवश्यक शाक से बना भोजन अर्चाविग्रह को अर्पित करने की व्यवस्था है। इस समय जो मन्दिर का पुजारी है, वह गोपीजन वल्लभानन्द के परिवार का है, जो नित्यानन्द प्रभु की एक शाखा है। इस मन्दिर के नाम पर भूमिबन्दोबस्त है और इस भूमि की आमदनी से इस मन्दिर का खर्च चलता है। पुजारी गोस्वामियों के तीन दल हैं, जो बारी-बारी से मन्दिर व्यवस्था अपने हाथ में लेते हैं। इस मन्दिर से कुछ ही पग आगे विश्रामतला नामक स्थान है, जहाँ पर यह कहा जाता है कि नित्यानन्द प्रभु अपने बचपन में खेल के समय वृन्दावन

की लीलाएँ तथा अपने मित्रों के साथ रासलीला रचाया करते थे।

मन्दिर के निकट आमलीतला नामक स्थान है, इसका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि वहाँ पर एक विशाल इमली का वृक्ष हैं। नेडादि सम्प्रदाय के अनुसार वीरभद्र प्रभु ने १२०० नेड़ाओं की सहायता से एक सरोवर खुदवाया जिसका नाम श्वेतगंगा है। मन्दिर के बाहर गोस्वामियों की समाधियाँ हैं और एक छोटी-सी नदी है जिसका नाम मौड़ेश्वर है, जिसे यमुना का जल बतलाया जाता है। इस छोटी-सी नदी से आधा मील की दूरी पर श्री नित्यानन्द प्रभु की जन्मस्थली है। ऐसा लगता है कि मन्दिर के सामने एक विशाल सभाभवन था किन्तु बाद में वह खण्डहर हो गया और अब वहाँ बरगद के पेड़ उगे हुए हैं। बाद में एक मन्दिर बनवा दिया गया जिसके भीतर गौर नित्यानन्द के विग्रह विद्यमान हैं। यह मन्दिर स्वर्गीय प्रसन्नकुमार कारफर्मा द्वारा बनवाया गया था। उनकी स्मृति में एक पत्थर लगा है, जिसमें बँगला वर्ष १३२३ बैसाख (अप्रैल-मई) लिखा है।

जिस स्थान में नित्यानन्द प्रभु प्रकट हुए वह गर्भवास कहलाता है। वहाँ के मन्दिर में पूजा चालू रखने के लिए मन्दिर के साथ ४३ बीघा जमीन लगी हुई है। इसमें से दिनाजपुर के महाराजा के द्वारा दी गई भूमि बीस बीघे है। कहा जाता है कि गर्भवास नामक स्थान में हाड़ाइ पंडित एक प्राथमिक स्कूल चलाते थे। इस स्थान के पुरोहितों की वंशावली इस प्रकार है—(१) श्री राघवचन्द्र (२) जगदानन्द दास (३) कृष्णदास (४) नित्यानन्द दास (५) रामदास (६) व्रजमोहनदास (७) कानाइ दास (८) गौरदास (९) शिवानन्द दास तथा (१०) हरिदास। कृष्णदास वृन्दावन के चिड़ियाकुंज से सम्बन्धित थे। उनका तिरोधान कृष्ण-जन्माष्टमी के दिन हुआ था। चिड़ियाकुंज अब शृंगारघाट के गोस्वामियों के प्रबन्ध में है। ये नित्यानन्द परिवार से भी सम्बद्ध बताये जाते हैं, जिसका कारण कृष्णदास से उनका सम्बन्ध है।

गर्भवास के निकट बकुलताल नामक एक स्थान है, जहाँ श्री नित्यानन्द प्रभु तथा उनके संगी झालझपेड़ा खेल खेला करते थे। यहाँ पर एक विचित्र बकुल का पेड़ है, क्योंकि उसकी सारी शाखाएँ और उप शाखाएँ सर्प के फनों जैसी दिखती हैं। ऐसा सुझाव है कि श्री नित्यानन्द प्रभु की इच्छा से साक्षात् अनन्त देव इस प्रकार प्रकट हुए थे। यह वृक्ष अत्यन्त पुराना है। पहले इस में दो डालें थीं, किन्तु नित्यानन्द प्रभु के संगियों को एक डाल से दूसरी डाल पर कूदने में असुविधा होती थी, इसलिए नित्यानन्द

ने दोनों डालों को मिलाकर एक कर दिया था।

पास ही हांटुगाड़ा नामक स्थान है। कहा जाता है कि नित्यानन्द प्रभु यहाँ पर सारे तीर्थों को ले आये थे। इसीलिए लोग गंगा नदी में स्नान न करके इस स्थान पर आते हैं। हांटुगाड़ा नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यहाँ पर नित्यानन्द प्रभु दधि-चिड़ा उत्सव मनाते थे जिसमें वे दही तथा चिउड़ा प्रसाद-रूप में बाँटते और घुटने के बल झुक कर प्रसाद लेते थे। इस स्थान का पवित्र सरोवर वर्ष-भर जल से भरा रहता है। गोपाष्टमी के अवसर पर यहाँ एक मेला लगता है और नित्यानन्द प्रभु के जन्मदिन पर भी एक बड़ा मेला लगता है। *गौरगणोद्देश-दीपिका* में बतलाया गया है कि हलायुध बलदेव, विश्वरूप तथा संकर्षण नित्यानन्द अवधूत के रूप में प्रकट हुए।

असंख्य भक्तेर कराइला अवतार।
शेषे अवतीर्ण हैला व्रजेन्द्रकुमार॥६२॥

अनुवाद

व्रजेन्द्रकुमार भगवान् कृष्ण ने सर्वप्रथम असंख्य भक्तों को प्रकट होने दिया और अन्त में वे स्वयं प्रकट हुए।

प्रभुर आविर्भावपूर्वे य़त वैष्णवगण।
अद्वैत-आचार्येर स्थाने करेन गमन॥६३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रकट होने के पूर्व नवद्वीप के सारे भक्त अद्वैत आचार्य के घर में जुटा करते थे।

गीता-भागवत कहे आचार्य-गोसाञि।
ज्ञान-कर्म निन्दि' करे भक्तिर बड़ाइ॥६४॥

अनुवाद

वैष्णवों की इन सभाओं में अद्वैत आचार्य भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत सुनाया करते थे, जिसमें वे दार्शनिक चिन्तन तथा सकाम कर्म की निन्दा करते और भक्ति की सर्वश्रेष्ठता स्थापित करते थे।

सर्वशास्त्रे कहे कृष्णभक्तिर व्याख्यान।
ज्ञान, य़ोग, तपो-धर्म नाहि माने आन॥६५॥

अनुवाद

वैदिक संस्कृति के सारे शास्त्र कृष्ण भक्ति की व्याख्या से भरे पड़े हैं। इसलिए कृष्ण-भक्त दार्शनिक चिन्तन, योग, व्यर्थ तपस्या एवं तथाकथित धार्मिक अनुष्ठानों को मान्यता प्रदान नहीं करते। वे भक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी विधि को नहीं मानते।

तात्पर्य

हमारा कृष्णभावनामृत-आन्दोलन इसी सिद्धान्त को मानता है। आत्म-साक्षात्कार के लिए हम कृष्ण-चेतना अर्थात् भक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी विधि को मान्यता नहीं प्रदान करते। कभी-कभी ज्ञान, योग, तप या धर्म मानने वाले लोग हमारी आलोचना करते हैं, किन्तु हम उनके साथ किसी प्रकार का समझौता करने के लिए तैयार नहीं हैं। हम भक्ति के धरातल पर खड़े होकर एक-से सिद्धान्तों का सारे संसार में प्रचार करते हैं।

ताँर सङ्गे आनन्द करे वैष्णवेर गण।
कृष्णकथा, कृष्णपूजा, नामसंकीर्तन॥६६॥

अनुवाद

सारे वैष्णवजन अद्वैत आचार्य के घर में सदैव कृष्ण के विषय में बातें करने, कृष्ण की पूजा करने तथा सदैव हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने में आनन्द का अनुभव करते थे।

तात्पर्य

एकमात्र कृष्णभावनामृत-आन्दोलन ही इन सिद्धान्तों पर चल रहा है। हमारे पास कृष्ण-चर्चा करने, कृष्ण की पूजा करने तथा हरे-कृष्ण-कीर्तन करने के अतिरिक्त अन्य कोई काम नहीं रहता।

किन्तु सर्वलोक देखि' कृष्णबहिर्मुख।
विषये निमग्न लोक देखि' पाय दुःख॥६७॥

अनुवाद

किन्तु श्री अद्वैत आचार्य को पीड़ा होती, जब वे देखते कि सारे लोग कृष्णभावनामृत से रहित हैं और भौतिक इन्द्रिभोग में डूबे हुए हैं।

तात्पर्य

कृष्ण-भक्त ऐसा होता है कि सारे जगत की पतित अवस्था देख कर पीड़ित होता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहा करते थे—"इस संसार में किसी चीज की कमी नहीं है। यदि कमी है तो केवल कृष्णभावनामृत की।" यही दृष्टिकोण समस्त शुद्ध भक्तों का है। मावन-समाज में कृष्णभावनामृत की इसी कमी के कारण अज्ञान तथा इन्द्रियतृप्ति में डूबे लोग भीषण कष्ट भोग रहे हैं। एक भक्त दर्शक के रूप में जगत की ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त खिन्न रहता है।

लोकेर निस्तार-हेतु करेन चिन्तन।
केमते ए सब लोकेर हइबे तारण॥६८॥

अनुवाद

संसार की ऐसी दशा देख कर वे गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे कि माया के पाश से किस प्रकार इन लोगों का उद्धार किया जा सकता है।

कृष्ण अवतरि' करेन भक्तिर विस्तार।
तबे त' सकल लोकेर हइबे निस्तार॥६९॥

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य प्रभु ने सोचा, "यदि भक्ति सम्प्रदाय का वितरण करने के लिए स्वयं कृष्ण अवतरित हों तभी सारे लोगों की मुक्ति सम्भव है।"

तात्पर्य

जिस प्रकार दोषी व्यक्ति को राष्ट्रपति या राजा की विशेष कृपा के द्वारा ही मुक्त किया जा सकता है, उसी प्रकार इस कलियुग के अधम लोगों का उद्धार भगवान् या उनके द्वारा शक्तिप्रदत्त व्यक्ति ही कर सकता है। श्रील अद्वैत प्रभु ने कामना की कि स्वयं भगवान् इस युग की पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए अवतीर्ण हों।

कृष्ण अवतरिते आचार्य प्रतिज्ञा करिया।
कृष्णपूजा करे तुलसी-गङ्गाजल दिया॥७०॥

अनुवाद

इस उद्देश्य से अद्वैत आचार्य ने भगवान् को अवतरित कराने की प्रतिज्ञा करते हुए भगवान् कृष्ण की पूजा तुलसीदल तथा गंगाजल से करना शुरू कर दिया।

तात्पर्य

तुलसीदल तथा गंगाजल के साथ, यदि सम्भव हो तो, थोड़ा-सा चन्दन भी भगवान् की पूजा करने के लिए पर्याप्त होता है। *भगवद्गीता* में (९.२६) भगवान् कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः॥

"यदि कोई मुझे प्रेम तथा भक्ति के साथ एक पत्ती, एक फूल, फल या जल अर्पित करता है तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।" इस सिद्धान्त का पालन करते हुए अद्वैत प्रभु ने भगवान् को तुलसीदल तथा गंगाजल से प्रसन्न किया।

कृष्णेर आह्वान करे सघन हुंकार।
हुंकारे आकृष्ट हैला व्रजेन्द्रकुमार॥७१॥

अनुवाद

उन्होंने हुंकार करके भगवान् कृष्ण को प्रकट होने के लिए आमन्त्रित किया, और उनकी इस बार-बार हुंकार से कृष्ण अवतरित होने के लिए आकृष्ट हुए।

जगन्नाथमिश्र-पत्नी शचीर उदरे।
अष्ट कन्या क्रमे हैल, जन्मि' जन्मि' मरे॥७२॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु के जन्म के पूर्व जगन्नाथ मिश्र की पत्नी शचीमाता के गर्भ से एक-एक करके आठ पुत्रियाँ जन्म ले चुकी थीं। किन्तु वे सभी जन्म लेने के तुरन्त बाद मरती गईं।

अपत्य-विरहे मिश्रेर दुःखी हैल मन।
पुत्र लागि' आराधिल विष्णुर चरण॥७३॥

अनुवाद

एक-एक करके सारी सन्तानों के मरने से जगन्नाथ मिश्र अत्यन्त दुखी थे अतएव उन्होंने पुत्र-प्राप्ति की कामना से भगवान् विष्णु के चरणकमलों की पूजा की।

तबे पुत्र जनमिला, 'विश्वरूप' नाम।
महा-गुणवान् तेँह—'बलदेव' धाम॥७४॥

अनुवाद

इसके बाद जगन्नाथ मिश्र को विश्वरूप नामक पुत्र की प्राप्ति हुई जो अत्यन्त शक्तिमान तथा गुणवान था, क्योंकि वह बलदेव का अवतार था।

तात्पर्य

विश्वरूप गौरहरि श्री चैतन्य महाप्रभु के बड़े भाई थे। जब उनके ब्याह की तैयारी हो गई तो उन्होंने संन्यास ले लिया और घर छोड़ कर चले गये। उनका संन्यास का नाम शंकरारण्य था। १४३१ शकाब्द में शोलापुर जिले के पाण्डेरपुर में उनका तिरोधान हो गया। संकर्षण का अवतार होने के कारण वे इस भौतिक जगत की सृष्टि के कार्य तथा कारण दोनों ही हैं। वे श्री चैतन्य महाप्रभु से अभिन्न हैं, जिस तरह *अंश* तथा *अंशी* एक दूसरे से भिन्न नहीं होते। वे संकर्षण के अवतार के रूप में चतुर्व्यूह में से एक हैं। *गौरचन्द्रोदय* में कहा गया हैं कि विश्वरूप अपनी मृत्यु के बाद श्री नित्यानन्द प्रभु के भीतर समा गये।

बलदेव-प्रकाश—परमव्योमे 'सङ्कर्षण'।
तेँह—विश्वेर उपादान-निमित्त-कारण॥७५॥

अनुवाद

वैकुण्ठ-जगत में बलदेव के अंश संकर्षण कहलाते हैं, जो इस जगत के उपादान तथा कारण हैं।

चरणकमलों की सेवा करने लगे।

तात्पर्य

कहावत है, "दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करै न कोय।" *भगवद्गीता* में भी इसी की पुष्टि हुई है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

"भूतकाल में पुण्यकर्म किये रहने वाले चार प्रकार के लोग—आर्त, अर्थार्थी ज्ञानी तथा जिज्ञासु—भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं।" जगन्नाथ मिश्र तथा शचीमाता दोनों ही दुखी थे, क्योंकि उनकी पुत्रियाँ मर चुकी थीं। अतएव जब उन्हें विश्वरूप नाम का पुत्र प्राप्त हुआ तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हें पता था कि भगवान् की कृपा से उन्हें ऐसा सुख तथा ऐश्वर्य मिला है। अतएव वे भगवान् को भुलाने के बजाय गोविन्द के चरणकमलों की अधिकाधिक सेवा करने लगे। सामान्य व्यक्ति ऐश्वर्यवान् होने पर ईश्वर को भुला देता है, किन्तु भगवत्कृपा से भक्त जितना ही ऐश्वर्यवान् होता जाता है वह उतना ही भगवान् की सेवा में अनुरक्त होता जाता है।

चौद्दशत छय शके शेष माघ मासे।
जगन्नाथ-शचीर देहे कृष्णेर प्रवेशे॥८०॥

अनुवाद

शक सम्वत १४०६ के माघ मास में भगवान् कृष्ण जगन्नाथ मिश्र तथा शचीदेवी दोनों ही के शरीर में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म फाल्गुन मास में शक सम्बत १४०७ में हुआ किन्तु हम देखते हैं कि अपने माता-पिता के शरीर में उनका प्रवेश माघ मास शक सम्वत १४०६ में ही हो चुका था। इस तरह वे अपने जन्म से १३ मास पूर्व माता-पिता के शरीर में प्रविष्ट हुए थे। सामान्यतया एक बालक अपनी माता के गर्भ में दस मास तक रहता है, किन्तु हम देखते हैं कि महाप्रभु अपनी माता के गर्भ में तेरह मास तक रहे।

मिश्र कहे शची-स्थाने,—देखि आन रीत।
ज्योतिर्मय देह, गेह लक्ष्मी-अधिष्ठित॥८१॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने शचीमाता से कहा, "मैं आश्चर्य देख रहा हूँ! तुम्हारा शरीर ज्योति से युक्त है और ऐसा लगता है कि साक्षात् लक्ष्मी देवी मेरे घर पधारी हैं।

याहाँ ताहाँ सर्वलोक करये सम्मान।
घरे पाठाइया देय धन, वस्त्र, धान॥८२॥

अनुवाद

"मैं जहाँ कहीं जाता हूँ, लोग मेरा सम्मान करते हैं। वे मेरे कहे बिना ही स्वेच्छा से मुझे धन, वस्त्र तथा धान देते हैं।"

तात्पर्य

ब्राह्मण किसी का दास नहीं बनता। अन्य किसी की सेवा करना शूद्रों का कार्य है। ब्राह्मण सदैव स्वतन्त्र होता है, क्योंकि वह समाज का शिक्षक, गुरु और उपदेशक होता है। समाज के सारे लोग उसे सारी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करते हैं। *भगवद्गीता* में भगवान् ने समाज के चार विभाग किए हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। समाज इस वैज्ञानिक विभाजन के बिना सुचारु रूप से नहीं चल सकता। ब्राह्मण को चाहिए कि समाज के सारे लोगों को अच्छी सलाह दे, क्षत्रिय को प्रशासन, कानून तथा समाज व्यवस्था देखनी चाहिए, वैश्यों को अन्न उत्पन्न करना और समाज की आवश्यक वस्तुओं का व्यापार करना चाहिए, जबकि शूद्रों को समाज के उच्च वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) की सेवा करनी चाहिए।

जगन्नाथ मिश्र ब्राह्मण थे, अतएव लोग उन्हें सारी आवश्यक वस्तुएँ—धन, वस्त्र, अन्न आदि-भेजा करते थे। जब चैतन्य महाप्रभु शचीमाता के गर्भ में थे तो जगन्नाथ मिश्र को ये वस्तुएँ बिना माँगे ही मिल जाती थीं। उनके परिवार में भगवान् की उपस्थिति के कारण प्रत्येक व्यक्ति ब्राह्मण के रूप में उनका आदर करता था। दूसरे शब्दों में, यदि ब्राह्मण या वैश्य भगवान् का दास बना रहे और भगवान् की इच्छाएँ पूरी करता चले तो उसके भरण-पोषण या उसके परिवार की आवश्यकताओं में किसी प्रकार के

टोटे की आशंका नहीं रहती।

शची कहे,—मुञि देखों आकाश-ऊपर।
दिव्यमूर्ति लोक सब येन स्तुति करे॥८३॥

अनुवाद

शचीमाता ने अपने पति से कहा "मुझे भी बाह्य आकाश में अत्यन्त विचित्र तेजोमय पुरुष प्रकट होते दिख रहे हैं, मानों वे स्तुति कर रहे हों।"

तात्पर्य

पृथ्वी पर हर कोई जगन्नाथ मिश्र का आदर करता था और उन्हें सारी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती रहती थीं। इसी तरह शचीमाता ने बाहर आकाश में देवताओं को अपनी स्तुति करते देखा, क्योंकि उसके गर्भ में श्री चैतन्य महाप्रभु उपस्थित थे।

जगन्नाथ मिश्र कहे,—स्वप्न ये देखिल।
ज्योतिर्मय धाम मोर हृदये पशिल॥८४॥

अनुवाद

तब जगन्नाथ मिश्र ने कहा, "मैंने सपने में भगवान् के धाम को अपने हृदय में प्रवेश करते देखा है।"

आमार हृदय हैते गेला तोमार हृदये।
हेन बूझि, जन्मिबेन कोन महाशये॥८५॥

अनुवाद

"फिर यह मेरे हृदय से निकल कर तुम्हारे हृदय में प्रविष्ट हुआ। इसलिए मेरी समझ में शीघ्र ही किसी महापुरुष का जन्म होगा।"

एत बलि' दूँहे रहे हरषित हञा।
शालग्राम सेवा करे विशेष करिया॥८६॥

अनुवाद

इस वार्ता के बाद पति-पत्नी दोनों परम हर्षित थे और दोनों ने मिल कर घर के शालिग्राम-शिला की सेवा की।

तात्पर्य

हर ब्राह्मण के-घर में पूजा करने के लिए शालग्राम-शिला होनी चाहिए। अब भी यह प्रथा चालू है। जो लोग ब्राह्मण जाति के हैं और ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हैं, उन्हें शालग्राम-शिला की पूजा करनी चाहिए। दुर्भाग्यवश, कलियुग की प्रगति के साथ तथाकथित ब्राह्मणों को ब्राह्मण परिवारों में जन्म लेने का बड़ा गर्व रहता है, किन्तु वे शालग्राम-शिला की पूजा नहीं करते। किन्तु यह प्रथा पुरातन काल से चली आ रही है कि ब्राह्मण-परिवार में जन्म लेने वाले मनुष्य को हर हालत में शालग्राम-शिला पूजना चाहिए। हमारे कृष्णभावनामृत-समाज के कुछ सदस्य शालग्राम-शिला का प्रचलन करने के लिए अत्यधिक उत्सुक हैं। किन्तु हम जान-बूझकर इससे दूर रहना चाहते हैं, क्योंकि कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के अधिकांश सदस्य ब्राह्मण-कुलों में उत्पन्न नहीं हैं। कुछ समय बाद जब हम यह देख लेंगे कि वे सब ब्राह्मण आचरण को प्राप्त कर चुके हैं तो शालग्राम शिला का सूत्रपात हो जायेगा।

इस युग में शालग्राम-शिला का पूजन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि भवन्नाम का कीर्तन है। यह शास्त्र का आदेश है। *हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलं, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा*। श्रील जीव गोस्वामी का मत है कि अपराधरहित होकर भगवन्नाम-कीर्तन करने से मनुष्य पूर्ण बनता है। फिर भी मन को शुद्ध करने के लिए मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा भी आवश्यक है। अतएव जब मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना प्रबुद्ध रहती है या वह आध्यात्मिक पद पर ठीक से स्थित होता है तो वह शालग्राम-शिला की पूजा कर सकता है।

जगन्नाथ मिश्र के हृदय से शचीमाता के हृदय में भगवान् के स्थानान्तरण की व्याख्या श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस प्रकार की है, "यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जगन्नाथ मिश्र तथा शचीमाता *नित्यसिद्ध* थे। उनके हृदय निष्कलुष रहते थे, अतएव वे कभी-भी भगवान् को भूले नहीं। इस जगत में सामान्य व्यक्ति का हृदय कलुषित रहता है, अतएव दिव्य पद प्राप्त करने के लिए उसे सर्वप्रथम अपना हृदय शुद्ध करना चाहिए। किन्तु जगन्नाथ मिश्र तथा शचीमाता सामान्य पुरुष तथा स्त्री न थे जिनके हृदय कलुषित रहे हों। जब हृदय निष्कलुष होता है तो वह वसुदेव पद को प्राप्त रहता है। वसुदेव से वासुदेव या कृष्ण उत्पन्न हो सकते हैं, जो दिव्य पद पर स्थित रहते हैं।

यह जान लेना चाहिए कि शचीमाता सामान्य स्त्रियों की तरह इन्द्रिय-भोग के द्वारा गर्भवती नहीं हुई थीं। शचीमाता के गर्भधारण को सामान्य स्त्री जैसा मानना अपराध होगा। पूर्ण आध्यात्मिक चेतना प्राप्त होने पर एवं भगवद्भक्ति में रत होने पर ही शचीमाता द्वारा गर्भधारण की बात समझ में आ सकेगी।

श्रीमद्भागवत में (१०.२.१६) कहा गया है—

भगवान् अपि विश्वात्मा भक्तानाम् अभयंकरः।
अविवेशांश भागेन मन आनकदुन्दुभेः॥

यह कृष्ण-जन्म विषयक कथन है। भगवान् कृष्ण का अवतार पहले वसुदेव के मन में प्रविष्ट हुआ और तब देवकी के मन में स्थानान्तरित हुआ। श्रील श्रीधर स्वामी इस सन्दर्भ में निम्नलिखित टिप्पणी देते हैं—*मन आविवेश मनस्य आविर्बभूव, जीवानाम इव न धातु-सम्बन्ध इत्यर्थः*। सामान्य मनुष्य के जन्म के लिए जिस तरह वीर्यस्खलन होना चाहिए उसका प्रश्न ही नहीं उठता। श्रील रूप गोस्वामी की भी इस सन्दर्भ में टीका है कि सर्वप्रथम आनकदुन्दुभि अर्थात् वसुदेव के मन में भगवान् कृष्ण प्रविष्ट हुए और तब देवकी के मन में स्थानान्तरित हुए। इस प्रकार देवकी के मन में आध्यात्मिक आनन्द क्रमशः बढ़ा, जिस प्रकार चन्द्रमा प्रति रात्रि में बढ़ता हुआ पूर्ण चन्द्रमा बन जाता है। अपने प्राकट्य के समय भगवान् कृष्ण देवकी के मन से निकले और कंस के कारागार में देवकी की शय्या की बगल में प्रकट हो गये। उस समय देवमाया के वश में होने से देवकी ने सोचा कि उन्हें पुत्र उत्पन्न हुआ है। इस सन्दर्भ में तो स्वर्ग के निवासी देवता भी मोहित थे। कहा गया है—*मुह्यन्ति यत् सूरयः* (भागवत १.१.१)। वे देवकी की स्तुति करने यह सोच कर आये थे कि परमेश्वर उनके गर्भ में है। देवतागण स्वर्गलोक से मथुरा आये थे। यह सूचित करता है कि मथुरा अब भी उच्चतर लोकों के स्वर्गलोक की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है।

यशोदामाता के पुत्र के रूप में भगवान् कृष्ण वृन्दावन में सदा विद्यमान हैं। भगवान् कृष्ण की लीलाएँ इस भौतिक जगत में तथा आध्यात्मिक जगत में निरन्तर चलती रहती हैं। इन लीलाओं में भगवान् सदैव अपने को माता यशोदा और पिता नन्द महाराज का पुत्र मानते हैं। *श्रीमद्भागवत* में (१०.६.४३) कहा गया है, "जब वदान्य तथा विशाल-हृदय नन्द महाराज अपने भ्रमण

से वापस आये तो उन्होंने तुरन्त ही कृष्ण को अपनी गोद में उठा लिया और उनका सिर सूंघ कर दिव्य आनन्द की प्रतीति की।" इसी प्रकार अन्यत्र (१०.९.२१) कहा गया है, "यह भगवान् गोप सुन्दरी के पुत्र के रूप में भक्तों के लिए सहज उपलब्ध तथा ज्ञेय हैं, किन्तु देहात्म बुद्धि वाले चाहे तपस्या या ज्ञान में कितने भी आगे क्यों न हों, उन्हें समझने में असमर्थ हैं।"

इसके बाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण का उद्धरण दिया है जो देवताओं द्वारा देवकी के गर्भ में स्थित भगवान् कृष्ण के प्रति की गई स्तुतियों का उल्लेख करते हुए कृष्ण-जन्म का सारांश इस प्रकार देते हैं, "जिस प्रकार उदित होने वाला चन्द्रमा पूर्व में प्रकाश बिखेरता है, उसी तरह दिव्य पद पर स्थित रहने वाली देवकी शूरसेन के पुत्र वसुदेव द्वारा कृष्ण-मन्त्र में दीक्षित होने पर कृष्ण को अपने हृदय में बसाये रहीं। *श्रीमद्भागवत* के इस कथन से (१०.२.१८) यह समझ में आता है कि आनकदुन्दुभि या वसुदेव के हृदय से स्थानान्तरित होकर भगवान् ने अपने को देवकी के हृदय में प्रदर्शित किया। बलदेव विद्याभूषण के अनुसार "देवकी के हृदय" से देवकी का गर्भ ही अभीष्ट है, क्योंकि *श्रीमद्भागवत* में (१०.२.४१) देवतागण कहते हैं—*दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगत: पर: पुमान्*—माता देवकी! भगवान् पहले से आपके गर्भ के भीतर हैं। अतएव वसुदेव के हृदय से देवकी के हृदय में भगवान् के स्थानान्तरित होने का अर्थ है कि वे देवकी के गर्भ में चले गये।

इसी तरह चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के प्रसंग में *चैतन्य-चरितामृत* के ये शब्द—*विशेषे सेवन करे गोविन्द-चरण*—इसके सूचक हैं कि जिस प्रकार भगवान् कृष्ण वसुदेव के हृदय से निकल कर देवकी के हृदय में चले गये, उसी प्रकार चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मिश्र के हृदय से शचीदेवी के हृदय में स्थानान्तरित हो गये। श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का यही रहस्य है, अत: उनके आविर्भाव को सामान्य पुरुष या जीव के आविर्भाव जैसा नहीं मानना चाहिए। यह विषय थोड़ा गूढ़ है, किन्तु भगवद्भक्तों को कृष्णदास कविराज गोस्वामी का कथन समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं होगी।

हैते हैते हैल गर्भ त्रयोदशमास।
तथापि भूमिष्ठ नहे,—मिश्रेर हैल त्रास॥८७॥

अनुवाद

इस तरह गर्भ तेरहवें मास में आ पहुँचा, किन्तु बालक के प्रसव का नामोनिशान भी न था। फलत: जगन्नाथ मिश्र को बड़ी चिन्ता होने लगी।

नीलाम्बर चक्रवर्ती कहिल गणिया।
एइ मासे पुत्र हबे शुभक्षण पाञा॥८८॥

अनुवाद

तब नीलाम्बर चक्रवर्ती (चैतन्य महाप्रभु के नाना) ने नक्षत्रों की गणना करके बतलाया कि शुभ क्षण का लाभ उठाकर इसी मास में बालक का जन्म होगा।

चोद्दशत सातशके मास ये फाल्गुन।
पौर्णमासीर सन्ध्याकाले हैले शुभक्षण॥८९॥

अनुवाद

इस प्रकार शक सम्वत् १४०७ के फाल्गुन मास (मार्च-अप्रैल) में पूर्णमासी की सन्ध्या के समय वांच्छित शुभ क्षण आ गया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्म-कुण्डली दी है जो इस प्रकार है—

शक १४०७/१०/२२/२८/४५

दिनम्

७	११	८
१५	५४	३८
४०	३७	४०
१३	६	२३

श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म के समय नक्षत्रों की स्थिति इस प्रकार थी—शुक्र

तथा अश्विनी नक्षत्रगण मेष राशि पर थे; केतु तथा उत्तर फाल्गुनी सिंह राशि पर थे; चन्द्र पूर्व फाल्गुनी पर था, शनि तथा ज्येष्ठा वृश्चिक पर, बृस्पति तथा पूर्वाषाढा धनु पर, मंगल तथा श्रवणा मकर राशि पर, रवि कुम्भ राशि पर; राहु पूर्वा भाद्रपदा पर और बुध तथा उत्तर भाद्रपाद मीन राशि पर थे। सिंहलग्न का दिन था।

सिंह-राशि, सिंह-लग्न, उच्च ग्रहगण।
षड्वर्ग, अष्टवर्ग: सर्व सुलक्षण॥९०॥

अनुवाद

ज्योतिर्वेद अर्थात् वैदिक ज्योतिष के अनुसार जब सिंह राशि तथा सिंहलग्न होता है तो यह नक्षत्रों के अति सुन्दर मिलन का सूचक है। यह षड्वर्ग तथा अष्टवर्ग क्षेत्र के प्रभाव में होता है और ये सभी शुभ क्षण के द्योतक हैं।

तात्पर्य

षड्वर्ग क्षेत्र के विभागों को *क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश* तथा *त्रिंशांश* कहते हैं। ज्योतिर्वेद के अनुसार जब यह गणना की जाती है कि इन षड्वर्ग क्षेत्र के क्षेत्रों में किसका आधिपत्य है, तो शुभ घड़ी की गणना हो सकती है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महान् ज्योतिषी भी थे। उन्होंने बतलाया है कि *बृहज्जातक* तथा अन्य ग्रंथों में नक्षत्रों तथा ग्रहों की गतियाँ जानने के निर्देश दिये हुए हैं। जो सीधी रेखा खींच कर अष्टवर्ग क्षेत्र को जान लेता है, वह शुभ नक्षत्रों को बता सकता है। यह विज्ञान *होराशास्त्रविदों* को ज्ञात है। होराशास्त्र के परिगणनों से श्री चैतन्य महाप्रभु के नाना नीलम्बर चक्रवर्ती ने वह शुभ घड़ी ज्ञात की, जिसमें महाप्रभु को प्रकट होना था।

अ-कलङ्क गौरचन्द्र दिला दरशन।
स-कलङ्क चन्द्रे आर कोन् प्रयोजन॥९१॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी निष्कलंक चन्द्रमा दिखने लगा तो फिर कलंकयुक्त चन्द्रमा की आवश्यकता कहाँ रही?

एत जानि' राहु कैल चन्द्रेर ग्रहण।
'कृष्ण' 'कृष्ण' 'हरि' नामे भासे त्रिभुवन॥९२॥

अनुवाद

यह सोच कर राहु ने पूर्णचन्द्रमा को ढक लिया और तुरन्त ही तीनों जगत "कृष्ण! कृष्ण! हरि" की ध्वनि से भर गये।

तात्पर्य

ज्योतिर्वेद के अनुसार पूर्णचन्द्रमा के समक्ष राहु के आ जाने से चन्द्र-ग्रहण लगता है। जब चन्द्र या सूर्य-ग्रहण लगता है तो भारत में यह प्रथा है कि वैदिक शास्त्रों के अनुयायी गंगा में या समुद्र में स्नान करते हैं। जब तक ग्रहण लगा रहता है, वैदिक धर्म के मानने वाले जल में खड़े रह कर हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करते हैं। चैतन्य महाप्रभु के जन्म के समय ऐसा ही चन्द्र-ग्रहण लगा था, अतएव स्वाभाविक था कि लोग जल के भीतर खड़े होकर हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे/हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे का कीर्तन कर रहे थे।

जय जय ध्वनि हैल सकल भुवन।
चमत्कार हैया लोक भावे मने मन॥९३॥

अनुवाद

इस तरह सारे लोग चन्द्र-ग्रहण के समय हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने लगे और उनके मन आश्चर्य से चकित थे

जगत् भरिया लोक बले—'हरि' 'हरि'।
सेइक्षणे गौरकृष्ण भूमे अवतरि॥९४॥

अनुवाद

जब सारा जगत इस तरह भगवान् कृष्ण के नाम का कीर्तन कर रहा था तो गौरहरि के रूप में कृष्ण पृथ्वी पर अवतरित हुए।

प्रसन्न हइल सब जगतेर मन।
'हरि बलि' हिन्दुके हास्य करये य़वन॥९५॥

अनुवाद

सारा जगत प्रसन्न था। जहाँ हिन्दू लोग भगवान् के नाम का कीर्तन

कर रहे थे वहीं अहिन्दू, विशेषतया मुसलमान उनके शब्दों का हँसी-हँसी में अनुकरण कर रहे थे।

तात्पर्य

यद्यपि मुसलमानों अथवा अहिन्दुओं की भगवन्नाम या हरे-कृष्ण-महामन्त्र कीर्तन में कोई रुचि नहीं होती, किन्तु जब नवद्वीप के हिन्दू चन्द्र-ग्रहण के अवसर पर कीर्तन कर रहे थे, तो मुसलमान भी उनका अनुकरण कर रहे थे। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के समय हिन्दू तथा मुसलमान दोनों मिल कर भगवान् के नाम का कीर्तन कर रहे थे।

'हरि' बलि' नारीगण देइ हुलाहुलि।
स्वर्गे वाद्यनृत्य करे देव कुतूहली॥९६॥

अनुवाद

जब सारी स्त्रियाँ पृथ्वी पर हरि-नाम का उच्चारण कर रही थीं तो उस समय स्वर्गलोक में नाच-गाना चल रहा था, क्योंकि देवतागण परम उत्सुक थे।

प्रसन्न हैल दश दिक्, प्रसन्न नदीजल।
स्थावर-जङ्गम हैल आनन्दे विह्वल॥९७॥

अनुवाद

इस वायुमण्डल की दशों दिशाएँ प्रसन्न हो उठीं और नदियों की तरंगे भी उसी तरह ऊपर उठने लगीं। साथ ही सारे जड़ तथा चेतन प्राणी दिव्य आनन्द से अभिभूत हो उठे।

नदीया-उदयगिरि, पूर्णचन्द्र गौरहरि,
कृपा करि' हइल उदय।
पाप-तमः हैल नाश, त्रिजगतेर उल्लास,
जगभरि' हरिध्वनि हय॥९८॥

अनुवाद

इस तरह अपनी अहैतुकी कृपा से पूर्णचन्द्र रूपी गौरहरि नदिया जिले में उदित हुए। नदिया की उपमा उस उदयगिरि से दी गई है, जहाँ सर्वप्रथम सूर्य दिखता है। आकाश में उनके उदय होने से पापमय जीवन

का अंधकार भग गया और तीनों लोक हर्षित हो उठे तथा भगवन्नाम का कीर्तन करने लगे।

सेइकाले निजालय, उठिया अद्वैत राय,
नृत्य करे आनन्दित-मने।
हरिदासे लञा सङ्गे, हुङ्कार-कीर्तन-रङ्गे,
केने नाचे, केह नाहि जाने॥९९॥

अनुवाद

उस समय श्री अद्वैत आचार्य प्रभु अपने शान्तिपुर के घर में प्रसन्न मुद्रा में नाच रहे थे। वे हरिदास को अपने साथ लेकर नाच रहे थे और तेजी से हरे कृष्ण का कीर्तन कर रहे थे। किन्तु वे किसलिए नाच रहे थे, यह कोई नहीं जान सका।

तात्पर्य

ऐसा समझा जाता है कि उस समय अद्वैत प्रभु अपने शान्तिपुर के पैतृक मकान में थे। हरिदास ठाकुर उनसे प्राय: भेंट करते रहते थे। संयोगवश वे भी उस समय वहाँ थे और श्री चैतन्य के जन्म होने पर दोनों ही तुरन्त नाचने लगे थे, किन्तु शान्तिपुर का कोई भी निवासी यह नहीं जान सका कि दोनों साधु क्यों नाच रहे हैं।

देखि' उपराग हासि', शीघ्र गंगाघाटे आसि',
आनन्दे करिल गंगास्नान।
पाञा उपराग-छले, अपनार मनोबले,
ब्राह्मणेर दिल नाना दान॥१००॥

अनुवाद

चन्द्र-ग्रहण को देखते तथा हँसते अद्वैत तथा हरिदास ठाकुर दोनों तुरन्त गंगा के तट पर गये और परम हर्ष के साथ गंगास्नान किया। चन्द्र-ग्रहण के अवसर का लाभ उठाते हुए अद्वैत आचार्या ने अपनी मानसिक शक्ति से ब्राह्मणों को तरह-तरह के दान दिये।

तात्पर्य

हिन्दुओं में चन्द्र या सूर्य-ग्रहण के समय गरीबों को यथाशक्ति दान देने का

रिवाज है। अतएव अद्वैत आचार्यों ने इस ग्रहण का लाभ उठाते हुए ब्राह्मणों को तरह-तरह के दान दिये। *श्रीमद्भागवत* में (१०.३.११) एक वाक्य है कि जब कृष्ण ने जन्म लिया तो वसुदेव ने उस क्षण का लाभ उठाते हुए तुरन्त ब्राह्मणों में दस हजार गौवें बाँट दीं। हिन्दुओं में रिवाज है कि यदि घर में शिशु जन्म लेता है, विशेषकर के पुत्र, तो माता-पिता हर्ष के मारे दान देते हैं। अद्वैत आचार्य दान देना चाहते थे, क्योंकि चन्द्र-ग्रहण के समय चैतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ था। किन्तु लोग यह नहीं जान पाये कि अद्वैत आचार्य दान में इतनी तरह की वस्तुएँ क्यों दे रहे हैं। उन्होंने ऐसा इसलिए नहीं किया था कि चन्द्र-ग्रहण लगा है, अपितु इसलिए कि महाप्रभु उस घड़ी जन्म ले रहे थे। उन्होंने ठीक वैसे ही दान बाँटा जिस प्रकार कृष्ण के आविर्भाव के समय वसुदेव ने किया था।

जगत् आनन्दमय, देखि' मने सविस्मय,
ठारेठोरे कहे हरिदास।
तोमार ऐछन रङ्ग, मोर मन परसन्न,
देखि—किछु कार्ये आछे भास॥१०१॥

अनुवाद

जब हरिदास ने देखा कि सारा संसार हर्षित है और उसका मन विस्मित है तो उसने अद्वैत आचार्य से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से कह ही तो दिया, "आप का नाचना और दान वितरित करना मुझे सुहावना लग रहा है। मैं समझता हूँ कि इन क्रियाओं के पीछे अवश्य ही कोई विशेष प्रयोजन है।"

आचार्यरत्न, श्रीवास, हैल मने सुखोल्लास,
याइ' स्नान कैल गंगाजले।
आनन्दे विह्वल मन, करे हरि संकीर्तन,
नानादान कैल मनोबले॥१०२॥

अनुवाद

आचार्यरत्न (चन्द्रशेखर) तथा श्रीवास ठाकुर उल्लास से अभिभूत हो गये और तुरन्त गंगा नदी के तट पर जाकर गंगाजल में स्नान करने लगे। उनके मन आनन्द से पूर्ण थे। उन्होंने हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन

किया और मनोबल के कारण दान दिया।

एइ मत भक्ततति, य़ाँर य़ेइ देशे स्थिति,
ताहाँ ताहाँ पाञा मनोबले।
नाचे, करे संकीर्तन, आनन्दे विह्वल मन,
दान करे ग्रहणेर छले॥१०३॥

अनुवाद

इस तरह सारे भक्त, जो जहाँ भी, जिस नगर तथा जिसे ग्राम में थे, सब के सब चन्द्र-ग्रहण के बहाने नाचने लगे, संकीर्तन करने लगे और मनोबल से दान देने लगे। उन सबों के मन प्रसन्नता के मारे विह्वल थे।

ब्राह्मण-सज्जन-नारी, नाना-द्रव्य थाली भरि,
आइला सबे य़ौतुक लइया।
य़ेन काँचा-सोना-द्युति, देखि' बालकेर मूर्ति
आशीर्वाद करे सुख पाञा॥१०४॥

अनुवाद

सभी सम्मान्य ब्राह्मण पुरुष तथा स्त्रियाँ विविध उपहारों से भरी थालें भेंट करने आईं। सोने की तरह चमचमाते स्वरूप वाले नवजात शिशु को देख कर उन सबों ने अत्यन्त सुख का अनुभव करते हुए आशीर्वाद दिया।

सावित्री, गौरी, सरस्वती, शची, रम्भा, अरुन्धती,
आर य़त देव-नारीगण।
नाना द्रव्ये पात्र भरि', ब्राह्मणीर वेश धरि',
आसि' सबे करे दरशन॥१०५॥

अनुवाद

समस्त दैवी स्त्रियाँ जिनमें ब्रह्मा, शिव, नृसिंहदेव, इन्द्र, वशिष्ठ ऋषि की पत्नियाँ एवं स्वर्ग की अप्सरा रम्भा भी सम्मिलित थीं। वहाँ पर ब्राह्मणियों का वेश धारण करके नाना प्रकार के उपहार लेकर आईं।

तात्पर्य

जब चैतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ तो पड़ोस की स्त्रियाँ, विशेष रूप से सम्मान्य ब्राह्मणों की पत्नियाँ देखने आईं। इन ब्राह्मण पत्नियों के वेश में ब्रह्मा, शिव आदि की पत्नियाँ भी नवजात शिशु को देखने आईं। सामान्य लोगों ने उन्हें पड़ोस के सम्मान्य ब्राह्मण की पत्नियों के रूप में देखा; लेकिन वास्तव में वे उस वेश में देवलोक की स्त्रियाँ थीं।

अन्तरीक्षे देवगण, गन्धर्व, सिद्ध, चारण,
स्तुति-नृत्य करे वाद्य-गीत।
नर्तक, वादक, भाट, नवद्वीपे य़ार नाट
सबे आसि' नाचे पाञा प्रीत ॥१०६॥

अनुवाद

सारे देवता, जिनमें गन्धर्वलोक, सिद्धलोक तथा चारणलोक के निवासी सम्मिलित थे, बाह्य अन्तरिक्ष में स्तुति करने लगे और गीत गाकर तथा ढोल बजाकर नाचने लगे। इसी प्रकार नवद्वीप नगरी में सारे पेशेवर नर्तक, गायक तथा बन्दीजन एकत्र होकर परम प्रसन्नता के मारे नाचने लगे।

तात्पर्य

जिस प्रकार स्वर्गलोक में पेशेवर गायक, नर्तक और भाट हैं, उसी तरह भारत में अब भी पेशेवर नर्तक, बन्दीजन तथा गायक हैं। ये सभी लोग गृहस्थों के उत्सवों के समय, विशेषतया जन्मोत्सव और विवाहों में, एकत्र होते हैं। ये पेशेवर लोग हिन्दुओं के घरों से ऐसे अवसरों पर दान लेकर अपनी जीविका चलाते हैं। ऐसे अवसरों का लाभ हिजड़े भी उठाते हैं। यही उनकी जीविका के साधन हैं। ऐसे लोग न तो नौकरी करते हैं, न खेती करते हैं, न व्यापार। ये शान्तिपूर्वक अपना उदर-पोषण करने के लिए पड़ोस के मित्रों से दान लेते हैं। भाट ब्राह्मणों का एक वर्ग है जो ऐसे उत्सवों में वैदिक शास्त्रों के अनुसार गीत बनाकर आशीर्वाद देने जाते हैं।

केबा आसे केबा य़ाय, केबा नाचे केबा गाय,
सम्भालिते नारे कार बोल।

खण्डिलेक दुःख-शोक, प्रमोदपूरित लोक,
मिश्र हैला आनन्दे विह्वल ॥१०७॥

अनुवाद

कोई यह जान नहीं पाया कि कौन आ रहा है, कौन जा रहा है, कौन नाच रहा है और कौन गा रहा है। कोई एक दूसरे की भाषा नहीं समझ पा रहा था। किन्तु हुआ यह कि सारा दुख और शोक तुरन्त दूर हो गया और सारे लोग प्रसन्न हो उठे। इस तरह जगन्नाथ मिश्र भी आनन्दविभोर थे।

आचार्यरत्न, श्रीवास, जगन्नाथमिश्र-पाश,
आसि' ताँरे करे सावधान।
कराइल जातकर्म, य़े आछिल विधि-धर्म,
तबे मिश्र करे नाना दान ॥१०८॥

अनुवाद

चन्द्रशेखर आचार्य तथा श्रीवास दोनों ही जगन्नाथ मिश्र के पास आकर तरह-तरह से उनका ध्यान बँटाने लगे। उन्होंने धार्मिक नियमों के अनुसार जन्मकाल के सारे अनुष्ठान सम्पन्न कराये। जगन्नाथ मिश्र ने भी तरह-तरह के दान दिये।

य़ौतुक पाइल य़त, घरे वा आछिल कत,
सब धन विप्रे दिल दान।
य़त नर्तक, गायन, भाट, अकिञ्चन जन,
धन दिया कैल सबार मान ॥१०९॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने भेंट या उपहार के रूप में जो धन पाया और जो कुछ उसके घर में था, उसे उन्होंने ब्राह्मणों, पेशेवर गायकों, नाचने वालों, भाटों तथा गरीबों में बाँट दिया। उन्होंने दान में धन देकर उन सबका सम्मान किया।

श्री वासेर ब्राह्मणी, नाम तार 'मालिनी',
आचार्यरत्नेर पत्नी-सङ्गे।

सिन्दूर, हरिद्रा, तैल, खइ, कला, नारिकेल,
दिया पूजे नारीगण रङ्गे॥११०॥

अनुवाद

चन्द्रशेखर (आचार्यरत्न) की पत्नी तथा अन्य महिलाओं के साथ श्रीवास की पत्नी मालिनी परम प्रसन्नता से बालक की पूजा करने के लिए सिन्दूर, हल्दी, तेल, खइ (भुने चावल), केला तथा नारियल जैसी सामग्री लेकर आईं।

तात्पर्य

ऐसे शुभ अवसरों पर सेंदुर, खइ, केला, नारियल तथा हल्दी को तेल के साथ मिलाकर शुभ उपहार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। जिस तरह खील होता है, उसी तरह खइ भी चावल से बनता है। इसे केले के साथ अत्यन्त शुभ भेंट माना जाता है। हल्दी को तेल तथा सेंदुर के साथ मिलाने से शुभ लेप तैयार हो जाता है, जिसे नवजात शिशु या दूलह के सारे शरीर में लगाया जाता है। पारिवारिक कार्यों के लिए ये सारे शुभकर्म हैं। हम देखते हैं कि ५०० वर्ष पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म के समय ये सारे उत्सव दृढ़तापूर्वक मनाये जाते थे। किन्तु वर्तमान समय में ये अनुष्ठान विरले ही सम्पन्न किये जाते हैं। सामान्यतया गर्भवती माता को अस्पताल भेज दिया जाता है और ज्योंही शिशु-जन्म ले लेता है तो उसे प्रतिरोधी द्रव से नहलाया जाता है और यहीं सारी क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं।

अद्वैत-आचार्य-भार्या, जगत्पूजिता आर्या,
नाम तार 'सीता ठाकुराणी'।
आचार्येर आज्ञा पाञा, गेल उपहार लञा,
देखिते बालक-शिरोमणि॥१११॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म के एक दिन बाद ही अद्वैत आचार्य की पत्नी सीतादेवी जो जगत-भर की पूजिता हैं, अपने पति से आज्ञा लेकर और अपने साथ तरह-तरह की भेंटे लेकर उस सर्वश्रेष्ठ बालक को देखने गईं।

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि अद्वैत आचार्य के दो मकान थे—एक शान्तिपुर में और दूसरा नवद्वीप में। जब श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव हुआ तो वे अपने नवद्वीप वाले मकान में नहीं थे, अपितु शान्तिपुर वाले मकान में थे। अतएव जैसा कि कहा जा चुका है सीतादेवी अद्वैत आचार्य के पुराने पैतृक मकान (*निजालय*) से नवजात शिशु को भेंट देने के लिए नवद्वीप आईं।

सुवर्णेर कड़ि-बउलि, रजतमुद्रा-पाशुलि,
सुवर्णेर अङ्गद, कङ्कण।
दु-बाहुते दिव्य शंख, रजतेर मलबंक,
स्वर्णमुद्रार नाना हारगण॥११२॥

अनुवाद

वे अपने साथ अनेक प्रकार के सोने के आभूषण लाई थीं, जिनमें हाथ के कंगन, बाजूबंद, हार तथा पाँव के पायल थे।

व्याघ्रनख हेमजड़ि, कटि-पट्टसूत्र-डोरी,
हस्त-पदेर यत आभरण।
चित्रवर्ण पट्टसाड़ी, बुनि फोटो पट्टपाड़ी
स्वर्ण-रौप्य-मुद्रा बहुधन॥११३॥

अनुवाद

उसमें सोने में जड़े बघनखे, रेशमी कमरबन्ध पट्ट, हाथों तथा पाँवों के आभूषण, सुन्दर छपी रेशमी साड़ियाँ तथा रेशम का ही बना बच्चे का झँगला भी थे। साथ ही सोने तथा चाँदी के सिक्कों समेत अन्य धन भी बच्चे को न्यौछावर किया गया।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य की पत्नी सीतादेवी ठाकुराणी द्वारा प्रदत्त भेंट से लगता है कि उस समय अद्वैत आचार्य काफी सम्पन्न थे। यद्यपि ब्राह्मण धनी नहीं होते, किन्तु अद्वैत आचार्य शान्तिपुर के ब्राह्मणों के अगुआ होने के कारण काफी सम्पन्न थे। अतएव उन्होंने बालक चैतन्य को तमाम आभूषण भेंट

में दिये। किन्तु कमलाकान्त विश्वास ने जगन्नाथपुरी के राजा-महाराजा प्रतापरुद्र से अद्वैत आचार्य का ऋण चुकाने के लिए जो तीन सौ रुपये माँगे थे उससे सूचित होता है कि इतना सम्पन्न होते हुए भी तीन सौ रुपये का ऋण चुका पाना उनके लिए कठिन था। अतएव उस समय रुपये का मूल्य आज से हजारों गुना अधिक था। सम्प्रति, न तो किसी को तीन सौ रूपये का ऋण अदा करना खलता है, न ही सामान्य व्यक्ति इतना धन जुटा पाता है कि अपने मित्र के पुत्र को इतने मूल्यवान आभूषण भेंट में दे सके। सम्भवतया उस समय के तीन सौ रुपये का मूल्य आज के तीस हजार रुपयों के बराबर रहा होगा।

दूर्वा, धान्य, गोरोचन, हरिद्रा, कुंकुम, चन्दन,
मंगल-द्रव्य पात्र भरिया।
वस्त्र-गुप्त दोला चड़ि', सङ्गे लञा दासी चेड़ी,
वस्त्रालंकार पेटारि भरिया ॥११४॥

अनुवाद

सीतादेवी ठाकुराणी पर्दे से ढकी पालकी में चढ़ कर और दासियों को साथ लेकर जगन्नाथ मिश्र के घर आईं। वे अपने साथ अनेक मंगल द्रव्य—यथा दूर्वा, धान, गोरोचन, हल्दी, कुंकुम एवं चन्दन लाई थीं। ये सारी भेंटें एक बड़ी पिटारी में भरी हुई थीं।

तात्पर्य

इस श्लोक में *वस्त्रगुप्त दोला* शब्द अत्यन्त सार्थक हैं। यहाँ तक कि पचास-साठ वर्ष पूर्व भी सभी संभ्रान्त महिलाएँ चार आदमियों द्वारा ले जाई जाने वाली पालकी में चढ़ कर निकटवर्ती स्थान को जाया करती थी। यह पालकी सूती कपड़े से ढकी होती थी, जिससे रास्ते में जाते समय संभ्रान्त महिलाएँ दिखाई न पड़ें। उच्च कुल की महिलाओं को सभी लोग देख नहीं सकते थे। यह प्रथा दूरस्थ स्थानों में अब भी चालू है। *असूर्यपश्य* संस्कृत शब्द ऐसी संभ्रान्त महिला को सूचित करता है जिसे सूर्य भी नहीं देख सकता। प्राच्य संस्कृति में यह प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी और हिन्दू तथा मुस्लिम महिलाएँ इसका कठोरता से पालन करती थीं। हमें अपने बचपन का अनुभव है कि हमारी माता अपने पड़ोस में निमन्त्रण पर पैदल नहीं जाती थीं,

वे या तो गाड़ी पर चढ़ कर या कहारों द्वारा ले जाने वाली पालकी पर चढ़ कर जाती थीं। यही प्रथा आज से ५०० वर्ष पूर्व भी दृढ़ता से लागू थी और अद्वैत आचार्य की पत्नी ने संभ्रान्त महिला होने के कारण, उस सामाजिक परिवेश के नियमों का पालन किया।

भक्ष्य, भोज्य, उपहार, संगे लइल बहु भार,
शचीगृहे हैल उपनीत।
देखिया बालक-ठाम, साक्षात् गोकुल-कान,
वर्णमात्र देखि विपरीत॥११५॥

अनुवाद

जब सीता ठाकुराणी अपने साथ तमाम खाने की वस्तुएँ, वस्त्र तथा अन्य उपहार लेकर शचीदेवी के घर आईं तो वे नवजात शिशु को देख कर चकित थीं, क्योंकि उन्हें लगा कि यह शिशु, साक्षात् गोकुल का कृष्ण है, केवल रंग का अन्तर है।

तात्पर्य

पेटारी एक भारी डलिया है जिसे एक बाँस के दोनों छोरों पर लटकाकर कंधे के ऊपर रख लिया जाता है। जो व्यक्ति इस पेटारी को ले जाता है वह *भारी* कहलाता है। सामान तथा बंडल ले जाने की यह प्रथा आज भी भारत तथा अन्य प्राच्य देशों में चालू है। हमने इसे अब भी जकार्ता इण्डोनेशिया में प्रचलित देखा है।

सर्व अङ्ग-सुनिर्माण, सुवर्ण-प्रतिमा-भान,
सर्व अङ्ग—सुलक्षणमय।
बालकेर दिव्य ज्योति, देखि' पाइल बहु प्रीति
वात्सल्यते द्रविल हृदय॥११६॥

अनुवाद

बालक के दिव्य शारीरिक तेज, शुभ लक्षणों से युक्त सुगठित अंगों तथा स्वर्ण जैसे स्वरूप को देख कर सीता ठाकुराणी अत्यधिक प्रसन्न थीं और अपनी मातृवत्सलता के कारण उन्हें लग रहा था मानो उनका हृदय द्रवित हो उठा है।

दूर्वा, धान्य, दिल शीर्षे, कैल बहु आशीषे,
चिरजीवी हओ दुइ भाइ।
डाकिनी-शाँखिनी हैते, शङ्का उपजिल चिते,
डरे नाम थुइल 'निमाइ'॥११७॥

अनुवाद

उन्होंने नवजात शिशु के सिर पर दूर्वादल तथा धान्य रख कर यह आशीष दिया "दीर्घायु हो।" किन्तु भूतप्रेत तथा डाइनों से भयभीत होने के कारण उन्होंने बालक का नाम निमाई रख दिया।

तात्पर्य

डाकिनी तथा शाँखिनी शिव तथा उनकी पत्नी की संगिनियाँ हैं और ये अत्यन्त अशुभ मानी जाती हैं। ऐसा विश्वास है कि ये अशुभ प्राणी नीम के वृक्ष के निकट नहीं जाते। ओषधि की दृष्टि से नीम की लकड़ी ऐंटीसेप्टिक (प्रतिरोधी) होती है और पुराने जमाने में अपने घर के सामने नीम का पेड़ लगाने का प्रचलन था। भारत में बड़ी-बड़ी सड़कों के किनारे, विशेषया उत्तरप्रदेश में, नीम के लाखों वृक्ष मिलते हैं। नीम की लकड़ी इतनी ऐंटीसेप्टिक होती है कि आयुर्वेद में यह कुष्ठरोग को अच्छा करने के काम में लाई जाती है। आयुर्वेद विशारदों ने नीमवृक्ष के सक्रिय तत्त्व को निष्कर्षित किया है जिसे मार्गोसिक अम्ल कहते हैं। नीम अनेक कार्यों में प्रयुक्त होती है, विशेषतया नीम के दातून से दाँत साफ किये जाते हैं। भारत के नब्बे प्रतिशत गाँवों में नीम की टहनी इस कार्य के लिए प्रयुक्त होती है। नीम वृक्ष के ऐंटीसेप्टिक गुणों एवं नीम वृक्ष के नीचे चैतन्य महाप्रभु का जन्म होने के कारण सीता ठाकुराणी ने उनका नाम निमाई रखा। बाद में अपनी युवावस्था में वे निमाई पंडित के नाम से विख्यात हुए और आस-पास के गाँवों में इसी नाम से जाने जाते थे, यद्यपि उनका असली नाम विश्वम्भर था।

पुत्रमाता-स्नान दिने, दिल वस्त्र विभूषणे,
पुत्र-सह मिश्रेर सम्मानि'।
शची-मिश्रेर पूजा लञा, मनेते हरिष हञा,
घरे आइला सीता ठाकुराणी॥११८॥

अनुवाद

जिस दिन माता तथा बालक ने स्नान किया और प्रसूति-घर को छोड़ा, उस दिन सीता ठाकुराणी ने सभी तरह के गहने और वस्त्र दिये और फिर जगन्नाथ मिश्र को भी सम्मानित किया। तत्पश्चात् सीता ठाकुराणी भी माता शचीदेवी और जगन्नाथ मिश्र द्वारा समादरित होकर अपने मन में अत्यधिक सुखी हुईं और फिर अपने घर लौट आईं।

तात्पर्य

बालक के जन्म के पाँचवे दिन तथा नवें दिन भी माता को गंगा में या तीर्थस्थान में स्नान कराया जाता है। यह *निष्क्रामण* अर्थात् प्रसूति-गृह से बाहर आने का संस्कार है। आजकल अस्पताल ही प्रसूति-गृह हैं, किन्तु पुराने जमाने में हर बड़े घर में प्रसूति के लिए एक कमरा सुरक्षित रखा जाता था, जहाँ बालक जन्म लेता था और बालक के जन्म के नवें दिन बालक तथा माता को प्रसूति-गृह से निकाल कर रिहायशी कमरों में ले जाया जाता था। इसे *निष्क्रामण* संस्कार कहते हैं। दस संस्कारों में निष्क्रामण संस्कार भी एक है। पहले विशेष रूप से बंगाल में उच्च कुलों में बालक के जन्म के बाद चार महीने तक छूत मानी जाती थी। चार महीने बाद माता को सूर्योदय का दर्शन करने दिया जाता था। बाद में उच्च वर्गों में (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातियों में) यह अवधि घटाकर इक्कीस दिन कर दी गई और शूद्रों के लिए यह एक माह रखी गई। *कर्ताभजा* तथा *सतीमा* जातियों में माता तथा बच्चे की छूत तुरन्त दूर कर दी जाती थी जिसमें संकीर्तन में मिठाई के छोटे-छोटे टुकड़े (*हरिनुट*) फेंके जाते थे। सीता ठाकुराणी ने शचीमाता तथा बालक एवं जगन्नाथ मिश्र को सम्मानित किया। इसी प्रकार जब सीता ठाकुराणी लौटने लगीं, तो शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र ने उनका सम्मान किया। ऐसी प्रथा थी बंगाल के सम्मानित परिवारों में।

ऐछे शची-जगन्नाथ, पुत्र पाञा लक्ष्मीनाथ,
पूर्ण हइल सकल वाञ्छित।
धन-धान्य भरे घर, लोकमान्य कलेवर,
दिने दिने हय आनन्दित॥११९॥

अनुवाद

इस प्रकार लक्ष्मीपति जैसा पुत्र पाकर माता शचीदेवी तथा जगन्नाथ मिश्र की सारी मनोकामनाएँ पूरी हो गईं। उनका घर सदैव धन-धान्य से भरा रहता था। वे ज्यों-ज्यों श्री चैतन्य के प्यारे शरीर को देखते, दिन-प्रतिदिन उनका आनन्द बढ़ता जाता था।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् हैं। अतएव हर व्यक्ति उन्हें सम्मान देता था। यहाँ तक कि स्वर्ग के निवासी भी सामान्य पुरुषों का वेश धारण करके महाप्रभु को नमस्कार करने आते थे। उनके पिता-माता जगन्नाथ मिश्र तथा शचीदेवी अपने दिव्य पुत्र का आदर देख कर मन ही मन पुलकित होते रहते थे।

मिश्र—वैष्णव, शान्त, अलम्पट, शुद्ध, दान्त,
धनभोगे नाहि अभिमान।
पुत्रेर प्रभावे य़त, धन आसिय़मिले, तत,
विष्णुप्रीते द्विजे देन दान॥१२०॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र आदर्श वैष्णव थे। वे शान्त, इन्द्रियतृप्ति में संयमित, शुद्ध तथा संयमी थे। अतएव उनमें भौतिक ऐश्वर्य भोगने की कोई इच्छा नहीं थी। जो भी धन उनके दिव्य पुत्र के प्रभाव से आता, उसे वे विष्णु की तुष्टि के लिए ब्राह्मणों को दान में दे देते थे।

लग्न गनि' हर्षमति, नीलाम्बर चक्रवर्ती,
गुप्त किछु कहिल मिश्रेर।
महापुरुषेर चिह्न, लग्ने अंगे भिन्न भिन्न,
देखि,—एइ तारिबे संसारे॥१२१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्मघड़ी की गणना करके नीलाम्बर चन्द्रवर्ती ने जगन्नाथ मिश्र से एकान्त में कहा कि उन्होंने बालक के शरीर तथा जन्मघड़ी दोनों में ही महाप्रभु के विभिन्न लक्षण देखे हैं। इस प्रकार

वे समझ गये कि यह बालक भविष्य में तीनों लोकों का उद्धार करेगा।

ऐछे प्रभु शची-घरे, कृपाय कैल अवतारे,
ये़इ इहा करये श्रवण।
गौरप्रभु दयामय, ताँरे हयेन सदय,
सेइ पाय ताँहार चरण ॥१२२॥

अनुवाद

इस तरह चैतन्य महाप्रभु अपनी अहैतुकी कृपावश शचीदेवी के घर में अवतरित हुए। चैतन्य महाप्रभु उस किसी भी व्यक्ति पर कृपालु होते हैं, जो उनके जन्म के इस वृत्तान्त को सुनता है। ऐसा मनुष्य महाप्रभु के चरणकमलों को प्राप्त होता है।

पाइया मानुष जन्म, ये़ ना शुने गौरगुण,
हेन जन्म तार व्यर्थ हैल।
पाइया अमृतधुनी, प्रिये विषगर्त-पानि,
जन्मिया से केने नाहि मैल ॥१२३॥

अनुवाद

जो व्यक्ति मनुष्य का शरीर पाकर श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय को ग्रहण नहीं करता, वह अपने सुअवसर को खोता है। अमृतधुनी भक्तिरूपी अमृत की प्रवहमान नदी है। यदि मनुष्य शरीर पाकर कोई ऐसी नदी का जल न पीकर भौतिक सुख रूपी विषैले गड्ढे के जल का पान करता है तो अच्छा यही होगा कि वह जीवित रहने के बजाय बहुत पहले मर गया होता।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वती ने *चैतन्य-चन्द्रोदय* नामक ग्रंथ में निम्नलिखित श्लोकों की रचना की है—

अचैतन्यमिदं विश्वं यदि चैतन्यमीश्वरम्।
न विदुः सर्वशास्त्रज्ञा ह्यपि भ्राम्यन्ति ते जनाः॥

"यह भौतिक संसार कृष्णभावनामृतविहीन है। श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात्

कृष्णभावनामृत हैं। अतएव यदि कोई विद्वान् या विज्ञानी श्री चैतन्य प्रभु को नहीं समझता तो समझिये कि वह इस जगत में व्यर्थ घूम रहा है।

प्रसारितमहाप्रेमपियूषरससागरे ।
चैतन्यचन्द्रे प्रकृते यो दीनो दीन एव सः ॥

"जो व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के उफनते भक्तिरूपी अमृत का लाभ नहीं उठाता वह निश्चित रूप से सर्वाधिक दरिद्र है।

अवतीर्णे गौरचन्द्रे विस्तीर्णे प्रेमसागरे।
सुप्रकाशित-रत्नौघे यो दिनो दीन एव सः॥

"श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतरण अमृत के विस्तीर्ण सागर के समान है। जो व्यक्ति इस सागर के भीतर से बहुमूल्य रत्न नहीं बीनता वह निश्चय ही दरिद्रों में दरिद्र है।"

इसी प्रकार *श्रीमद्भागवत* में (२.३.१९.२०.२३) कहा गया है—

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः॥

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम्॥

"जिस व्यक्ति का कृष्णभावनामृत से कोई सम्बन्ध नहीं है वह कितना ही महान पुरुष क्यों न हो, पशु के समान होता है। ऐसे बड़े-बड़े पशुओं की प्रशंसा सामान्यतया कुत्ते, सुअर, ऊँट तथा गधे जैसे पशु करते हैं। जो व्यक्ति अपने कानों से भगवान के विषय में श्रवण नहीं करता, उसके कान के छेद मानो खेत में बने छेद हों। यद्यपि ऐसे पुरुष के जीभ होती है किन्तु यह उस मेढ़क की जीभ के समान होती है जो व्यर्थ ही टर्र-टर्र की आवाज करके मृत्युरूपी सर्प को आमन्त्रित करता है। इसी तरह जो व्यक्ति न तो महान भक्तों के चरणकमलों की धूलि को सिर पर लगाता है, न ही भगवान् के चरणकमलों पर चढ़ी तुलसी की पत्तियों को सूँघता है उसे जीवित ही

मृतक समझ लेना चाहिए।"

इसी तरह *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र (१०.१.४) कहा गया है—

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्
भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्
पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्॥

"कसाई या जीव के बधिक को छोड़ कर ऐसा कौन है जो भगवान् की महिमा का श्रवण नहीं करना चाहेगा? ऐसी महिमा का आनन्द इस जगत के कल्मष से मुक्त पुरुषों द्वारा ही भोगा जाता है।"

इसी प्रकार *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र (३.२३.५६) कहा गया है—*न तीर्थपदसेवयै जीवन्नपि मृतो हि सः*—यद्यपि मनुष्य जीवित प्रतीत होता है किन्तु यदि वह महान् भक्तों के चरणकमलों की सेवा नहीं करता, तो उसे मृतक समझना चाहिए।

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द, आचार्य अद्वैतचन्द्र,
स्वरूप-रूप-रघुनाथदास ।
इँहा-सबार श्रीचरण, शिरे वन्दि निजधन,
जन्मलीला गाइल कृष्णदास॥१२४॥

अनुवाद

मैंने अर्थात् कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने, श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, आचार्य अद्वैतचन्द्र, स्वरूप दामोदर, रूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी के चरणकमलों की अपनी सम्पत्ति अपने सिर पर धारण करके श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का वर्णन किया है।

तात्पर्य

कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द, अद्वैत प्रभु, स्वरूप दामोदर, रूप गोस्वामी, रघुनाथ दास तथा उनके अनुगामियों को मानते हैं। अन्य जो कोई भी कविराज गोस्वामी के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है, वह भी उपर्युक्त प्रभुओं के चरणकमलों को अपनी निजी सम्पत्ति मानता है। भौतिकतावादी व्यक्ति के लिए भौतिक सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य ही एकमात्र

माया हैं। वे सम्पत्ति न होकर बंधन हैं, क्योंकि भौतिक जगत का भोग करने से बद्धजीव अधिकाधिक फँसता जाता है। दुर्भाग्यवश बद्धजीव उस सम्पत्ति को, जो ऋण है उसे वह अपनी मानता है और ऐसी सम्पत्ति को अर्जित करने में व्यस्त रहता है। किन्तु एक भक्त ऐसी सम्पत्ति को असली न मान कर भौतिक जगत का बन्धन मानता है। यदि किसी भक्त पर भगवान् कृष्ण अत्यधिक प्रसन्न हो जाते हैं, तो वे उसकी सारी भौतिक सम्पत्ति छीन लेते हैं जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में (१०.८८.८) भगवान् कृष्ण कहते हैं—*यस्याहमनुगृहणामि हरिष्ये तद्धनं शनैः*—मैं भक्त पर विशेष कृपा दिखलाने के लिए उसकी सारी भौतिक सम्पत्ति छीन लेता हूँ। इसी प्रकार नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—

धन मोर नित्यानन्द
राधाकृष्णश्रीचरण
सेइ मोर प्राणधन।

"मेरा असली धन तो नित्यानन्द तथा श्री राधा और कृष्ण के चरणकमल हैं।" वे और आगे कहते हैं "हे प्रभु! मुझे यह ऐश्वर्य प्रदान करें। मैं तो आपके चरणकमलों को ही अपनी सम्पत्ति के रूप में चाहता हूँ, और कुछ भी नहीं चाहता।" उन्होंने कई स्थानों पर कहा है कि उनकी असली सम्पत्ति तो राधा तथा कृष्ण के चरणकमल हैं। दुर्भाग्यवश हम लोग नकली सम्पत्ति में रुचि दिखलाते हैं और अपनी असली सम्पत्ति की परवाह नहीं करते। (*अधने यतन करिऽधन तेयागिनु*)।

कभी-कभी स्मार्तजन रघुनाथ दास गोस्वामी को शूद्र मानते हैं। किन्तु कृष्णदास कविराज गोस्वामी यहाँ विशेष रूप से उल्लेख करते हैं—*स्वरूपरूपरघुनाथदास*। अतएव जो व्यक्ति रघुनाथ दास के चरणकमलों को जाति प्रथा के समस्त विभागों से परे मानता है वह असली आध्यात्मिक आनन्द पाता है।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के तेरहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतरण का वर्णन हुआ है।

आदि-लीला

अध्याय १४

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इस अध्याय का सारांश अपने ग्रंथ *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में इस प्रकार दिया है: "*चैतन्य-चरितामृत* के इस चौदहवें अध्याय में इसका वर्णन है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने किस तरह घुटने के बल सरकने, रोने, मिट्टी खाने, माता को बुद्धि देने, ब्राह्मण अतिथि पर कृपा करने, दो चोरों के कधों पर चढ़ कर उन्हें उन्हीं के घर पहुँचाने, और बीमारी का बहाना करके एकादशी के दिन हिरण्य तथा जगदीश के घर प्रसाद ग्रहण करने की बाल-लीलाओं का आनन्द उठाया। इसी अध्याय में इसका भी वर्णन है कि वे किस तरह शैतानी करते थे, किस तरह माता के बीमार पड़ने पर अपने सिर पर ढोकर नारियल लाये, किस तरह गंगा के तट पर हमउम्र लड़कियों के साथ मजाक किया, किस तरह लक्ष्मीदेवी की पूजा-सामग्री स्वीकार की, किस तरह कूड़े के ढेर पर बैठ कर दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया और फिर किस तरह माता के कहने पर वहाँ से उतरे, और किस तरह वे अपने पिता के साथ लाड़-भरा व्यवहार करते थे।"

कथञ्चन स्मृते यस्मिन् दुष्करं सुकरं भवेत्।
विस्मृते विपरीतं स्यात् श्रीचैतन्यं नमामि तम्॥१॥

अनुवाद

यदि कोई चैतन्य महाप्रभु का येनकेन प्रकार से स्मरण करता है, तो उसकी मुश्किल भी आसान हो जाती हैं। लेकिन यदि उनका स्मरण नहीं किया जाता तो आसानियाँ भी मुश्किल हो जाती हैं। ऐसे चैतन्य महाप्रभु को मेरा सादर नमस्कार है।

तात्पर्य

चैतन्य-चन्द्रामृत में श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती कहते हैं "महाप्रभु की रंचमात्र

भी कृपा होने से मनुष्य इतना महान् बन जाता है कि उसे उस मोक्ष की तनिक भी परवाह नहीं रह जाती, जिसे विद्वान् तथा ज्ञानी खोजते रहते हैं। इसी तरह एक चैतन्य-भक्त स्वर्गलोक में निवास करने को मायाजाल मानता है। वह योगशक्ति की सिद्धि को पार कर जाता है, क्योंकि उसके लिए इन्द्रियाँ विषदन्तरहित सर्प जैसी होती हैं। सर्प अपने विषैले दाँतों के कारण अत्यन्त भयावना तथा घातक होता है, किन्तु यदि ये दाँत तोड़ दिये जायँ तो भय जाता रहता है। योग के नियम इन्द्रियों को वश में करने के लिए हैं, किन्तु जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में लगा रहता है उसके लिए इन्द्रियाँ विषैले साँपों के तुल्य नहीं रह जातीं। ये ही श्री चैतन्य महाप्रभु के उपहार हैं।"

हरिभक्तिविलास से पुष्टि होती है कि यदि श्री चैतन्य महाप्रभु का स्मरण किया जाय तो मुश्किलें आसान हो जाती हैं और उन्हें भुलाने पर आसानियाँ भी दुष्कर बन जाती हैं। हम देखते हैं कि जनता की दृष्टि में जो विज्ञानी बहुत बड़े हैं, वे इस सरल भाव को भी नहीं समझ सकते कि जीवन से जीवन की उत्पत्ति होती है, क्योंकि उन्हें चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त नहीं है। वे इस मिथ्या ज्ञान का पोषण करते हैं कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से होती है, यद्यपि वे इस तथ्य को सिद्ध नहीं कर पाते। इसीलिए इसी मिथ्या वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आगे बढ़ रही आधुनिक सभ्यता अनेक समस्याओं को जन्म दे रही है।

चैतन्य-चरितामृत का प्रणेता महाप्रभु की बाल-लीलाओं का वर्णन करने के लिए उनकी शरण में जाता है, क्योंकि ऐसा दिव्य साहित्य मानसिक चिन्तन द्वारा नहीं लिखा जा सकता। भगवान् के विषय में लिखने वाले को भगवान् की विशेष कृपा चाहिए। केवल शैक्षिक योग्यताओं से ऐसा साहित्य नहीं लिखा जा सकता।

जय जय श्रीचैतन्य, जय श्रीनित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र, जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द, श्री अद्वैत प्रभु तथा चैतन्य के सारे भक्तों की जय हो! जय हो!

प्रभुर कहिल एइ जन्मलीला-सूत्र।
य़शोदा-नन्दन य़ैछे हैल शचीपुत्र॥३॥

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव को सूत्रबद्ध किया है जो शचीमाता के पुत्र के रूप में उसी तरह प्रकट हुए जिस तरह माता यशोदा के पुत्र रूप में श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए थे।

तात्पर्य

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर इस कथन की पुष्टि करते हैं कि यशोदा के पुत्र भगवान् कृष्ण अब पुनः शचीमाता के पुत्र बन कर चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं। (*व्रजेन्द्रनन्दन एइ, शचीसुत हैले सेइ*)। शचीपुत्र माता यशोदा तथा नन्द महाराज के पुत्र के सिवा अन्य नहीं और नित्यानन्द वही बलराम हैं (*बलराम हइल निताइ*)।

संक्षेपे कहिल जन्मलीला-अनुक्रम।
एबे कहि बाल्यलीला-सूत्रेर गणन॥४॥

अनुवाद

मैं उनके जन्म की लीलाओं का क्रमबद्ध वर्णन पहले ही कर चुका हूँ। अब मैं उनकी बाल्यकाल की लीलाओं के सूत्रों की गणना करूँगा।

बन्दे चैतन्यकृष्णस्य बाल्यलीलां मनोहराम्।
लौकिकीमपि तामीश-चेष्टया वलितान्तराम्॥५॥

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु की बाल-लीलाओं को सादर नमस्कार करता हूँ, जो स्वयं भगवान् कृष्ण हैं। यद्यपि ऐसी लीलाएँ सामान्य बालक की लीलाओं जैसी लगती हैं, किन्तु उन्हें भगवान् की विविध लीलाओं के रूप में समझा जाना चाहिए।

तात्पर्य

भगवद्गीता में (९.११) इस कथन की पुष्टि इस प्रकार हुई है—

अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परमं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

"जब मैं मनुष्य रूप में अवतरित होता हूँ, तो मूर्ख मेरा उपहास करते हैं। वे मेरे दिव्य स्वभाव तथा मेरे परम राज्य को नहीं जानते।" इस लोक में इस ब्रह्माण्ड के भीतर भगवान् सामान्य मनुष्य या बालक के रूप में अपनी लीलाएँ सम्पन्न करने के लिए प्रकट होते हैं। फिर भी वे भगवान् के रूप में अपनी श्रेष्ठता बनाये रखते हैं। भगवान् कृष्ण मानव बालक के रूप में प्रकट हुए, किन्तु उनके बाल्यकाल के असाधारण कार्यकलाप, यथा पूतना को मारना या गोवर्धन पर्वत को उठाना, सामान्य बालक के बूते में नहीं हैं। इसी प्रकार महाप्रभु की लीलाएँ, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा, एक छोटे बालक के कार्यकलापों जैसी लगती हैं, किन्तु वे ऐसी असाधारण लीलाएँ हैं, जो सामान्य बालक के बूते के बाहर हैं।"

बाल्यलीलाय आगे प्रभुर उत्तान शयन।
पिता-माताय देखाइल चिह्न चरण॥६॥

अनुवाद

अपनी पहली बाल-लीलाओं में महाप्रभु अपने बिस्तर पर लेटे लेटे पलट गये और इस तरह उन्होंने अपने माता-पिता को अपने चरणकमलों के चिह्न दिखलाये।

तात्पर्य

पलट जाने या पीठ के बल लेटने को *उत्तान* कहते हैं। कुछ पुस्तकों में *उत्थान* पाठ मिलता है, जिसका अर्थ है "उठ खड़ा होना"। महाप्रभु अपनी बाल-लीलाओं में दीवाल पकड़ कर खड़े होने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन जिस तरह सामान्य बालक गिर पड़ता है, उसी तरह महाप्रभु भी गिर पड़े और पुनः अपने बिस्तर पर जा लेटे।

गृहे दुइ जन देखि लघुपद-चिह्न।
ताहे शोभे ध्वज, वज्र, शंख, चक्र, मीन॥७॥

अनुवाद

जब महाप्रभु ने चलना चाहा तो उनके पाँव के छोटे-छोटे निशानों में

भगवान् विष्णु के विशिष्ट चिह्न—ध्वज, वज्र, शंख, चक्र तथा मछली—दिखलाई पड़े।

देखिया दोँहार चित्ते जन्मिल विस्मय।
कार पदचिह्न घरे, ना पाय निश्चय॥८॥

अनुवाद

इन चिन्हों को देख कर न तो उनके पिता, न ही माता समझ पाये कि ये पाँवों के निशान किसके हैं। इस प्रकार विस्मित होकर वे यह नहीं निश्चय कर पाये कि उनके घर में ये चिह्न कैसे आये।

मिश्र कहे,—बालगोपाल आछे शिला-सङ्गे।
तेँहो मूर्ति हञा घरे खेले, जानि, रङ्गे॥९॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने कहा, "यह निश्चय ही शालग्राम-शिला से युक्त बालक कृष्ण हैं। वे अपना बालरूप धारण करके कमरे के भीतर खेल रहे हैं।"

तात्पर्य

जब शालग्राम शिला अर्थात् भगवान् का स्वरूप काठ, पत्थर या अन्य पदार्थ में खुदा रहता है तो यह मान लेना होगा कि भगवान् हैं। हम तर्क से भी समझ सकते हैं कि सारे भौतिक पदार्थ भगवान् की शक्ति के अंश हैं। चूँकि भगवान् की शक्ति उनके साकार रूप से अभिन्न होती है, अतएव भगवान् सदैव अपनी शक्ति में विद्यमान रहते हैं और भक्त की प्रबल इच्छा के फलस्वरूप प्रकट होते हैं। चूँकि भगवान् सर्वशक्तिमान हैं, अतएव वे अपनी शक्ति से अपने को प्रकट कर सकते हैं। अर्चाविग्रह-पूजा या शालग्राम-शिला पूजा मूर्ति-पूजा नहीं है। शुद्ध भक्त के घर में भगवान् का अर्चाविग्रह भगवान् के मूल स्वरूप की तरह कार्य कर सकता है।

सेइ क्षणे जागि' निमाइ करये क्रन्दन।
अङ्के लञा शची ताँरे पियाइल स्तन॥१०॥

अनुवाद

जब माता शची तथा जगन्नाथ मिश्र बातें कर रहे थे, तो बालक निमाई

जग कर रोने लगा। तब माता शची उसे गोद में उठाकर अपने स्तन का दूध पिलाने लगीं।

स्तन पियाइते पुत्रेर चरण देखिल।
सेइ चिह्न पाये देखि' मिश्र बोलाइल॥११॥

अनुवाद

जब माता शची बालक को अपने स्तन का दूध पिला रही थीं, तो उन्होंने उसके चरणकमल में वे सारे चिह्न देखे जो कमरे की फर्श पर दिखे थे। तब उन्होंने जगन्नाथ मिश्र को बुलाया।

देखिया मिश्रेर हइल आनन्दित मति।
गुप्ते बोलाइल नीलाम्बर चक्रवर्ती॥१२॥

अनुवाद

जब जगन्नाथ मिश्र ने अपने पुत्र के तलवे में ये अद्भुत चिह्न देखे, तो वे अत्यन्त पुलकित हुए और चुपके से नीलाम्बर चक्रवर्ती को बुला भेजा।

चिह्न देखि' चक्रवर्ती बलेन हासिया।
लग्न गणि' पूर्वे आमि राखियाछि लिखिया॥१३॥

अनुवाद

जब नीलाम्बर चक्रवर्ती ने ये चिह्न देखे तो हँसते हुए उन्होंने कहा, "मैंने पहले ही नक्षत्र-गणना से इसे निश्चित कर लिया था और लिख भी लिया था।

बत्रिश लक्षण—महापुरुष-भूषण।
एइ शिशु अङ्गे देखि से सब लक्षण॥१४॥

अनुवाद

"बत्तीस लक्षणों से महापुरुष का बोध होता है और मैं इस बालक के शरीर में इन सारे लक्षणों को देख रहा हूँ।

पञ्चदीर्घः पञ्चसूक्ष्मः सप्तरक्तः षडुन्नतः।
त्रिह्रस्व-पृथु-गम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षणो महान्॥१५॥

अनुवाद

"महापुरुष के शरीर में ३२ लक्षण होते हैं—उसके शरीर के पाँच अंग बड़े, पाँच सूक्ष्म, सात लाल रंग के, छह उठे हुए, तीन छोटे, तीन चौड़े तथा तीन गहरे (गम्भीर) होते हैं।

तात्पर्य

पाँच बड़े अंग हैं—नाक, बाँहें, ठुड्डी, आँखें तथा घुटने। पाँच सूक्ष्म अंग हैं—चमड़ी, अंगुली के छाप, दाँत, शरीर के रोएँ तथा सिर के बाल। सात लाल रंग वाले अंग हैं—आँखे, तलवे, हथेलियाँ, तालू, नाखून तथा ऊपर और नीचे के होंठ। छह उठे हुए अंग हैं—वक्षस्थल, कंधे, नाखून, नाक, कमर तथा मुँह। तीन छोटे अंग हैं—गर्दन, जाँघ तथा शिश्न (लिंग)। तीन चौड़े अंग हैं—कमर, वाणी तथा प्राण। ये कुल बत्तीस लक्षण महापुरुष के हैं। यह उद्धरण *सामुद्रिक* से है।

नारायणेर चिह्नयुक्त श्रीहस्त चरण।
एइ शिशु सर्व लोके करिबे तारण॥१६॥

अनुवाद

"इस बालक की हथेलियों तथा तलवों में भगवान् नारायण के सारे लक्षण (चिह्न) हैं। यह तीनों लोकों का उद्धार करने में समर्थ होगा।

एइ त' करिबे वैष्णव-धर्मेर प्रचार।
इहा हैते हबे दुइ कुलेर निस्तार॥१७॥

अनुवाद

"यह बालक वैष्णव-सम्प्रदाय का प्रचार करेगा और यह अपने मातृ तथा पितृ दोनों कुलों का उद्धार करेगा।

तात्पर्य

साक्षात् नारायण या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि के बिना वैष्णव-सम्प्रदाय का प्रचार नहीं हो सकता। जब कोई वैष्णव जन्मता है तो वह अपने माता तथा पिता दोनों के कुलों को एकसाथ तारता है।

महोत्सव कर, सब बोलाइ ब्राह्मण।
आजि दिन भाल,—करिब नामकरण॥१८॥

अनुवाद

"मैं नामकरण संस्कार करना चाहता हूँ। हम उत्सव मनायें और ब्राह्मणों को बुलायें, क्योंकि आज का दिन अत्यन्त शुभ है।"

तात्पर्य

यह वैदिक नियम है कि नारायण तथा ब्राह्मणों के लिए उत्सव मनाया जाय। बच्चे का नामकरण संस्कार *दशविध संस्कारों* में से है। ऐसे उत्सव के दिन नारायण की पूजा करनी चाहिए और ब्राह्मणों को प्रसाद बाँटना चाहिए।

जिस दिन नीलाम्बर चक्रवर्ती, शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र ने महाप्रभु के चरणकमलों में अंकित चिह्नों को पहचाना था तभी वे समझ गये थे कि बालक निमाई सामान्य बालक नहीं, अपितु नारायण का अवतार है। अतएव उसी दिन उन्होंने निश्चय किया कि आज का यह दिन शुभ होगा अतएव नामकरण-संस्कार सम्पन्न होना चाहिए। इस सम्बन्ध में हम यह देखते हैं कि किस प्रकार भगवान् को उनके शारीरिक चिह्नों, उनके कार्यकलापों तथा शास्त्रों की भविष्यवाणी के अनुसार सुनिश्चित किया जाता है। किसी मनुष्य को तथ्यों के साक्ष्य पर ईश्वर का अवतार माना जा सकता है, किन्तु धूर्तों तथा मूर्खों के मतों से या मनमाने तरीके से नहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के बाद बंगाल में अनेक नकली अवतार होते रहे हैं, किन्तु कोई भी निष्पक्ष भक्त या विद्वान् यह समझ सकता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण का अवतार जनमत से नहीं, अपितु शास्त्रों तथा विद्वानों के प्रमाण के अनुसार स्वीकार किया गया, वे सामान्य व्यक्ति न थे। प्रारम्भ में उनकी पहचान नीलाम्बर चक्रवर्ती जैसे प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा की गई और बाद में उनके कार्यकलापों की पुष्टि षड् गोस्वामियों द्वारा—विशेषया श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील रूप गोस्वामी द्वारा और शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर अनेक विद्वानों द्वारा की गई थी। ईश्वर का अवतार प्रारम्भ से ही वैसा होता है। ऐसा नहीं है कि कोई ध्यान करने से एकाएक ईश्वर का अवतार बन जाता हो। ऐसे छद्म अवतार मूर्खों तथा धूर्तों के लिए होते हैं, समझदार पुरुषों के लिए नहीं।

सर्वलोकेर करिबे इहँ धारण, तोषण।
'विश्वम्भर' नाम इहार,—एइ त' कारण ॥१९॥

अनुवाद

"यह बालक भविष्य में सारे जगत की रक्षा और पालन करेगा। इसलिए इसे विश्वम्भर नाम से पुकारा जायेगा।"

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत से भी पुष्टि होती है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने जन्म से ही सारे जगत को शान्तिमय बनाया, जिस प्रकार भूतकाल में नारायण ने अपने वराह अवतार से इस पृथ्वी की रक्षा की थी। इस कलियुग में रक्षा करने और पालन करने के ही कारण चैतन्य महाप्रभु विश्वम्भर हैं, जिसका अर्थ ही है "जो सारे विश्व का भरण (पालन) करे"। ५०० वर्ष पूर्व जब महाप्रभु विद्यमान थे तो उन्होंने जो आन्दोलन चलाया था, वही फिर से सारे विश्व में प्रसारित किया जा रहा है और हमें इसके व्यावहारिक परिणाम देखने को मिल रहे हैं। इस हरे-कृष्ण-आन्दोलन से लोगों की रक्षा और पालन किया जा रहा है। हजारों अनुयायी, विशेष करके पाश्चात्य नवयुवक हरे-कृष्ण-आन्दोलन में सम्मिलित हो रहे हैं और वे कितना सुरक्षित तथा सुखी अनुभव कर रहे हैं, इसे उनके द्वारा लिखे गये हजारों पत्रों में व्यक्त कृतज्ञता से जाना जा सकता है। विश्वम्भर नाम *अथर्ववेद संहिता* में भी आया है (*विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा*)।

शुनि' शची-मिश्रेर मने आनन्द बाड़िल।
ब्राह्मण-ब्राह्मणी आनि' महोत्सव कैल॥२०॥

अनुवाद

नीलाम्बर चक्रवर्ती की भविष्यवाणी सुन कर शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र ने बड़े ही आनन्द के साथ सारे ब्राह्मणों और उनकी पत्नियों को आमन्त्रित करके नामकरण उत्सव सम्पन्न किया।

तात्पर्य

सभी प्रकार के उत्सवों—यथा जन्मदिन, ब्याह, नामकरण, शिक्षारम्भ आदि उत्सवों को मनाना वैदिक पद्धति है, जिसमें ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया जाता है। प्रत्येक उत्सव में सर्वप्रथम ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है और जब ब्राह्मण प्रसन्न हो जाते हैं, तो वे वैदिक भक्तों का या हरे-कृष्ण-महामन्त्र का उच्चारण करके आशीर्वाद देते हैं।

तबे कत दिने प्रभुर जानु-चंक्रमण।
नाना चमत्कार तथा कराइल दर्शन॥२१॥

अनुवाद

कुछ दिनों बाद महाप्रभु अपने घुटनों पर रेंगने लगे और वे तरह-तरह के चमत्कार दिखलाने लगे।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में वर्णन मिलता है कि एक दिन जब चैतन्य महाप्रभु घुटनों के बल रेंग रहे थे और उनकी करधनी बज रही थी तो एक साँप निकल कर आँगन में रेंगने लगा। बालक ने उत्सुकतावश उसे पकड़ा, तो उसने उन्हें कुण्डली में लपेट लिया। कुछ देर तक महाप्रभु कुण्डली में टिके रहे किन्तु फिर वह सर्प उन्हें छोड़ कर चला गया।

क्रन्दनेर छले बलाइल हरिनाम।
नारी सब 'हरि' बले—हासे गौरधाम॥२२॥

अनुवाद

महाप्रभु रोने के बहाने सारी स्त्रियों को हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए बाध्य कर देते और जब वे कीर्तन करतीं तो महाप्रभु मुसकाते रहते।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में यह लीला इस प्रकार वर्णित है—"सुन्दर नेत्रों वाले महाप्रभु रोने लगते, किन्तु हरे-कृष्ण-महामन्त्र सुन कर तुरन्त चुप हो जाते। जब स्त्रियों को पता चल गया कि हरे-कृष्ण-कीर्तन करने पर बालक रोना बन्द कर देता है, तो वे उसके रोने पर तुरन्त ही हरे-कृष्ण-कीर्तन करने लगतीं। यह एक नियम बन गया। महाप्रभु रोते नहीं कि स्त्रियाँ ताली दे-देकर हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने लगतीं। इस प्रकार पड़ोस की स्त्रियाँ शचीमाता के घर में अखण्ड संकीर्तन के लिए एकत्र होतीं। जब तक स्त्रियाँ हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करतीं तब तक महाप्रभु रोते न थे, अपितु बड़े ही प्रसन्न मन से उन पर हँसते रहते।"

तबे कत दिने कैल पद-चंक्रमण।
शिशुगणे मिलि' कैल विविध खेलन॥२३॥

अनुवाद

कुछ दिनों के बाद महाप्रभु पाँवों से चलने लगे। वे अन्य बालकों के साथ मिलने-जुलने लगे और तरह-तरह के खेल दिखाने लगे।

एक दिन शची खइ-सन्देश आनिया।
बाटा भरि' दिया बैल,—खाओ त' बसिया॥२४॥

अनुवाद

एक दिन जब महाप्रभु अन्य बालकों के साथ खेल रहे थे तो शचीमाता खइ तथा सन्देश से भरी थाल ले आईं और उसने कहा "बैठ कर खा लो।"

एत बलि' गेला शची गृहे कर्म करिते।
लुकाञा लागिला शिशु मृत्तिका खाइते॥२५॥

अनुवाद

किन्तु जब शचीमाता गृह-कार्यों में लगीं तो बालक अपनी माता से छिप कर मिट्टी खाने लगा।

देखि' शची धाञा आइला करि' 'हाय' 'हाय'।
माटि काडि' लञा कहे 'माटि केने खाय'॥२६॥

अनुवाद

यह देख कर शचीमाता हड़बड़ी में 'क्या हुआ' 'क्या हुआ' चिल्लाती हुई लौट आईं। उन्होंने महाप्रभु के हाथों से मिट्टी छीन ली और पूछा "इसे क्यों खा रहे हो?"

कान्दिया बलेन शिशु—केने कर रोष।
तुमि माटि खाइते दिले—मोर किबा दोष॥२७॥

अनुवाद

रोते हुए बालक ने अपनी माता से पूछा, "आप नाराज क्यों होती हैं? आपने ही तो मिट्टी खाने के लिए मुझे दी है। इसमें मेरा क्या

दोष है?"

खड़-सन्देश-अन्न, यतेक—माटिर विकार।
एहो माटि, सेइ माटि, कि भेद-विचार॥२८॥

अनुवाद

"खड़, सन्देश (मिठाई) या अन्य खाद्य पदार्थ मिट्टी का ही रूपान्तर (विकार) है। यह भी मिट्टी है और वह भी मिट्टी है। इस पर विचार करें। इनमें अन्तर ही क्या है?

माटि-देह, माटि—भक्ष्य, देखइ विचारि'।
अविचारे देह दोष, कि बलिते पारि॥२९॥

अनुवाद

"यह शरीर मिट्टी का विकार है और खाने की वस्तुएँ (भक्ष्य) भी मिट्टी के विकार हैं। इस पर विचार करें। आप बिना विचारे मुझे दोष दे रही हैं। मैं कह ही क्या सकता हूँ?"

तात्पर्य

यह मायावाद दर्शन की व्याख्या है जिसमें सारी वस्तुओं को एक-सा माना जाता है। आध्यात्मिक जीवन में खाना, सोना, मैथुन तथा रक्षा करना जैसी शरीर की आवश्यकताएँ अनावश्यक होती हैं। जब मनुष्य आध्यात्मिक धरातल पर पहुँच जाता है तो शारीरिक आवश्यकताएँ नहीं रह जातीं और शारीरिक आवश्यकताओं से सम्बद्ध कार्यों में आध्यात्मिक विचार की आवश्यकता नहीं रह जाती। दूसरे शब्दों में, जितना ही अधिक हम खाने, सोने, मैथुन तथा रक्षा करने में लगते हैं, उतना ही अधिक हम भौतिक कार्यकलापों में लिप्त होते हैं। मायावादी दार्शनिक भक्ति-कार्यों को शारीरिक कार्य मानते हैं। वे *भगवद्गीता* की (१४.२६) निम्नलिखित सरल व्याख्या को नहीं समझ पाते—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्ति-योगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

"जो बिना किसी मन्तव्य के भक्ति में अपने को लगाता है और भगवान् की तुष्टि के लिए ऐसी सेवा करता है, वह तुरन्त ही आध्यात्मिक पद को प्राप्त होता है और उसके सारे कार्य आध्यात्मिक होते हैं।" *ब्रह्मभूयाय*

ब्रह्म (आध्यात्मिक) कार्यों का सूचक है। यद्यपि मायावादी दार्शनिक ब्रह्मतेज में लीन होने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते हैं, किन्तु वे कोई ब्रह्म-कार्य नहीं करते। वे कुछ हद तक ब्रह्म-कार्यों की संस्तुति करते हैं, किन्तु इससे उनका अभिप्राय वेदान्त और सांख्य दर्शनों का अध्ययन ही रहता है, लेकिन उनकी व्याख्याएँ शुष्क चिन्तन-मात्र होती हैं। विविध प्रकार के आध्यात्मिक कार्यों के अभाव में एकमात्र वेदान्त या सांख्य-दर्शन का अध्ययन करके बहुत दिनों तक पद पर नहीं बने रह सकते।

जीवन नाना प्रकार के भोगों के लिए है। जीव स्वभाव से भोगवादी है, जैसा कि *वेदान्त-सूत्र* में (१.१.१२) कहा गया है: *आनन्दमयोऽभ्यासात्*। भक्ति में कार्यों की विविधता एवं आनन्द-पूर्णता होती है। जैसा कि *भगवद्गीता* में (९.२) कहा गया है—सारे भक्ति कार्यों को करना आसन है (*सुसुखं कर्तुम्*) और वे शाश्वत तथा आध्यात्मिक हैं (*अव्ययम्*)। चूँकि मायावादी दार्शनिक इसे नहीं समझ पाते, अतएव वे भक्त के सारे कार्यों को (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्*) भौतिक एवं *माया मानते हैं। वे इस ब्रह्माण्ड में कृष्ण के आविर्भाव एवं उनके कार्यकलापों को भी माया* मानते हैं। चूँकि वे हर वस्तु को माया मानते हैं, इसलिए मायावादी कहलाते हैं।

वास्तव में गुरु के निर्देशानुसार भगवान् की तुष्टि के लिए किया गया कोई भी कार्य आध्यात्मिक है। किन्तु ऐसे व्यक्ति के लिए जो गुरु के आदेश की अवज्ञा करे और मनमाना कार्य करते हुए अपने कार्यों को आध्यात्मिक माने, यही *माया* है। मनुष्य को गुरु की कृपा के माध्यम से भगवान् की कृपा प्राप्त करनी चाहिए। अतएव सर्वप्रथम गुरु को प्रसन्न करना चाहिए और यदि वे प्रसन्न हो जाते हैं तो यह समझना चाहिए कि भगवान् भी प्रसन्न हो गये। किन्तु यदि हमारे कार्यों से गुरु अप्रसन्न होते हैं तो वे आध्यात्मिक नहीं हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इसी की पुष्टि करते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि*। ऐसे कार्य जिनसे गुरु प्रसन्न होते हैं आध्यात्मिक मानना चाहिए और उन्हीं से भगवान् को प्रसन्न होते मानना चाहिए।

चैतन्य महाप्रभु ने परम गुरु के रूप में अपनी माता को मायावाद-दर्शन का उपदेश दिया। शरीर मिट्टी है और खाद्यान्न भी मिट्टी है—इस कथन से उनका अभिप्राय यही था कि हर वस्तु *माया* है। यही मायावाद-दर्शन है। मायावादियों का दर्शन दोषपूर्ण है, क्योंकि इनकी मान्यता है कि जो

कुछ वे कहते हैं उसके अतिरिक्त हर वस्तु माया है, भले ही वह व्यर्थ ही क्यों न हो। यह कह कर कि हर वस्तु माया है, मायावादी दार्शनिक भक्ति का अवसर खो देता है और इसीलिए उसका जीवन विनष्ट हो जाता है। फलतः चैतन्य महाप्रभु ने सलाह दी है—*मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश* (चै. च. मध्य ६.१६९)। जो मायावादी दर्शन को स्वीकार करता है, उसकी उन्नति रुक जाती है।

अन्तरे विस्मित शची बलिल ताहारे।
"माटि खाइते ज्ञानयोग के शिखाल तोरे॥३०॥

अनुवाद

शचीमाता आश्चर्यचकित थीं कि यह बालक मायावाद दर्शन बक रहा है अतएव वे बोलीं, "तुम्हें किसने यह दार्शनिक चिन्तन सिखलाया है, जो मिट्टी खाने को सही बताता है?"

तात्पर्य

माता तथा पुत्र के दार्शनिक वार्तालाप में जब पुत्र ने कहा कि सारी वस्तुएँ एक-सी हैं, जैसा कि निर्विशेषवादी कहते हैं तो माता ने उत्तर दिया "यदि सभी वस्तुएँ एक हैं तो सारे लोग मिट्टी से उत्पन्न अन्न न खाकर मिट्टी ही क्यों नहीं खाते?"

माटिर विकार अन्न खाइले देह-पुष्टि हय।
माटि खाइल रोग हय, देह याय क्षय॥३१॥

अनुवाद

दार्शनिक बालक के मायावादी विचार का उत्तर देते हुए माता शची ने कहा, "प्रिय पुत्र! यदि हम अन्न में रूपान्तरित मिट्टी खाते हैं तो हमारा शरीर हृष्ट-पुष्ट बनता है किन्तु यदि हम मिट्टी खाते हैं तो शरीर हृष्ट-पुष्ट होने के बजाय रुग्ण होकर नष्ट हो जाता हैं।"

माटिर विकार घटे पानि भरि' आनि।
माटि-पिण्डे धरि यबे, शोषि' याय पानि॥"३२॥

अनुवाद

"मिट्टी के ही रूपान्तर एक घड़े में मैं आसानी से पानी ले जा सकती

हूँ, किन्तु यदि मैं मिट्टी के ढेले पर पानी डालूँ तो ढेला जल को सोख लेगा और मेरी मेहनत व्यर्थ जायेगी।"

तात्पर्य

एक स्त्री होते हुए भी शचीमाता ने जिस सरल दर्शन का प्रतिपादन किया वह उन मायावादी दार्शनिकों को परास्त कर सकता है जो तादात्म्य के विषय में चिन्तन करते हैं। मायावाद दर्शन का दोष यही है कि यह उस वैविध्य को स्वीकार नहीं करता, जो व्यावहारिक कार्यों के लिए उपयोगी है। शचीमाता ने उदाहरण दिया कि मिट्टी का ढेला तथा मिट्टी का घड़ा मूलत: एक हैं, किन्तु घड़ा उपयोगी है जबकि मिट्टी का ढेला व्यर्थ है। कभी-कभी विज्ञानीजन तर्क करते हैं कि पदार्थ तथा आत्मा एक हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं है। वस्तुत: उच्च विचार की दृष्टि से पदार्थ तथा आत्मा में अन्तर नहीं है, किन्तु हमें यह व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए कि पदार्थ निम्न अवस्था में होने से हमारे आध्यात्मिक आनन्दमय जीवन के लिए व्यर्थ है जबकि अध्यात्म तत्त्व उच्च पदार्थ होने के कारण आनन्द से पूर्ण है। इस सम्बन्ध में *भागवत* में एक दृष्टान्त दिया गया है कि मिट्टी तथा अग्नि एक हैं। पृथ्वी से वृक्ष उगते हैं और इन वृक्षों के काष्ठ से अग्नि तथा धूम उत्पन्न होते है। फिर भी उष्मा के लिए हम अग्नि का प्रयोग करते हैं न कि पृथ्वी, धुआँ या काष्ठ का। इसलिए, जीवन के लक्ष्य की चरम उपलब्धि के लिए हमें आत्मा की अग्नि चाहिए, पदार्थ का जड़ काष्ठ या मिट्टी नहीं।

आत्म लुकाइते प्रभु बलिला ताँहारे।
"आगे केन इहा, माता, ना शिखाइल मोरे॥३३॥

अनुवाद

महाप्रभु ने अपनी माता से कहा, "आपने पहले ही मुझे यह व्यावहारिक दर्शन क्यों नहीं सिखलाया? आपने आत्म-साक्षात्कार की यह विधि मुझसे क्यों छिपा रखी?"

तात्पर्य

यदि किसी को जीवन के प्रारम्भ से द्वैत वैष्णव-दर्शन की शिक्षा दी जाय तो उसे एकेश्वरवादी दर्शन की चिन्ता न रहे। वास्तव में, हर वस्तु परम

उद्गम से उद्भूत है (*जन्माद्यस्य यत:*)। मूल शक्ति अनेक प्रकार से प्रदर्शित होती है, जिस प्रकार सूर्य-प्रकाश, जो सूर्य से उद्भूत होकर प्रकाश तथा उष्मा की तरह कार्य करता है। फिर भी एक को दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। अतएव चैतन्य महाप्रभु का दर्शन *अचिन्त्य-भेदाभेद* है। यद्यपि प्रकाश तथा उष्मा इन दोनों में सम्बन्ध है, फिर भी वे भिन्न है। इसी प्रकार सारा जगत भगवान् की शक्ति की अभिव्यक्ति है, किन्तु यह शक्ति अनेक रूपों में प्रकट होती है।

एबे से जानिलाङ्, आर माटि ना खाइब।
क्षुधा लागे य़बे, तबे तोमार स्तन पिब॥''३४॥

अनुवाद

''अब मैं समझा इस दर्शन को। अब मैं मिट्टी नहीं खाऊँगा। जब भी मुझे भूख लगेगी, मैं आपके स्तनों का पान करूँगा।''

एत बलि' जननीर कोलेते चड़िया।
स्तनपान करे प्रभु ईषत् हासिया॥३५॥

अनुवाद

यह कह कर महाप्रभु कुछ कुछ हँसते हुए अपनी माता की गोद में चढ़ गये और उनका स्तनपान करने लगे।

एइमते नाना-छले ऐश्वर्य देखाय।
बाल्यभाव प्रकटिया पश्चात् लुकाय॥३६॥

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु अपने बचपन में विविध बहानों से अधिक से अधिक ऐश्वर्य प्रदर्शित करते और इन ऐश्वर्यों को दिखला चुकने के बाद अपने आवेश छिपा लेते।

अतिथि-विप्रेर अन्न खाइल तिनबार।
पाछे गुप्त सेइ विप्र करिल निस्तार॥३७॥

अनुवाद

एक बार महाप्रभु एक ब्राह्मण अतिथि के भोजन को तीन बार खा गये और बाद में उन्होंने भवबन्धन से उस ब्राह्मण का उद्धार कर दिया।

तात्पर्य

इस ब्राह्मण के उद्धार की कथा इस प्रकार है। एक बार एक ब्राह्मण जो देशाटन के लिए निकला था, एक तीर्थ से यात्रा करके दूसरे तीर्थ होता हुआ नवद्वीप पहुँचा और वहाँ जगन्नाथ मिश्र के घर में अतिथि बना। जगन्नाथ मिश्र ने उसे भोजन बनाने के लिए सारी सामग्री दे दी और उस ब्राह्मण ने भोजन तैयार किया। किन्तु जब यह ब्राह्मण ध्यानमग्न होकर भगवान् विष्णु को भोजन अर्पित कर रहा था तो बालक निमाई आकर उसे जुठार गया। फलतः ब्राह्मण ने सोचा कि यह भोजन व्यर्थ हो गया है। अतएव जगन्नाथ मिश्र के कहने पर उसने दुबारा भोजन पकाया, किन्तु जब वह ध्यान कर रहा था तो बालक ने फिर वहाँ आकर भोजन जुठार दिया। जगन्नाथ मिश्र के अनुनय-विनय करने पर उस ब्राह्मण ने तिबारा भोजन पकाया, किन्तु इस बार भी महाप्रभु ने आकर भोजन जुठार दिया, यद्यपि इस बालक को एक कमरे में बन्द कर दिया गया था और सभी लोग सो रहे थे क्योंकि काफी रात हो चुकी थी। अतएव ब्राह्मण ने यह सोचा कि भगवान् विष्णु आज मेरे भोजन को स्वीकार नहीं करना चाहते और मुझे उपवास ही करना पड़ेगा। फलतः वह क्षुब्ध होकर चिल्लाने लगा "हाय! हाय!" जब चैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मण को उस क्षुब्ध अवस्था में देखा तो उससे बोले, "पूर्वजन्म में मैं माता यशोदा का पुत्र था। उस समय भी तुम नन्द महाराज के घर अतिथि रूप में आये थे और तब मैंने तुम्हें इसी तरह तंग किया था। मैं तुम्हारी भक्ति से अतीव प्रसन्न हूँ, इसलिए मैं तुम्हारे हाथों से बनाया हुआ भोजन खा रहा हूँ।" यह समझ कर कि महाप्रभु उस पर कृपा कर रहे हैं, ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वह कृष्ण-प्रेम से गद्गद् हो उठा। वह भगवान् का आभारी था और उसने अपने को परम भाग्यशाली माना। तब महाप्रभु ने कहा कि वह इस घटना को किसी से न बताये। यह घटना *चैतन्य-भागवत* आदिलीला के तीसरे अध्याय में विस्तार से वर्णित है।

चोरे लञा गेल प्रभुके बाहिरे पाइया।
तार स्कन्धे चड़ि' आइला तारे भुलाइया॥३८॥

अनुवाद

बाल्यकाल में महाप्रभु को दो चोर उठाकर घर के बाहर ले गये। किन्तु

महाप्रभु उन चोरों के कंधे पर चढ़ गये और जब वे उनके आभूषण उतारने की सोच रहे थे तो महाप्रभु ने उन्हें गुमराह कर दिया जिससे वे चोर अपने घर न जाकर जगन्नाथ मिश्र के घर जा पहुँचे।

तात्पर्य

बचपन में महाप्रभु सोने के आभूषणों से लदे रहते थे। एक बार जब वे घर के बाहर खेल रहे थे तो दो चोर उनकी गली से होकर निकले। वे गहने लूटने की ताक में थे, अत: उन्होंने महाप्रभु को कुछ मिठाई देकर फुसला लिया और कन्धों पर चढ़ा लिया। उन्होंने सोचा था कि वे बालक को जंगल ले जाकर मार कर गहने निकाल लेंगे। किन्तु महाप्रभु ने चोरों के ऊपर अपनी माया फैलायी, जिससे वे जंगल की ओर न जाकर महाप्रभु के ही दरवाजे जा पहुँचे। जब वे उनके घर के सामने आये तो डर गये क्योंकि जगन्नाथ मिश्र तथा पड़ोस के सभी लोग बच्चे की तलाश में थे। अतएव चोरों ने वहाँ रुकना उचित नहीं समझा। वे उन्हें छोड़ कर चलते बने। तब बालक को शचीमाता के पास लाया गया क्योंकि वे अत्यन्त चिन्तित थीं। तब जाकर वे सन्तुष्ट हुईं। यह घटना *चैतन्य-भागवत* के आदिलीला खण्ड के तृतीय अध्याय में विशद रूप से दी हुई है।

व्याधि-छले जगदीश-हिरण्य-सदने।
विष्णु-नैवेद्य खाइल एकादशी-दिने॥३९॥

अनुवाद

महाप्रभु ने बीमार होने के बहाने एकादशी के दिन हिरण्य तथा जगदीश के घर में भोजन किया।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत आदिलीला चतुर्थ अध्याय में एकादशी के दिन जगदीश तथा हिरण्य के घर विष्णु-प्रसाद ग्रहण करने का पूरा विवरण दिया हुआ है। एकादशी के दिन भगवान् विष्णु को नियमित प्रसाद चढ़ाया जाता है, क्योंकि उस दिन भक्त तो उपवास रखते हैं, लेकिन विष्णु नहीं। एक बार एकादशी के दिन जगदीश तथा हिरण्य पण्डित के घर भगवान् विष्णु के लिए विशेष प्रसाद तैयार करने का आयोजन था। चैतन्य महाप्रभु ने अपने पिता से कहा "मैं बीमार हूँ। आप वहाँ जाकर विष्णु-प्रसाद लें आयें।" जगदीश तथा

हिरण्य का मकान जगन्नाथ मिश्र के मकान से लगभग दो मील की दूरी पर था। अतएव जब चैतन्य के अनुनय-विनय पर जगन्नाथ प्रसाद लेने गये तो जगदीश तथा हिरण्य थोड़ा विस्मित हुए। भला उस बालक को कैसे पता चला कि विष्णु के लिए विशेष प्रसाद बन रहा है? वे तुरन्त समझ गये कि निमाई बालक में दैवी योगशक्ति है, अन्यथा वह कैसे जान पाता कि विशेष प्रसाद बन रहा है? अतएव उन्होंने तुरन्त ही बालक के पिता जगन्नाथ मिश्र के हाथों प्रसाद भेज दिया। निमाई बीमार था, किन्तु विष्णु-प्रसाद खाते ही वह निरोग हो गया और उसने वह प्रसाद अपने संगियों में बाँट दिया।

शिशु सब लये पाड़ा-पड़सीर घरे।
चुरि करि' द्रव्य खाय मारे बालकेरे॥४०॥

अनुवाद

जैसा कि बच्चों में होता है, महाप्रभु ने खेलना सीखा और वे अपने मित्रों के साथ पड़ोसी मित्रों के घरों में जाते, उनकी खाने की वस्तुएँ चुराते और खाते। कभी-कभी बच्चे परस्पर लड़ते-झगड़ते।

शिशु सब शची-स्थाने कैल निवेदन।
शुनिऽशची पुत्रे किछु दिला ओलाहन॥४१॥

अनुवाद

सारे बच्चों ने शचीमाता से शिकायत की कि महाप्रभु उनसे लड़ते हैं और पड़ोसियों की चीजें चुराते हैं। फलस्वरूप माता अपने पुत्र को डाँटती रहती थीं।

"केने चुरि कर, केने मारह शिशुरे।
केने पर-घरे य़ाह, किबा नाहि घरे॥"४२॥

अनुवाद

शचीमाता ने कहा—"तुम दूसरों की चीजें क्यों चुराते हो? तुम दूसरे लड़कों को क्यों मारते हो? तुम दूसरों के घर के भीतर क्यों जाते हो? आखिर तुम्हारे घर में कौन-सी चीज नहीं है"

तात्पर्य

वेदान्त-सूत्र के अनुसार (*जन्माद्यस्य यत:*) सृष्टि, पालन तथा संहार तीनों ही परब्रह्म में स्थित हैं। अतएव इस भौतिक जगत में हम जो कुछ भी देखते हैं वह पहले से आध्यात्मिक जगत में रहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं। तो फिर वे क्यों चुराने तथा झगड़ने लगे? वे न चोर हैं, न शत्रु अपितु वे प्रेमी मित्र हैं। वे बालक रूप में चोरी करते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें कोई कमी है, अपितु अपने बाल-स्वभाव के कारण। इस भौतिक जगत में भी कभी-कभी छोटे बच्चे पड़ोस में जाकर चोरी करते और लड़ते-भिड़ते हैं, किन्तु किसी शत्रुता या दुर्भावना से नहीं। कृष्ण भी अन्य बालकों की तरह अपने बचपन में ये सारे कार्य करते थे। यदि आध्यात्मिक जगत में चुराने और लड़ने की लालसाएँ न होतीं तो ये इस भौतिक जगत में कभी भी न पाई जातीं। भौतिक जगत तथा आध्यात्मिक जगत में इतना ही अन्तर है कि आध्यात्मिक जगत में चोरी मैत्री और प्यार से की जाती है जबकि इस जगत में लड़ाई तथा चोरी शत्रुता और द्वेष के आधार पर की जाती है। इसीलिए हमें समझना चाहिए कि ये सारे कार्य आध्यात्मिक जगत में पाये जाते हैं, किन्तु उनमें कोई उन्मत्तता नहीं रहती, जबकि भौतिक जगत में ये सारे कार्य दुखों से परिपूर्ण हैं।

शुनि' क्रुद्ध हञा प्रभु घर-भितर याञा।
घरे य़त भाण्ड छिल, फेलिल भाङ्गिया॥४३॥

अनुवाद

माता की डाँट खाकर महाप्रभु गुस्से में आकर कमरे के भीतर चले जाते और वहाँ के सारे बर्तन फोड़ देते।

तबे शची कोले करि' कराइल सन्तोष।
लज्जित हइला प्रभु जानि' निजदोष॥४४॥

अनुवाद

तब शचीमाता अपने पुत्र को गोद में लेकर चुप करातीं और महाप्रभु अपनी गलतियाँ स्वीकार करके काफी लज्जित होते।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत आदिलीला अध्याय तीन में महाप्रभु के बाल्यकाल के दोषों

का सुन्दर वर्णन है, जिसमें यह कहा गया है कि बालक महाप्रभु पड़ोसी दोस्तों के घरों से खाने की चीजें चुराया करते थे। कुछ घरों से वे दूध चुराते और पी जाते। कुछ घरों से पका चावल चुराते। कभी-कभी भोजन पकाने के बर्तन तोड़ डालते। यदि कुछ खाने को न मिलता और घर में छोटे बच्चे मिलते तो उन्हें तंग करते और रुलाते। कभी-कभी पड़ोसी आकर शचीमाता से उलाहना देता, "मेरा बच्चा छोटा है किन्तु आपका लड़का मेरे बच्चे के कानों में पानी भर कर उसे रुला देता है।"

कभु मृदुहस्ते कैल माता के ताडन।
माताके मूर्च्छिता देखि' करये क्रन्दन॥४५॥

अनुवाद

एक बार बालक चैतन्य ने अपनी माता को हल्के से मारा तो दिखावे के लिए, मूर्छित हो गईं। यह देख कर चैतन्य चिल्लाने लगे।

नारीगण कहे,—"'नारिकेल देह आनि'।
तबे सुस्थ हइबेन तोमार जननी॥"४६॥

अनुवाद

पड़ोसिनों ने उनसे कहा, "बेटा! जाकर कहीं से एक नारियल ले आओ। तभी तुम्हारी माता स्वस्थ होंगी।"

बाहिरे याञा आनिलेन दुइ नारिकेल।
देखिया अपूर्व हैल विस्मित सकल॥४७॥

अनुवाद

वे तुरन्त ही घर से बाहर गये और दो नारियल ले आये। सारी स्त्रियाँ ऐसा अद्भुत कार्य देख कर आश्चर्यचकित थीं।

कभु शिशु-सङ्गे स्नान करिल गंगाते।
कन्यागण आइला ताहाँ देवता पूजिते॥४८॥

अनुवाद

कभी-कभी महाप्रभु अन्य बालकों के साथ गंगा नदी में स्नान करने जाते और पास की लड़कियाँ भी वहीं पर देवताओं की पूजा करने आतीं।

तात्पर्य

वैदिक प्रथा के अनुसार दस-बारह वर्ष की कन्याएँ गंगा नदी के तट पर जाकर स्नान करतीं और भविष्य में अच्छा वर पाने के लिए शिवजी की पूजा करती थीं। वे शिव जैसे पति की कामना करतीं, क्योंकि शिवजी शान्त होने के साथ ही परम शक्तिशाली भी हैं। इसीलिए पहले हिन्दू परिवारों की छोटी-छोटी लड़कियाँ शिवजी की पूजा वैशाख मास (अप्रैल-मई) में विशेष रूप से करती थीं। गंगा में स्नान करना हर एक के लिए, न केवल बड़ों के लिए अपितु छोटों के लिए प्रसन्नता की बात है।

गङ्गास्नान करि' पूजा करिते लागिला।
कन्यागण-मध्ये प्रभु आसिया बसिला॥४९॥

अनुवाद

जब कन्याएँ गंगास्नान करके विभिन्न देवताओं की पूजा करने लगतीं तो बालक महाप्रभु वहाँ आते और उनके बीच में बैठ जाते।

कन्यारे कहे,—आमा पूज, आमि दिब वर।
गङ्गा-दुर्गा—दासी मोर, महेश—किङ्कर॥५०॥

अनुवाद

महाप्रभु कन्याओं को सम्बोधित करके कहते, "मेरी पूजा करो तो मैं तुम्हें सुन्दर पति या सुन्दर वर दूँगा। गंगा तथा देवी दुर्गा मेरी दासियाँ हैं और अन्य देवताओं की बात दूर रही, शिवजी तक मेरे नौकर हैं।

तात्पर्य

अन्य धर्मावलम्बियों में, यथा ईसाइयों तथा मुसलमानों में यह भ्रान्त धारण है कि हिन्दू धर्म में अनेक ईश्वर हैं। वास्तव में बात ऐसी नहीं है। ईश्वर एक है, लेकिन अनेक ऐसे शक्तिमान जीव हैं जो प्रशासन के विभिन्न विभागों का कार्यभार संभालते हैं। वे देवता कहलाते हैं। सारे देवता भगवान् के आदेशों का पालन करने वाले नौकर (दास) हैं। चैतन्य महाप्रभु ने इस तथ्य को अपने बाल्यकाल में उद्घाटित किया। कभी-कभी लोग अज्ञानवश किसी विशेष वर की प्राप्ति के लिए देवताओं को पूजते हैं, किन्तु यदि कोई भगवान् का भक्त और उपासक बन जाय तो वर प्राप्ति के लिए उसे देवताओं के पास जाने की आवश्यकता न रहे, क्योंकि भगवान् की कृपा

से उसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। *भगवद्गीता* में ऐसी देव-पूजा की भर्त्सना की गई है—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥

"जिनकी बुद्धि हर ली गई है और जो कामवासनाओं के कारण मदोन्मत्त हैं, वे देवताओं की पूजा करते हैं और अपने-अपने स्वभावों के अनुसार पूजा के विशेष विधानों का पालन करते हैं। (भगवद्गीता ७.२०)—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥

"किन्तु जो लोग पापकर्मों से तथा द्वन्द्व से मुक्त हैं, वे दृढ़ता के साथ भगवान् की पूजा में लगे रहते हैं।" (भगवद्गीता ७.२८)। केवल अल्पज्ञ ही अपने विविध प्रयोजनों के लिए देवताओं को पूजते हैं। किन्तु जो परम बुद्धिमान हैं, वे केवल भगवान् की पूजा करते हैं।

कभी-कभी हम कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के सदस्यों पर आरोप लगाया जाता है कि हम देवताओं की पूजा का समर्थन नहीं करते। किन्तु जब चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् कृष्ण ने इसकी भर्त्सना की है, तो हम इसका समर्थन कैसे कर सकते हैं? भला हम अन्य लोगों को मूर्ख तथा *हृतज्ञान* (बुद्धि से विरहित) कैसे होने दे सकते हैं? हमारा प्रचार तो इतना ही है कि बुद्धिमान लोग पदार्थ तथा आत्मा के अन्तर को समझें और उस भगवान् को समझें जो परमात्मा है। यही हमारा मिशन है। भलां हम इस भौतिक जगत में भौतिक शरीरों से तथाकथित देवताओं की पूजा करने के लिए लोगों को दिग्भ्रमित कैसे कर सकते हैं?

हमारे द्वारा सैकड़ों देवताओं की पूजा की अनुमति न देने की स्थिति की पुष्टि चैतन्य महाप्रभु द्वारा उनके बाल्यकाल में ही की जाती है। इस सम्बन्ध में श्रील नरोत्तम दास ठाकुर का गीत है—

अन्य देवाश्रय नाइ
तोमारे कहिनु भाइ
एइ भक्ति परम-कारण

"बिना विचलन के भगवान् का कट्टर और शुद्ध भक्त बनने (*अनन्यभाक्*) के लिए मनुष्य को अपना चित्त देवताओं में नहीं लगाना चाहिए। ऐसा नियन्त्रण शुद्ध भक्ति का लक्षण है।"

आपनि चन्दन परि' परेन फूलमाला।
नैवेद्य काड़िया खा' न—सन्देश, चाल, केला॥५१॥

अनुवाद

महाप्रभु कन्याओं की अनुमति के बिना ही चन्दन निकाल कर अपने शरीर में लेप लेते, उनकी फूल-मालाओं को अपने गले में पहन लेते और मिठाइयाँ, चावल तथा केलों की भेंट को छीन कर स्वयं खा जाते।

तात्पर्य

अर्चा-विधि के अनुसार जब घर के बाहर अर्चाविग्रहों को कुछ अर्पित किया जाता है तो सामान्यतया पका भोजन नहीं, अपितु कच्चा चावल, केला तथा मिठाइयाँ चढ़ाई जाती हैं। महाप्रभु अहैतुकी कृपावश भेंट की सारी वस्तुएँ लड़कियों से छीन कर स्वयं खा जाते और उनसे देवताओं की पूजा न कराकर अपनी पूजा कराते। श्री चैतन्य महाप्रभु की यह पूजा *श्रीमद्भागवत* द्वारा संस्तुत की गई है (११.५.३२)—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र पार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

"मनुष्य को चाहिए कि भगवान् की पूजा करें जो कलियुग में अपने पंचतत्त्व के साथ प्रकट होते हैं—ये हैं स्वयं महाप्रभु तथा उनके संगी नित्यानन्द प्रभु, श्री अद्वैत प्रभु, श्री गदाधर प्रभु तथा श्रीवास ठाकुर। इस युग में बुद्धिमान लोग पंचतत्त्व की पूजा हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करके और यदि सम्भव हुआ तो प्रसाद वितरित करके करते हैं।" हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन पूजा की इस प्रामाणिक विधि को पाश्चात्य जगत् में चला रहा है। इसके सदस्य चैतन्य महाप्रभु का अर्चाविग्रह लेकर गाँव-गाँव तथा नगर-नगर घूमते हैं और लोगों को बतलाते हैं कि किस तरह हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करके, प्रसाद चढ़ाकर और लोगों में उसका वितरण करके महाप्रभु की पूजा करनी चाहिए।

क्रोधे कन्यागण कहे—शुन हे निमाञि।
ग्राम-सम्बन्धे हओ तुमि आमा सबार भाइ॥५२॥

अनुवाद

महाप्रभु के इस व्यवहार से सारी कन्याएँ परम क्रुद्ध हो गईं। उन्होंने कहा, "अरे निमाई! तुम हमारे गाँव के रिश्ते से भाई लगते हो।"

आमा सबाकार पक्षे इहा करिते ना यूयाय।
नालह देवता सज्ज, ना कर अन्याय॥५३॥

अनुवाद

"अतएव ऐसा करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम हमारी देव-पूजन की साम्रगी मत लो। तुम इस तरह उपद्रव न करो।"

प्रभु कहे,—"तोमा सबाके दिल एइ वर।
तोमा सबार भर्ता हबे परम सुन्दर॥५४॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मेरी बहनो! मैं तुम्हें वर देता हूँ कि तुम सबों को परम सुन्दर पति मिलें।"

पण्डित, विदग्ध, युवा, धनधान्यवान्।
सात सात पुत्र हबे—चिरायु, मतिमान॥५५॥

अनुवाद

"वे विद्वान, चतुर तथा तरुण हों और धन तथा धान्य से परिपूर्ण हों। इतना ही नहीं, बल्कि तुम सबों के सात-सात बेटे हों, जो लम्बी आयु वाले तथा परम बुद्धिमान हों।"

तात्पर्य

सामान्यतया हर तरुणी चाहती है कि उसे सुन्दर पति मिले जो विद्वान, चतुर, तरुण तथा धनी हो। वैदिक संस्कृति के अनुसार धनी वह है जिसके पास प्रचुर अन्न तथा पशुओं का समूह हो। *धान्येन धनवान् गवया धनवान्*—जिसके पास अन्न, गाएँ तथा बैल होते हैं, वही धनी है। तरुणी यह भी चाहती है कि उसके तमाम बच्चे हों, विशेषतया पुत्र हों जो बुद्धिमान तथा दीर्घजीवी हों। अब तो प्रचार हो रहा है कि एक या दो बच्चे काफी हैं और शेष

को निरोध-उपायों से मार दिया जाय क्योंकि समाज में गिरावट आई है। किन्तु तरुणी की सहज इच्छा यही होती है कि एक से अधिक ही नहीं अपितु कम-से-कम आधे दर्जन बच्चे हों।

चैतन्य महाप्रभु पूजा की जो सामग्री छीन लेते थे, उसके बदले में वे उन कन्याओं की इच्छाओं को पूरा करना चाहते थे। चैतन्य महाप्रभु की पूजा करके मनुष्य सुखी बन सकता है और अच्छा पति, धन, अन्न तथा अनेक सन्तानें लाभ कर सकता है। यद्यपि महाप्रभु ने अल्पायु में ही संन्यास ले लिया था, लेकिन उनके भक्तों के लिए संन्यास लेना आवश्यक नहीं है। गृहस्थ होते हुए भी चैतन्य महाप्रभु का भक्त बना जा सकता है। तभी वह सुखी होगा और उसे अच्छा घर, अच्छी सन्तान, अच्छी पत्नी, अच्छी सम्पत्ति तथा मनवांछित वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं। इसीलिए शास्त्रों का उपदेश है—यज्ञैः संकीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः (भागवत ११.५.३२)। अतएव प्रत्येक बुद्धिमान गृहस्थ को घर-घर में संकीर्तन आन्दोलन शुरू करना चाहिए और इस जीवन में शान्तिपूर्वक रह कर अगले जीवन में भगवद्धाम जाना चाहिए।

वर शुनि' कन्यागणेर अन्तरे सन्तोष।
बाहिरे भर्त्सन करे करि' मिथ्या रोष॥५६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिया गया वर सुन कर सारी कन्याएँ मन ही मन प्रसन्न थीं, लेकिन ऊपर से, जैसा कि कन्याओं के लिए स्वाभाविक है, क्रुद्ध होकर उनकी भर्त्सना करने लगीं।

तात्पर्य

इस तरह का दोहरा व्यवहार लड़कियों में स्वाभाविक है। जब वे अन्तःकरण से प्रसन्न होती हैं, तो बाहर से असन्तोष व्यक्त करती हैं। स्त्रियों का ऐसा आचरण उन लड़कों को सुहाता है जो उनसे मैत्री करना चाहते हैं।

कोन कन्या पलाइल नैवेद्य लइया।
तारे डाकि' कहे प्रभु सक्रोध हइया॥५७॥

अनुवाद

जब कुछ कन्याएँ भग गईं, तो महाप्रभु ने क्रुद्ध होकर उन्हें बुलाया

और इस तरह उपदेश दिया।

यदि नैवेद्य ना देह हइया कृपणी।
बूड़ा भर्ता हबे, आर चारि चारि सतिनी॥५८॥

अनुवाद

"यदि तुम कंजूसी करोगी और मुझे भेंट नहीं चढ़ाओगी तो हर एक को ऐसा बूढ़ा पति मिलेगा जिसके चार चार पत्नियाँ होंगी।"

तात्पर्य

भारत में उन दिनों और यहाँ तक कि ५० वर्ष पूर्व तक बहुविवाह के लिए स्वतन्त्रता थी। कोई भी व्यक्ति, विशेषतया उच्च जाति के ब्राह्मण, वैश्य तथा क्षत्रिय एक से अधिक पत्नियाँ रख सकते थे। महाभारत में या भारत के प्राचीन इतिहास में क्षत्रिय राजा कई विवाह करते देखे जाते हैं। वैदिक सभ्यता के अनुसार इस पर कोई प्रतिबन्ध न था और पचास वर्ष का बूढ़ा व्यक्ति भी विवाह कर सकता था। किन्तु ऐसे व्यक्ति से विवाहित होना, जिसके कई पत्नियाँ हों, कभी भी अच्छा नहीं माना जाता रहा, क्योंकि इससे पति का प्यार कई पत्नियों में बँट जाता है। चैतन्य महाप्रभु इन कन्याओं को ऊपर-ऊपर चार पत्नियों वाले पति से ब्याह होने का शाप इसीलिए दे रहे थे क्योंकि वे उन्हें नैवेद्य नहीं देना चाहती थीं।

जिस सामाजिक ढाँचे में पुरुष को एक से अधिक ब्याह करने की छूट दी जा सकती है, उसका समर्थन इस प्रकार किया जा सकता है। सामान्यतया हर समाज में स्त्रियों की जनसंख्या पुरुषों से अधिक होती है। अतएव यदि समाज का यह सिद्धान्त रहे कि सारी कन्याएँ विवाहित हों, तो जब तक बहुपत्नीत्व की अनुमति न मिले, ऐसा सम्भव नहीं होगा। यदि सारी कन्याओं का विवाह नहीं होता तो व्यभिचार के लिए अवसर मिलेगा और व्यभिचार वाला समाज कभी शुद्ध या शान्त नहीं रह सकता। हमने अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अवैध यौन-जीवन पर प्रतिबन्ध लगा रखा है। व्यावहारिक कठिनाई यह है कि हर कन्या के लिए पति ढूँढ पाना कठिन है। अतएव हम बहुपत्नीत्व के पक्ष में हैं, बशर्ते कि पति एक से अधिक पत्नियों का भरण-पोषण कर सके।

इहा शुनि' ता-सबार मने हइल भय।
कोने किछू जाने, किबा देवाविष्ट हय॥५९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य का यह मनमाना श्राप सुन कर कन्याएँ यह सोच कर कि हो न हो यह कुछ असाधारण बातें जानता है या इसे देवताओं से शक्ति प्राप्त है, भयभीत थीं कि उसका शाप कहीं सच न उतर जाय।

आनिया नैवेद्य तारा सन्मुख धरिल।
खाइया नैवेद्य तारे इष्टवर दिल॥६०॥

अनुवाद

तब कन्याएँ महाप्रभु के समक्ष अपनी अपनी भेंटें ले आईं और महाप्रभु ने उन्हें खाकर कन्याओं को इष्ट आशीर्वाद दिया।

एइ मत चापल्य सब लोकेर देखाय।
दुःख कारो मने नहे, सबे सुख पाय॥६१॥

अनुवाद

जब लोगों को कन्याओं के प्रति चालाकी का यह बर्ताव खुला, तो उनमें किसी तरह की भ्रान्ति नहीं रही। प्रत्युत उन्हें इन बर्तावों से परम सुख प्राप्त हुआ।

एकदिन बल्लभाचार्य-कन्या 'लक्ष्मी' नाम।
देवता पूजिते आइल करि गंगास्नान॥६२॥

अनुवाद

एक दिन वल्लभाचार्य की पुत्री, जिसका नाम लक्ष्मी था, गंगा किनारे नदी में स्नान करने और देवताओं को पूजने आई।

तात्पर्य

गौरगणोद्देश-दीपिका के अनुसार लक्ष्मी पूर्वजन्म में भगवान् रामचन्द्र की पत्नी जानकी और द्वारका में भगवान् कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी थी। वही लक्ष्मी के रूप में चैतन्य महाप्रभु की पत्नी बनने के लिए अवतरित हुई।

तारे देखि' प्रभुर हइल साभिलाष मन।
लक्ष्मी चित्ते प्रीत पाइल प्रभुर दर्शन॥६३॥

अनुवाद

लक्ष्मीदेवी को देख कर महाप्रभु उसके प्रति अनुरक्त हो गये और महाप्रभु को देख कर लक्ष्मी को अपने मन में परम सन्तोष का अनुभव हुआ।

साहजिक प्रीति दुँहार करिल उदय।
बाल्य भावाच्छन्न तभु हइल निश्चय॥६४॥

अनुवाद

उन दोनों में सहज प्रेम जाग्रत हुआ और बाल्यकाल की भावनाओं से प्रच्छन्न होने पर भी प्रकट हो गया कि वे दोनों परस्पर-अनुरक्त हैं।

तात्पर्य

चैतन्य महाप्रभु तथा लक्ष्मीदेवी नित्य पति-पत्नी हैं। अतएव जब दोनों ने एक दूसरे को देखा, तो उनमें सुप्त प्रेम को जाग्रत होना स्वाभाविक था। उनके मिलन से उनकी सहज भावनाएँ तुरन्त जाग उठीं।

दुँहा देखि' हार चित्ते हइल उल्लास।
देवपूजा छले कैल दुँहे परकाश॥६५॥

अनुवाद

उन दोनों ने एक दूसरे को निहारने के सहज आनन्द को लूटा और देव-पूजा के बहाने दोनों ने अपनी भावनाएँ प्रकट कीं।

प्रभु कहे,—'आमा' पूज, आमि महेश्वर।
आमारे पूजिले पाबे अभीप्सित वर॥६६॥

अनुवाद

महाप्रभु ने लक्ष्मी से कहा, "मुझे पूजो क्योंकि मैं परमेश्वर हूँ। यदि तुम मेरी पूजा करोगी तो तुम्हें मनवांछित वर प्राप्त होगा।"

तात्पर्य

यही दर्शन स्वयं भगवान् कृष्ण घोषित करते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

"सारे धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों से उबार लूँगा। तुम डरो मत।" (*भगवद्गीता* १८.६६)। लोग इसे समझते नहीं। वे अनेक देवताओं, मनुष्यों, यहाँ तक कि कुत्तों-बिल्लियों की चापलूसी करते रहते हैं, किन्तु जब उनसे भगवान् की पूजा करने को कहा जाता है तो वे मुकर जाते हैं। यह माया है। वास्तव में, यदि कोई भगवान् की पूजा करता है तो उसे अन्य किसी की पूजा करने की जरूरत नहीं रहती। उदाहरणार्थ, गाँव के सीमित क्षेत्र में विभिन्न कुओं का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जा सकता है, किन्तु नदी में निरन्तर जल बहने के कारण इसका पानी सारे कार्यों में प्रयुक्त किया जा सकता है। जहाँ नदी होती है, वहाँ पीने का पानी उसी से लिया जा सकता है, उसी से कपड़े धोये जा सकते हैं, नहाया जा सकता है, क्योंकि यह पानी सभी कामों में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई भगवान् कृष्ण की पूजा करता है तो उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्य देवताः*—केवल ऐसे लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए नाना देवताओं को पूजते हैं, जिनकी बुद्धि मारी गई है। (भगवद्गीता ७.२०)।

लक्ष्मी ताँर अङ्गे दिल पुष्प-चन्दन।
मल्लिकार माला दिया करिल वन्दन॥६७॥

अनुवाद

महाप्रभु का आदेश सुन कर लक्ष्मी ने तुरन्त उनकी पूजा की—उनके शरीर पर चन्दन तथा फूल चढ़ाये, उन्हें मल्लिका फूलों की माला पहनाई और उनकी स्तुति की।

प्रभु ताँर पूजा पाञा हासिते लागिला।
श्लोक पड़ि' ताँर भाव अङ्गीर कैला॥६८॥

अनुवाद

लक्ष्मी द्वारा इस प्रकार पूजे जाने पर महाप्रभु मुसकाने लगे। उन्होंने श्रीमद्भागवत का एक श्लोक पढ़ा और लक्ष्मी द्वारा व्यक्त मनोभाव को स्वीकार कर लिया।

तात्पर्य

इस प्रसंग में जिस श्लोक को उद्धृत किया गया है वह *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कंध के बाइसवें अध्याय का पच्चीसवाँ श्लोक है। यद्यपि गोपियाँ दुर्गादेवी या कात्यायनी की पूजा करती थीं, किन्तु उनकी आन्तरिक इच्छा कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने की थी। परमात्मा होने के कारण कृष्ण गोपियों की उत्कट इच्छा को जान गये, अतएव उन्होंने *वस्त्रहरण-लीला* का आनन्द लूटा। गोपियाँ किनारे पर अपने अपने वस्त्र छोड़ कर नग्न होकर यमुना में स्नान करने गईं। कृष्ण ने अवसर पाकर उनके वस्त्र चुरा लिये और उन्हें लेकर पेड़ पर चढ़ गये, जिससे उन्हें वे नंगी देख सकें और उनके पति बन सकें। गोपियाँ चाहती थीं कि कृष्ण उनके पति हों और चूँकि कोई भी स्त्री अपने पति के ही आगे नंगी हो सकती है, अतएव कृष्ण ने उनकी इच्छा पूरी करने के लिए वस्त्रहरण-लीला करना स्वीकार किया। जब गोपियों को उनके वस्त्र मिल गये तो कृष्ण ने यह श्लोक पढ़ा था।

संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम्।
मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति॥६९॥

अनुवाद

"हे गोपियो! मैं तुम्हारा पति बनने की तुम लोगों की इच्छा को स्वीकार करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम लोगों की इच्छा पूरी हो, क्योंकि यह पूरी होने योग्य है।"

तात्पर्य

गोपियाँ कृष्ण की ही समवयस्क थीं। उन्होंने मन में चाहा था कि कृष्ण उनके पति बनें, किन्तु स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण वे अपनी इच्छा व्यक्त नहीं कर सकती थीं। अतएव वस्त्रहरण के बाद कृष्ण ने उन्हें बतलाया, "मैं तुरन्त ही तुम लोगों की इच्छा को समझ गया और मैंने उसे मान भी लिया। चूँकि मैंने तुम लोगों के वस्त्र चुरा लिये हैं और तुम लोग मेरे सामने नंगी उपस्थित हो, इसका अर्थ यही होता है कि मैंने तुम सबों को पत्नी-रूप में स्वीकार कर लिया है।" कभी-कभी भगवान् या गोपियों का अभिप्राय न जानने के कारण मूर्ख लोग व्यर्थ ही अपनी दृष्टि से आलोचना करते हैं, किन्तु वस्त्रहरण के असली अभिप्राय को इस श्लोक में भगवान्

ने बतलाया है।

एइमत लीला करि' दुँहे गेला घरे।
गम्भीर चैतन्य-लीला के बुझिते पारे॥७०॥

अनुवाद

इस तरह परस्पर विचार व्यक्त करने के बाद चैतन्य महाप्रभु तथा लक्ष्मी दोनों अपने-अपने घर चले गये। भला चैतन्य महाप्रभु की गम्भीर लीलाओं को कौन समझ सकता है?

चैतन्य चापल्य देखि' प्रेमे सर्व जन।
शची-जगन्नाथे देखि' देन ओलाहन॥७१॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु के नटखट स्वभाव को देख कर पड़ोस के लोगों ने प्रेमवश शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र से शिकायत की।

एक दिन शची-देवी पुत्रेर भर्त्सिया।
धरिबारे गेला, पुत्र गेला पलाइया॥७२॥

अनुवाद

एक दिन शचीमाता अपने पुत्र को डाँटने के उद्देश्य से उसे पकड़ने गईं, किन्तु वे उस स्थान से भाग गये।

उच्छिष्ट-गर्ते त्यक्त-हाण्डीर उपर।
बसियाछेन सुखे प्रभु देव-विश्वम्भर॥७३॥

अनुवाद

यद्यपि चैतन्य महाप्रभु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता हैं, किन्तु एक बार वे उस गड्ढे में फेंके गये पात्रों के ऊपर जाकर बैठ गये जहाँ जूठन फेंका जाता है।

तात्पर्य

पहले ब्राह्मणों द्वारा घर पर रोजाना भगवान् विष्णु की पूजा करने और नये पात्रों में भोजन पकाने का विधान था। आज भी यह प्रथा जगन्नाथ पुरी में प्रचलित है। वहाँ मिट्टी के घड़ों में भोजन पकाया जाता है और पकाने

के बाद घड़ों को फेंक दिया जाता है। सामान्यतया घरों के पास एक बड़ा गड्ढा होता था जहाँ ऐसे घड़े फेंके जाते थे। श्री चैतन्य प्रभु ऐसे ही घड़ों के ऊपर मजे से बैठे थे क्योंकि वे अपनी माता को पाठ पढ़ाना चाह रहे थे।

शची आसि' कहे,—केने अशुचि छुँइला।
गंगास्नान कर ग्राइ,—अपवित्र हइला॥७४॥

अनुवाद

जब शचीमाता ने अपने बेटे को फेंके हुए घड़ों के ऊपर बैठे देखा तो उन्होंने यह कह कर विरोध प्रकट किया, "तुमने इन अछूत घड़ों को क्यों छुआ? अब तुम अशुद्ध हो गये। जाओ और गंगा में स्नान करो।"

इहा शुनि' माताके कहिल ब्रह्मज्ञान।
विस्मिता हइया माता कराइल स्नान॥७५॥

अनुवाद

यह सुन कर चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता को ब्रह्म-ज्ञान की शिक्षा दी। यद्यपि वे इससे विस्मित हुईं, लेकिन फिर भी महाप्रभु को स्नान करने के लिए बाध्य कर दिया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में महाप्रभु द्वारा अपनी माता से कहे गये ब्रह्म-ज्ञान की व्याख्या इस प्रकार की है, "महाप्रभु ने कहा 'माता! यह शुद्ध है और वह अशुद्ध है यह तो निराधार सांसारिक उद्गार है। आपने इन बर्तनों में भगवान् विष्णु के लिए भोजन पकाया है और वही भोजन उन्हें समर्पित किया है। तो फिर ये बर्तन अछूत क्यों हुए? विष्णु से सम्बन्धित हर वस्तु को विष्णु की शक्ति का अंश माना जाना चाहिए। विष्णु परमात्मा हैं, नित्य हैं और अकलुषित हैं। तो फिर इन बर्तनों को किस तरह शुद्ध या अशुद्ध माना जा सकता है?" ब्रह्म-ज्ञान विषयक यह बातें सुन कर उनकी माता अत्यन्त चकित हुईं और उन्हें स्नान करने के लिए बाध्य किया।"

कभु पुत्रसङ्गे शची करिला शयन।
देखे, दिव्यलोक आसि' भरिल भवन॥७६॥

अनुवाद

कभी-कभी शचीमाता अपने पुत्र को लेकर बिस्तर पर लेटतीं और वे देखतीं कि स्वर्गलोक के निवासी वहाँ आये हैं जिससे सारा घर भर गया है॥

शची बले,—याह, पुत्र, बोलाइ बापेरे।
मातृ-आज्ञा पाइया प्रभु चलिला बाहिरे॥७७॥

अनुवाद

एक बार शचीमाता ने महाप्रभु से कहा, "जाकर अपने पिता को बुला लाओ।" माता का आदेश पाकर वे उन्हें बुलाने बाहर चले गये।

चलिते चरणे नूपुर बाजे झन्झन्।
शुनि' चमकित हैल पिता-मातार मन॥७८॥

अनुवाद

जब बालक बाहर जा रहा था, तो उसके चरणकमलों से पायल की ध्वनी आ रही थी। यह सुन कर पिता तथा माता दोनों ही आश्चर्यचकित थे।

मिश्र कहे,—एइ बड़ अद्भुत काहिनी।
शिशुर शून्यपदे केने नूपुरेर ध्वनि॥७९॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने कहा, "यह बड़ी अद्भुत घटना है। मेरे पुत्र के नंगे पाँवों से पायल की आवाज क्यों आ रही है?"

शची कहे,—आर एक अद्भुत देखिल।
दिव्य दिव्य लोक आसि' अंगन भरिल॥८०॥

अनुवाद

माता शची ने कहा, "मैंने भी एक दूसरा आश्चर्य देखा है। लोग स्वर्गलोक से उतर रहे थे और पूरे आँगन में भीड़ लगी थी।

किबा केलाहल करे, बुझिते नापारि।
काहाके वा स्तुति करे—अनुमान करि॥८१॥

अनुवाद

"उन्होंने जोर-जोर से शब्द किया जिसे मैं नहीं समझ पाई। मेरा अनुमान है कि वे किसी की स्तुति कर रहे थे।"

मिश्र बले,—किछु हउक्, चिन्ता किछु नाइ।
विश्वम्भरेर कुशल हउक्,—एइ मात्र चाइ॥८२॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया, "इसकी परवाह मत करो। चिन्ता की कोई बात नहीं। विश्वम्भर सदैव कुशल रहे। यही मेरी कामना है।"

एक दिन मिश्र पुत्रेर चापल्य देखिया।
धर्म-शिक्षा दिल बहु भर्त्सना करिया॥८३॥

अनुवाद

एक अन्य अवसर पर जगन्नाथ मिश्र ने अपने बेटे की शैतानी देख कर उसे खूब फटकारा और फिर नैतिकता की शिक्षा दी।

रात्रे स्वप्न देखे,—एक आसि' ब्राह्मण।
मिश्रेर कहये किछु सरोष वचन॥८४॥

अनुवाद

उसी रात को जगन्नाथ मिश्र ने सपना देखा कि एक ब्राह्मण आकर उनसे क्रोध में ये वचन कह रहा है।

"मिश्र, तुमि पुत्रेर तत्त्व किछुइ ना जान।
भर्त्सन-ताड़न कर,—पुत्र करि' मान॥"८५॥

अनुवाद

"हे मिश्र! तुम अपने पुत्र के बारे में कुछ भी नहीं जानते। तुम उसे अपना पुत्र समझ कर फटकारते और प्रताड़ित करते हो।"

मिश्र कहे,—देव, सिद्ध, मुनि केने नय।
ये से बड़ हइक मात्र आमार तनय॥८६॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने उत्तर दिया, "यह बालक देवता, योगी या सन्त पुरुष है तो हुआ करे। मुझे इसकी परवाह नहीं कि यह क्या है क्योंकि मैं उसे अपना पुत्र ही मानता हूँ।

पुत्रेर लालन-शिक्षा—पितार स्वधर्म।
आमि ना शिखाले कैछे जानिबे धर्म-मर्म॥८७॥

अनुवाद

"यह पिता का कर्तव्य है कि वह अपने पुत्र को धर्म तथा नैतिकता की शिक्षा दे। यदि मैं इसे यह शिक्षा नहीं देता तो यह जानेगा कैसे?"

विप्र कहे—पुत्र यदि देव-सिद्ध हय।
स्वतः सिद्धज्ञान, तबे शिक्षा व्यर्थ हय॥८८॥

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "यदि तुम्हारा पुत्र आत्म-तेजस्वी और ज्ञान से युक्त योगी है तो तुम्हारी शिक्षा का क्या लाभ है?"

तात्पर्य

जगन्नाथ मिश्र ने जिस ब्राह्मण को सपने में देखा था उसने यह बतलाया कि तुम्हारा पुत्र सामान्य मनुष्य नहीं है। यदि वह दिव्य पुरुष है तो उसमें आत्म-तेजस्वी ज्ञान होना चाहिए और तब उसे शिक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

मिश्र कहे,—"पुत्र केने नहे नारायण।
तथापि पितार धर्म—पुत्रेर शिक्षण॥८९॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र ने कहा, "चाहे मेरा पुत्र नारायण ही क्यों न हो, तो भी पिता का कर्तव्य है कि अपने पुत्र को शिक्षा दे।"

एइमते दुँहे करेन धर्मेर विचार।
विशुद्धवात्सल्य मिश्रेर, नाहि जाने आर॥९०॥

अनुवाद

इस तरह जगन्नाथ मिश्र तथा ब्राह्मण में स्वप्न में धर्म विषयक विचार-विमर्श होता रहा। फिर भी जगन्नाथ मिश्र शुद्ध वात्सल्य रस में निमग्न रहे और वे दूसरा कुछ जानना नहीं चाहते थे।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में (१०.८.४५) कहा गया है "जिनकी पूजा समस्त वेद तथा उपनिषदें स्तुतियों द्वारा तथा सात्विक महापुरुष सांख्य-योग द्वारा करते हैं, उस भगवान् को माता यशोदा तथा नन्द ने अपना नन्हा-सा बेटा माना।" इसी प्रकार जगन्नाथ मिश्र चैतन्य महाप्रभु को अपना प्रिय नन्हा बेटा मान रहे थे, यद्यपि उसकी पूजा विद्वान ब्राह्मणों तथा सन्त पुरुषों द्वारा बड़े ही आदर के साथ की जा रही थी।

एत शुनि' द्विज गेला हञा आनन्दित।
मिश्र जागिया हइला परम विस्मित॥९१॥

अनुवाद

जगन्नाथ मिश्र से बातें करने के बाद परम प्रसन्न होकर वह ब्राह्मण चला गया और जब जगन्नाथ मिश्र जगे तो वे अत्यधिक विस्मित थे।

बन्धु-बान्धव-स्थाने स्वप्न कहिल।
शुनिया सकल लोक विस्मित हइल॥९२॥

अनुवाद

उन्होंने अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से अपना स्वप्न कह सुनाया और वे सब इसे सुन कर परम विस्मित थे।

एइ मत शिशुलीला करे गौरचन्द्र।
दिने दिने पिता-मातार बाड़ाय आनन्द॥९३॥

अनुवाद

इस तरह गौरहरि ने अपनी बाल-लीलाएँ सम्पन्न कीं और दिन-प्रतिदिन अपने माता-पिता के आनन्द को बढ़ाते रहे।

कत दिने मिश्र पुत्रेर हाते खड़ि दिल।
अल्प दिने द्वादश-फला अक्षर शिखिल॥९४॥

अनुवाद

कुछ दिनों बाद जगन्नाथ मिश्र ने अपने पुत्र की बारहखड़ी संस्कार सम्पन्न करके उसकी प्रारम्भिक शिक्षा का शुभारम्भ कर दिया। महाप्रभु ने कुछ ही दिनों में सारे अक्षर और संयुक्त अक्षर सीख लिये।

तात्पर्य

बारह फला अक्षरों का संयोग होता है जिसमें रेफ, मूर्धन्य, ण, दान्तव्य, न, म, य, र, ल, व, ऋ, ॠ, ऌ तथा ॡ आते हैं। चार या पाँच वर्ष की आयु में किसी शुभ दिन विद्यारम्भ होता है, जिस दिन भगवान् विष्णु की पूजा के बाद शिक्षक बालक को एक खड़िया देता है। फिर हाथ पकड़ कर फर्श पर बड़े-बड़े अक्षरों को लिखना बताता है। जब बालक कुछ लिखने लगता है तो उसे स्लेट दी जाती है। फिर बालक दो अक्षरों का संयोग, जिसे *फला* कहते हैं, सीखता है।

बाल्यलीला-सूत्र एइ कैल अनुक्रम।
इहा विस्तारियाछेन दास-वृन्दावन॥९५॥

अनुवाद

यह महाप्रभु की बाल-लीलाओं का सारांश है जिसे यहाँ क्रमबद्ध करके प्रस्तुत किया गया है। वृन्दावन दास ठाकुर ने पहले ही अपनी पुस्तक *चैतन्य-भागवत* में इन लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है।

अतएव एइ-लीला संक्षेपे सूत्र कैल।
पुनरुक्ति-भये विस्तारिरा ना कहिल॥९६॥

अनुवाद

इसलिए मैंने केवल संक्षिप्त सारांश दिया है। पुनरुक्ति भय से मैंने इस विषय को विस्तार से नहीं दिया।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥९७॥

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की स्तुति करते हुए और सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उन्हीं के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के चौदहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें चैतन्य महाप्रभु की बाल-लीलाओं का वर्णन हुआ है।

आदि-लीला

अध्याय १५

पन्द्रहवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है—महाप्रभु ने गंगादास पंडित के यहाँ व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की और व्याकरण की टीका लिखने में पटु बने; उन्होंने अपनी माता को निराहार एकादशी व्रत रखने को कहा, उन्होंने एक कहानी सुनाई कि संन्यास लेने के बाद विश्वरूप ने स्वप्न में उन्हें भी संन्यास ग्रहण करने के लिए कहा, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया और घर लौट आये एवं पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने वल्लभाचार्य की पुत्री लक्ष्मी से विवाह कर लिया।

कुमनाः सुमनस्त्वं हि याति यस्य पदाब्जयोः।
सुमनोऽर्पणमात्रेण तं चैतन्यप्रभुं भजे॥१॥

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ जिनके चरणकमलों पर सुमनस फूल चढ़ाने से ही बड़ा से बड़ा भौतिकतावादी भी भक्त बन जाता है।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र, जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्री अद्वैत आचार्य की जय हो तथा श्री चैतन्य-भक्तों की जय हो।

पौगण्ड-लीलार सूत्र करिबे गणन।
पौगण्ड-वयसे प्रभुर मुख्य अध्ययन॥३॥

अनुवाद

अब मैं चैतन्य महाप्रभु की पाँच वर्ष की आयु से लेकर दस वर्ष की लीलाओं को गिनाने जा रहा हूँ। इस काल में उन्होंने जो मुख्य कार्य किया वह था अपने आप को अध्ययन में लगाना।

पौगण्ड-लीला चैतन्य कृष्णस्यातिसुविस्तृता।
विद्यारम्भमुखा पाणिग्रहणान्ता मनोहरा।।४।।

अनुवाद

पौगण्ड अवस्था के अन्तर्गत महाप्रभु की लीलाएँ अत्यन्त व्यापक रहीं। मुख्य कार्य उनकी शिक्षा ही रहा और उसी के बाद उनकी मनोहर शादी हुई।

गङ्गादास पण्डित-स्थाने पड़ेन व्याकरण।
श्रवणमात्रे कण्ठे कैल सूत्रवृत्तिगण।।५।।

अनुवाद

जब महाप्रभु श्री गंगादास पंडित के रहाँ व्याकरण पढ़ रहे थे, तो वे व्याकरण के सारे नियम एवं परिभाषाएँ एक बार सुन कर ही तुरन्त कण्ठ कर लेते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का कहना है कि विष्णु तथा सुदर्शन नामक दो शिक्षकों से महाप्रभु पढ़ते थे। बाद में जब वे बड़े हुए तो गंगादास के संरक्षण में रहे जिन्होंने उच्च स्तरीय व्याकरण की शिक्षा दी। संस्कृत का ठीक से अध्ययन करने वालों को सर्वप्रथम व्याकरण पढ़नी पड़ती है। कहते हैं कि संस्कृत-व्याकरण पढ़ने में-कम-से-कम १२ वर्ष लगते हैं, किन्तु एक बार व्याकरण के नियम सीख जाने पर संस्कृत में लिखित अन्य शास्त्र या विषयों को समझना आसान हो जाता है क्योंकि संस्कृत-व्याकरण शिक्षा का प्रवेश-द्वार है।

अल्पकाले हैला पञ्जी-टीकाते प्रवीण।
चिरकालेर पड़ुया जिने हइया नवीन।।६।।

अनुवाद

वे शीघ्र ही पञ्जी-टीका की टीका करने में दक्ष हो गये जिससे नौसिखिये होकर भी समस्त विद्यार्थियों में वे सबसे आगे रहते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का कहना है कि पञ्जी-टीका नामक एक व्याकरण की टीका थी, जिसकी बाद में सरल व्याख्या श्री चैतन्य महाप्रभु ने की।

अध्ययन-लीला प्रभुर दास-वृन्दावन।
'चैतन्यमंगले' कैल विस्तारि वर्णन॥७॥

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी पुस्तक चैतन्य-मंगल (बाद में इसका नाम चैतन्य-भागवत पड़ा) में महाप्रभु की अध्ययन-लीला का बड़े विस्तार से वर्णन किया है।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत आदिलीला के अध्याय ४, ६, ७, ८, ९ तथा १० महाप्रभु की अध्ययन-लीला के लिए सन्दर्भ का काम करते हैं।

एक दिन मातार पदे करिया प्रणाम्।
प्रभु कहे,—माता, मोरे देह एक दान॥८॥

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता के चरणकमलों पर गिर कर उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हें एक वस्तु का दान दें।

माता बले,—ताइ दिब, य़ा तुमि मागिबे।
प्रभु कहे,—एकादशीते अन्न ना खाइबे॥९॥

अनुवाद

उनकी माता ने कहा "बेटे! जो तुम माँगोगे वही मैं दूंगी।" तब महाप्रभु बोले, "माता! आप एकादशी के दिन अन्न न खायें।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने बाल्यकाल से ही एकादशी के दिन उपवास

रखने की प्रथा चालू की। श्रील जीव गोस्वामी कृत *भक्त-सन्दर्भ* में *स्कन्द-पुराण* से एक उद्धरण आया है जिसमें यह बतलाया गया है कि जो एकादशी को अन्न खाता है वह अपने माता, पिता, भाई तथा गुरु का हत्यारा होता है और यदि उसे वैकुण्ठ-लोक प्राप्त भी हो जाय तो वह नीचे गिर आता है। एकादशी के दिन हर वस्तु, जिसमें अन्न तथा दान सम्मिलित हैं, विष्णु के लिए तैयार की जाती है, किन्तु वैष्णवों के लिए आदेश है कि वे एकादशी के दिन विष्णु-प्रसाद भी न लें। कहा जाता है कि वैष्णवजन भगवान् विष्णु को अर्पित किये बिना कोई खाद्य ग्रहण नहीं करते, किन्तु एकादशी के दिन वैष्णवों को महाप्रसाद तक छूना वर्जित है, भले ही उसे रख कर अगले दिन ग्रहण करें। एकादशी के दिन कोई भी अन्न ग्रहण करना मना है, भले ही वह भगवान् विष्णु को अर्पित क्यों न किया गया हो।

शची कहे,—ना खाइब, भालइ कहिला।
सेइ हैते एकादशी करिते लागिला॥१०॥

अनुवाद

माता शची ने कहा, "तुमने बहुत अच्छा कहा। मैं एकादशी के दिन अन्न नहीं खाऊँगी।" उस दिन से वे एकादशी का उपवास रखने लगीं।

तात्पर्य

स्मार्त ब्राह्मण इस पक्ष के हैं कि विधवा को तो एकादशी व्रत रखना चाहिए, किन्तु सधवा को नहीं। ऐसा लगता है कि चैतन्य महाप्रभु के अनुरोध के पूर्व शचीमाता एकादशी व्रत नहीं रखती थीं क्योंकि वे सधवा थीं। किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने ऐसी प्रथा का सूत्रपात किया कि विधवा न होने पर भी स्त्री को एकादशी व्रत रहना चाहिए और उस दिन कोई अन्न नहीं छूना चाहिए, भले ही विष्णु का प्रसाद ही क्यों न हो।

तबे मिश्र विश्वरूपेर देखिया यौवन।
कन्या चाहि' विवाह दिते करिलेन मन॥११॥

अनुवाद

तत्पश्चात् विश्वरूप को युवक हुआ देख कर जगन्नाथ मिश्र ने कोई लड़की ढूँढ कर उसका विवाह कर देना चाहा।

विश्वरूप शुनिऽघर छाड़ि पलाइला।
संन्यास करिया तीर्थ करिबारे गेला॥१२॥

अनुवाद

यह सुन कर विश्वरूप ने तुरन्त गृहत्याग कर दिया और वह संन्यास लेकर एक तीर्थस्थान से दूसरे तीर्थस्थान की यात्रा करने निकल गया।

शुनि' शची-मिश्रेर दुःखी हैल मन।
तबे प्रभु माता-पितार कैल आश्वासन॥१३॥

अनुवाद

जब शचीमाता तथा जगन्नाथ मिश्र ने अपने ज्येष्ठ पुत्र विश्वरूप के चले जाने का समाचार सुना, तो वे दुखी हुए, लेकिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें ढाढ़स बँधाया।

भाल हैल,—विश्वरूप संन्यास करिल।
पितृकुल, मातृकुल,—दुइ उद्धारिल॥१४॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "हे माता तथा पिता! यह अच्छा ही हुआ कि विश्वरूप ने संन्यास ग्रहण कर लिया है, क्योंकि इस तरह उसने अपने पितृ-कुल तथा अपने मातृ-कुल दोनों का ही उद्धार कर दिया।"

तात्पर्य

कभी-कभी कहा जाता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस कलियुग में संन्यास ग्रहण करने की अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान की क्योंकि शास्त्र में कहा गया है—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत॥

"इस कलियुग में अश्वमेध-यज्ञ या गोमेध-यज्ञ से बचना चाहिए जिनमें घोड़े या गाय की बलि दी जाती है। इसी तरह संन्यास ग्रहण करने से भी।" (ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृष्ण-जन्म खण्ड १८५.१८०)।

इतने पर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं संन्यास लिया और अपने बड़े

भाई विश्वरूप के संन्यास-ग्रहण का समर्थन किया। यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है—*भाल हैल—विश्वरूप संन्यास करिल पितृकुल-मातृ कुल—दुइ उद्धारिल*। अतएव क्या ऐसा सोचा जा सकता है कि उन्होंने परस्पर-विरोधी वक्तव्य दिए हैं? नहीं, उन्होंने ऐसा नहीं किया। ऐसी संस्तुति है कि भगवान् की सेवा करने के लिए जीवन समर्पित करने हेतु संन्यास ग्रहण करना चाहिए और हर व्यक्ति को ऐसा संन्यास लेना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य अपने मातृ तथा पितृ दोनों कुलों की सर्वश्रेष्ठ सेवा करता है। किन्तु मनुष्य को मायावाद-पंथ का संन्यास नहीं स्वीकार करना चाहिए जिसका कोई भी अर्थ नहीं निकलता। हम अनेक मायावादी संन्यासियों को सड़कों पर घूमते और अपने को ब्रह्म या नारायण बताते हुए देखते हैं। वे पेट भरने के लिए अपना सारा समय भीख माँगने में बिताते हैं। मायावादी संन्यासी इतने पतित हो चुके हैं कि उनका एक वर्ग कूकर-सूकर तक खाता है। ऐसे ही गिरे हुए संन्यास की इस युग में मनाही है। वास्तव में, शंकराचार्य ने संन्यास ग्रहण करने के जो नियम बनाये थे वे बहुत कठोर थे, किन्तु बाद में मायावादी संन्यासी अपने छद्म दर्शन के कारण पतित हो गये क्योंकि इस दर्शन के अनुसार संन्यास ग्रहण करने से मनुष्य नारायण बन जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस प्रकार के संन्यास का बहिष्कार किया। किन्तु संन्यास ग्रहण करना वर्णाश्रम धर्म का अंग है। भला इसका बहिष्कार कैसे किया जा सकता है?

आमि त' करब तोमा' दुँहार सेवन।
शुनिया सन्तुष्ट हैल पिता-मातार मन॥१५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने माता-पिता को आश्वासन दिया, "मैं आप दोनों की सेवा करूँगा।" इस तरह उनके माता-पिता के मन को सन्तोष हो गया।

एकदिन नैवेद्य-ताम्बूल खाइया।
भूमिते पड़िला प्रभु अचेतन हञा॥१६॥

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने अर्चाविग्रह पर चढ़ा पान खा लिया

जिससे उन्हें नशा चढ़ गया और वे अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े।

तात्पर्य

पान नशीला (मादक) होता है, इसलिए खाने की मनाही है। पान खाने के बाद मूर्च्छित होने की महाप्रभु की लीला हमारे लिए नसीहत है कि हमें पान नहीं खाना चाहिए, भले ही वह विष्णु पर चढ़ाया हुआ पान क्यों न हो। हाँ, चैतन्य महाप्रभु की मूर्छा का विशेष प्रयोजन था। भगवान् होने के कारण वे इच्छानुसार कुछ भी खा सकते हैं, किन्तु हमें उनकी लीलाओं की नकल नहीं करनी चाहिए।

आस्ते-व्यस्ते पिता-माता मुखे दिल पानि।
सुस्थ हञा कहे प्रभु अपूर्व काहिनी॥१७॥

अनुवाद

जब उनके माता-पिता ने जल्दी से उनके मुँह पर पानी छिड़का तो उन्हें होश आया और उन्होंने ऐसी कहानी सुनाई जो पहले नहीं सुनी थी।

एथा हैते विश्वरूप मोरे लञा गेला।
संन्यास करह तुमि, आमारे कहिला॥१८॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "विश्वरूप मुझे यहाँ से ले जाकर बोले कि मैं भी संन्यास ग्रहण कर लूँ।

आमि कहि,—आमार अनाथ पिता-माता।
आमि बालक,—संन्यासेर किबा जानि कथा॥१९॥

अनुवाद

"मैंने विश्वरूप से कहा, "मेरे माता-पिता अनाथ हैं और मैं भी अभी बच्चा हूँ। मैं संन्यास के बारे में क्या जानूँ?

गृहस्थ हइया करिब पिता-मातार सेवन।
इहातेइ तुष्ट हबेन लक्ष्मी-नारायण॥२०॥

अनुवाद

"बाद में मैं गृहस्थ बनूँगा और इस तरह माता-पिता की सेवा करूँगा क्योंकि इससे भगवान् नारायण तथा उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी अत्यधिक तुष्ट होंगी।

तबे विश्वरूप इहाँ पाठाइल मोरे।
माता के कहिओ कोटि कोटि नमस्कारे॥२१॥

अनुवाद

"तभी विश्वरूप में मुझे घर लौटा दिया और कहा " 'मेरी माता शची देवी से मेरा कोटि-कोटि नमस्कार कहना।' "

एइ मत नाना लीला करे गौरहरि।
कि कारणे लीला,—इहा बूझिते ना पारि॥२२॥

अनुवाद

इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु ने अनेक लीलाएँ कीं किन्तु उन्होंने ऐसा क्यों किया मैं समझ नहीं सकता।

तात्पर्य

भगवान् तथा उनके भक्त, जो इस इस जगत में आते हैं वे अपना मिशन पूरा करते हैं। अतएव कभी-कभी वे इस तरह कर्म करते हैं जिसे समझ पाना मुश्किल होता है। इसीलिए कहा गया है—*वैष्णवेर क्रिया मूढ़ विज्ञे ना बुझय*—भले ही कोई कितना विद्वान् और बुद्धिमान क्यों न हो वह वैष्णव के कार्यों को नहीं समझ सकता। वैष्णव अपने मिशन की पूर्ति के लिए जो भी उपयुक्त होता है, स्वीकार कर लेता है। किन्तु मूर्ख लोग ऐसे उच्च वैष्णवों के प्रयोजन को न समझने के कारण उनकी आलोचना करते हैं। यह वर्जित है। चूँकि यह कोई नहीं जानता कि एक वैष्णव अपने मिशन की पूर्ति के लिए क्या करता है, अतएव ऐसे वैष्णव की आलोचना एक अपराध है, जिसे *साधु-निन्दा* कहते हैं।

कत दिन रहि' मिश्र गेला परलोक।
माता-पुत्र दुँहार बाड़िल हृदि शोक॥२३॥

अनुवाद

कुछ दिनों बाद जगन्नाथ मिश्र का स्वर्गवास हो गया। इससे माता तथा पुत्र दोनों ही हृदय से अत्यन्त शोकग्रस्त थे।

बन्धु-बान्धव आसि' दुँहा प्रबोधिल।
पितृक्रिया विधिमते ईश्वर करिल॥२४॥

अनुवाद

चैतन्य तथा उनकी माता को धीरज बँधाने के लिए मित्रगण तथा सम्बन्धी लोग आये। तब चैतन्य महाप्रभु ने, यद्यपि वे साक्षात भगवान् थे, वैदिक विधि से अपने मृत पिता का संस्कार सम्पन्न किया।

कत दिने प्रभु चित्ते करिला चिन्तन।
गृहस्थ हइलाम, एबे चाहि गृहधर्म॥२५॥

अनुवाद

कुछ दिनों बाद महाप्रभु ने सोचा, "मैंने संन्यास नहीं लिया और चूँकि मैं घर पर रहता हूँ, अतएव यह मेरा कर्तव्य है कि गृहस्थ की तरह कर्म करूँ।"

गृहिणी विना गृहधर्म ना हय शोभन।
एत चिन्ति' विवाह करिते हैल मन॥२६॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने विचार किया, "पत्नी बिना गृहस्थ जीवन कोई अर्थ नहीं रखता।" इस तरह उन्होंने विवाह करने का निश्चय किया।

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
तया हि सहितः सर्वान् पुरुषार्थान् समश्नुते॥२७॥

अनुवाद

घर-मात्र घर नहीं है, यह तो पत्नी है जो घर को सार्थक बनाती है। यदि कोई अपनी पत्नी के साथ घर में रहता है तो वे दोनों मिल कर मनुष्य जीवन के समस्त हितों (पुरुषार्थों) को पूरा कर सकते हैं।

दैवे एक दिन प्रभु पड़िया आसिते।
वल्लभाचार्येर कन्या देखे गङ्गा-पथे॥२८॥

अनुवाद

एक दिन जब महाप्रभु पाठशाला से वापस आ रहे थे, तो अचानक उन्हें वल्लभाचार्य की पुत्री मिल गई जो गंगाजी जा रही थी।

पूर्वसिद्ध भाव दुँहार उदय करिल।
दैवे वनमाली घटक शची-स्थाने आइल॥२९॥

अनुवाद

महाप्रभु तथा लक्ष्मीदेवी के मिलने पर उनके सम्बन्ध जागरित हुए जो पहले से तै हो चुके थे और संयोग से शादी तै कराने वाला (घटक) वनमाली शचीमाता से मिलने आ गया।

तात्पर्य

वनमाली घटक नवद्वीप का रहने वाला ब्राह्मण था। उसने लक्ष्मीदेवी का विवाह तै कराया। पूर्वजन्म में वह विश्वामित्र था, जिसने श्री रामचन्द्र का विवाह तै कराया था और बाद में इसी ब्राह्मण ने रुक्मिणी के साथ भगवान् कृष्ण का विवाह करवाया था। वही ब्राह्मण चैतन्य-लीला में महाप्रभु का विवाह पक्का करने वाला बना।

शचीर इंगिते सम्बन्ध करिल घटन।
लक्ष्मीके विवाह कैल शचीर नन्दन॥३०॥

अनुवाद

शचीदेवी का संकेत पाकर, वनमाली घटक ने विवाह पक्का करा दिया और समय आने पर महाप्रभु ने लक्ष्मीदेवी के साथ विवाह कर लिया।

विस्तारिया वर्णिला ताहा वृन्दावन-दास।
एइ त' पौगण्ड-लीलार सूत्र प्रकाश॥३१॥

अनुवाद

वृन्दावन दास ने महाप्रभु की इन समस्त पौगण्ड-लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है। मैंने तो उन्हीं लीलाओं का केवल संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है।

पौगण्ड वयसे लीला बहुत प्रकार।
वृन्दावन-दास इहा करियाछेन विस्तार॥३२॥

अनुवाद

महाप्रभु ने अपनी पौगण्ड अवस्था में नाना प्रकार की लीलाएँ की हैं और श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने इन सबों का विस्तार से वर्णन किया है।

अतएव दिङ्मात्र इहाँ देखाइल।
"चैतन्यमङ्गले" सर्वलोके ख्यात हैल॥३३॥

अनुवाद

मैंने तो इन लीलाओं का संकेत-मात्र किया है, क्योंकि वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी पुस्तक चैतन्य-मंगल (अब चैतन्य-भागवत) में इन सबों का विस्तार से वर्णन किया है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे य़ार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥३४॥

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए एवं उन्हीं के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए मैं कृष्णदास श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के पन्द्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु की पौगण्ड-लीला का वर्णन हुआ है।

आदि-लीला

अध्याय १६

इस अध्याय में चैतन्य महाप्रभु के द्वारा तरुणावस्था प्राप्त करने के पूर्व के कार्यकलापों का अर्थात् *कैशोर-लीला* का पूरी तरह से वर्णन मिलता है। इस काल में उन्होंने गहन अध्ययन किया और प्रकाण्ड पण्डितों पर विजय पाई। कैशोर-लीला के अन्तर्गत उन्होंने जलकेलि भी की। वे आर्थिक सहायता प्राप्त करने, ज्ञान के अनुशीलन तथा संकीर्तन-आन्दोलन का सूत्रपात करने के उद्देश्य से पूर्वी बंगाल में गये, जहाँ उनकी भेंट तपन मिश्र से हुई, जिन्हें उन्होंने आध्यात्मिक उन्नति के बारे में उपदेश दिया और फिर वाराणसी जाने की आज्ञा दी। जब महाप्रभु पूर्वी बंगाल की यात्रा पर थे, तो उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी सर्प अथवा विरह-सर्प के काटने से दिवंगत हो गईं। जब वे घर लौट कर आये, तो देखा कि उनकी माता लक्ष्मीदेवी की मृत्यु के कारण अत्यन्त शोकाकुल थीं। अतएव उनके अनुरोध पर महाप्रभु ने विष्णुप्रिया देवी के साथ विवाह कर लिया। इस अध्याय में सुप्रसिद्ध पंडित केशव कश्मीरी के साथ शास्त्रार्थ तथा माता गंगा की महिमा सम्बन्धी उनके स्तोत्र की आलोचना का भी वर्णन हुआ है। इस स्तोत्र में महाप्रभु ने पाँच प्रकार के अलंकार सम्बन्धी तथा पाँच प्रकार के साहित्यिक दोष निकाल कर उस पंडित को पराजित किया। बाद में देश भर में विजयी होने के लिए विख्यात कश्मीरी पण्डित देवी सरस्वती की शरण में आया और उनके आदेश से दूसरे दिन महाप्रभु से मिला तथा उनकी शरण ग्रहण की।

कृपासुधा-सरिद्यस्य विश्वमाप्लावयन्त्यपि।
नीचगैव सदा भाति तं चैतन्यप्रभुं भजे॥१॥

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करता हूँ, जिनकी अमृतमयी कृपारूपी महानदी अखिल ब्रह्माण्ड को आप्लावित करती हुई प्रवाहित होती है।

जिस प्रकार नदी नीचे की ओर बहती है, उसी तरह चैतन्य महाप्रभु पतितों के लिए सुलभ हैं।

तात्पर्य

नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है—*श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु दया कर मोरे*। वे महाप्रभु से कृपा की प्रार्थना करते हैं क्योंकि वे कृपावतार हैं जिनका आविर्भाव पतितों के उद्धार के लिए हुआ है। जो जितना ही पतित होता है वह महाप्रभु की कृपा का उतना ही बड़ा दावेदार है। हाँ, उसे निष्ठावान् तथा गम्भीर होना चाहिए। यदि कोई कलियुग के दुर्गुणों से दूषित होने पर भी श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में जाता है तो महाप्रभु उसका निश्चित रूप से उद्धार करते हैं। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण जगाइ तथा माधाइ हैं। इस युग में हर व्यक्ति जगाइ तथा माधाई है, लेकिन महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित संकीर्तन-आन्दोलन रूपी महानदी आज भी समग्र संसार को आप्लावित करती हुई बह रही है। इस तरह कृष्णभावनामृत की अन्तर्राष्ट्रीय समिति सारे पतितात्माओं को सारे कल्मष से दूर करने का कार्य कर रही है।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द ॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो, श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो, श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो।

जीयात् कैशोर-चैतन्यो मूर्तिमत्या गृहाश्रमात्।
लक्ष्मार्चितोऽथ वाग्देव्या दिशांजयि-जयच्छलात् ॥३॥

अनुवाद

कैशोर अवस्था को प्राप्त श्री चैतन्य महाप्रभु दीर्घजीवी हों। लक्ष्मीदेवी तथा सरस्वती दोनों उनकी पूजा करती हैं। सरस्वती ने विश्वविजयी पंडित पर उनकी विजय के लिए पूजा की तो लक्ष्मीदेवी ने उनकी घर में पूजा की। चूँकि वे दोनों देवियों के पति हैं, अतएव मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

एइ त' कैशोर-लीलार सूत्र-अनुबन्ध।
शिष्यगण पड़ाइते करिला आरम्भ॥४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ग्यारह वर्ष की आयु में विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे थे। यहीं से उनकी कैशोरावस्था प्रारम्भ होती है।

शत शत शिष्य सङ्गे सदा अध्यापन।
व्याख्या शुनि सर्वलोकेर चमकित मन॥५॥

अनुवाद

जब महाप्रभु शिक्षक बने तो अनेकानेक विद्यार्थी उनके पास आने लगे और हर विद्यार्थी उनकी व्याख्या की शैली सुन कर आश्चर्यचकित रह जाता।

सर्वशास्त्रे सर्व पण्डित पाय पराजय।
विनयभंगीते कारो दुःख नाहि हय॥६॥

अनुवाद

महाप्रभु ने शास्त्रार्थ में सारे पंडितों को हराया फिर भी कोई भी पंडित महाप्रभु की विनयशीलता के कारण दुखी नहीं हुआ।

विविध उद्देश्य करे शिष्यगण-सङ्गे।
जाह्नवीते जलकेलि करे नाना रङ्गे॥७॥

अनुवाद

जब महाप्रभु शिक्षक थे तो वे गंगा के जल में अनेक प्रकार के खिलवाड़ करते थे।

कत दिने कैल प्रभु बङ्गेते गमन।
य़ाहाँ य़ाय, ताहाँ लओयाय नाम-संकीर्तन॥८॥

अनुवाद

कुछ दिनों बाद महाप्रभु पूर्व बंगाल गये और वे जहाँ-जहाँ गये उन्होने वहाँ-वहाँ संकीर्तन-आन्दोलन का सूत्रपात किया।

तात्पर्य

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा शिष्य-परम्परा के उनके भक्तगण सभी तरह के पंडितों, वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों को तर्क में परास्त कर सकते हैं और इस तरह भगवान् की श्रेष्ठता स्थापित कर सकते हैं, किन्तु उनका मुख्य कार्य प्रचारक के रूप में सर्वत्र संकीर्तन का शुभारम्भ करना है। प्रचारक का कार्य मात्र पंडितों और दार्शनिकों को पराजित करना नहीं है। प्रचारकों को चाहिए कि वे साथ-साथ संकीर्तन-आन्दोलन का सूत्रपात करें क्योंकि चैतन्य-सम्प्रदाय का यही मिशन है।

विद्यार प्रभाव देखि चमत्कार चिते।
शत शत पडुया आसि लागिला पड़िते॥९॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु की बौद्धिक शक्ति के प्रभाव से चमत्कृत होकर सैकड़ों विद्यार्थी उनके निर्देशन में अध्ययन करने के लिए आने लगे।

सेइ देशे विप्र, नाम—मिश्र तपन।
निश्चय करिते नारे साध्य-साधन॥१०॥

अनुवाद

पूर्वी बंगाल में तपन मिश्र नामक एक ब्राह्मण था जो निश्चय नहीं कर पा रहा था कि जीवन का उद्देश्य क्या है और उसे किस तरह प्राप्त किया जाय।

तात्पर्य

मनुष्य को चाहिए कि पहले जीवन-लक्ष्य निश्चित करे और फिर उसे प्राप्त करने के उपाय के बारे में विचार करे। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन हर एक को बतलाता है कि जीवन का उद्देश्य कृष्ण को समझना है और जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कृष्णभावनामृत का अभ्यास प्रामाणिक शास्त्रों तथा वेदों के सन्दर्भ में गोस्वामियों द्वारा बताई विधि के अनुसार करना चाहिए।

बहुशास्त्रे बहुवाक्ये चित्ते भ्रम हय।
साध्य-साधन श्रेष्ठ ना हय निश्चय॥११॥

अनुवाद

यदि कोई किताबी कीड़ा बन कर अनेक ग्रंथ तथा शास्त्रों को पढ़ता रहता है और अनेकानेक लोगों की टीकाएँ एवं उपदेश सुनता है तो उसके मन में सन्देह उत्पन्न होने लगता है। इस तरह जीवन का वास्तविक लक्ष्य निश्चित नहीं हो पाता।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में (७.१३.८) कहा गया है—*ग्रन्थान् नैवाभ्यसेद् बहून्न व्याख्याम् उपयुञ्जित*—न तो अधिक पुस्तकें पढ़नी चाहिए, न ही अनेक पुस्तकों को मुँहजबानी सुनाने का पेशा बनाना चाहिए, विशेषतया यदि वह भक्त हो। मनुष्य को विद्वान् बन कर संसारी ख्याति तथा आर्थिक सुविधा प्राप्त करने का मोह त्याग देना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अनेक पुस्तकें पढ़ने में ध्यान लगाता है, तो वह भक्ति में चित्त को स्थिर नहीं कर सकता, न ही वह शास्त्रों को समझ सकता है, क्योंकि वे गम्भीर कथनों और अर्थों से परिपूर्ण होते हैं। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का मत है कि जो लोग नाना विषयक साहित्य, विशेषतया सकाम कर्म तथा ज्ञान से सम्बन्धित साहित्य, पढ़ते हैं, वे ध्यान बँट जाने के कारण अनन्य भक्ति से वञ्चित रह जाते हैं।

मनुष्य में सकाम कर्म, धार्मिक अनुष्ठान तथा दार्शनिक चिन्तन के प्रति सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती है। इस तरह से मोहग्रस्त जीव अनन्त काल से चले आ रहे जीवन के असली लक्ष्य को नहीं समझ सकता और इस तरह उसके जीवन में किये गये कार्य व्यर्थ जाते हैं। इस तरह अबोध व्यक्ति गुमराह होने से अनन्य कृष्ण-भक्ति से वञ्चित रह जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों का जीवन्त उदाहरण तपन मिश्र हैं। वह विद्वान् था किन्तु वह जीवन के लक्ष्य को निश्चित नहीं कर पाया था। अतएव उसे अवसर दिया गया कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी को उपदेश दे रहे थे तो वह उनकी वाणी सुने। तपन मिश्र को दिया गया श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश उन व्यक्तियों के लिए विशेषतया महत्वपूर्ण है जो इधर-उधर घूमते रहते हैं और पुस्तकें एकत्र करते हैं, किन्तु उन्हें पढ़ते नहीं। इस तरह वे जीवन के लक्ष्य के विषय में मोहग्रस्त बने रहते हैं।

स्वप्ने एक विप्र कहे—शुनइ तपन।
निमाञिपण्डित पाशे करइ गमन॥१२॥

अनुवाद

इस प्रकार से मोहग्रस्त तपन मिश्र को स्वप्न में एक ब्राह्मण ने निर्देश दिया कि तुम निमाई पण्डित (चैतन्य महाप्रभु) के पास जाओ।

तेँहो तोमार साध्य-साधन करिबे-निश्चय।
साक्षात् ईश्वर तेँहो,—नाहिक संशय॥१३॥

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "चूँकि वे साक्षात् ईश्वर हैं, अतएव वे तुम्हें सही दिशा निर्देशन कर सकते हैं।"

स्वप्न देखि' मिश्र आसि' प्रभुर चरणे।
स्वप्नेर वृत्तान्त सब कैल निवेदन॥१४॥

अनुवाद

स्वप्न देखने के बाद तपन मिश्र महाप्रभु के चरणों की शरण में आये और महाप्रभु से स्वप्न का विस्तार से वर्णन किया।

प्रभु तुष्ट हञा साध्य-साधन कहिल।
नाम-संकीर्तन कर,—उपदेश कैल॥१५॥

अनुवाद

महाप्रभु ने सन्तुष्ट होकर उसे जीवन-लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने की विधि का उपदेश दिया। उन्होंने उपदेश दिया कि सफलता की कुंजी भगवन्नाम (हरे-कृष्ण-महामन्त्र) का कीर्तन है।

तात्पर्य

कृष्णभावनामृत-आन्दोलन महाप्रभु के इस उपदेश पर आश्रित है कि मनुष्य को चाहिए कि नियमित रूप से तथा अनुष्ठानपूर्वक हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करे। हम अपने पाश्चात्य विद्यार्थियों को दिन-भर में कम-से-कम सोलह माला जप करने के लिए कहते हैं, किन्तु कभी-कभी वे इतना भी जप नहीं कर पाते, क्योंकि वे अनेक पुस्तकें लाते रहते हैं जो उनके ध्यान को बँटाती हैं। श्री चैतन्य-सम्प्रदाय हरे-कृष्ण-मन्त्र के कीर्तन पर आधारित

है। उन्होंने तपन मिश्र से पहले कहा कि वह अपना मन हरे-कृष्ण-कीर्तन पर एकाग्र करें। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के सदस्यों को चाहिए कि चैतन्य महाप्रभु के उपदेश का दृढ़ता से पालन करें।

तँार इच्छा,—प्रभुसङ्गे नवद्वीपे वसि।
प्रभु आज्ञा दिल,—तुमि याओ वाराणसी॥१६॥

अनुवाद

तपन मिश्र की इच्छा थी कि वह महाप्रभु के साथ नवद्वीप में रहे लेकिन महाप्रभु ने उसे वाराणसी (बनारस) जाने के लिए कहा।

ताहाँ आमा-सङ्गे तामे हबे दरशन।
आज्ञा पाञा मिश्र कैल काशीते गमन॥१७॥

अनुवाद

महाप्रभु ने तपन मिश्र को आश्वस्त किया कि वे पुन: वाराणसी में मिलेंगे। यह आज्ञा पाकर तपन मिश्र वहाँ चले गये।

प्रभुर अतर्क्यलीला बुझिते ना पारि।
स्वसङ्ग छाडाञा केने पाठय काशीपुरी॥१८॥

अनुवाद

मैं महाप्रभु की अचिन्त्य लीलाओं को नहीं समझ सकता, क्योंकि तपन मिश्र ने चाहा था कि वह महाप्रभु के साथ नवद्वीप में रहें, किन्तु महाप्रभु ने उसे वाराणसी जाने की सलाह दी।

तात्पर्य

जब तपन मिश्र महाप्रभु से मिले थे, तो महाप्रभु गृहस्थ जीवन बिता रहे थे और इसका कोई संकेत न था कि भविष्य में संन्यास ग्रहण करेंगे। किन्तु तपन मिश्र को वाराणसी जाने के लिए कहने से यह सूचित होता है कि वे भविष्य में संन्यास लेंगे और जब वे सनातन गोस्वामी को शिक्षा देंगे तो तपन मिश्र जीवन के लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने के बारे में शिक्षा पा सकेंगे।

एइ मत बङ्गेर लोकेर कैला महा हित।
'नाम' दिया भक्त कैल, पड़ाञा पण्डित॥१९॥

अनुवाद

इस प्रकार पूर्वी बंगाल के लोगों को हरि-नाम में दीक्षित करके तथा उन्हें शिक्षा देकर विद्वान् बनने में श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़ा उपकार किया।

तात्पर्य

महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए कृष्णभावनामृत-आन्दोलन हरे-कृष्ण-महामन्त्र का वितरण कर रहा है और विश्व-भर में लोगों को कीर्तन करने के लिए प्रेरित कर रहा है। हम लोगों को ऐसे दिव्य साहित्य का अनन्त भण्डार देते हैं जो विश्व की मुख्य-मुख्य भाषाओं में अनूदित है और महाप्रभु की कृपा से खूब बिकता है। इसके साथ ही लोग बड़े आनन्द से हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन कर रहे हैं। यह चैतन्य-सम्प्रदाय की प्रचार-विधि है। चूँकि महाप्रभु की इच्छा थी कि यह सम्प्रदाय सारे विश्व में फैले अतएव कृष्णभावनामृत-अन्तर्राष्ट्रीय-समिति अपने विनम्र ढंग से कार्य कर रही है, जिससे महाप्रभु का यह स्वप्न सारे विश्व में, विशेषतया पाश्चात्य जगत में, पूरा हो सके।

एइ मत बङ्गे प्रभु कर नाना लीला।
एथा नवद्वीपे लक्ष्मी विरहे दुःखी हैला॥२०॥

अनुवाद

चूँकि महाप्रभु पूर्वी बंगाल में प्रचार-कार्य में लगे हुए थे, अतएव उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी अपने पति के विरह में घर पर अत्याधिक दुखी थीं।

प्रभुर विरह-सर्प लक्ष्मीरे दंशिल।
विरह-सर्प-विषे ताँर परलोक हैल॥२१॥

अनुवाद

विरहरूपी सर्प ने लक्ष्मीदेवी को डस लिया और इसके विष से उनकी मृत्यु हो गयी। इस तरह वे परलोकवासी हो गईं—वे भगवद्धाम वापस चली गईं।

तात्पर्य

भगवद्गीता में (८.६) कहा गया है—*यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजन्ते कलेवरम्*—जो अपने जीवन-भर जैसा सोचता है उसी के अनुसार मृत्यु के समय उसके विचारों का गुण होता है और इस तरह मृत्यु के समय उसे उपयुक्त शरीर प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार वैकुण्ठ-लोक से आई लक्ष्मीदेवी, महाप्रभु के विरह में उन्हीं के विचारों में लीन रहने के कारण मृत्यु के बाद वैकुण्ठ-लोक चली गईं।

अन्तरे जानिला प्रभु, य़ाते अन्तर्यामी।
देशेरे आइला प्रभु शची-दुःख जानि'॥२२॥

अनुवाद

लक्ष्मीदेवी के तिरोधान को महाप्रभु जान गये थे, क्योंकि वे साक्षात् परमात्मा हैं। इस तरह वे अपनी माता शचीदेवी को सान्त्वना देने घर लौट आये, जो अपनी पुत्रवधू की मृत्यु के कारण अत्यन्त दुःखी थीं।

घरे आइला प्रभु बहु लञा धन-जन।
तत्त्व-ज्ञाने कैला शचीर दुःख विमोचन॥२३॥

अनुवाद

जब महाप्रभु अपने साथ प्रचुर धन तथा अनेक अनुयायियों सहित घर लौट तो उन्होंने शची देवी को शोक से छुटकारा दिलाने के लिए उन्हें दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया।

तात्पर्य

भगवद्गीता में (२.१३) कहा गया है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"जिस प्रकार शरीरधारी आत्मा इस शरीर में बचपन से युवावस्था और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है, उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। स्वरूपसिद्ध आत्मा ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।" *भगवद्गीता* या अन्य वैदिक साहित्य के ऐसे श्लोक किसी की मृत्यु के अवसर पर मूल्यवान उपदेश देते हैं। ऐसे उपदेशों की व्याख्या करने से गम्भीर

व्यक्ति समझ सकता है कि आत्मा कभी-भी मरता नहीं, वह एक शरीर से दूसरे में चला जाता है। यह आत्मा का देहान्तरण कहलाता है। आत्मा इस भौतिक जगत में आता है और पिता, माता, बहन, भाई, पत्नी, सन्तान जैसे शारीरिक सम्बन्धों को जन्म देता है, किन्तु ये सारे सम्बन्ध शरीर के होते हैं, आत्मा के नहीं। अतएव *भगवद्गीता* में जैसा कहा गया है—*धीरस्तत्र न मुह्यति*—जो धीरगम्भीर है वह इस भौतिक जगत में ऐसी प्रत्यक्ष घटनाओं से विचलित नहीं होता। ऐसे उपदेश *तत्त्वकथा* अर्थात् असली सत्य कहलाते हैं।

शिष्यगण लञा पुनः विद्यार विलास।
विद्या-बले सबा जिनि' औद्धत्य प्रकाश॥२४॥

अनुवाद

पूर्वी बंगाल से वापस आने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने फिर से लोगों को पढ़ाना शुरू कर दिया। अपनी शिक्षा के बल पर उन्होंने हर एक पर विजय प्राप्त की और इस तरह वे काफी गर्व का अनुभव करने लगे।

तबे विष्णुप्रिया—ठाकुराणीर परिणय।
तबे त' करिल प्रभु दिग्विजयी जय॥२५॥

अनुवाद

तत्पश्चात् चैतन्य महाप्रभु ने विष्णुप्रिया से विवाह किया और उसके बाद उन्होंने केशव काश्मीरी नामक उद्भट विद्वान को पराजित किया।

तात्पर्य

जिस प्रकार वर्तमान समय में तमाम खेल के चैम्पियन होते हैं, उसी तरह पुराने जमाने में भारत में अनेक पंडित होते थे, जो विद्या के चैम्पियन थे। ऐसा ही एक व्यक्ति केशव कश्मीरी था, जो काश्मीर राज्य से आया था। वह सारे भारत में घूम चुका था और अन्त में वह नवद्वीप के पंडितों को ललकारने आया था। दुर्भाग्यवश वह नवद्वीप के पंडितों को नहीं जीत पाया, क्योंकि वहाँ वह एक बाल-पंडित चैतन्य महाप्रभु द्वारा पराजित हो गया। बाद में वह समझ सका कि चैतन्य महाप्रभु भगवान् के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं हैं। इस तरह वह उनके शरणागत हो गया और बाद में

निम्बार्क-सम्प्रदाय में शुद्ध वैष्णव बन गया। उसने *पारिजात-भाष्य* नामक निम्बार्क-सम्प्रदाय के वेदान्त-भाष्य पर *कौस्तुभ-प्रभा* नामक टीका लिखी।

भक्ति-रत्नाकर में केशव काश्मीरी का उल्लेख है तथा निम्बार्क-सम्प्रदाय की शिष्य-परम्परा में उनके पूर्ववर्ती भक्तों की सूची इस प्रकार दी हुई हैं—(१) श्रीनिवास आचार्य (२) विश्व आचार्य (३) पुरुषोत्तम (४) विलास (५) स्वरूप (६)माधव (७) बलभद्र (८) पद्म (९) श्याम (१०) गोपाल (११) कृपा (१२) देव आचार्य (१३) सुन्दर भट्ट (१४) पद्मनाभ (१५) उपेन्द्र (१६) रामचन्द्र (१७) वामन (१८) कृष्ण (१९) पद्माकर (२०) श्रवण (२१) भुरि (२२) माधव (२३) श्याम (२४) गोपाल (२५) बलभद्र (२६) गोपीनाथ (२७) केशव (२८) गोकुल तथा (२९) केशव काश्मीरी। *भक्ति रत्नाकर* में कहा गया है कि केशव काश्मीरी माता सरस्वती देवी का प्रिय भक्त था। उन्हीं की कृपा से वह नामी पंडित था और देश के चारों कोनों के विद्वानों में सबसे बड़ा चैम्पियन था। इसीलिए उसे *दिग्विजयी* की उपाधि मिली थी—अर्थात् उसने सारी दिशाओं के लोगों पर विजय प्राप्त कर ली थी। वह कश्मीर के प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार का था। बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से दिग्विजय करना छोड़ कर वह परम भक्त बन गया। वह वैदिक संस्कृति के वैष्णव-कुलों में से निम्बार्क सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गया।

वृन्दावनदास इहा करियाछेन विस्तार।
स्फुट नाहि करे दोष-गुणेर विचार॥२६॥

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर पहले ही इसका विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। जो स्पष्ट है उसके गुण-दोषों की छानबीन करने की आवश्यकता नहीं है।

सेइ अंश कहि, ताँरे करि' नमस्कार।
य़ा' शुनि' दिग्विजयी कैल आपना धिक्कार॥२७॥

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर को नमस्कार करके मैं महाप्रभु द्वारा की गई व्याख्या के उस अंश का वर्णन करूँगा जिसे सुन कर दिग्विजयी

ने अपने को धिक्कारा ।

ज्योत्स्नावती रात्रि, प्रभु शिष्यगण सङ्गे।
वसियाछेन गङ्गातीरे विद्यार प्रसङ्गे॥२८॥

अनुवाद

एक चाँदनी रात को महाप्रभु अपने शिष्यों के साथ गंगाजी के किनारे बैठ कर साहित्यिक चर्चा कर रहे थे।

हेनकाले दिग्विजयी ताहाँइ आइला।
गङ्गारे वन्दन करि' प्रभुरे मिलिला॥२९॥

अनुवाद

संयोगवश केशव काश्मीरी पंडित भी वहाँ आया। उसने माता गंगा की स्तुति की और चैतन्य महाप्रभु से मिला।

वसाइला तारे प्रभु आर करिया।
दिग्विजयी कहे मने अवज्ञा करिया॥३०॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उसकी आवभगत की, किन्तु केशव काश्मीरी अत्यन्त गर्वीला था, अतएव उसने महाप्रभु के साथ अवज्ञापूर्वक बातें कीं।

व्याकरण पड़ाई निमाञि पण्डित तोमार नाम।
बाल्यशास्त्रे लोके तोमार कहे गुणग्राम॥३१॥

अनुवाद

उसने कहा "सम्भवत: आप व्याकरण के शिक्षक हैं और आपका नाम निमाई पण्डित है। लोग आपके बाल-व्याकरण पढ़ाने की काफी तारीफ करते हैं।"

तात्पर्य

पहले संस्कृत पाठशालाओं में सर्वप्रथम अच्छी तरह से व्याकरण पढ़ाया जाता था और यह प्रथा अब भी चल रही है। विद्यार्थी को प्रारम्भिक बारह वर्ष तक व्याकरण का सतर्कता से अध्ययन करना पड़ता था, क्योंकि संस्कृत भाषा के व्याकरण में दक्ष होने से उसके लिए समस्त शास्त्रों के द्वार खुल

जाते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु बालकों को व्याकरण पढ़ाने के लिए विख्यात थे। इसीलिए केशव काश्मीरी ने उन्हें व्याकरण के शिक्षक के रूप में सम्बोधित किया। वह अपने साहित्यिक जीवन के प्रति अत्यधिक गर्वित था। वह व्याकरण की प्रारम्भिक शिक्षा से बहुत ऊपर था, इसलिए निमाई पंडित को अपने समक्ष तुच्छ समझ रहा था।

व्याकरण मध्ये, जानि, पड़ाइ कलाप।
शुनिलूँ फाँकिते तोमार शिष्येर संलाप॥३२॥

अनुवाद

"मैं जानता हूँ कि आप कलाप व्याकरण पढ़ाते हैं। मैंने सुना है कि आपके विद्यार्थी इस व्याकरण की अन्त्याक्षरी में अत्यन्त पटु हैं।"

तात्पर्य

संस्कृत भाषा में व्याकरण के कई सम्प्रदाय हैं, जिनमें से पाणिनि तथा कलाप और कौमुदी व्याकरणों की पद्धति सर्वाधिक प्रसिद्ध है। व्याकरण की अनेक शाखाएँ होती थीं। निमाई पण्डित नाम से विख्यात चैतन्य महाप्रभु अपने विद्यार्थियों को व्याकरण पढ़ाते थे जो संश्लिष्ट व्याकरण की अन्त्याक्षरी में विशेष पटु बन जाते थे। व्याकरण का अध्ययन करने वाला कोई भी दक्ष (वैयाकरण) शब्दों की व्युत्पत्ति बदल कर शास्त्रों की कई प्रकार से व्याख्या कर सकता है। कभी-कभी वह व्याकरण-नियमों की जादूगरी से पूरे वाक्य का अर्थ ही बदल सकता है। केशव काश्मीरी ने अप्रत्यक्ष रूप से व्यंग्य किया कि यद्यपि चैतन्य महाप्रभु व्याकरण के अच्छे शिक्षक हैं, किन्तु शब्दों की व्युत्पत्ति के साथ जादूगरी करना बहुत बड़े पाण्डित्य का सूचक नहीं होता। यह श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए ललकार थी। चूँकि केशव काश्मीरी और निमाई पण्डित में शास्त्रार्थ पूर्वनिश्चित था, अतएव केशव काश्मीरी ने शुरू से ही महाप्रभु को धता बताना शुरू किया। तब महाप्रभु ने इस प्रकार उत्तर किया।

प्रभु कहे, व्याकरण पड़ाइ—अभिमान करि।
शिष्यते ना बूझ, आमि बुझाइते नारि॥३३॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "हाँ, मैं ही व्याकरण का शिक्षक माना जाता हूँ,

किन्तु तथ्य यह है कि न तो मैं अपने विद्यार्थियों को अपने व्याकरण-ज्ञान से प्रभावित कर पाता हूँ, न ही वे मेरी बात ठीक से समझते हैं।''

तात्पर्य

चूँकि केशव काश्मीरी कुछ-कुछ गर्वित था, अतएव महाप्रभु ने अपने को उससे निम्न प्रस्तुत कर उसके नकली गर्व को बढ़ाना चाहा। उन्होंने उसकी प्रशंसा इस प्रकार की।

काहाँ तुमि सर्वशास्त्रे कवित्व प्रवीण।
काहाँ आमि सबे शिशु—पड़ुया नवीन॥३४॥

अनुवाद

''कहाँ आप सभी शास्त्रों के पण्डित और कविता बनाने में परम अनुभवी, कहाँ मैं एक बालक, नया विद्यार्थी मात्र!''

तोमार कवित्व किछु शुनिते हय मन।
कृपा करि' कर यदि गङ्गाय वर्णन॥३५॥

अनुवाद

''अतएव मेरी इच्छा आपके मुख से कविता सुनने की है। यदि, आप कृपा करके माता गंगा के यश का वर्णन करें तो हम सब सुनें।

शुनिया ब्राह्मण गर्वे वर्णिते लागिला।
घटी एके शत श्लोक गङ्गार वर्णिला॥३६॥

अनुवाद

जब उस ब्राह्मण केशव काश्मीरी ने यह सुना तो वह थोड़ा गर्वित हुआ और घंटे-भर के ही भीतर उसने गंगा-विषयक एक सौ श्लोक रच डाले।

शुनिया करिल प्रभु बहुत सत्कार।
तोमा सम पृथिवीते कवि नाहि आर॥३७॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा, ''महाशय, आपके समान सारे संसार में दूसरा कवि नहीं है।

तोमार कविता श्लोक बूझिते कार शक्ति।
तुमि भाल जान अर्थ किंवा सरस्वती॥३८॥

अनुवाद

"आपकी कविता इतनी कठिन है कि उसे आप तथा विद्या की देवी माता सरस्वती के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं समझ सकता।"

तात्पर्य

महाप्रभु ने केशव काश्मीरी को व्यंग्य में अप्रत्यक्ष रूप से यह कह कर उसकी कविता का महत्व कम कर दिया कि "आपकी कविता इतनी सुन्दर है कि आप तथा देवी सरस्वती ही इसे समझ सकते हैं।" केशव कश्मीरी माता सरस्वती का प्रिय भक्त था। किन्तु महाप्रभु देवी सरस्वती के भी स्वामी होने के कारण व्यंग्य वचन कहने का अधिकार रखते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि केशव काश्मीरी को गर्व था कि उसे देवी सरस्वती की कृपा प्राप्त है, किन्तु वह यह नहीं जानता था कि वे देवी सरस्वती तो चैतन्य महाप्रभु द्वारा नियन्त्रित होती हैं, क्योंकि महाप्रभु भगवान् हैं।

एक श्लोकेर अर्थ य़दि कर निज-मुखे।
शुनि' सब लोक तबे पाइब बड़ सुखे॥३९॥

अनुवाद

"लेकिन यदि आप एक श्लोक का अर्थ खोल कर कहें तो हम आपके मुख से सुन कर परम प्रसन्न हों।"

तबे दिग्विजयी व्याख्यार श्लोक पूछिल।
शत श्लोकेर एक श्लोक प्रभु त' पड़िल॥४०॥

अनुवाद

दिग्विजयी केशव काश्मीरी ने पूछा कि किस श्लोक की व्याख्या चाहते हो। तब महाप्रभु ने केशव काश्मीरी द्वारा रचे एक सौ श्लोकों में से एक श्लोक सुनाया।

महत्वं गंगायाः सततमिदमाभाति नितरां
यदेष श्रीविष्णोश्चरणकमलोत्पत्तिसुभगा।
द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव सुरनरैवर्च्यचरणा

भवानीभर्तुर्या शिरसि विभवत्यद्भुतगुणा ॥४१॥

अनुवाद

"माता गंगा की महानता सदैव बनी रहने वाली है। वे परम भाग्यशालिनी हैं, क्योंकि भगवान् विष्णु के चरणकमलों से निर्गत होती हैं। वे द्वितीय लक्ष्मी हैं, इसीलिए देवता तथा मनुष्य उनकी सदा पूजा करते हैं। वे सारे अद्भुत गुणों से समन्वित होकर शिवजी के मस्तक पर सुशोभित होती हैं।"

'एइ श्लोकेर अर्थ कर'—प्रभु यदि बैल।
विस्मित हञा दिग्विजयी प्रभुरे पूछिल ॥४२॥

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक का अर्थ बतलाने के लिए कहा तो दिग्विजयी ने आश्चर्यचकित होकर उनसे पूछा।

झञ्झावात-प्राय आमि श्लोक पड़िल।
तार मध्ये श्लोक तुम कैछे कण्ठे कैल ॥४३॥

अनुवाद

"मैंने तो सारे श्लोक आँधी की गति से सुनाये हैं। तुमने उन श्लोकों में से इस एक श्लोक को किस तरह स्मरण कर लिया है?"

प्रभु कहे, देवेर वरे तुमि—'कविवर'।
ऐछे देवेर वरे केहो हय 'श्रुतिधर' ॥४४॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "जिस तरह भगवान् की कृपा से कोई कोई महाकवि बनता है, उसी तरह उन्हीं की कृपा से कोई-कोई महान श्रुतिधर भी बन सकता है, जो किसी चीज को तुरन्त कण्ठ कर ले।"

तात्पर्य

यहाँ *श्रुतिधर* शब्द महत्वपूर्ण है। श्रुति का अर्थ है "सुनना" तथा धर का अर्थ है "धारण करने वाला"। कलियुग के प्रारम्भ होने के पूर्व ब्राह्मणों में प्रायः हर कोई श्रुतिधर होता था। ज्यों ही कोई विद्यार्थी अपने गुरु से कोई वैदिक स्तोत्र सुनता कि वह हमेशा-हमेशा के लिए स्मरण कर लेता

था। किसी पुस्तक की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसलिए उन दिनों पुस्तकें नहीं होती थीं। गुरु वैदिक स्तोत्र पढ़ता और उनकी व्याख्या विद्यार्थियों को बताता था, और वे उन्हें सदा के लिए, बिना पुस्तक देखे कण्ठ कर लेते थे।

श्रुतिधर बनना विद्यार्थी की बहुत बड़ी उपलब्धि है। *भगवद्गीता* में (१०.४१) भगवान् कहते हैं—

यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तद् तद् एवावगच्छत्वं मम तेजोऽशसम्भवम्॥

"जान लो कि सारी सुन्दर, महिमान्वित तथा शक्तिशाली सृष्टियाँ मेरे तेज के केवल एक स्फुलिंग मात्र से उत्पन्न होती हैं।"

जब हम कोई असामान्य वस्तु देखते हैं तो समझना चाहिए कि यह भगवान् की कृपा का फल है। इसीलिए महाप्रभु ने दिग्विजयी केशव काश्मीरी से कहा कि जिस तरह तुम्हें सरस्वती का प्रिय पात्र होने का गर्व है उसी तरह कोई अन्य भी, जैसे मैं, भगवान् का प्रिय पात्र होकर श्रुतिधर बन सकता है और इस तरह से वह कोई बात सुन कर उसे तुरन्त कण्ठ कर सकता है।

श्लोकेर अर्थ कैल विप्र पाइया सन्तोष।
प्रभु कहे—कह श्लोकेर किबा गुण-दोष॥४५॥

अनुवाद

वह ब्राह्मण (केशव काश्मीरी) महाप्रभु के कथन से सन्तुष्ट हुआ और उसने उद्धृत श्लोक का अर्थ बतलाया। तब महाप्रभु ने कहा, "कृपया, इस श्लोक के कुछ विशेष गुणों और दोषों की भी व्याख्या कर दें।"

तात्पर्य

यद्यपि ब्राह्मण ने सौ श्लोकों को आँधी की तरह तेजी से सुनाया था, किन्तु महाप्रभु ने उनमें से एक श्लोक को चुन कर न केवल उसे कण्ठ कर लिया अपितु उसके गुण-दोषों का भी विश्लेषण किया। उन्होंने केवल श्लोक को सुना ही नहीं, अपितु तुरन्त ही उसका आलोचनात्मक अध्ययन भी किया।

विप्र कहे श्लोके नाहि दोषेर आभास।
उपमालङ्कार गुण, किछु अनुप्रास॥४६॥

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "इस श्लोक में नाम-मात्र भी दोष नहीं है। प्रत्युत यह उपमा तथा अनुप्रास के सद्गुणों से युक्त है।"

तात्पर्य

महाप्रभु द्वारा उद्धृत श्लोक की अन्तिम पंक्ति में *भवानी*, *भर्तुर*, *विभवति* तथा *अद्भुत* शब्दों में भ अक्षर की पुनरावृत्ति हुई है। ऐसी आवृति अनुप्रास कहलाती है। *लक्ष्मीरिव* तथा *विष्णोश्चरणकमलोत्पत्ति* में उपमालंकार आया है। गंगा का जल लक्ष्मी के समान है। किन्तु जल तथा व्यक्ति वास्तव में एक से नहीं होते अतएव यह तुलना लाक्षणिक है।

प्रभु कहेन,—कहि, यदि ना करइ रोष।
कह तोमार एइ श्लोके किवा आछे दोष॥४७॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "महाशय! यदि आप क्रुद्ध न हों, तो कुछ कहूँ। क्या आप इस श्लोक के दोषों की व्याख्या कर सकेंगे?

प्रतिभार काव्य तोमार देवता सन्तोषे।
भालमते विचारिले जानि गुणदोषे॥४८॥

अनुवाद

"इस में सन्देह नहीं कि आपकी कविता प्रतिभा से युक्त है और इसने परमेश्वर को सन्तुष्ट कर लिया है। फिर भी यदि हम इसकी ठीक से खोजबीन करें तो इसमें गुण और दोष दोनों मिल जायेंगे।"

ताते भाल करि' श्लोक करइ विचार।
कवि कहे,—ये कहिले सेइ वेदसार॥४९॥

अनुवाद

महाप्रभु ने अन्त में कहा, "अतएव अब हम इस श्लोक पर भलीभाँति विचार कर लें।" तब उस कवि ने उत्तर दिया, "हाँ, तुमने जो श्लोक पढ़ा है वह पूरी तरह सही है।"

व्याकरणिया तुमि नाहि पड़ अलङ्कार।
तुमि कि जानिबे एइ कवित्वेर सार॥५०॥

अनुवाद

"तुम तो व्याकरण के सामान्य विद्यार्थी हो। काव्य-शास्त्र के बारे में तुम क्या जानो? तुम इस कविता की आलोचना नहीं कर सकते क्योंकि तुम्हें इसका कोई ज्ञान नहीं है।"

तात्पर्य

केशव काश्मीरी ने पहले तो चैतन्य महाप्रभु को यह कह कर झाँसा देना चाहा कि तुम काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ नहीं हो, अतएव अनुप्रासों तथा रूपकों से युक्त श्लोक की आलोचना नहीं कर सकते। इस तर्क में कुछ तथ्य था। जब तक कोई वैद्य न हो वह दूसरे वैद्य की आलोचना नहीं कर सकता। इसी तरह वकील हुए बिना वकील की आलोचना नहीं की जा सकती। इसीलिए केशव काश्मीरी ने पहले महाप्रभु की स्थिति की अवमानना की। चूँकि महाप्रभु व्याकरण के धुरन्धर थे तो फिर उस-जैसे महाकवि की आलोचना वे कैसे कर सकत थे? इसीलिए महाप्रभु ने कवि की आलोचना भिन्न ढंग से की। उन्होंने कहा कि यद्यपि मैं साहित्य में पारंगत नहीं, किन्तु मैंने अन्यों से सुना है कि ऐसी कविता की आलोचना किस तरह करनी चाहिए और चूँकि मैं श्रुतिधर हूँ इसलिए आलोचना की ऐसी विधि को समझ सकता हूँ।

प्रभु कहेन—अतएव पुछिये तोमारे।
विचारिया गुण-दोष बुझाई आमारे॥५१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने विनीत भाव से कहा, "चूँकि मैं आपके स्तर का नहीं हूँ, इसीलिए मैंने आपसे अनुरोध किया है कि आप अपनी कविता के गुण-दोषों की व्याख्या मुझे बतलाये।

नाहि पड़ि अलङ्कार, करियाछि श्रवण।
ताते एइ श्लोके देखि बहु दोष-गुण॥५२॥

अनुवाद

निश्चय ही मैंने अलङ्कार-शास्त्र नहीं पढ़ा। लेकिन मैंने बड़े लोगों से सुना है, अतएव मैं इस श्लोक की समीक्षा कर सकता हूँ और इस में अनेक दोष और गुण ढूँढ सकता हूँ।"

तात्पर्य

करियाछि श्रवण (मैंने सुना है)—यह कथन इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि प्रत्यक्ष अध्ययन करने या अनुभव करने की अपेक्षा सुनना अधिक महत्वपूर्ण है। यदि कोई सुनने में पटु हो और अधिकारी व्यक्ति से सुने तो उसका ज्ञान तुरन्त ही पूर्ण हो जाता है। यह विधि *श्रौतपन्था* कहलाती है। सारा वैदिक ज्ञान इसी सिद्धान्त पर टिका है कि प्रामाणिक गुरु के पास जाया जाये और वेदों के प्रामाणिक कथन सुने जायँ। ज्ञान प्राप्त करने के लिए उच्च कोटि का साहित्यिक व्यक्ति होना आवश्यक नहीं है। हाँ पूर्ण व्यक्ति से पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य को दक्ष होना चाहिए। यह *अवरोहपन्था* विधि कहलाती है।

कवि कहे,—कह देखि, कोन् गुण-दोष।
प्रभु कहेन,—कहि, शुन, ना करिह रोष॥५३॥

अनुवाद

कवि ने कहा, "जरा देखें तो, तुमने कौन-कौन से गुण और दोष ढूँढे हैं।" महाप्रभु ने उत्तर दिया, "कह रहा हूँ। आप क्रुद्ध हुए बिना सुनें।

पञ्च दोष एइ श्लोके पञ्च अलङ्कार।
क्रमे आमि कहि, शुन, करइ विचार॥५४॥

अनुवाद

"महोदय! इस श्लोक में पाँच दोष हैं और पाँच अलंकार हैं। मैं क्रम से उन्हें कहूँगा। कृपया सुनें और अपना निर्णय दें।

तात्पर्य

महत्वं गंगाया: से प्रारम्भ होने वाले श्लोक में पाँच अलंकार तथा पाँच काव्य-दोष के उदाहरण हैं। *अविमृष्टविधेयांश* दोष के दो उदाहरण हैं और

विरुद्धमति, पुनरुक्ति तथा *भंगक्रम* के एक एक उदाहरण हैं।

विमृष्ट का अर्थ है "स्वच्छ" तथा *विधेयांश* का अर्थ है "विधेय"। रचना का नियम है कि पहले उद्देश्य आये और फिर विधेय। उदाहरणार्थ यदि कोई कहे कि "यह पुरुष विद्वान है" तो यह रचना क्रमबद्ध नहीं है। ऐसा दोष *अविमृष्ट विधेयांश* कहलाता है। श्लोक का उद्देश्य है गंगा की महिमा, अतएव *इदम्* शब्द को गंगा की स्तुति के पहले आना चाहिए था न कि बाद में।

अविमृष्ट विधेयांश दोष का दूसरा उदाहरण *द्वितीय श्रीलक्ष्मीरिव* शब्दों में मिलता है। इसमें *द्वितीय* शब्द विधेय अर्थात् अज्ञात है। अतएव *द्वितीय श्रीलक्ष्मीरिव* समास बनाने में *द्वितीय* का पहले आना दोषपूर्ण है। *द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव* का उद्देश्य गंगा की तुलना लक्ष्मी से करना था, किन्तु इस दोष के कारण सामासिक शब्द भ्रामक बन गया है।

तृतीय दोष *विरुद्धमति* है जो *भवानीभर्तुः* में पाया जाता है। *भवानी* भव अर्थात् शिव की पत्नी का द्योतक है। चूँकि भवानी का अर्थ ही है शिव-पत्नी, अतएव उसके साथ *भर्ता* (पति) शब्द जोड़ कर समास बनाना नियमविरुद्ध है, क्योंकि इससे ऐसा लगता है कि शिव-पत्नी के कोई अन्य पति भी था।

चौथा दोष *पुनरुक्ति* का है जो *विभवति* क्रिया में है जहाँ रचना समाप्त हो जानी चाहिए, किन्तु उसके भी आगे व्यर्थ का विशेषण *अद्भुतगुणा* लगा हुआ है। पाँचवा दोष *भंगक्रम* है। इस श्लोक की प्रथम, तृतीय तथा चतुर्थ पंक्तियों में अनुप्रास है जो त, र, भ शब्दों के कारण है, किन्तु द्वितीय पंक्ति में ऐसा अनुप्रास न होने से क्रम भंग हो गया है।

'अविमृष्ट-विधेयांश'—दुइ ठाञि चिह्न।
'विरुद्धमति', भग्नक्रम', 'पुनरुक्ति'—दोष तिन॥५५॥

अनुवाद

"इस श्लोक में अविमृष्टविधेयांश दोष दो बार आया है और विरुद्धमति, भग्नक्रम तथा पुनरुक्ति दोष एक-एक बार आये हैं।

'गङ्गार महत्त्व'—श्लोके मूल 'विधेय'।
इदं शब्द 'अनुवाद'—पाछे अविधेय॥५६॥

अनुवाद

"इस श्लोक का मुख्य अज्ञात विषय (विधेय) गंगा का महत्व (महत्त्वं गंगाया:) है और ज्ञात विषय (उद्देश्य) इदम् शब्द से सूचित है जो अज्ञात के बाद रखा हुआ है।

'विधेय' आगे कहि' पाछे कहिले 'अनुवाद'।
एइ लागि' श्लोकेर अर्थ करियाछे बाध॥५७॥

अनुवाद

चूँकि आपने ज्ञात विषय को (उद्देश्य या अनुवाद को) अन्त में रखा है और जो अज्ञात है (विधेय) उसे प्रारम्भ में रखा है, अतएव यह रचना दोषपूर्ण है और शब्दों का अर्थ भ्रामक हो गया है।

अनुवादमनुक्त्वैव न विधेयम् उदीरयेत्।
न ह्यलब्धास्पदं किञ्चित् प्रतिष्ठति॥५८॥

अनुवाद

"सर्वप्रथम ज्ञात का उल्लेख किये बिना अज्ञात को स्थान नहीं देना चाहिए, क्योंकि जिसकी ठोस आधारभूमि नहीं होती उसे कहीं भी स्थापित नहीं किया जा सकता।

'द्वितीय श्रीलक्ष्मी' इहाँ 'द्वितीयत्व' विधेय।
समासे गौण हैल, शब्दार्थ गैल क्षय॥५९॥

अनुवाद

"द्वितीय श्रीलक्ष्मीर शब्द में द्वितीय लक्ष्मी होने का गुण अज्ञात है। इस समास के बनाने से अर्थ गौण हो गया और अभीष्ट मूल अर्थ खो गया।

'द्वितीय' शब्द विधेय, ताहा पड़िल समासे।
'लक्ष्मीर समता' अर्थ करिल विनाशे॥६०॥

अनुवाद

"चूँकि 'द्वितीय' शब्द विधेय है, अतएव इस समास में लक्ष्मी की समता का जो अभीष्ट अर्थ था, वह नष्ट हो गया है।

'अविमृष्टविधेयांश'—एइ दोषेर नाम।
आर एक दोष आछे, शुन सावधान।।६१।।

अनुवाद

"न केवल अविमृष्ट विधेयांश दोष ही है, अपितु एक अन्य दोष भी है, जिसे मैं आपको इंगित करने जा रहा हूँ। कृपया ध्यानपूर्वक सुनें।

'भवानीभर्तृ'-शब्द दिले पाइया सन्तोष।
'विरुद्धमतिकृत्' नाम एइ महा दोष।।६२।।

अनुवाद

"एक अन्य दोष है। आपने अपने सन्तोष के लिए 'भवानीभर्तृ' शब्द रखा है, किन्तु इसमें विरुद्धमतिकृत नामक दोष है।

भवानी-शब्द कहे महादेवेर गृहिणी।
ताँर भर्ता कहिले द्वितीय भर्ता जानि।।६३।।

अनुवाद

" 'भवानी' का शब्दार्थ है "शिव की पत्नी"। किन्तु जब हम उनके पति का उल्लेख करते हैं तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनका कोई दूसरा पति भी है।

'शिवपत्नीर भर्ता इहा शुनिते विरुद्ध।
'विरुद्धमतिक्रत्' शब्द शास्त्रे नहे शुद्ध।।६४।।

अनुवाद

"यह सुनना विरुद्ध लगता है कि शिव की पत्नी के दूसरा पति है। साहित्य में ऐसे शब्दों के प्रयोग से विरुद्धमतिकृत् दोष उत्पन्न होता है।

'ब्राह्मण-पत्नीर भर्तार हस्ते देह दान'।
शब्द शुनतेइ हय द्वितीयभर्ता ज्ञान।।६५।।

अनुवाद

यदि कोई कहे कि 'यह दान ब्राह्मण की पत्नी के पति को दो' तो इन विरोध शब्दों को सुनते ही हम तुरन्त समझते हैं कि ब्राह्मण-पत्नी

के दूसरा पति है।

'विभवति' क्रियाय वाक्ये—साङ्ग, पुनः विशेषण।
'अद्भुतगुणा'—एइ पुनरात्त दूषण॥६६॥

अनुवाद

"*विभवति* (फलती फूलती है) शब्द द्वारा कहा गया कथन पूर्ण है। किन्तु इसके विशेषण के रूप में *अद्भुतगुणा* रखने से पुनरुक्ति दोष उत्पन्न होता है।

तिन पादे अनुप्रास देखि अनुपम।
एक पादे नाहि, एइ दोष 'भग्नक्रम'॥६७॥

अनुवाद

"इस श्लोक की तीन पंक्तियों में अद्वितीय अनुप्रास पाया जाता है किन्तु एक पंक्ति में अनुप्रास नहीं है। यह भग्नक्रम दोष है।

यद्यपि एइ श्लोके आछे पञ्च अलङ्कार।
एइ पञ्चदोषे श्लोक कैल झारखार॥६८॥

अनुवाद

"यद्यपि इस श्लोक में पाँच अलंकार हैं, किन्तु इन पाँच दोषों के कारण पूरा श्लोक नष्ट-भ्रष्ट हो गया है।

दश अलंकारे य़दि एक श्लोक हय।
एक दोषे सब अलंकार हय क्षय॥६९॥

अनुवाद

"यदि किसी श्लोक में दस अलंकार हों और यदि एक भी दोष रहे तो पूरा श्लोक व्यर्थ हो जाता है।

सुन्दर शरीर य़ैछे भूषणे भूषित।
एक श्वैतकुष्ठे य़ैछे करये विगीत॥७०॥

अनुवाद

"किसी का सुन्दर शरीर रत्नों से क्यों न अलंकृत हो, किन्तु यदि एक भी श्वेत कुष्ठ का दाग दिखे तो सारा शरीर घृणित हो जाता

है।

तात्पर्य

काव्य-शास्त्र के विद्वान भरत मुनि ने इस सम्बन्ध में अपना मत निम्न प्रकार से दिया है।

रसालंकारवत् काव्यं दोषयुक् चेद् विभूषितम्।
स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेनैकेन दुर्भगम्॥७१॥

अनुवाद

"जिस प्रकार गहनों से सुसज्जित शरीर भी श्वेत कृष्ठ के एक दाग से अशुभ हो जाता है, उसी तरह पूरी कविता अनुप्रास, उपमा तथा रूपक से युक्त होने पर भी केवल एक दोष से व्यर्थ हो जाती है।"

पञ्च अलंकारेर एबे शुनइ विचार।
दुइ शब्दालङ्कार, तिन अर्थ—अलङ्कार॥७२॥

अनुवाद

"अब पाँच अलंकारों का विवरण सुनें। दो शब्दालंकार होते हैं और तीन अर्थालंकार।

शब्दालंकार—तिनपादे आछे अनुप्रास।
'श्रीलक्ष्मी' शब्दे 'पुनरुक्तिवदाभास'॥७३॥

अनुवाद

श्लोक की तीन पंक्तियों में अनुप्रास नामक शब्दालंकार है। श्री तथा लक्ष्मी शब्दों के समास में पुनरुक्तिवदाभास शब्दालंकार है।

प्रथम चरणे पञ्च 'त'-कारेर पाँति।
तृतीय-चरणे हय पञ्च 'रेफ'-स्थिति॥७४॥

अनुवाद

"श्लोक के प्रथम चरण में त शब्द पाँच बार आया है और तीसरे चरण में रेफ पाँच बार आया है।

चतुर्थ-चरणे चारि 'भ'-कार-प्रकाश।
अतएव शब्दालंकार अनुप्रास॥७५॥

अनुवाद

"चौथे चरण में भ शब्द चार बार आया है। इस तरह श्लोक में अनुप्रास नामक शब्दालंकार है।

'श्री'-शब्दे, 'लक्ष्मी'-शब्दे—एक वस्तु उक्त।
पुनरुक्तप्राय भासे, नहे पुनरुक्त॥७६॥

अनुवाद

"यद्यपि 'श्री' तथा 'लक्ष्मी' शब्दों का एक ही अर्थ है, अतएव पुनरुक्ति प्रतीत होती है, किन्तु पुनरुक्ति है नहीं।

'श्रीयुक्तलक्ष्मी' अर्थे अर्थेर विभेद।
पुनरुक्तवदाभास, शब्दालंकारभेद॥७७॥

अनुवाद

"लक्ष्मी को श्री (ऐश्वर्य) युक्त कहने से पुनरुक्ति के साथ अर्थ में अन्तर आता है। यह द्वितीय शब्दालंकार पुनरुक्तवदाभास है।

'लक्ष्मीरिव' अर्थालंकार—उपमाप्रकाश।
आर अर्थालंकार आछे, नाम—विरोधाभास॥७८॥

अनुवाद

"लक्ष्मीरिव में उपमा नामक अर्थालंकार है। एक अन्य अर्थालंकार विरोधाभास होता है।

'गङ्गाते कमल जन्मे'—सबार सुबोध।
'कमले गङ्गार जन्म'—अत्यन्त विरोध॥७९॥

अनुवाद

"यह सब को ज्ञात है कि कमल के फूल गंगाजल में खिलते हैं। किन्तु कमल-फूल से गंगा के जन्म की बात करना अत्यन्त विरोधमूलक है।

'इहाँ विष्णुपादपद्मे गङ्गार उत्पत्ति'।
विरोधालंकार इहा महा-चमत्कृति॥८०॥

अनुवाद

"माता गंगा की उत्पत्ति भगवान् के चरणकमलों से होती है। यद्यपि यह कथन कि कमल के फूल से जल आता है विरोधमूलक है, किन्तु भगवान् विष्णु के प्रसंग में यह महान् चमत्कार है।

ईश्वरअचिन्त्यशक्त्ये गङ्गार प्रकाश।
इहाते विरोध नाहि, विरोध-आभास॥८१॥

अनुवाद

"गंगा की उत्पत्ति में भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के कारण तनिक भी विरोध नहीं है, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है।

तात्पर्य

वैष्णव दर्शन की मुख्य बात भगवान् विष्णु की अचिन्त्य शक्ति को स्वीकार करना है। भौतिक दृष्टि से जो विरोधमूलक है वही भगवान् के सम्बन्ध में समझ में आता है, क्योंकि वे अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा विरोधी कार्य कर सकते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक सकते में हैं। वे इसकी व्याख्या नहीं कर सकते कि रासायनिक पदार्थों की इतनी बड़ी मात्रा से वायुमण्डल कैसे बना। वैज्ञानिक कहते हैं कि जल हाइड्रोजन तथा आक्सीजन का मेल है; किन्तु जब यह पूछा जाता है कि हाइड्रोजन और आक्सीजन की इतनी बड़ी मात्रा कहाँ से आई और किस तरह उनके मिलने से बड़े बड़े सागर बने तो वे उत्तर नहीं दे पाते, क्योंकि वे नास्तिक हैं, जो यह स्वीकार नहीं करते कि प्रत्येक वस्तु जीवन से आती है। उनका दावा है कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से होती है।

इतने सारे रासायनिक पदार्थ कहाँ से आते हैं? इसका उत्तर यह है कि ये भगवान् की अचिन्त्य शक्ति से उत्पन्न होते हैं। सारे जीव भगवान् के अंश हैं और उनके शरीर से तमाम रासायनिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, नींबू का वृक्ष सजीव है जो अनेक नींबू उत्पन्न करता है और हर नींबू के भीतर काफी सिट्रिक अम्ल होता है। इसलिए, यदि एक क्षुद्र जीव, जो परमेश्वर का अंश है, इतनी अधिक मात्रा में रासायनिक पदार्थ उत्पन्न

कर सकता है तो फिर भगवान् के शरीर में न जाने कितनी शक्ति होती है!

विज्ञानीजन यह नहीं बतला सकते कि संसार के सारे रासायनिक पदार्थ कहाँ तैयार किये जाते है, किन्तु भगवान् की अचिन्त्य शक्ति मान लेने पर इसे पूरी तरह समझाया जा सकता है। इस तर्क से इंकार नहीं किया जा सकता। जहाँ भगवान् के अंशरूप जीवों में इतनी शक्ति है तो भगवान् में न जाने कितनी शक्ति होती होगी। जैसा कि वेदों में कहा गया है—*नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*—वे नित्यों में नित्य और जीवों में प्रमुख जीव हैं। (कठ उपनिषद २.२.१३)।

दुर्भाग्यवश, नास्तिकतावादी विज्ञान यह स्वीकार नहीं करता कि जीवन से पदार्थ उत्पन्न होता है। विज्ञानी इस तर्कहीन तथा मूर्खतापूर्ण सिद्धान्त पर बल देते हैं कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से होती है, भले ही यह असम्भव हो। वे अपनी प्रयोगशालाओं में सिद्ध नहीं कर सकते कि पदार्थ जीवन उत्पन्न कर सकता है, किन्तु ऐसे उदाहरण हजारों हैं जो यह दिखाते हैं कि पदार्थ जीवन से आता है। अतएव कृष्णदास कविराज गोस्वामी *श्रीचैतन्य-चरितामृत* में कहते हैं कि एक बार भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को स्वीकार करने पर बड़ा से बड़ा दार्शनिक या विज्ञानी भी भगवान् की शक्ति का विरोध करने वाला दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता। अगले श्लोक में यही व्यक्त हुआ है।

अम्बजम्बूनि जातं क्वचिदपि न जातमम्बुजादम्बु।
मुरभिदि तद्विपरीतं पादाम्भोजान् महानदी जाता॥८२॥

अनुवाद

"हर कोई जानता है कि कमल के फूल जल में खिलते हैं, लेकिन कमल में कभी जल नहीं उगता। किन्तु ये सारे विरोध कृष्ण में सम्भव हैं। गंगा जैसी महानदी भगवान् के चरणकमलों से निकली है।

गंगार महत्व—साध्य, साधन ताहार।
विष्णुपादोत्पत्ति—'अनुमान' अलंकार॥८३॥

अनुवाद

"गंगा नदी का असली महत्व यह है कि वह भगवान् विष्णु के चरणकमलों

से उत्पन्न हुई है। ऐसी कल्पना अनुमान नामक अलंकार है।

स्थूल एइ पाँच दोष, पञ्च अलङ्कार।
सूक्ष्म विचारिये यदि आछये अपार॥८४॥

अनुवाद

"मैंने पाँच स्थूल दोषों तथा पाँच अलंकारों पर ही विचार किया है, किन्तु यदि हम सूक्ष्म विचार करें तो पायेंगे कि दोषों की गणना कर पाना सम्भव नहीं है।

प्रतिभा, कवित्व तोमार देवता-प्रसादे।
अविचार काव्य अवश्य पड़े दोष-वाधे॥८५॥

अनुवाद

"आपको कवि-कल्पना तथा प्रतिभा अपने आराध्य देव की कृपा से प्राप्त हुई है। किन्तु यदि काव्य की ठीक से समीक्षा नहीं की जाती तो वह निश्चय ही आलोचित होता है।

विचारि' कवित्व कैले हय सुनिर्मल।
सालङ्कार हैले अर्थ करे झलमल॥८६॥

अनुवाद

"यदि विचारपूर्वक कवित्व का प्रयोग किया जाय तो वह अत्यन्त निर्मल होता है और रूपकों तथा उपमाओं से वह चमत्कृत होता है।"

शुनिया प्रभुर व्याख्या दिग्विजयी विस्मित।
मुखे ना निःसरे वाक्य, प्रतिभा स्तम्भित॥८७॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु की व्याख्या सुन कर दिग्विजयी कवि आश्चर्यचकित हो गया, उसकी सारी चतुराई जड़ बन गई और वह कुछ भी न कह सका।

कहिते चाहये किछु, ना आइसे उत्तर।
तबे विचारये मने हइया फाँफर॥८८॥

अनुवाद

वह कुछ कहना चाहता था, किन्तु उसके मुँह से कोई उत्तर नहीं निकला। तब वह अपने मन में इस गुत्थी पर विचार करने लगा।

पड़ुआ बालक कैल मोर बुद्धि लोप।
जानि-सरस्वती मोरे करियाछेन कोप॥८९॥

अनुवाद

"इस पढ़ने वाले बालक ने मेरी बुद्धि को अवरुद्ध कर दिया। अतएव मेरी समझ में आता है कि माता सरस्वती मुझ से रूठ गई हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता में स्पष्ट कहा गया है कि सारी बुद्धि *हर हृदय में स्थित परमात्मा रूप* भगवान् से आती है। परमात्मा ने पंडित को समझने की बुद्धि दी, क्योंकि उसे अपनी विद्या का गर्व था और वह भगवान् को भी पराजित करना चाहता था। किन्तु भगवान् की इच्छा से तथा माता सरस्वती के माध्यम से वह पराजित हो गया। अतएव किसी को अपने पद का गर्व नहीं होना चाहिए। कोई कितना ही बड़ा विद्वान् क्यों न हो किन्तु यदि वह भगवान् के चरणों पर अपराध करता है तो यह अपनी विद्या के बावजूद ठीक से बोल नहीं सकेगा। हम सभी प्रकार से वश में हैं। अतएव हमारा कर्तव्य है कि भगवान् के चरणकमलों की शरण लें और झूठा गर्व न करें। माता सरस्वती ने ऐसी स्थिति दिग्विजयी पंडित पर कृपा दिखाने के लिए उत्पन्न की जिससे वह महाप्रभु की शरण में जा सके।

ये व्याख्या करिल, से मनुष्येर नहे शक्ति।
निमाञि-मुखे रहि' बले आपने सरस्वती॥९०॥

अनुवाद

"इस लड़के ने जो अद्भुत व्याख्या की वह किसी भी मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। अतएव माता सरस्वती अवश्य ही उस के मुख से स्वयं बोली होंगी।"

एत भावि' कहे—शुन, निमाञि पण्डित।
तव व्याख्या शुनि' आमि हइलाङ विस्मित॥९१॥

अनुवाद

यह सोच कर पंडित ने कहा, "हे निमाइ पण्डित! मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारी व्याख्या सुन कर आश्चर्यचकित हूँ।

अलंकार नाहि पड़, नाहि शास्त्राभ्यास।
केमने ए सब अर्थ करिले प्रकाश॥९२॥

अनुवाद

"मैं चकित हूँ। तुम साहित्य-शास्त्र के विद्यार्थी नहीं हो और तुम्हे शास्त्र पढ़ने का दीर्घकालीन अनुभव भी नहीं है। तो फिर तुम ये सारी आलोचनात्मक बातों की व्याख्या कैसे कर सके?"

इहा शुनि' महाप्रभु अति बड़ रङ्गी।
ताँहार हृदय जानि' कहे करि भङ्गी॥९३॥

अनुवाद

यह सुन कर तथा पण्डित के मन की बात जान कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँसी में उत्तर दिया।

शास्त्रेर विचार भाल-मन्द नाहि जानि।
सरस्वती ये बलाय, सेइ बलि वाणी॥९४॥

अनुवाद

"महोदय! मैं यह नहीं जानता कि अच्छी रचना क्या है और बुरी क्या है। किन्तु मैंने जो कुछ भी कहा है उसे माता सरस्वती द्वारा कहा गया समझा जाना चाहिए।"

इहा शुनि' दिग्विजयी करिल निश्चय।
शिशुद्वारे देवी मोरे कैल पराजय॥९५॥

अनुवाद

जब पंडित ने चैतन्य महाप्रभु से यह निर्णय सुना तो वह दुखी हुआ और आश्चर्य करने लगा कि माता सरस्वती ने मुझे छोटे बालक के माध्यम से क्यों हराना चाहा।

आजि ताँरे निवेदित, करि' जप-ध्यान।
शिशुद्वारे कैल मोरे एत अपराध॥९६॥

अनुवाद

उस दिग्विजयी ने सोचा, "मैं सरस्वती देवी की स्तुति करूँगा, उनका ध्यान करूँगा तथा उनसे यह पूछूँगा कि आपने इस बालक के माध्यम से मेरा ऐसा घोर अपमान क्यों कराया।"

वस्तुतः सरस्वती अशुद्ध श्लोक कराइल।
विचार-समय ताँर बुद्धि आच्छादिल॥९७॥

अनुवाद

वास्तव में सरस्वती ने ही उस दिग्विजयी को अशुद्ध ढंग से अपना श्लोक रचने के लिए प्रेरित किया था। यही नहीं, जब श्लोक की व्याख्या हुई तो उन्होंने उसकी बुद्धि पर परदा डाल दिया जिससे महाप्रभु की बुद्धि जीत गई।

तबे शिष्यगण सब हासिते लागिल।
ता'-सबा निषेधि' प्रभु कबिरे कहिल॥९८॥

अनुवाद

जब वह दिग्विजयी कवि परास्त हो गया तो वहाँ पर बैठे हुए महाप्रभु के सारे शिष्य जोर-जोर से हँसने लगे। किन्तु महाप्रभु ने उन्हें ऐसा न करने के लिए कहा और कवि को इस तरह से सम्बोधित किया।

तुमि बड़ पण्डित, महाकवि-शिरोमणि।
य़ाँर मुखे बाहिराय ऐछे काव्यवाणी॥९९॥

अनुवाद

"आप बहुत बड़े पंडित तथा चोटी के कवि हैं, अन्यथा इतना अच्छा काव्य आपके मुख से कैसे निकलता?

तोमार कवित्व य़ेन गङ्गाजल-धार।
तोमा-सम कवि कोथा नाहि देखि आर॥१००॥

अनुवाद

"आपकी कवि-चातुरी गंगा के जल के निरन्तर प्रवाह की तरह है। मुझे संसार में कोई ऐसा नहीं दिखता जो आपकी बराबरी कर सके।

भवभूति, जयदेव, आर कालिदास।
ताँ-सबार कवित्वे आछे दोषेर प्रकाश॥१०१॥

अनुवाद

"यहाँ तक कि भवभूति, जयदेव तथा कालिदास जैसे महाकवियों के काव्य में भी अनेक दोष हैं।

दोष-गुण-विचार—एइ अल्प करि' मानि।
कवित्व-करणे शक्ति, ताँहा से बाखानि॥१०२॥

अनुवाद

"ऐसे दोषों को नगण्य मानना चाहिए। केवल इतना ही देखना चाहिए कि ऐसे कवियों ने किस तरह अपनी कवित्व-शक्ति का प्रदर्शन किया है।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में (१.५.११) कहा गया है—

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनतस्य यशोऽकितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥

"भगवान् की महिमा का बखान करने में अनुभवहीन व्यक्ति अनेक दोषों से युक्त काव्य रच सकता है, किन्तु उसमें भगवान् का महिमागान होने से महापुरुष उसे पढ़ते, सुनते और कीर्तन करते हैं।" छोटी-मोटी साहित्यिक त्रुटियों के होते हुए भी विषय की महत्ता के आधार पर काव्य को पढ़ना चाहिए। वैष्णव-दर्शन के अनुसार कोई भी साहित्य, जो भगवान् की महिमा का गायन करता हो, चाहे वह ठीक से लिखा गया हो अथवा नहीं, प्रथम कोटि का होता है। इसमें अन्य किसी प्रकार के विचार की आवश्यकता नहीं है। भवभूति या श्रीकण्ठ की काव्य रचनाओं में *मालती-माधव, उत्तर-चरित,*

वीर-चरित तथा अन्य संस्कृत नाटक सम्मिलित हैं। यह महाकवि नीलकण्ठ नामक ब्राह्मण के पुत्ररूप में भोजराजा के काल में पैदा हुआ था। कालिदास महाराज विक्रमादित्य के जमाने में फूले-फले और राज-कवि बने। उन्होंने ३०-४० संस्कृत नाटक लिखे, जिनमें *कुमारसम्भव, अभिज्ञान-शकुन्तल* तथा *मेघदूत* प्रसिद्ध हैं। उनका रघुवंश नाटक विशेष प्रसिद्ध है। जयदेव का विवरण हम इसी आदिलीला के अन्तर्गत तेरहवें अध्याय में दे चुके हैं।

शैशव-चापल्य किछु ना लबे आमार।
शिष्येर समान मुञि ना हङ् तोमार।।१०३।।

अनुवाद

"मैं आपका शिष्य भी होने योग्य नहीं हूँ। अतएव मैंने जो भी बाल-औद्धत्य दिखलाया है, उसे बुरा नहीं मानें।"

आजि वासा' ग्राह, कालि मिलिब अबार।
शुनिब तोमार मुखे शास्त्रेर विचार।।१०४।।

अनुवाद

"कृपया घर जायें। कल हम फिर से मिलेंगे, जिससे मैं आपके मुख से शास्त्र-सम्बन्धी वार्ता सुन सकूँ।"

एइमते निज घरे गेला दुइ जन।
कवि रात्रे कैल सरस्वती-आराधन।।१०५।।

अनुवाद

इस तरह कवि और चैतन्य महाप्रभु दोनों जन अपने-अपने घर चले गये और कवि ने रात में माता सरस्वती का आराधन किया।

सरस्वती स्वप्ने ताँरे उपदेश कैल।
साक्षात् ईश्वर करि' प्रभुके जागिल।।१०६।।

अनुवाद

सरस्वती देवी ने स्वप्न में उसे महाप्रभु के पद की सूचना दे दी और दिग्विजयी कवि यह समझ गया कि चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् हैं।

प्राते आसि' भुपदे लइल शरण।
प्रभु कृपा कैल, ताँर खण्डिल बन्धन॥१०७॥

अनुवाद

दूसरे दिन वह कवि महाप्रभु के पास आया और उनके चरणकमलों में शरणागत बन गया। महाप्रभु ने उस पर कृपा की और उसके भवबन्धन काट दिये।

तात्पर्य

जिस विधि का पक्ष-समर्थन महाप्रभु ने किया वैसा ही *भगवद्गीता* में श्रीकृष्ण ने भी किया है—सभी परिस्थितियों में मेरी शरण में आओ। दिग्विजयी ने महाप्रभु की शरण ग्रहण की और महाप्रभु ने उस पर कृपा की। जिस व्यक्ति पर भगवान् की कृपा हो जाती है, वह भवबन्धन से छूट जाता है, जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)।

भाग्यवन्त दिग्विजयी सफल-जीवन।
विद्या-बले पाइल महाप्रभुर चरण॥१०८॥

अनुवाद

वह दिग्विजयी कवि निश्चित रूप से परम भाग्यशाली था। उसका जीवन उसकी विशद विद्या और पाण्डित्य के कारण सफल हुआ और इस तरह उसे चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त हुई।

तात्पर्य

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है कि चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण प्राप्त करने की सर्वोत्तम योग्यता है सर्वाधिक पतित होना, क्योंकि भगवान् पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए विशेष रूप से अवतरित होते हैं। इस युग में पंडित तो बहुत थोड़े हैं। प्राय: सभी लोग पतित मांसाहारी, शराबी, जुआड़ी या स्त्री-आखेटक हैं। ऐसे व्यक्तियों को कभी-भी विद्वान् नहीं माना जाता, यद्यपि वे ऐसा दिखावा करते हैं। चूँकि ये तथाकथित विद्वान् ऊपर-ऊपर देखते हैं कि चैतन्य महाप्रभु पतितात्माओं का साथ देते हैं, अतएव वे सोचते हैं कि महाप्रभु निम्न वर्गों के निमित्त हैं और हमें उनकी आवश्यकता नहीं है। अतएव ऐसे विद्वान् कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में सम्मिलित नहीं होते। इसलिए झूठे ज्ञान से गर्वित रहना कृष्णभावनामृत-आन्दोलन

में आने के लिए अयोग्यता ही है। किन्तु यह ऐसा विशेष उदाहरण है जिसमें महान् पंडित होते हुए भी दिग्विजयी कवि पर महाप्रभु ने उसके विनीत आत्मोत्सर्ग के कारण कृपा की।

ए-सब लीला वर्णियाछेन वृन्दावनदास।
ये किछु विशेष इहाँ करिल प्रकाश।।१०९।।

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने इन सारी घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया है। मैंने तो उन विशिष्ट घटनाओं को ही प्रस्तुत किया है जिनका वर्णन उन्होंने नहीं किया।

चैतन्य गोसाञिर लीला—अमृतेर धार।
सर्वेन्द्रिय तृप्त हय श्रवणे याहार।।११०।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के अमृतकण हर किसी सुनने वाले की इन्द्रियों को तृप्त करने वाले हैं।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास।।१११।।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की कामना करता हुआ मैं कृष्णदास उन्हीं के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के सोलहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु की कौमार-लीलाओं का वर्णन है।

आदि-लीला

अध्याय १७

इस सत्रहवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में दिया है, जिसमें उन्होंने उनकी सोलह वर्ष की आयु से लेकर संन्यास लेने तक की अवधि की लीलाओं का वर्णन किया है। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर *चैतन्य-भागवत* में पहले ही इनका विशद वर्णन कर चुके थे। अतएव कृष्णदास कविराज गोस्वामी इन लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन करते हैं। किन्तु वृन्दावन दास ने जिन लीलाओं का विस्तार से वर्णन नहीं किया है, उनमें से कुछ लीलाओं का विशद वर्णन इस अध्याय में हुआ है।

हमें इस अध्याय में आम्र-वितरण उत्सव तथा चन्द काजी के साथ महाप्रभु की बातजीत का वर्णन मिलेगा। अन्त में यह दिखलाया गया है कि माता यशोदा के पुत्र भगवान् कृष्ण ने माता शची के पुत्र शचीनन्दन के रूप में प्रेमाभक्ति के चार दिव्य रसों का आस्वादन किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रति श्रीमती राधारानी के भावमय प्रेम को समझने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु का रूप धारण किया। श्रीमती राधा के भाव को सर्वोत्कृष्ट भक्ति-भाव समझा जाता है। स्वयं कृष्ण ने चैतन्य महाप्रभु के रूप में श्रीमती राधारानी की भावमयी दशा का आस्वादन करने के लिए उनका पद ग्रहण किया। कोई दूसरा ऐसा नहीं कर सकता था।

जब श्रीकृष्ण ने चतुर्भुजी नारायण का रूप धारण किया तो गोपियों ने उनका आदर तो किया, लेकिन उनके प्रति विशेष रुचि नहीं दिखाई। गोपियों के भावमय प्रेम में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य सारे आराध्य रूप तिरस्कृत होते हैं। गोपियों में श्रीमती राधारानी में सर्वाधिक भावमय प्रेम है। जब कृष्ण ने नारायण रूप में राधारानी को देखा तो वे नारायण रूप में नहीं रह सके। उन्होंने पुन: कृष्ण-रूप धारण कर लिया।

जो व्रजभूमि के राजा नन्द महाराज हैं, वही नवद्वीप में श्री चैतन्य के

पिता जगन्नाथ मिश्र हैं। इसी प्रकार व्रजभूमि की महारानी माता यशोदा श्री चैतन्य की लीलाओं में शचीमाता हैं। अतएव शचीनन्दन यशोदानन्दन हैं। श्री नित्यानन्द में दास्य, वात्सल्य तथा सख्य ये तीन भाव मिलते हैं। श्री अद्वैत प्रभु में सख्य तथा दास्य दोनों भाव मिलते हैं। महाप्रभु के अन्य सारे संगी (पार्षद) अपने मूल प्रेम में श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में लगे रहते हैं।

वही परम सत्य, जो कृष्ण या श्यामसुंदर के रूप में भोग करता है, जो अपनी बाँसुरी बजाता है और गोपियों के साथ नृत्य करता है कभी-कभी ब्राह्मण परिवार में प्रकट होकर संन्यास ग्रहण करके श्री चैतन्य महाप्रभु की भूमिका अदा करता है। यह विरोधाभास जान पड़ता है कि वे ही कृष्ण गोपियों के गोपी-भाव को स्वीकार करते हैं। यह सामान्य लोगों की समझ के बाहर की बात है। किन्तु यदि हम भगवान् की अचिन्त्य-शक्ति को स्वीकार कर लें तो हम हर बात समझ सकते हैं। इस सम्बन्ध में संसारी तर्कों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अचिन्त्य-शक्ति के विषय में तर्क अर्थहीन होते हैं।

इस अध्याय के अन्त में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रील व्यासदेव की ही तरह आदिलीला की लीलाओं का पृथक-पृथक विश्लेषण करते हैं।

वन्दे स्वैराद्भुतेहं तं चैतन्यं यत्प्रसादतः।
यवनाः सुमनायन्ते कृष्णनाम प्रजल्पकाः॥१॥

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से अशुद्ध यवन भी भगवन्नाम का कीर्तन करने से पूरी तरह सुसंस्कृत बन जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु की शक्ति ऐसी ही है।

तात्पर्य

ब्राह्मणों तथा प्रगत वैष्णवों अथवा गोस्वामियों के मध्य सदा से गलतफहमी बनी हुई है, क्योंकि ब्राह्मण जाति या स्मार्त इस मत के हैं कि मनुष्य अपना शरीर बदले बिना ब्राह्मण नहीं हो सकता। किन्तु जैसा कि हम कई बार कह चुके हैं कि भगवान् की अचिन्त्य शक्ति से, जिसका वर्णन कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने किया है, सब कुछ सम्भव है। चैतन्य महाप्रभु कृष्ण की तरह पूर्ण स्वतन्त्र हैं। अतएव उनके कार्यों में कोई बाधा नहीं पहुँचा

सकता। यदि वे चाहें तो अशुद्ध अवैदिक सिद्धान्तों के अनुयायी एक *यवन* को भी सुसंस्कृत व्यक्ति बना सकते हैं। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के प्रसार-कार्य के दौरान ऐसा सचमुच हो भी रहा है। वर्तमान कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के सदस्य न तो भारत में पैदा हुए थे, न ही वैदिक संस्कृति से उनका कोई सम्बन्ध था। लेकिन चार-पाँच वर्षों की संक्षिप्त अवधि में वे केवल हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करने से ऐसे अद्‌भुत भक्त बन गये हैं कि भारत में वे जहाँ कहीं भी जाते है सुसंस्कृत, वैष्णव के रूप में उनका स्वागत होता है।

यद्यपि अल्पज्ञ इसे नहीं समझ पाते, किन्तु यह चैतन्य महाप्रभु की विशेष शक्ति है। वास्तव में, कृष्णभावनाभावित व्यक्ति का शरीर कई तरह से बदलता है। यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमरीका में जब हमारे भक्तगण सड़कों में कीर्तन करते हैं, तो अमरीकी स्त्रियाँ तथा पुरुष पूछते हैं कि वे वास्तव में अमरीकी हैं क्या, क्योंकि किसी को उम्मीद नहीं थी कि इतनी जल्दी अमरीकी ऐसे अच्छे भक्त बन जायेंगे। यहाँ तक कि ईसाई पादड़ी भी आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि यहूदी तथा ईसाई परिवारों के लड़के इस कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में सम्मिलित हैं। सम्मिलित होने के पूर्व ये लड़के कभी-भी कोई धर्म नहीं मानते थे, किन्तु अब वे भगवद्‌भक्त बन गये हैं। लोग सर्वत्र यही आश्चर्य प्रकट करते हैं और हमें अपने शिष्यों के दिव्य व्यवहार पर बड़ा गर्व होता है। किन्तु ऐसे आश्चर्य श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ही सम्भव हैं।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जयगौर भक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्री अद्वैत आचार्य की जय हो तथा चैतन्य-भक्तों की जय हो।

कैशोर-लीलार सूत्र करिल गणन।
य़ौवन-लीलार सूत्र करि अनुक्रम॥३॥

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की कैशोर-लीला का सारांश दे चुका हूँ। अब मैं उनकी यौवन-लीलाओं को क्रम से गिनाता हूँ।

विद्या-सौन्दर्य-सद्वेश-सम्भोग-नृत्य-कीर्तनैः ।
प्रेमनामप्रदानैश्च गौरो दीव्यति यौवने ॥४॥

अनुवाद

अपनी विद्वत्ता, सौन्दर्य और सुन्दर वेश दिखाकर चैतन्य महाप्रभु ने नाचा, संकीर्तन किया तथा सुप्त कृष्णप्रेम को जगाने के लिए भगवन्नाम का वितरण किया। इस तरह श्री गौरसुन्दर अपनी यौवन-लीलाओं में काफी चमके।

य़ौवन-प्रवेशे अङ्गेर अङ्ग विभूषण।
दिव्य वस्त्र, दिव्य वेश, माल्य-चन्दन ॥५॥

अनुवाद

ज्योंही चैतन्य महाप्रभु युवावस्था में प्रविष्ट हुए, वे अपने को आभूषणों से सजाते, सुन्दर वस्त्र धारण करते, फूलों की माला पहनते और चन्दन-लेप करते।

विद्यार औद्धत्य काहों ना करे गणन।
सकल पण्डित जिनि' करे अध्यापन ॥६॥

अनुवाद

अपनी शिक्षा से गर्वित एवं अन्य किसी की परवाह न करने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने अध्ययन-काल में सारे पण्डितों को परास्त कर दिया।

वायुव्याधिच्छले कैल प्रेम परकाश।
भक्तगण लञा कैल विविध विलास ॥७॥

अनुवाद

महाप्रभु ने युवावस्था में शारीरिक वायु कुपित होने के बहाने कृष्ण के प्रति अपना भावमय प्रेम प्रदर्शित किया। इस तरह अपने संगियों के साथ रह कर उन्होंने विविध लीलाएँ कीं।

तात्पर्य

आयुर्वेदिक उपचार के अनुसार सारी शारीरिक प्रणाली तीन तत्त्वों—वात, पित्त तथा कफ द्वारा संचालित होती है। शरीर के भीतर के उत्सर्जन अन्य उत्सर्जनों

में यथा रक्त, मूत्र तथा मल में परिवर्तित होते हैं, किन्तु यदि शरीर-क्रिया (उपापचय) में कोई गड़बड़ी आ जाती है तो ये उत्सर्जन शरीर के भीतर की वायु के प्रभाव से कफ में परिणत हो जाते हैं। जब पित्त तथा कफ शरीर के भीतर वायु-संचार को बाधा पहुँचाते हैं तो ५९ प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इनमें से उन्माद भी एक है।

श्री चैतन्य महाप्रभु शारीरिक वायु के कुपित होने के बहाने उन्मत्त जैसा व्यवहार करते थे। उदाहरणार्थ, वे अपनी पाठशाला में व्याकरण की व्याख्या कृष्ण-भक्ति के माध्यम से करने लगे। व्याकरण की पूरी व्याख्या कृष्ण से सम्बन्धित करके महाप्रभु अपने शिष्यों को सांसारिक शिक्षा से दूर रखने लगे, क्योंकि कृष्ण-भक्त बन कर ही सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त की जा सकती है। इसी आधार पर श्री जीव गोस्वामी ने *हरिनामामृत व्याकरण* का संकलन किया। सामान्यतया लोग ऐसी व्याख्या को उन्माद (सनक) मानते हैं। अतएव उन्माद की अवस्था में महाप्रभु का उद्देश्य एकमात्र कृष्ण-भक्ति की व्याख्या करना होता, क्योंकि वे हर वस्तु को कृष्ण-भक्ति से जोड़ना चाहते थे। महाप्रभु की इन लीलाओं का विस्तृत विवरण *चैतन्य भागवत* आदिलीला अध्याय १२ में मिलता है।

तबेत करिला प्रभु गयाते गमन।
ईश्वरपुरीर संगे तथाइ मिलन॥८॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु गया गये, जहाँ उनकी भेंट श्रील ईश्वर पुरी से हुई।

तात्पर्य

महाप्रभु अपने पूर्वजों का श्राद्ध करने गया गये। वैदिक समाज में, किसी सम्बन्धी की, विशेषतया पिता या माता की मृत्यु के बाद गया जाना होता है और वहाँ विष्णु के चरणों पर श्राद्ध करना होता है। अतएव नित्यप्रति लाखों लोग गया में श्राद्ध करते हैं। इसी नियम के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु भी अपने मृत पिता को पिण्डदान करने गये। सौभाग्यवश वहीं उनकी भेंट ईश्वर पुरी से हुई।

दीक्षाअनन्तरे हैल, प्रेमेर प्रकाश।
देशे आगमन पुनः प्रेमेर विलास॥९॥

अनुवाद

गया में श्री चैतन्य महाप्रभु ने ईश्वर पुरी से दीक्षा ग्रहण की और उसी के तुरन्त बाद उनमें भगवत्प्रेम के चिह्न दिखाई दिये। घर लौटने पर भी उनमें ऐसे लक्षण प्रकट हुए।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु गया गये तो उनके साथ उनके तमाम शिष्य थे और रास्ते में वे बीमार पड़ गये। उन्हें इतना तेज बुखार चढ़ा कि उन्होंने अपने शिष्यों से ब्राह्मणों का चरणप्रक्षालित जल माँगा, जिसे पीने के बाद वे अच्छे हो गये। अतएव सबों को चाहिए कि ब्राह्मण के पद का आदर करे, जैसा कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने किया। न तो महाप्रभु ने, न ही उनके अनुयायियों ने ब्राह्मणों के प्रति अनादर व्यक्त किया।

चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों को चाहिए कि ब्राह्मणों को उचित सम्मान प्रदान करें। किन्तु चैतन्य-सम्प्रदाय के प्रचारक ऐसे व्यक्ति का निषेध करते हैं जो वांछित योग्यता के बिना अपने को ब्राह्मण रूप में प्रस्तुत करता है। चैतन्य के अनुयायी ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हर एक व्यक्ति को सहसा ब्राह्मण नहीं मानते। अतएव हमें चाहिए कि हम अविवेकी बन कर ब्राह्मणों के चरणप्रक्षालित जल को पीकर महाप्रभु का अनुसरण न करें। धीरे-धीरे ब्राह्मण-परिवार कलियुग के कल्मष से पतित हो गये हैं। अतएव वे लोगों को दिग्भ्रमित करते हैं।

शचीके प्रेमदान, तबे अद्वैत मिलन।
अद्वैत पाइल विश्वरूप दरशन॥१०॥

अनुवाद

तत्पश्चात् उन्होंने अपनी माता शचीदेवी द्वारा अद्वैत आचार्य के चरणकमलों पर किये गये अपराध को क्षमा करके, उन्हें कृष्णप्रेम प्रदान किया। इस तरह अद्वैत आचार्य से भेंट हुई और उन्हें भगवान् के विश्वरूप का दर्शन मिला।

तात्पर्य

एक दिन चैतन्य महाप्रभु श्रीवास प्रभु के घर में विष्णु-सिंहासन पर बैठे थे। तभी मौज में आकर कहा, "मेरी माता ने अद्वैत आचार्य के चरणों

पर अपराध किया है। अतएव वे जब तक किसी वैष्णव के चरणकमलों पर इस अपराध को निरस्त न करें तब तक उन्हें कृष्णप्रेम प्राप्त नहीं हो सकता।" यह सुन कर सारे भक्तगण अद्वैत आचार्य को लाने गये। जब आचार्य महाप्रभु के पास आ रहे थे तो रास्ते-भर वे माता शचीदेवी के गुणों का बखान करते चल रहे थे और पहुँचने पर वे भावावेश में आकर भूमि पर गिर पड़े। तभी महाप्रभु के निर्देशानुसार शचीमाता ने अद्वैत आचार्य के चरणकमलों का स्पर्श किया। महाप्रभु अपनी माता के इस कृत्य से परम प्रसन्न हुए और कहा, "हे माता! आपने अद्वैत आचार्य के चरणकमलों पर जो अपराध किये थे वे समाप्त हो गये और अब आप को कृष्ण-प्रेम प्राप्त हो सकेगा।" इस उदाहरण से महाप्रभु ने सबों की शिक्षा दी कि भले ही कोई कृष्णभावनामृत में कितना ही अग्रसर क्यों न हो, किन्तु यदि वह किसी वैष्णव के चरणकमलों पर अपराध करता है तो उसको उन्नति का फल नहीं मिलेगा। अतएव हमें वैष्णव अपराध से बचने के लिए सतर्क रहना चाहिए। *चैतन्य-चरितामृत* में (मध्य, १९.१५६) ऐसे अपराध का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

य़दि वैष्णवअपराध उठे हाती माता।
उपाड़े वा छिण्डे तार शुखि' य़ाय पाता॥

जिस तरह मदमाता हाथी बगीचे के सारे पौधे तहस-नहस कर डालता है, उसी तरह वैष्णव के चरणकमलों पर किया गया एक भी अपराध जीवन-भर की संचित भक्ति को विनष्ट कर सकता है।

इस घटना के बाद एक दिन अद्वैत आचार्य प्रभु ने चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे कृपा करके अपना वह विश्वरूप दिखलायें जिसे अर्जुन को दिखलाया था। महाप्रभु ने यह प्रस्ताव मान लिया और अद्वैत आचार्य अत्यन्त भाग्यशाली थे कि उन्होंने महाप्रभु का विश्वरूप देखा।

प्रभुर 'अभिषेक तबे करिल श्रीवास।
खाटे वसि' प्रभु कैला ऐश्वर्य प्रकाश॥११॥

अनुवाद

तत्पश्चात श्रीवास ठाकुर ने चैतन्य महाप्रभु का अभिषेक किया। महाप्रभु ने खाट के ऊपर बैठे-बैठे दिव्य ऐश्वर्य प्रकाशित किया।

तात्पर्य

अभिषेक अर्चाविग्रह की स्थापना का विशेष पर्व है। इस समारोह में अर्चाविग्रह को दूध तथा जल से नहलाया जाता है, फिर पूजा की जाती है और तब वस्त्र बदला जाता है। यह अभिषेक श्रीवास के घर में विशेष रूप से मनाया गया है। उस समय सारे भक्तों ने अपने साधनों के अनुसार सभी प्रकार की सामग्रियों से महाप्रभु की पूजा की और उन्होंने हर एक को मनवांछित वर दिये।

तबे नित्यानन्द-स्वरूपेर आगमन।
प्रभुके मिलिया पाइल षड्भुज-दर्शन॥१२॥

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर के घर पर इस उत्सव के बाद नित्यानन्द ठाकुर वहाँ आ गये और जब वे चैतन्य महाप्रभु से मिले तो उन्हें उनके छह-भुजी रूप का दर्शन हुआ।

तात्पर्य

षड्भुज रूप अर्थात् छः भुजाओं वाले गौरसुन्दर तीन अवतारों के प्रतिनिधि हैं। श्री रामचन्द्र का स्वरूप धनुष-बाण के प्रतीक द्वारा, श्रीकृष्ण का दंड तथा बाँसुरी द्वारा और चैतन्य महाप्रभु का संन्यास दण्ड तथा कमण्डलु द्वारा अंकित किया जाता है।

श्रील नित्यानन्द बीरभूम जिले के एकचक्र ग्राम में पैदा हुए थे। इनकी माता पद्मावती तथा पिता हाड़ाइ पंडित थे। ये बचपन में बलराम की तरह खेलते थे। जब ये बड़े हो रहे थे तो एक संन्यासी हाड़ाई पंडित के घर आया और भिक्षास्वरूप पंडित के पुत्र को माँगा। हाडाई पंडित तुरन्त राजी हो गये और अपना पुत्र उसे दे दिया, यद्यपि पुत्र-वियोग के कारण उन्हें अपने प्राण छोड़ने पड़े। नित्यानन्द प्रभु ने इस संन्यासी के साथ अनेक तीर्थयात्राएँ कीं। कहा जाता है कि वे कई दिनों तक उसके साथ मथुरा में रहे। उसी समय उन्होंने नवद्वीप में चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के विषय में सुना। इसलिए वे महाप्रभु का दर्शन करने बंगाल आये। जब वे नवद्वीप आये तो नन्दन आचार्य के घर में मेहमान बने। यह जान कर कि नित्यानन्द आये हैं महाप्रभु ने अपने भक्तों को इनके पास भेजा। इस तरह महाप्रभु तथा नित्यानन्द की भेंट हुई।

प्रथमे षड्भुज ताँरे देखाइल ईश्वर।
शंखचक्रगदापद्म-शार्ङ्गवेणुधर ॥१३॥

अनुवाद

एक दिन महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को शंख, चक्र, गदा, कमल, धनुष तथा वंशी धारण किये हुए अपना षड्भुज रूप दिखलाया।

तबे चतुर्भुज हैइला, तिन अङ्ग वक्र।
दुइ हस्त वेनु बाजाय, दुये शंख-चक्र॥१४॥

अनुवाद

तत्पश्चात् त्रिभंगी होकर उन्होंने अपना चतुर्भुज रूप दिखलाया। वे अपने दो हाथों से मुरली बजा रहे थे और दो हाथों में शंख तथा चक्र धारण किये थे।

तबे त' द्विभुज केवल वंशीवादन।
श्याम-अङ्ग पीतवस्त्र व्रजेन्द्रनन्दन॥१५॥

अनुवाद

अन्त में महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को महाराज नन्द के पुत्र का द्विभुज रूप दिखलाया, जिसमें वे वंशी बजा रहे थे और पीत-वस्त्र धारण किये थे।

तात्पर्य

यह विवरण *चैतन्य-मंगल* में विस्तार से मिलता है।

तबे नित्यानन्द-गोसाञिर व्यास-पूजन।
नित्यानन्दवेशे कैल मूषल धारण॥१६॥

अनुवाद

तब नित्यानन्द ने श्री गौरसुन्दर की व्यास-पूजा अर्थात् गुरु-पूजा करने का प्रबन्ध किया। लेकिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु के भाव में आकर मूषल धारण कर लिया।

तात्पर्य

महाप्रभु के आदेश से नित्यानन्द ने पूर्णिमा की रात में व्यास-पूजा की तैयारी

की। उन्होंने व्यास-पूजा अर्थात् गुरु-पूजा की तैयारी व्यासदेव के माध्यम से की। चूँकि व्यासदेव वैदिक धर्म मानने वालों के आदि गुरु हैं, इसलिए गुरु की पूजा व्यास-पूजा कहलाती है। नित्यानन्द ने व्यास-पूजा की तैयारी की थी और संकीर्तन चल रहा था, किन्तु जब उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के गले में माला पहनानी चाही तो उन्होंने चैतन्य महाप्रभु में अपने आप को देखा। चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के आध्यात्मिक पदों में, अर्थात् कृष्ण और बलराम में कोई अन्तर नहीं है। ये सभी भगवान् की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। इस विशिष्ट समारोह में महाप्रभु के सारे भक्त यह समझ गये कि चैतन्य तथा नित्यानन्द में कोई अन्तर नहीं है।

तबे शची देखिल, रामकृष्ण-दुइ भाइ।
तबे निस्तारिल प्रभु जगाइ-माधाइ॥१७॥

अनुवाद

तत्पश्चात् शचीदेवी ने कृष्ण तथा बलराम दोनों भाइयों को चैतन्य तथा नित्यानन्द के स्वरूपों में देखा। तब महाप्रभु ने जगाइ तथा माधाइ नामक दो भाइयों का उद्धार किया।

तात्पर्य

एक दिन शचीदेवी ने सपना देखा कि उनके घर के कृष्ण तथा बलराम के अर्चाविग्रह चैतन्य तथा नित्यानन्द का रूप धारण करके नैवेद्य खाने के लिए बच्चों की तरह परस्पर झगड़ रहे हैं। अगले दिन शचीमाता ने नित्यानन्द को प्रसाद लेने के लिए अपने घर बुलाया। विश्वम्भर (चैतन्य) तथा नित्यानन्द साथ-साथ खा रहे थे तभी शचीदेवी को लगा कि ये दोनों कृष्ण-बलराम के अलावा और दूसरे नहीं हैं। यह देख कर वे मूर्छित हो गईं।

जगाइ तथा मधाई दोनों भाई-भाई थे जिन का जन्म नवद्वीप के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाद में ये सभी प्रकार का पापकर्म करने लगे। नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर महाप्रभु के आदेश से कृष्णभावनामृत-सम्प्रदाय का द्वार-द्वार प्रचार करते थे। प्रचार-कार्य के दौरान उनकी भेंट इन दोनों भाइयों से हुई। ये दोनों शराब पीकर उन्मत्त थे और उन्हें देख कर उनका पीछा करने लगे। अगले दिन माधाइ ने नित्यानन्द के सिर पर एक मिट्टी का घड़ा फेंक कर मारा जिससे उनके खून निकलने लगा। जब महाप्रभु ने सुना तो वे तुरन्त वहाँ पहुँचे और जगाइ को मारने

ही जा रहे थे कि उसने अपने किये पर पश्चात्ताप प्रकट किया जिससे महाप्रभु ने तुरन्त ही उसे गले लगा लिया। भगवान् का साक्षात् दर्शन पाकर दोनों भाई निर्मल हो गये। महाप्रभु ने उन्हें हरे-कृष्ण-मन्त्र के कीर्तन में दीक्षित कर लिया और उनका उद्धार कर दिया।

तबे सप्तप्रहर छिला प्रभु भावावेशे।
य़था तथा भक्तगण देखिल विशेषे॥१८॥

अनुवाद

इस घटना के बाद महाप्रभु इक्कीस घण्टों तक भावावेश की स्थिति में रहे और सारे भक्तों ने उनकी विशेष लीलाएँ देखीं।

तात्पर्य

अर्चाविग्रह के कमरे में सिंहासन के पीछे अर्चाविग्रह के लिए एक बिस्तर अवश्य होना चाहिए (इसे कमरे के आकार का होना चाहिए किन्तु छोटा या बड़ा भी हो सकता है)। एक दिन महाप्रभु विष्णु के बिस्तर पर बैठ गये और सारे भक्तों ने पुरुष-सूक्त के वैदिक मन्त्रों से उनकी पूजा की—*सहस्र शिरषा पुरुष सहस्राक्षः सहस्रपात्*। इस वेद-स्तुति को अर्चाविग्रहों की स्थापना के समय भी चालू करने की आवश्यकता है। अर्चाविग्रह को स्नान कराते समय पुरोहितों तथा भक्तों को इस पुरुष सूक्त का उच्चारण करना चाहिए और अर्चाविग्रह पर फूल, फल, अगुरु, आरात्रिक सामग्री, नैवेद्य, वस्त्र तथा आभूषण चढ़ाने चाहिए। भक्तों ने चैतन्य महाप्रभु की इसी तरह पूजा की तो वे सात पहर अर्थात् इक्कीस घण्टे तक भावावेश में रहे। उन्होंने भक्तों को यह दिखाने के लिए ऐसा किया कि वे आदि भगवान् कृष्ण हैं जो सभी अवतारों के उद्गम हैं, जैसा कि *भगवद्गीता* में पुष्टि हुई है (*अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वम् प्रवर्तते*)। भगवान् के विभिन्न रूप या विष्णुतत्त्व भगवान् कृष्ण के शरीर से ही निकलते हैं। चैतन्य महाप्रभु ने भक्तों की सारी निजी इच्छाओं को खोल कर रखा और इस तरह वे सभी आश्वस्त हो सके कि महाप्रभु भगवान् हैं।

कुछ भक्त महाप्रभु के इस भाव-प्रदर्शन को *सात प्रहरिया भाव* और अन्य इसे *महाभावप्रकाश* या महाप्रकाश नाम से पुकारते हैं। *चैतन्य-भागवत* के नवें अध्याय में इस सात प्रहरिया भाव के अन्य विवरण भी हैं जिसमें इसका भी उल्लेख है कि उन्होंने दुःखी नामक दासी को सुखी होने का

वर दिया। उन्होंने खोलावेचा श्रीधर को बुलाकर उसे अपना महाप्रकाश दिखलाया। फिर उन्होंने मुरारि गुप्त को बुलाकर अपना रामचन्द्र भगवान् का रूप दिखलाया। उन्होंने हरिदास ठाकुर को आशीर्वाद दिया, अद्वैत प्रभु से *भगवद्गीता* का पाठ करने (*गीतार सत्यपाठ*) के लिए कहा तथा मुकुन्द पर विशिष्ट कृपा दिखलाई।

वराह-आवेश हैला मुरारि-भवने।
ताँर स्कन्धे चड़ि' नाचिला अङ्गने॥१९॥

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु को वराह-अवतार का भाव अनुभव हुआ तो वे मुरारि गुप्त के कंधों पर चढ़ गये। फिर दोनों मुरारि गुप्त के आँगन में नाचने लगे।

तात्पर्य

एक दिन चैतन्य महाप्रभु चिल्लाये—"शूकर! शूकर!" इस तरह भगवान् के शूकर अवतार का आवाहन करते हुए उन्होंने शूकर अवतार का रूप धारण कर लिया और मुरारि गुप्त के कंधों पर चढ़ गये। वे एक छोटा-सा *गाडु* (गेडुआ) लिए थे और उन्होंने प्रतीक रूप में पृथ्वी को समुद्र के भीतर से पकड़ कर ऊपर निकाल लिया क्योंकि यही वराह-लीला है।

तबे शुक्लाम्बरेर कैल तण्डुल भक्षण।
'हरेर्नाम' श्लोकेर कैल अर्थ विवरण॥२०॥

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी द्वारा दिया हुआ चावल खाया और बृहन्नारदीय पुराण में उल्लिखित *हरेर्नाम* श्लोक का विस्तार से भावार्थ बतलाया।

तात्पर्य

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी गंगा के तट पर नवद्वीप में रहते थे। जब महाप्रभु भावावेश में नाच रहे थे, तो वे झोली में चावल लेकर उनके निकट गये। महाप्रभु अपने भक्त से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने झोली छीन ली और चावल खाने लगे। किसी ने मना नहीं किया और वे पूरा चावल खा गये।

हरेर्नाम हरेनार्म हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥२१॥

अनुवाद

"इस कलियुग में आत्म-साक्षात्कार के लिए भगवन्नाम कीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है, भगवन्नाम कीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है, भगवन्नाम कीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।"

कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार।
नाम हैते हय सर्वजगत्-निस्तार॥२२॥

अनुवाद

इस कलियुग में भगवन्नाम अर्थात् हरे-कृष्ण-महामन्त्र भगवान् कृष्ण का अवतार है। केवल नाम-कीर्तन से मनुष्य भगवान् की प्रत्यक्ष संगति कर सकता है। जो कोई भी ऐसा करता है उसका उद्धार निश्चित है।

दार्ढ्य लागि' 'हरेर्नाम'-उक्ति तिनबार।
जड़ लोक बुझाइते पुनः 'एव'-कार॥२३॥

अनुवाद

इस श्लोक में *एव* शब्द की तीन आवृतियाँ बल देने के लिए की गई हैं और इसमें हरेर्नाम भी तीन बार पिष्टपेषित हुआ है जिससे सामान्य लोग इसे समझ सकें।

तात्पर्य

किसी व्यक्ति से किसी बात पर बल देने के लिए उसका तीन बार उच्चारण किया जाता है। इस तरह *बृहन्नारदीय-पुराण* नाम-कीर्तन पर बारम्बार बल देता है जिससे लोग इसे ठीक से ग्रहण करें और माया के बन्धन से अपने को मुक्त करा सकें। हमारा यह व्यावहारिक अनुभव है कि कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में लाखों लोग हरे-कृष्ण-महामन्त्र का नियमित कीर्तन करके आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त कर रहे हैं। अतएव हम अपने सारे शिष्यों से अनुरोध करते हैं कि वे इस हरेर्नाम-महामन्त्र का सोलह माला

जाप करें। तब उनकी सफलता निश्चित है।

'केवल' शब्द पुनरपि निश्चय-करण।
ज्ञान-य़ोग-तप कर्म-आदि निवारण॥२४॥

अनुवाद

केवल शब्द का प्रयोग ज्ञान, योग, तप तथा सकाम कर्म जैसी अन्य विधियों का निषेध करने वाला है।

तात्पर्य

हमारा कृष्णभावनामृत-आन्दोलन केवल हरे-कृष्ण-मन्त्र के कीर्तन पर बल देता है, जबकि अन्य लोग, जिन्हें इस कलियुग में सफलता का गुर नहीं मालूम है, ज्ञान के अनुशीलन, योग के अभ्यास या व्यर्थ की तपस्या अथवा सकाम कर्म करने में व्यर्थ लगे रहते हैं। वे अपने समय का अपव्यय करते हैं और अपने अनुगामियों को पथभ्रष्ट बनाते हैं। जब हम श्रोताओं को यह बात स्पष्ट बतलाते हैं तो विरोधी पक्ष वाले हम पर क्रुद्ध होते हैं। किन्तु शास्त्रों के आदेशानुसार हम इन ज्ञानियों, कर्मियों तथा तपस्वियों से समझौता नहीं कर सकते। जब वे कहते हैं कि वे हम जैसे अच्छे हैं तो हमें कहना चाहिए कि हम अच्छे हैं और तुम बुरे हो। यह हमारी हठधर्मिता नहीं है, यह शास्त्रों का आदेश है। हमें शास्त्रों के आदेशों से हटना नहीं चाहिए। इसकी पुष्टि अगले श्लोक में हुई है।

अन्यथा य़े माने, तार नाहिक निस्तार।
नाहि, नाहि, नाहि—ए तिन 'एव'-कार॥२५॥

अनुवाद

यह श्लोक स्पष्ट बतलाता है कि जो अन्य मार्ग स्वीकार करता है उसका कभी उद्धार नहीं हो सकता। इसीलिए तीन बार 'कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं,' कहा गया है जो आत्म-साक्षात्कार की असली विधि पर बल देता है।

तृण हैते नीच हञा सदा लबे नाम।
आपनि निरभिमानी, अन्ये दिबे मान॥२६॥

अनुवाद

निरन्तर नाम-कीर्तन करने के लिए मनुष्य को रास्ते में उगी घास से भी विनीत होना चाहिए और निजी सम्मान की कामना से रहित होना चाहिए, किन्तु अन्यों को आदर देना चाहिए।

तरुसम सहिष्णुता वैष्णव करिबे।
भर्त्सन-ताड़ने काके किछु ना बलिबे॥२७॥

अनुवाद

भगवन्नाम-कीर्तन में संलग्न व्यक्ति में वृक्ष जैसी सहनशीलता होनी चाहिए। डाँटे-फटकारे जाने पर भी बदले की भावना से किसी से कुछ नहीं कहना चाहिए।

काटिलेइ तरु ग़ेन किछु ना बोलय।
शुकाइया मरे, तबु जल ना मागय॥२८॥

अनुवाद

यदि कोई वृक्ष को काटता भी है तो वह प्रतिरोध नहीं करता है, न सूखने और मरने पर किसी से जल की याचना करता है।

तात्पर्य

सहनशीलता का अभ्यास (*तृणादपि सुनीचेन*) बहुत कठिन है, किन्तु हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करने से मनुष्य में स्वतः सहिष्णुता का गुण आ जाता है। हरे-कृष्ण-मन्त्र के कीर्तन से आध्यात्मिक चेतना में प्रबुद्ध व्यक्ति को इसका अलग से अभ्यास नहीं करना होता, क्योंकि हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करने से ये गुण स्वतः आ जाते हैं।

एइमत वैष्णव कारे किछु ना मागिब।
आयाचित-वृत्ति, किम्बा शाक-फल खाइब॥२९॥

अनुवाद

वैष्णवजन को किसी से कुछ भी नहीं माँगना चाहिए। यदि कोई बिना माँगे ही कुछ देता है तो उसे स्वीकार करना चाहिए, किन्तु यदि कुछ नहीं मिलता तो वैष्णव को शाक तथा फल जो भी मिल सकें, उन्हें खाकर सन्तुष्ट होना चाहिए।

सदा नाम लेइब, यथा लाभेर सन्तोष।
एइत आचार करे भक्ति-धर्म तोष॥३०॥

अनुवाद

मनुष्य को सदा नाम-कीर्तन करने का सिद्धान्त अपनाना चाहिए और जो कुछ आसानी से मिल जाय उसी से सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। ऐसे भक्तिमय आचरण से उसकी भक्ति दृढ़ होती है।

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥३१॥

अनुवाद

"जो अपने को घास से भी अधिक नीच मानता है, जो वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु है और जो किसी से सम्मान की अपेक्षा नहीं रखता, फिर भी अन्यों को सम्मान देने के लिए प्रस्तुत रहता है, वह सरलता से भगवन्नाम का कीर्तन कर सकता है।"

तात्पर्य

यहाँ घास का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है, क्योंकि सभी लोग उसे रौंदते हैं किन्तु बेचारी प्रतिरोध नहीं करती। यह उदाहरण सूचित करता है कि गुरु या नेता को अपने पद का गर्व नहीं होना चाहिए। उसे सामान्य व्यक्ति से भी अधिक विनीत होना चाहिए और हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करते हुए चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करते रहना चाहिए।

ऊर्ध्वबाहु करि' कहों, शुन, सर्वलोक।
नाम-सूत्रे गाँथि' पर कण्ठे एइ श्लोक॥३२॥

अनुवाद

मैं अपने हाथ ऊपर उठाकर घोषित कर रहा हूँ, "हर कोई सुने। इस श्लोक को नाम के धागे में बाँध कर निरन्तर स्मरण करने के लिए इसे अपने गले में पहन लें।"

तात्पर्य

हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करते हुए प्रारम्भ में कई तरह के अपराध हो सकते हैं जिन्हें *नामाभास* तथा *नाम-अपराध* कहते हैं। इस अवस्था में

हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने से कृष्ण का पूरा पूरा प्रेम प्राप्त करने की सम्भावना कम रहती है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन *तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना* श्लोक के सिद्धान्तों के अनुसार करे। कीर्तन में ऊपरी तथा निचले होठों एवं जीभ को कार्य करना पड़ता है। इन तीनों को हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने में संलग्न रहना चाहिए। *हरे कृष्ण* का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए जिससे सुनाई पड़े। कभी-कभी लोग होठ तथा जीभ से फुसफुसा कर यह उच्चारण करते हैं। कीर्तन अत्यन्त सरल है, लेकिन इसका अभ्यास गम्भीरतापूर्वक करना चाहिए। अतएव *चैतन्य-चरितामृत* के प्रणेता कृष्णदास कविराज गोस्वामी हर एक को सलाह देते हैं कि इस श्लोक को गले में बाँध लिया जाय।

प्रभु-आज्ञाय कर एइ श्लोक आचरण।
अवश्य पाइबे तबे श्रीकृष्ण-चरण॥३३॥

अनुवाद

इस श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु ने जो सिद्धान्त बतलाये हैं उनका दृढ़ता से पालन करना चाहिए। यदि कोई चैतन्य महाप्रभु तथा गोस्वामियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता रहे तो उसे जीवन का चरम लक्ष्य अर्थात् श्रीकृष्ण के चरणकमल प्राप्त होंगे।

तबे प्रभु श्रीवासेर गृहे निरन्तर।
रात्रे संकीर्तन कैल एक सम्वत्सर॥३४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु एक वर्ष प्रति रात्रि को श्रीवास ठाकुर के घर हरे कृष्ण मंत्र का सामूहिक कीर्तन नियमित रूप से चलाते रहे।

कपाटे दिया कीर्तन करे परम आवेशे।
पाषण्डी हासिते आइसे, ना पाय प्रवेशे॥३५॥

अनुवाद

यह भावावेश कीर्तन दरवाजे बन्द करके किया जाता था जिससे हँसी उड़ाने की दृष्टि से आने वाले अविश्वासी लोग प्रवेश न पा सकें।

में अनुरक्त रहते हैं। ऐसे भक्तगण जो *शाक्त* या *शक्ति-तत्व* के पूजक हैं सदैव वैष्णवों से ईर्ष्या करते हैं। चूँकि श्रीवास ठाकुर नवद्वीप के विख्यात और सम्मानित वैष्णव थे, अतएव गोपाल चापाल उनकी प्रतिष्ठा को घटाकर उन्हें शाक्त सिद्ध करना चाहता था। इसीलिए उसने श्रीवास ठाकुर के दरवाजे पर शिव-पत्नी भवानी की पूजा करने की सामग्री—लाल फूल, केले का पत्ता, सुरा का घड़ा तथा लाल चन्दन रख दिया। प्रात:काल जब श्रीवास ठाकुर ने अपने दरवाजे पर यह पूजा-सामग्री देखी तो उन्होंने आसपास के भद्र लोगों को बुलाया और दिखलाया कि आज रात मैं भवानी की पूजा कर रहा था। इन लोगों ने खेद प्रकट किया और भंगी बुलाकर उस स्थान पर पानी छिड़काकर तथा गोबर से लिपाकर उसे शुद्ध कराया। *चैतन्य भागवत* में गोपाल चापाल सम्बन्धी इस घटना का उल्लेख नहीं है।

कलार पात उपरे थुइल ओड-फूल।
हरिद्रा, सिन्दूर आर रक्तचन्दन, तण्डुल॥३९॥

अनुवाद

उसने केले के पत्ते के ऊपर पूजा की सामग्री रखी थी जिसमें ओड-फूल, हल्दी, सिन्दूर, लाल-चन्दन तथा चावल था।

मद्यभाण्ड-पाशे धरि' निज-घरे गेल।
प्रात:काले श्रीवास ताहा त' देखिल॥४०॥

अनुवाद

इस सामग्री के पास उसने एक शराब का बर्तन रख दिया था प्रात:काल जब श्रीवास ठाकुर ने अपना दरवाजा खोला तो उन्हें यह सारी सामग्री दिखाई दी।

बड़-बड़ लोक सब आनिल बोलाइया।
सबारे कहे श्रीवास हासिया हासिया॥४१॥

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर ने पड़ोस के सारे प्रतिष्ठित जनों को बुलाया और हँसते-हँसते उनसे यह कहा।

नित्य रात्रे करि आमि भवानी-पूजन।
आमार महिमा देख, ब्राह्मण-सज्जन॥४२॥

अनुवाद

"महोदयो! मै हर रात में देवी भवानी की पूजा करता हूँ। चूँकि पूजा की सारी सामग्री यहाँ उपस्थित है, अतएव समस्त ब्राह्मणों तथा उच्च जाति के सदस्यो, आप मेरी स्थिति को समझ सकते हैं।

तात्पर्य

वैदिक पद्धति के अनुसार चार जातियाँ हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र और इनके भी नीचे होते हैं *पञ्चम* जो शूद्रों से भी निम्न हैं। उच्च जाति वाले—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य भी *ब्राह्मण सज्जन* कहलाते थे। विशेष कर ब्राह्मण *सज्जन* कहलाते थे, क्योंकि ये सारे समाज का मार्गदर्शन करते थे। यदि गाँव में कोई झगड़ा होता तो लोग निपटारे के लिए इन्हीं ब्राह्मणों के पास आते थे। अब इस तरह के ब्राह्मण तथा सज्जन खोज पाना मुश्किल है। अतः हर गाँव तथा हर नगर इतना बिगड़ चुका है कि वहाँ शान्ति तथा सुख का नामोनिशान भी नहीं रहा। पूर्ण संस्कृत सभ्यता के पुनर्जागरण के लिए सारे विश्व में समाज के वैज्ञानिक विभाजन अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को लागू करना चाहिए। जब तक कुछ लोगों को ब्राह्मण बनने का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता मानव-समाज में शान्ति नहीं आ सकती।

तबे सब शिष्टलोक करे हाहाकार।
ऐछे कर्म हेथा कैल कौन् दुराचार॥४३॥

अनुवाद

तब वहाँ एकत्र सारे सज्जन चिल्ला उठे, "यह क्या? यह क्या? किसने यह बदमाशी की है? वह पापी कौन है?"

हाड़िके आनिया सब दूर कराइल।
जल-गोमय दिया सेइ स्थान लिपाइल॥४४॥

अनुवाद

उन्होंने एक झाड़ू लगाने वाले (हाड़ी) को बुलाया जिसने सभी पूजा-सामग्री फेंकी और उस स्थान को जल तथा गोबर से लीप कर साफ किया।

तात्पर्य

वैदिक समाज में जो व्यक्ति मल साफ करने तथा सड़कों पर झाड़ू देने का कार्य करता था *हाड़ी* कहलाता था। कभी-कभी वे अछूत होते हैं किन्तु इन्हें भी भक्त बनने का अधिकार है। *श्रीभगवद्गीता* में (९.३२) भगवान् कहते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

"हे पृथा-पुत्र! जो मेरी शरण में आते हैं—भले ही वे निम्न जन्म के हों—यथा स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र—किन्तु वे परम गन्तव्य को पहुँच सकते हैं।"

भारत में अनेक अछूत निम्न जातियाँ हैं, किन्तु वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार इस कृष्णभावनामृत-आन्दोलन को स्वीकार करके कष्ट से मुक्त होने के लिए हर व्यक्ति का स्वागत है। भौतिक स्तर पर इस तरह की समानता या बन्धुत्व असम्भव है।

जब चैतन्य महाप्रभु *तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना* कहते हैं तो वे इंगित करते हैं कि मनुष्य को देहात्म-बोध से ऊपर उठना चाहिए। जब मनुष्य समझ लेता है कि वह भौतिक शरीर नहीं अपितु आत्मा है तो वह निम्न जाति के लोगों से भी अधिक विनीत हो जाता है, क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से वह उन्नत होता है। ऐसी विनयशीलता (दीनता) जिसमें मनुष्य अपने को घास से भी निम्न मानता है *सुनीचत्व* कहलाती है और वृक्ष से भी अधिक सहनशील बनना *सहिष्णुत्व* कहलाता है। भक्ति को प्राप्त कर देहात्म-बोध की परवाह न करना *अमानित्व* कहलाता है। इस तरह से स्थित भक्त *मानद* कहलाता है क्योंकि वह निःसंकोच भाव से अन्यों को सम्मान देने के लिए उद्यत रहता है।

यद्यपि महात्मा गांधी ने अछूतों को शुद्ध करने का हरिजन-आन्दोलन चलाया, किन्तु वे असफल रहे, क्योंकि उन्होंने सोचा कि प्रत्येक व्यक्ति भौतिक समंजन द्वारा अर्थात् भगवान् का संगी बन सकता है। ऐसा सम्भव नहीं। जब तक मनुष्य यह नहीं अनुभव करता कि वह शरीर नहीं अपितु आत्मा है तब तक हरि-जन बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। जो लोग चैतन्य महाप्रभु तथा

उनकी शिष्य-परम्परा के पदचिह्नों पर नहीं चलते वे पदार्थ तथा आत्मा में भेद नहीं कर सकते, अतएव सारे विचार गड्डमड्ड हो जाते हैं। और वे मायादेवी के जाल में फँसे रहते हैं।

तिन दिन रहि' सेइ गोपालचापाल।
सर्वाङ्गे हइल कुष्ट, बहे रक्तधार॥४५॥

अनुवाद

तीन दिनों के बाद गोपाल चापाल को कोढ़ हो गया और उसके शरीर से रक्त निकलने लगा तथा घाव हो गये।

सर्वाङ्गे बेड़िल कीटे, काटे निरन्तर।
असह्मय वेदना, दुःखे जलये अन्तर॥४६॥

अनुवाद

उसके सारे शरीर में कीड़े पड़ गये और वे उसे निरन्तर काटने लगे। गोपाल चापाल को असह्य पीड़ा होने लगी। उसका सारा शरीर कष्ट से जलने लगा।

गङ्गाघाटे वृक्षतले रहे त' वसिया।
एक दिन बले किछु प्रभुके देखिया॥४७॥

अनुवाद

चूँकि कोढ़ छूत का रोग है, इसलिए गोपाल चापाल गाँव छोड़ कर गंगा नदी के किनारे एक वृक्ष के नीचे जा बैठा। एक दिन उसने चैतन्य महाप्रभु को उधर से जाते देखा तो उनसे वह इस तरह बोला।

ग्रामे सम्बन्धे आमि तोमार मातुल।
भागिना, मुइ कुष्ठ व्याधिते हञाचि व्याकुल॥४८॥

अनुवाद

"हे भांजे! मैं गाँव के नाते आपका मामा लगता हूँ। देखो न इस कुष्ठरोग के आक्रमण ने मुझे किस तरह पीड़ित कर रखा है?"

लोक सब उद्धारिते तोमार अवतार।
मुञि बड़ दुखी, मोरे करह उद्धार॥४९॥

अनुवाद

"आप ईश्वर के अवतार हैं और अनेक पतितात्माओं का उद्धार कर रहे हैं। मैं भी दुखी पतितात्मा हूँ। कृपा करके मेरा भी उद्धार कीजिये।

तात्पर्य

ऐसा लगता है कि पापी, बातूनी तथा अपमान करने वाला होकर भी गोपाल चापाल में सरलता का गुण था। अतएव वह महाप्रभु को भगवान् का अवतार मानता था, जो पतितात्माओं का उद्धार करने आये थे, अतएव उसने अपने उद्धार की याचना की। किन्तु वह यह नहीं जानता था कि उद्धार का अर्थ शारीरिक व्याधियों का दूर होना ही नहीं है, यद्यपि जब मनुष्य भौतिक बन्धन से छूट जाता है तो उसकी शारीरिक व्याधियाँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। गोपाल चापाल चाहता था कि उसका कोढ़ दूर हो जाय, किन्तु श्री चैतन्य उसे व्याधि का असली कारण बताना चाहते थे, यद्यपि उन्होंने उसकी याचना स्वीकार कर ली थी।

एत शुनि' महाप्रभुर हइल क्रुद्ध मन।
क्रोधावेशे बले तारे तर्जन-वचन।।५०।।

अनुवाद

यह सुन कर चैतन्य महाप्रभु काफी नाराज हुए और उसी नाराजगी में उन्होंने उसे प्रताड़न-भरे शब्द कहे।

आरे पापि, भक्तद्वेषि, तोरे ना उद्धारिमु।
कोटिजन्म एइ मते कीड़ाय खाओयाइमु।।५१।।

अनुवाद

"अरे पापी शुद्ध भक्तों से द्वेष करने वाले! मैं तुम्हारा उद्धार नहीं करूँगा। मैं चाहूँगा कि तुम इसी तरह करोड़ों वर्ष इन कीड़ों से काटे जाते रहो।"

तात्पर्य

यहाँ ध्यान देने की बात है कि हमारे सारे दुख, विशेष करके रोग हमारे विगत पापकर्मों के कारण होते हैं और भक्त के प्रति विद्वेष से किये गये पापकर्म अत्यन्त कठोर माने जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते थे कि

गोपाल चापाल अपने कष्ट का कारण समझे। ऐसा कोई भी व्यक्ति जो भगवान् के नाम के प्रसार में लगे भक्त को तंग करता है वह गोपाल चापाल की तरह दण्ड पाता है। यह श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, जो व्यक्ति शुद्ध भक्त का अनादर करता है वह चैतन्य महाप्रभु को तब तक प्रसन्न नहीं कर सकता, जब तक वह अपने अपराध के लिए पश्चाताप नहीं करता।

श्रीवासे कराइलि दुइ भवानी-पूजन।
कोटि जन्म हबे तोर रौरव तपन॥५२॥

अनुवाद

"तुमने कुछ ऐसा किया जिससे लगे कि श्रीवास ठाकुर देवी भवानी की पूजा करता है। केवल इसी अपराध के लिए तुम्हें करोड़ों जन्म तक नरक में जीवन बिताना पड़ेगा।"

तात्पर्य

ऐसे अनेक तान्त्रिक अनुयायी हैं जो मांस खाने तथा मदिरा पीने के बहाने श्मशान में देवी भवानी की पूजा करते हैं। ऐसे मूर्ख भवानी-पूजा को भगवान् कृष्ण की पूजा के समकक्ष मानते हैं। किन्तु यहाँ पर चैतन्य महाप्रभु ने तथाकथित स्वामियों तथा योगियों द्वारा ऐसे जघन्य तान्त्रिक कार्यों की भर्त्सना की है। वे कहते हैं कि ऐसी भवानी-पूजा से मनुष्य नरक में जा गिरता हैं। चूँकि पूजा-विधि ही नारकीय होती है, अतएव इसका फल भी नारकीय होता है।

अनेक पाखंडी यह कहते हैं कि चाहे जिस मार्ग को स्वीकार किया जाय अन्ततोगत्वा ब्रह्म तक पहुँचा जाता है। इस श्लोक से हम देख सकते हैं कि ऐसे व्यक्ति किस तरह ब्रह्म तक पहुँचते हैं। ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, किन्तु विभिन्न पदार्थों में ब्रह्म को मानने से भिन्न फल निकलता है। *भगवद्गीता* में (४.११) भगवान् कहते हैं—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*—जो जिस रूप में मेरी शरण आता है उसी के अनुसार मैं उसे पुरस्कृत करता हूँ। मायावादियों को कुछ हद तक ब्रह्म की अनुभूति होती है, किन्तु सुरा, सुन्दरी तथा मांस के द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार वैसा नहीं है जिसे भक्तगण कीर्तन, नृत्य तथा प्रसाद ग्रहण करके प्राप्त करते हैं। मायावादी दार्शनिक अल्प ज्ञानी होने से सभी प्रकार के ब्रह्म-साक्षात्कार को एक मानते हैं, उनके भेदों पर

विचार नहीं करते। किन्तु कृष्ण सर्वव्यापी होकर भी सर्वत्र नहीं रहते। इस तरह तान्त्रिक सम्प्रदाय का ब्रह्म-साक्षात्कार वही नहीं है जो शुद्ध भक्तों का है। जब तक कोई ब्रह्म-साक्षात्कार का सर्वोच्च पद अर्थात् कृष्णभावनामृत प्राप्त न कर ले तब तक वह दण्डनीय है। कुछ कृष्णभावनाभावित भक्तों को छोड़ कर सारे लोग पाखंडी या असुर हैं, अतएव वे भगवान् द्वारा दण्ड पाने योग्य हैं, जैसा कि आगे कहा गया है।

पाषण्डी संहारिते मोर एइ अवतार।
पाषण्डी संहारि' भक्ति करिमु प्रचार॥५३॥

अनुवाद

"पाषंडियों (असुरों) को मारने के लिए और उन्हें मारने के बाद भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार करने हेतु मेरा यह अवतार है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का मिशन वही है जो कृष्ण का है, जैसा कि *भगवद्गीता* में (४.७.८) बतलाया गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

"हे भरतवंशी, जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का उत्थान होता है, तब-तब मैं अतवार लेता हूँ। पवित्र लोगें का उद्धार करने तथा दुष्टों का संहार करने एवं धर्म के नियमों की स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतरित होता रहता हूँ।"

जैसा कि यहाँ बतलाया गया है ईश्वर के अवतार का मुख्य उद्देश्य नास्तिकों को मारना और भक्तों का पालन करना है। वे उन अनेक धूर्तों की तरह यह नहीं कहते कि नास्तिक और भक्त समान धरातल पर हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु या भगवान् कृष्ण ऐसे विचार का समर्थन नहीं करते। नास्तिक दंडनीय हैं और भक्त रक्षणीय हैं। इस सिद्धान्त को बनाये रखना ही अवतारों का मिशन होता है। अतएव अवतार की पहचान उसके कार्यों से की जानी चाहिए, न की जनमत या कपोल कल्पनाओं से। श्री चैतन्य महाप्रभु ने

भक्तों को संरक्षण प्रदान किया और अपने प्रचार-कार्य के दौरान अनेक असुरों का वध किया। उन्होंने विशेष रूप से उल्लेख किया है कि मायावादी दार्शनिक सबसे बड़े असुर हैं। इसीलिए उन्होंने सबों को आगाह किया कि वे मायावादी दर्शन न सुनें। *मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश*—शास्त्रों की मायावादी व्याख्या सुनने से सर्वनाश होता है। (चै.च. मध्य ६.१६९)

एत बलिऽगेला प्रभु करिते गंगास्नान।
सेइ पापी दुःख भोगे, ना ग़ाय परान॥५४॥

अनुवाद

यह कह कर महाप्रभु गंगास्नान करने चले गये और उस पापी के प्राण नहीं निकले, अपितु वह कष्ट भोगता रहा।

तात्पर्य

ऐसा लगता है कि वैष्णव-अपराधी कष्ट भोगता रहता है, उसके प्राण नहीं छूटते। हमने सचमुच एक महान् वैष्णव अपराधी को कष्ट भोगते और घिसटते देखा है, फिर भी उसके प्राण नहीं निकलते।

संन्यास करिया ग़बे प्रभु नीलाचले गेला।
तथा हैते ग़बे कुलिया ग्रामे आइला॥५५॥
तबे सेइ पापी प्रभुर लइल शरण।
हित उपदेश कैला हइया करुण॥५६॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेने के बाद जगन्नाथ पुरी गये और फिर लौट कर कुलिया गाँव आये तो उस पापी ने महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण की। तब महाप्रभु ने कृपा करके उसके लाभ के लिए उसे उपदेश दिया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने *अनुभाष्य* में कुलिया गाँव के सम्बन्ध में निम्नलिखत टिप्पणी दी है। पहले का कुलिया गाँव आज का नवद्वीप शहर है। *भक्तिरत्नाकर, चैतन्य-चरित-महाकाव्य* तथा *चैतन्य-भागवत* जैसे प्रमाणिक ग्रंथों में कुलिया गाँव को गंगा नदी के पश्चिम की ओर बतलाया

गया है। अब भी कोलाद्वीप नामक क्षेत्र के अन्तर्गत कुलियार-गञ्ज तथा कुलियार-दह नामक स्थान हैं, जो वर्तमान नवद्वीप नगर महापालिका के सीमाक्षेत्र में हैं। चैतन्य महाप्रभु के समय कुलिया तथा पहाड़पुर नाम के दो गाँव थे जो गंगा के पश्चिम की ओर थे और दोंनों ही बाहिरद्वीप के सीमाक्षेत्र के अन्तर्गत थे। उस समय गंगा के पूर्व का एक स्थान नवद्वीप कहलाता था जो अब अन्तरद्वीप कहलाता है। श्री मायापुर में वह स्थान अब भी द्वीपेर माठ कहलाता है। कञ्चनपाड़ा के निकट एक दूसरा कुलिया नामक स्थान है, किन्तु यह कुलिया यहाँ पर उल्लिखित स्थान नहीं है। इसे *अपराध भञ्जनेर पाट* नहीं माना जा सकता क्योंकि यह गंगा के पश्चिम उपर्युक्त कुलिया में हुआ था। व्यापारिक कारणों से कई ईर्ष्यालु व्यक्ति असली स्थान की खुदाई का विरोध करते हैं और कभी-कभी वे अप्रामाणिक स्थानों को प्रामाणिक घोषित करते रहे हैं।

श्रीवास पण्डितेर, स्थाने आछे अपराध।
तथा य़ाह, तेँहो य़दि करेन प्रसाद॥५७॥
तबे तोर हबे एइ पाप-विमोचन।
य़दि पुनः ऐछे नाहि कर आचरण॥५८॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "तुमने श्रीवास ठाकुर के चरणकमलों पर अपराध किया है। अतएव सबसे पहले तुम वहाँ जाओ और उनसे कृपा की भीख माँगो। तब यदि वे तुम्हें आशीर्वाद देते हैं और तुम फिर से ऐसे पाप नहीं करते तो तुम इन पापफलों से मुक्त कर दिये जाओगे।"

तबे विप्र लइल आसि श्रीवास शरण।
ताँहार कृपाय हैल पाप-विमोचन॥५९॥

अनुवाद

तब वह ब्राह्मण गोपाल चापाल श्रीवास ठाकुर के पास गया और उनके चरणकमलों की शरण ली और श्रीवास ठाकुर की कृपा से वह सारे पापों से मुक्त हो गया।

आर एक विप्र आइल कीर्तन देखिते।
द्वारे कपाट,—ना पाइल भितरे य़ाइते॥६०॥

अनुवाद

एक दूसरा ब्राह्मण कीर्तन देखने आया, किन्तु दरवाजा बन्द था, अतएव वह भीतर नहीं जा पाया।

फिरि' गेल विप्र घरे मने दुःख पाञा।
आर दिन प्रभुके कहे गंगाय लाग पाञा॥६१॥

अनुवाद

वह दुखी मन से घर लौट गया, किन्तु दूसरे दिन वह महाप्रभु से गंगा के तट पर मिला तो उनसे बोला।

शापिब तोमारे मुञि, पाञाछि मनोदुःख।
पैता छिण्डिया शापे प्रचण्ड दुर्मुख॥६२॥

अनुवाद

वह ब्राह्मण कटुवक्ता था और दूसरों को शाप देने में सिद्धहस्त था। उसने अपना जनेऊ तोड़ डाला और घोषित किया, "अब मैं तुम्हें शाप दूँगा क्योंकि तुम्हारे व्यवहार से मुझे घोर कष्ट हुआ है।"

संसार-सुख तोमार हउक विनाश।
शाप शुनि' प्रभुर चित्ते हइल उल्लास॥६३॥

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने महाप्रभु को शाप दिया, "तुम सारे भौतिक सुख से वंचित हो जाओगे।" जब महाप्रभु ने इसे सुना तो उन्हें मन ही मन काफी हर्ष हुआ।

प्रभुर शाप-वार्ता य़ेइ शुने श्रद्धावान्।
ब्रह्मशाप हैते—तार हय परित्राण॥६४॥

अनुवाद

कोई भी श्रद्धावान् व्यक्ति जो उस ब्राह्मण द्वारा महाप्रभु के शाप को सुनता है, वह समस्त ब्रह्मशापों से छूट जाता है।

तात्पर्य

मनुष्य को यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि दिव्य होने से भगवान् पर कोई शाप या वरदान लागू नहीं होता। केवल सामान्य व्यक्ति ही शाप तथा यमराज के दण्ड से प्रभावित होते हैं। भगवान् होने से चैतन्य महाप्रभु शाप तथा वरदान से परे हैं। जब कोई इस तथ्य को श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक समझ लेता है, तो वह सारे ब्रह्मशापों से मुक्त हो जाता है। *चैतन्य-भागवत* में यह घटना नहीं मिलती।

मुकुन्द-दत्तेरे कैल दण्ड-परसाद।
खण्डिल ताहार चित्तेर सब अवसाद॥६५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुकुन्द दत्त को प्रसाद-रूप में दण्ड दिया और इस तरह उसके सारे मानसिक अवसाद को दूर कर दिया।

तात्पर्य

एक बार मुकुन्द दत्त को श्री चैतन्य महाप्रभु के निकट आने से मना कर दिया गया था क्योंकि वह मायावादी निर्विशेषियों से मिला-जुला करता था। जब महाप्रभु ने अपना *महाप्रकाश* प्रकट किया तो उन्होंने सारे भक्तों को एक एक करके बुलाया और उन्हें आशीर्वाद दिया। किन्तु मुकुन्द दरवाजे पर ही खड़ा रहा। भक्तों ने महाप्रभु को बतलाया कि मुकुन्द बाहर खड़े प्रतीक्षा कर रहा है, किन्तु महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं मुकुन्द दत्त से जल्द प्रसन्न होने वाला नहीं, क्योंकि वह भक्तों को भक्ति बतलाता तो है, लेकिन उसके बाद वह मायावादियों से मायावाद-दर्शन से पूर्ण *योगवाशिष्ट रामायण* सुनने जाता है। इस कारण मैं उससे बहुत नाराज हूँ।" बाहर खड़ा मुकुन्द महाप्रभु को इस तरह कहते हुए अत्यन्त प्रसन्न था कि महाप्रभु कभी-न-कभी उस पर प्रसन्न होंगे, भले ही वे इस समय प्रसन्न न हों। किन्तु जब महाप्रभु समझ गये कि मुकुन्द ने मायावादियों की संगति हमेशा के लिए छोड़ दी है तो उन्होंने तुरन्त ही उसे बुलाया। इस तरह महाप्रभु ने मायावादी संगति से उसका उद्धार किया और शुद्ध भक्तों की संगति प्रदान की।

आचार्य-गोसाञिरे-प्रभु करे गुरुभक्ति।
ताहाते आचार्य बड़ हय दुःखमति॥६६॥

ताँहा बड़ विश्वे किछु नाहि देखि आर।
अतएव 'विश्वरूप' नाम ग्रे ताँहार॥७६॥

अनुवाद

विराट जगत का रूप महासंकर्षण का विश्वरूप अवतार कहलाता है। इस तरह इस विराट जगत में उनके अतिरिक्त कुछ भी देखने को नहीं मिलता।

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे।
ओतं प्रोतमिदं यस्मिन् तन्तुष्वङ्ग यथा पटः॥७७॥

अनुवाद

"जिस प्रकार वस्त्र में धागा लम्बाई तथा चौड़ाई में फैला रहता है उसी तरह इस जगत के भीतर की प्रत्येक वस्तु प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् में विद्यमान है। यह उनके लिए आश्चर्यजनक नहीं है।"

तात्पर्य

यह *श्रीमद्भागवत* का श्लोक (१०.१५.३५) है।

अतएव प्रभु ताँरे बले, 'बड़ भाइ'।
कृष्ण, बलराम दुइ—चैतन्य, निताइ॥७८॥

अनुवाद

चूँकि महासंकर्षण जगत के उपादान तथा निमित्त कारण हैं, अतएव वे जगत की हर वस्तु में विद्यमान हैं। अतएव चैतन्य महाप्रभु उन्हें अपना बड़ा भाई कहते थे। वैकुण्ठ जगत में दोनों भाई कृष्ण तथा बलराम कहलाते हैं, किन्तु सम्प्रति वे ही चैतन्य तथा निताई हैं। अतएव निष्कर्षतः नित्यानन्द प्रभु आदि संकर्षण बलदेव हैं।

पुत्र पाञा दम्पति हैला आनन्दित मन।
विशेष सेवन करे गोविन्दचरण॥७९॥

अनुवाद

पति-पत्नी (जगन्नाथ मिश्र तथा शचीमाता) विश्वरूप को पुत्र रूप में पाकर मन ही मन प्रसन्न थे। इसी प्रसन्नता के कारण वे गोविन्द के

भी इसे सुनता है वह सारे अपराधों से छूट जाता है।

एक दिन श्रीवासेर मन्दिरे गोसाञि।
नित्यानन्द-सङ्गे नृत्य करे दुइ भाइ॥२२७॥

अनुवाद

एक दिन नित्यानन्द प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दोनों भाई श्रीवास ठाकुर के पवित्र घर में नाच रहे थे।

श्रीवास-पुत्रेर ताहाँ हैल परलोक।
तबु श्रीवासेर चित्त ना जन्मिल शोक॥२२८॥

अनुवाद

उस समय एक विपत्ति आ पड़ी—श्रीवास ठाकुर के पुत्र का देहान्त हो गया। फिर भी श्रीवास ठाकुर रंच-भर भी दुखी नहीं हुए।

मृतपुत्र-मुखे कैल ज्ञानेर कथन।
आपने दुइ भाइ हैला श्रीवास-नन्दन॥२२९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मृत पुत्र से ज्ञान की बातें कहलाई और तब दोनों भाई श्रीवास ठाकुर के पुत्र बन गये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है। एक रात को जब महाप्रभु अपने भक्तों के साथ श्रीवास ठाकुर के घर नाच कर रहे थे, तो श्रीवास ठाकुर का एक लड़का, जो पहले से बीमार था, मर गया। किन्तु श्रीवास ठाकुर इतने धैर्यवान थे कि उन्होंने शोक प्रकट करने के लिए किसी को रोने नहीं दिया, क्योंकि वे नहीं चाह रहे थे कि उनके घर में चल रहे कीर्तन में किसी प्रकार का व्यवधान पड़े। इस तरह बिना विलाप किये कीर्तन चलता रहा। किन्तु जब कीर्तन समाप्त हुआ तो महाप्रभु इस घटना को ताड़ गये, अतएव उन्होंने कहा कि इस घर में अवश्य ही कोई आपत्ति आई है। जब उन्हें श्रीवास के पुत्र के निधन की सूचना दी गई तो उन्होंने इस प्रकार शोक व्यक्त किया, "पहले मुझे यह सूचना क्यों नहीं दी गई?" वे उस स्थान में गये

जहाँ मृत पुत्र लेटा था और उससे पूछा, "हे बालक! तुम श्रीवास का घर छोड़ कर क्यों जा रहे हो?" उस मृत पुत्र ने तुरन्त उत्तर दिया, "इस घर में मैं तब तक रहा जब तक मेरा रहना निश्चित था। अब समय पूरा हो गया है, अतएव मैं आपके निर्देश से अन्यत्र जा रहा हूँ। मैं आपका नित्य सेवक आश्रित जीव हूँ। मुझे आपकी इच्छानुसार ही कर्म करना है। आपके इच्छा के परे न तो मैं कुछ कर सकता हूँ, न ही मुझ में ऐसी शक्ति है।" मृत पुत्र के इन वचनों को सुन कर श्रीवास के परिवार वालों को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। फलतः शोक करने का कोई कारण न था। यह दिव्य ज्ञान *भगवद्गीता* में (२.१३) वर्णित है—*तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति*—मरने पर मनुष्य दूसरा शरीर धारण करता है, अतएव धीर पुरुष शोक नहीं करते। मृत पुत्र तथा महाप्रभु के मध्य इस वार्ता के अनन्तर दाह-संस्कार संपन्न हुआ और महाप्रभु ने श्रीवास को आश्वस्त किया, "आपने अपना एक पुत्र खोया है, किन्तु नित्यानन्द प्रभु तथा मैं आपके नित्य पुत्र हैं। हम आपका साथ कभी नहीं छोड़ेंगे।" यह एक दृष्टान्त है कृष्ण के साथ नित्य सम्बन्ध का। कृष्ण के साथ हमारा सम्बन्ध उनके नित्य दास, मित्र, पिता, पुत्र या प्रेमी के रूप में होता है। जब यही सम्बन्ध विकृत रूप में इस भौतिक जगत में प्रतिबिम्बित होता है तो हम अन्यों के साथ पुत्र, पिता, मित्र, प्रेमी, स्वामी या दास रूप में सम्बन्धित होते हैं। किन्तु ये सारे सम्बन्ध निश्चित अवधि में समाप्त हो जाने वाले होते हैं। किन्तु यदि हम कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को जाग्रत कर लें तो हमारा सम्बन्ध कभी नहीं टूटें और हमें शोक न करना पड़े।

तबे त' करिला सब भक्ते वर दान।
उच्छिष्ट दिया नारायणीर करिल सम्मान॥२३०॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु ने अपने भक्तों को वरदान दिया। उन्होंने नारायणी के प्रति विशेष सम्मान प्रकट करते हुए अपना जूठन दिया।

तात्पर्य

नारायणी श्रीवास ठाकुर की भांजी थी और बाद में यही श्रील वृन्दावन दास ठाकुर की माता बनी। इस सन्दर्भ में सहजिया लोग एक द्वेषपूर्ण कथा का उद्धरण देते हैं कि नारायणी श्री चैतन्य महाप्रभु का जूठन खाकर गर्भिणी

हुई और वृन्दावन दास ठाकुर का जन्म हुआ। भले ही ये धूर्त सहजिये इस तरह के झूठे बयान तैयार करते रहें, किन्तु उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वे वैष्णवों के प्रति शत्रुतावश ऐसा करते हैं।

श्रीवासेर वस्त्र सिँये दरजी य़वन।
प्रभु तारे निजरूप कराइल दर्शन॥२३१॥

अनुवाद

एक मांसभक्षी दरजी श्रीवास ठाकुर के कपड़े सिला करता था। महाप्रभु ने उस पर कृपा करके उसे अपना स्वरूप दिखलाया।

'देखिनु' 'देखिनु' हइल पागल।
प्रेमे नृत्य करे, हैल वैष्णव आगल॥२३२॥

अनुवाद

'मैंने देख लिया है!' 'मैंने देख लिया है!' कहते हुए तथा भावविभोर होकर पागल की तरह नाचते हुए वह दरजी उच्च कोटि का वैष्णव बन गया।

तात्पर्य

श्रीवास ठाकुर के मकान के पास एक मुसलमान दरजी रहता था, जो परिवार के वस्त्र सिला करता था। एक दिन वह श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य से अत्यधिक प्रसन्न हुआ। वास्तव में वह मन्त्रमुग्ध था। महाप्रभु उसके मनोभाव जान गये, अतएव उसे अपना कृष्ण का आदि रूप दिखलाया। तब वह दरजी यह कह कह कर नाचने लगा, "मैंने देख लिया है। मैंने देख लिया है।" वह भावविभोर होकर महाप्रभु के साथ नाचने लगा और इस तरह वह श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों में सर्वश्रेष्ठ वैष्णव बन गया।

आवशेते श्रीवासे प्रभु वंशी त' मागिल।
श्रीवास कहे,—वंशी तोमार गोपी हरि' निल॥२३३॥

अनुवाद

भाव में महाप्रभु ने श्रीवास ठाकुर से अपनी वंशी माँगी लेकिन उन्होंने उत्तर दिया, "आपकी वंशी तो गोपियों ने चुरा ली है"

शुनि' प्रभु 'बल' 'बल' बलेन आवेशे।
श्रीवास वर्णेन वृन्दावन-लीलारसे॥२३४॥

अनुवाद

यह उत्तर सुन कर महाप्रभु ने आवेश में कहा, "बोलते चलो" "बोलते चलो"। इस प्रकार श्रीवास ने श्री वृन्दावन की दिव्य लीलाओं का वर्णन किया है।

प्रथमे ते वृन्दावन-माधुर्य वर्णिल।
शुनिया प्रभुर चित्ते आनन्द बाड़िल॥२३५॥

अनुवाद

सबसे पहले श्रीवास ठाकुर ने वृन्दावन-लीलाओं की दिव्य मधुरता का वर्णन किया, जिन्हें सुन कर महाप्रभु के चित्त में अत्यन्त हर्ष हुआ।

तबे 'बल' 'बल' प्रभु बले बारबार।
पुन: पुन: कहे श्रीवास करिया विस्तार॥२३६॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु ने उनसे बारम्बार कहा, "बोले चलो! बोले चलो!" इस तरह श्रीवास ने वृन्दावन की लीलाओं का वर्णन बढ़ा-चढ़ाकर किया।

वंशीवाद्ये गोपीगणेर वने आकर्षण।
ताँ-सबार सङ्गे ग्रैछे वन-विहरण॥२३७॥

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर ने विस्तार से बतलाया कि किस तरह गोपियाँ कृष्ण की वंशी की धुन से वृन्दावन के जंगलों की ओर आकृष्ट हुई थीं और किस तरह वे जंगल में उनके साथ साथ घूमी थीं।

ताहि मध्ये छयऋतु लीलार वर्णन।
मधुपान, रासोत्सव, जलकेलि कथन॥२३८॥

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर ने छह ऋतुओं में की गई सारी लीलाओं का वर्णन

किया। उन्होंने शहद में मधु-पान करने, रास नृत्य रचाने, यमुना में तैरने तथा अन्य ऐसी घटनाओं का वर्णन किया।

'बल' 'बल' बले प्रभु शुनिते उल्लास।
श्रीवास कहेन तबे रास रसेर विलास॥२३९॥

अनुवाद

जब महाप्रभु ने अत्यन्त हर्षित होकर सुनते हुए "कहे चलो, कहे चलो" कहा तो श्रीवास ठाकुर ने दिव्य रासलीला का वर्णन किया।

कहिते, शुनिते ऐछे प्रात:काल हैल।
प्रभु श्रीवासेरे तोषि' आलिंगन कैल॥२४०॥

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु को कहते और श्रीवास ठाकुर को सुनाते-सुनाते प्रात:काल हो गया तो महाप्रभु ने श्रीवास ठाकुर का आलिंगन करके उन्हें तुष्ट किया।

तबे आचार्येर घरे कैल कृष्णलीला।
रुक्मिणी-स्वरूप प्रभु आपने हइला॥२४१॥

अनुवाद

तत्पश्चात् अद्वैत आचार्य के घर में कृष्ण की लीलाओं का अभिनय हुआ। महाप्रभु ने कृष्ण की पटरानी रुक्मिणी का अभिनय किया।

कभु दुर्गा, लक्ष्मी हय, कभु वा चिच्छक्ति।
खाटे वसि' भक्तगणे दिला प्रेमभक्ति॥२४२॥

अनुवाद

महाप्रभु कभी देवी दुर्गा का अभिनय करते, कभी लक्ष्मी, या मुख्य शक्ति योगमया का। चारपाई पर बैठ कर उन्होंने उपस्थित सारे भक्तों को भगवत्प्रेम प्रदान किया।

एकदिन महाप्रभुर नृत्य-अवसाने।
एक ब्राह्मणी आसि' धरिल चरणे॥२४३॥

अनुवाद

एक दिन जब महाप्रभु ने अपना नाच समाप्त किया, तभी एक ब्राह्मण की पत्नी वहाँ आई और महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिये।

चरणेर धूलि सेइ लय बार बार।
देखिया प्रभुर दुःख हइल अपार॥२४४॥

अनुवाद

ज्योंही वह स्त्री बारम्बार उनके चरणों की धूल लेने लगी तो महाप्रभु को अपार दुख हुआ।

तात्पर्य

किसी महापुरुष के चरणकमलों को पकड़ना उस व्यक्ति के लिए अच्छा होता है जो धूल लेता हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के दुख का यह उदाहरण सूचित करता है कि वैष्णव को चाहिए कि किसी को अपने चरणों की धूल न लेने दे। जो व्यक्ति महापुरुष के चरणकमलों की धूल लेता है, वह अपने पाप उस महापुरुष को दे देता है। जब तक वह अत्यन्त बलशाली न हो उसे धूल लेने वाले व्यक्ति के पापों को सहना पड़ता है। अतएव सामान्यतया ऐसा नहीं होने देना चाहिए। कभी-कभी बड़ी-बड़ी सभाओं में लोग हमारे चरण छू कर वही लाभ लेना चाहते हैं। इसी कारण से हमें कभी-कभी रोग सहना पड़ता है। जहाँ तक सम्भव हो किसी बाहरी व्यक्ति को अपने पाँव की धूल नहीं लेने देना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने उदाहरण से इसे दिखलाया है, जैसा कि अगले श्लोक में बतलाया गया है।

सेइक्षणे धाञा प्रभु गंगाते पड़िल।
नित्यानन्द-हरिदास धरि' उठाइल॥२४५॥

अनुवाद

वे तुरन्त ही दौड़े-दौड़े गंगा नदी में गये और उस स्त्री के पापों को दूर करने के लिए नदी में कूद पड़े। नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर ने उन्हें पकड़ कर नदी से निकाला।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं ईश्वर हैं किन्तु वे एक उपदेशक की भूमिका निभा रहे थे। प्रत्येक उपदेशक (प्रचारक) को यह जान लेना चाहिए कि भले ही वैष्णव के पाँव छूना तथा धूल धारण करना उस व्यक्ति के लिए शुभ हो जो धूल ग्रहण करता है, किन्तु उस व्यक्ति के लिए शुभ नहीं होता जो पाँव छूने देता है। जहाँ तक सम्भव हो इस प्रथा से बचना चाहिए। केवल दीक्षित शिष्यों को इसका लाभ उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए, अन्यों को नहीं। जो पापी हैं उनसे सामान्यतया बचना चाहिए।

विजय आचार्येर घरे से रात्रे रहिला।
प्रात:काले भक्त सबे घरे लञा गेला॥२४६॥

अनुवाद

उस रात महाप्रभु विजय आचार्य के घर रुके। प्रात:काल महाप्रभु अपने भक्तों को साथ लेकर घर लौट आये।

एकदिन गोपीभावे गृहेते वसिया।
'गोपी' 'गोपी' नाम लय विषण्ण हञा॥२४७॥

अनुवाद

एक दिन महाप्रभु गोपियों के भाव में अपने घर बैठे हुए थे। वे विरह से अत्यन्त खिन्न होकर "गोपी! गोपी!" कह कर बुला रहे थे।

एक पडुया आइल प्रभुके देखिते।
'गोपी' 'गोपी' नाम शुनि' लागिल बलिते॥२४८॥

अनुवाद

महाप्रभु का दर्शन करने आया हुआ विद्यार्थी चकित था कि वे 'गोपी' 'गोपी' पुकार रहे हैं। अतएव वह इस प्रकार बोला।

कृष्णनाम ना लओ केने, कृष्णनाम—धन्य।
'गोपी' 'गोपी' बलिले वा किबा हय पुण्य॥२४९॥

अनुवाद

"आप कृष्ण के इतने धन्य एवं पवित्र नाम का उच्चारण न करके 'गोपी' 'गोपी' बक रहे हैं? आप ऐसा करने से कौन-सा पुण्य प्राप्त

करेंगे ?''

तात्पर्य

कहा गया है—*वैष्णवेर क्रिया मूढ़ विज्ञे ना बुझाय*—शुद्ध भक्त के कार्यों को कोई नहीं समझ सकता। विद्यार्थी या नवदीक्षित सम्भवतया यह नहीं समझ पाया कि श्री चैतन्य महाप्रभु गोपियों का नाम क्यों ले रहे हैं, अन्यथा वह 'गोपी' 'गोपी' पुकारने की शक्ति के विषय में प्रश्न न करता। नवदीक्षित विद्यार्थी को कृष्ण के पवित्र नाम के उच्चारण की निष्ठा पर पूरा-पूरा विश्वास था, किन्तु ऐसी मनोवृत्ति भी अपराधयुक्त है। *धर्मव्रतत्यागसर्वशुभक्रिया साम्यमपि प्रमादः*—पुण्यफल प्राप्त करने के लिए बदले में कृष्ण-नाम का उच्चारण करना अपराध है। यह उस विद्यार्थी को ज्ञात न था। इसीलिए उसने अबोध भाव से पूछा, ''गोपी का नाम जपने में कौन-सा पुण्य है?'' उसे ज्ञात न था कि पुण्य या पाप का प्रश्न ही नहीं उठता। कृष्ण या गोपी के नाम का कीर्तन प्रेम-व्यापार के दिव्य स्तर पर होता है। चूँकि वह ऐसे दिव्य कार्यों को समझने में दक्ष न था, इसीलिए उसका प्रश्न मात्र उद्धतभाव था। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और इस प्रकार बोले।

शुनि' प्रभु क्रोधे कैल कृष्ण दोषोद्गार।
ठेङ्गा लञा उठिला प्रभु पडुया मारिबार॥२५०॥

अनुवाद

मूर्ख विद्यार्थी की बात सुन कर महाप्रभु ने क्रोध में आकर अनेक प्रकार से कृष्ण को फटकारा। फिर लाठी उठाकर उस विद्यार्थी को मारने उठे।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि जब उद्धव गोपियों के लिए विशेषतया राधारानी के लिए कृष्ण का सन्देश लेकर आये, तो उन्होंने कृष्ण की अनेक प्रकार से भर्त्सना की। किन्तु ऐसी भर्त्सनाएँ उस प्रगाढ़ प्रेम-प्रवृत्ति को दर्शाती हैं जिन्हें सामान्य व्यक्ति नहीं समझ सकते। जब मूर्ख विद्यार्थी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रश्न पूछा तो उन्होंने इसी तरह कृष्ण को भी प्रेमाधिक्य के कारण फटकारा। जब महाप्रभु गोपियों के आवेश में थे और उस विद्यार्थी ने श्रीकृष्ण का समर्थन किया तो महाप्रभु अत्यधिक क्रुद्ध हुए। उनके क्रोध

को देख कर वह मूर्ख सामान्य नास्तिक स्मार्त ब्राह्मण विद्यार्थी महाप्रभु को ठीक से समझ नहीं पाया। अतएव वह तथा उसकी टोली के विद्यार्थी उलट कर महाप्रभु पर प्रहार करने वाले थे। इस घटना के बाद महाप्रभु ने संन्यास लेने का निश्चय किया जिससे लोग उन्हें सामान्य गृहस्थ समझ कर उनके प्रति अपराध न कर सकें, क्योंकि आज भी भारत में संन्यास का आदर किया जाता है।

भये पलाय पडुया, प्रभु पाछे पाछे धाय।
आस्ते व्यस्ते भक्तगण प्रभुरे रहाय॥२५१॥

अनुवाद

वह विद्यार्थी डर के मारे भागा तो महाप्रभु उसके पीछे लग लिये। किन्तु भक्तों ने किसी तरह उन्हें रोका।

प्रभुरे शान्त करि' आनिल निज घरे।
पडुया पलाया गेल पडुया-सभारे॥२५२॥

अनुवाद

भक्तगण ने महाप्रभु को शान्त किया और उन्हें घर लाये। वह विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों की टोली में भाग निकला।

पडुया सहस्र य़ाहाँ पडे एकठात्रि।
प्रभुर वृत्तान्त द्विज कहे ताहाँ य़ाइ॥२५३॥

अनुवाद

वह ब्राह्मण विद्यार्थी भाग कर वहाँ गया जहाँ एक हजार विद्यार्थी एकसाथ पढ़ते थे। वहाँ उसने उनसे इस घटना का वर्णन किया।

तात्पर्य

इस श्लोक में *द्विज* शब्द आया है जो इसका सूचक है कि वह विद्यार्थी ब्राह्मण था। उन दिनों ब्राह्मण जाति के सदस्य ही वैदिक साहित्य के विद्यार्थी होते थे। विद्याध्ययन विशेषतया ब्राह्मणों के लिए था। पहले क्षत्रियों, वैश्यों या शूद्रों के लिए विद्याध्यन का प्रश्न ही नहीं था। क्षत्रिय युद्ध-कला सीखते थे और वैश्य अपने पिता या अन्य व्यापारी से व्यापार सीखते थे। उन्हें वेदों से कोई मतलब न था। किन्तु आजकल सभी लोग पाठशाला जाते

हैं और सबों को एक ही तरह की शिक्षा दी जाती है। वे यह नहीं जानते कि क्या परिणाम होगा। किन्तु परिणाम अत्यन्त असन्तोषजनक होता है, जैसा कि हमने पाश्चात्य देशों में देखा है। संयुक्त राज्य में विशाल शिक्षा-संस्थान हैं जहाँ हर एक को शिक्षा प्राप्त करने की छूट है, किन्तु परिणाम यह है कि अधिकांश विद्यार्थी हिप्पी बन रहे हैं।

उच्च शिक्षा हर एक के लिए नहीं है। ऐसे चुने हुए लोग जो ब्राह्मण संस्कृति में प्रशिक्षित हों उन्हें ही उच्च शिक्षा ग्रहण करने की अनुमति दी जानी चाहिए। शैक्षिक संस्थानों का उद्देश्य टेक्नालाजी की शिक्षा देना नहीं होना चाहिए, क्योंकि टेक्नालाजीनियों को शिक्षित नहीं कहा जा सकता। टेक्नालाजीविद् तो शुद्र है, केवल वेदों का अध्ययन करने वाला ही विद्वान् (*पंडित*) कहा जा सकता है। ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह वैदिक साहित्य का पंडित बने और अन्य ब्राह्मणों को वैदिक ज्ञान की शिक्षा दे। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अपने विद्यार्थियों को ब्राह्मण तथा वैष्णव बनने के लिए ही शिक्षा देते हैं। डल्लास स्थित हमारे स्कूल में विद्यार्थीगण अंग्रेजी तथा संस्कृत सीखते हैं और इन्हीं दो भाषाओं के द्वारा वे हमारी सारी पुस्तकें यथा *श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता* तथा *भक्तिरसामृत- सिन्धु* पढ़ रहे हैं। हर विद्यार्थी को टेक्नालाजीविद् बनाने के लिए शिक्षित करना भूल है। ऐसे विद्यार्थियों का एक समूह होना चाहिए जो ब्राह्मण बनें। वैदिक साहित्य का अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों के बिना मानव-समाज में पूर्णतया अराजकता मचा रहेगा।

शुनि' क्रोध कैल सब पडुयार गण।
सबे मिलि' करे तबे प्रभुर निन्दन॥२५४॥

अनुवाद

यह घटना सुन कर सारे विद्यार्थी अत्यधिक क्रुद्ध होकर एकसाथ जुट कर महाप्रभु की आलोचना करने लगे।

सब देश भ्रष्ट कैल एकला निमाञि।
ब्राह्मण मारिते चाहे, धर्म भय नाइ॥२५५॥

अनुवाद

उन्होंने आरोप लगाया, "अकेले निमाई पंडित ने सारा देश भ्रष्ट कर दिया। वह एक ब्राह्मण को मारना चाहता है। उसे धार्मिक सिद्धान्तों

से कोई भय नहीं रहा।

तात्पर्य

उन दिनों भी ब्राह्मण जाति वालों को बड़ा अभिमान था। वे शिक्षक या गुरु के द्वारा दिये गये दण्ड को भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते थे।

पुनः ग़दि ऐछे करे मारिब ताहारे।
कोन् वा मानुष हय, कि करिते पारे॥२५६॥

अनुवाद

"यदि वह फिर से ऐसा निर्मम कार्य करता है, तो हम अवश्य ही बदला लेंगे और उसे मारेंगे। वह कौन ऐसा—महत्वपूर्ण व्यक्ति है कि हमें ऐसा करने से रोक सकता है?"

प्रभुर निन्दाय सबार बुद्धि हैल नाश।
सुपठित विद्या कारओ ना हय प्रकाश॥२५७॥

अनुवाद

जब सारे विद्यार्थियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु की निन्दा करते हुए ऐसा निश्चय किया तो उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। यद्यपि वे सभी विद्वान् थे, किन्तु इस अपराध के कारण उनसे ज्ञान का सार प्रकट नहीं हो रहा था।

तात्पर्य

भगवद्गीता में कहा गया —*माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रितः*—जब कोई व्यक्ति नास्तिक मनोवृत्ति अपनाकर भगवान् का शत्रु बन जाता है, तो भले ही वह विद्वान् क्यों न हो उसमें ज्ञान का सार लक्षित नहीं होता। दूसरें शब्दों में, उसके ज्ञान के सार को माया हर लेती है। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने *श्वेताश्वतर उपनिषद्* का निम्नलिखित मन्त्र उद्धृत किया है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देव तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति भगवान् विष्णु में दृढ़ निष्ठा रखता है और इसी तरह बिना किसी मन्तव्य के गुरु-भक्ति करता है, उसे वैदिक ज्ञान का सार प्राप्त होता है। यह सार भगवान् की शरणागति ही है (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। जो गुरु तथा परमेश्वर की शरण में जाता है, उसे ही वैदिक ज्ञान का सार प्राप्त होता है। श्री प्रह्लाद महाराज ने *श्रीमद्भागवत* में (७.५.२४) इसी सिद्धान्त पर बल दिया है—

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधितामुत्तमम्॥

"जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में इन नवों सिद्धान्तों (श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि) को व्यवहृत करता है, उसे ही पंडित समझना चाहिए, जिसने वैदिक साहित्य को अच्छी तरह पचा लिया है, क्योंकि वैदिक साहित्य के अध्ययन का लक्ष्य भगवान् श्रीकृष्ण की सर्वश्रेष्ठता को समझना है।" श्रीधर स्वामी अपनी टीका में पुष्टि करते हैं कि सर्वप्रथम गुरु की शरण में जाना चाहिए तभी भक्ति की क्रिया विकसित होगी। यह तथ्य नहीं है कि जो परिश्रम से अध्ययन करता है वह भक्त बन सकता है। किन्तु यदि गुरु तथा भगवान् पर किसी की पूर्ण श्रद्धा है तो चाहे वह बिल्कुल अनपढ़ क्यों न हो, वह वेदों का असली ज्ञान प्राप्त करके आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त होता है। महाराज खट्वांग के उदाहरण से इसकी पुष्टि होती है। जो शरणागत हो जाता है, उसे वेदों का ज्ञाता मान लिया जाता है। जो शरणागति की इस वैदिक विधि को अपनाता है वह भक्ति सीख लेता है और निश्चित रूप से सफल होता है। किन्तु जो अत्यन्त गर्वीला होता है, वह न तो गुरु की शरण जाने में समर्थ होता है, न ही भगवान् की। इस तरह वह वैदिक साहित्य के सार को नहीं समझ सकता। *श्रीमद्भागवत* की घोषणा है (११.११.१८)—

शब्द-ब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः॥

"यदि कोई वैदिक साहित्य में निपुण है, किन्तु भगवान् विष्णु का भक्त नहीं है तो उसका श्रम उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार बिना दूध की गाय पालना।"

जो भी व्यक्ति शरणागति का अनुगमन नहीं करता और केवल शैक्षिक जीवन बिताने में रुचि रखता है, वह कोई उन्नति नहीं कर सकता। उसका लाभ व्यर्थ श्रम जैसा है। यदि कोई वेदों के अध्ययन में पटु है, किन्तु भगवान् विष्णु की शरण में नहीं जाता तो उसका ज्ञान-अनुशीलन समय तथा श्रम का अपव्यय मात्र है।

तथापि दाम्भिक पडुया नम्र नाहि हय।
य़ाँहाँ ताहाँ प्रभुर निन्दा हासि' से करय॥२५८॥

अनुवाद

किन्तु दम्भी विद्यार्थीगण विनीत नहीं हुये। उल्टे वे इस घटना की चर्चा सर्वत्र करते रहे। वे हँसी-हँसी में महाप्रभु की आलोचना करते रहे।

सर्वज्ञ गोसाञि जानि' सबार दुर्गति।
घरे वसि' चिन्ते ता'-सबार अव्याहति॥२५९॥

अनुवाद

सर्वज्ञ होने के नाते श्री चैतन्य महाप्रभु इन विद्यार्थियों की दुर्गति समझ गये। फलतः वे घर पर बैठ कर उनको उबारने पर विचार करने लगे।

य़त अध्यापक, आर ताँर शिष्यगण।
धर्मी, कर्मी, तपोनिष्ठ, निन्दक, दुर्जन॥२६०॥

अनुवाद

महाप्रभु ने सोचा, "सारे तथाकथित प्रोफेसर तथा विज्ञानी एवं उनके सारे विद्यार्थी धर्म के नियमों, सकाम कर्मों तथा तपस्या का पालन करते हैं, फिर भी वे निन्दा करने वाले एवं धूर्त होते हैं।

तात्पर्य

यहाँ पर उन भौतिकतावादियों का चित्रण हुआ है जिन्हें भक्ति का कोई ज्ञान नहीं है। वे कितने ही धार्मिक, कर्म करने वाले तथा तपस्या करने वाले क्यों न हो, किन्तु यदि वे भगवान् की बुराई करते हैं तो वे धूर्त ही हैं। इसकी पुष्टि *हरिभक्तिसुधोदय* में (३.११) हुई है।

भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः।
अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥

भगवद्भक्ति के ज्ञान के बिना राष्ट्रीयता, सकाम कर्म, राजनीतिक या सामाजिक कर्म, विज्ञान या दर्शन सारे के सारे शव को सुशोभित करने वाले कीमती वस्त्रों के तुल्य हैं। इन सिद्धान्तों में दृढ़ रहने वालों का एकमात्र अपराध यही है कि वे भक्त नहीं हैं। वे सदैव भगवान् तथा उनके भक्तों की निन्दा करते हैं।

एइ सब मोर निन्दा-अपराध हैते।
आमि ना लओयाइले भक्ति, ना पारे लइते॥२६१॥

अनुवाद

"यदि मैं इन्हे भक्ति के लिए प्रेरित न करूँ तो निन्दा अपराध करने के कारण इनमें से कोई भी भक्ति ग्रहण न कर सकेगा।

निस्तारिते आइलाम आमि, हैल विपरीत।
एसब दुर्जनेर कैछे हइबेक हित॥२६२॥

अनुवाद

"मैं समस्त पतितों का उद्धार करने आया हूँ, किन्तु अभी तो इसके ठीक विपरीत घटना घटी। इन धूर्तों का किस तरह उद्धार हो सकता है? ये किस तरह लाभान्वित हो सकते हैं?

आमाके प्रणति करे, हय पापक्षय।
तबे से इहारे भक्ति लओयाइले लय॥२६३॥

अनुवाद

"यदि ये धूर्त मुझे नमस्कार करें तो इनके सारे पाप विनष्ट हो जायँ। फिर यदि मैं इन्हें प्रेरित करूँ तो ये भक्ति करने लगेंगे।

मोरे निन्दा करे ये, ना करे नमस्कार।
एसब जीवेर अवश्य करिब उद्धार॥२६४॥

अनुवाद

"मुझे इन पतितों का, जो मेरी निन्दा करते हैं और मुझे नमस्कार

नहीं करते, अवश्य ही उद्धार करना चाहिए।

अतएव अवश्य आमि संन्यास करिब।
संन्यासि-बुद्ध्ये मोरे प्रणत हइब॥२६५॥

अनुवाद

"मुझे संन्यास आश्रम स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि लोग मुझे संन्यासी समझ कर नमस्कार करेंगे।

तात्पर्य

वर्णाश्रम संस्थान की सामाजिक व्यवस्था के सदस्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) में ब्राह्मण को अग्रणी माना जाता है, क्योंकि वह अन्य समस्त वर्णों का शिक्षक और गुरु होता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) में से संन्यास आश्रम अत्यन्त सम्मान्य है। अतएव संन्यासी समस्त वर्णों और आश्रमों का गुरु होता है और यह आशा की जाती है कि ब्राह्मण भी संन्यासी को नमस्कार करेगा। किन्तु दुर्भाग्यवश ब्राह्मण जाति वाले वैष्णव संन्यासी को नमस्कार नहीं करते। वे इतने गुमानी होते हैं कि भारतीय संन्यासियों तक को नमस्कार नहीं करते, यूरोपीय तथा अमरीकी संन्यासियों की तो बात दूर रही। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु उम्मीद करते थे कि ब्राह्मण जाति वाले भी संन्यासी को नमस्कार करेंगे, क्योंकि ५०० वर्ष पूर्व ज्ञात या अज्ञात संन्यासी को तुरन्त नमस्कार करने की सामाजिक प्रथा थी।

कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के संन्यासी प्रामाणिक हैं। इस आन्दोलन के सारे विद्यार्थियों की नियमपूर्वक दीक्षा हुई है। जैसा कि सनातन गोस्वामी ने *हरिभक्ति-विलास* में आदेश दिया है—*तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्व जायते नृणाम्*—दीक्षा-विधि से कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण बन सकता है। हमारे कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के विद्यार्थी प्रारम्भ में भक्तों के साथ रहने के लिए राजी होते हैं और धीरे-धीरे वे अवैध यौनाचार, द्यूतक्रीड़ा, मांसाहार तथा नशा—इन चार वर्जित कार्यों को छोड़ देते हैं, और आध्यात्मिक जीवन के कार्यों में आगे बढ़ते हैं। जब कोई विद्यार्थी इन नियमों का नियमित रूप से पालन करने लगता है तो उसे प्रथम दीक्षा (*हरिनाम*) दी जाती है और वह नित्य सोलह मालाएँ जप करता है। फिर छः मास या एक साल बाद उसकी दुबारा दीक्षा होती है और नियमित यज्ञ तथा अनुष्ठान

के साथ उसे जनेऊ पहनाया जाता है। कुछ समय बाद जब वह और प्रगति कर लेता है और इस भौतिक जगत का परित्याग करने के लिए राजी हो जाता है तो उसे संन्यास दिलाया जाता है। उस समय उसे स्वामी या गोस्वामी की पदवी दी जाती है, जिसका अर्थ है कि वह "इन्द्रियों का स्वामी है।" दुर्भाग्यवश भारत में तथाकथित ब्राह्मण न तो उनका सम्मान करते हैं न ही उन्हें प्रामाणिक संन्यासी के रूप में स्वीकार करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु को आशा थी कि तथाकथित ब्राह्मण ऐसे वैष्णव संन्यासियों का सम्मान करेंगे। जो हो, वे चाहे उनका सम्मान करें या नहीं, उन्हें प्रामाणिक संन्यासी मानें या नहीं, शास्त्रों में ऐसे अवज्ञाकारी तथाकथित ब्राह्मणों के लिए दण्ड-विधान है। शास्त्रों का आदेश है—

देवता प्रतिमां दृष्ट्वा यतिं चैव त्रिदण्डिनम्।
नमस्कारं न कुर्याद् यः प्रायश्चित्तीयते नरः॥

" जो भगवान् को या मन्दिर में उनके अर्चाविग्रह को या त्रिदण्डी संन्यासी को नमस्कार नहीं करता उसे प्रायश्चित करना चाहिए।" यदि वह ऐसे संन्यासी को नमस्कार नहीं करता तो प्रायश्चित्त स्वरूप उसे एक दिन का उपवास करना पड़ता है।

प्रणतिते ह'बे इहार अपराध क्षय।
निर्मल हृदये भक्ति कराइब उदय॥२६६॥

अनुवाद

"नमस्कार करने से उनके सारे पाप दूर हो जायेंगे। फिर मेरी कृपा से उनके शुद्ध हृदयों में भक्ति जाग्रत होगी।"

तात्पर्य

वैदिक आदेशों के अनुसार केवल ब्राह्मण को संन्यास दिया जा सकता है। शंकर सम्प्रदाय (*एकदण्डसंन्याससम्प्रदाय*) केवल ब्राह्मण जाति वालों को संन्यास प्रदान करता है, किन्तु वैष्णव-विधि में उसे भी नियमित दीक्षा-विधि से ब्राह्मण बनाया जा सकता है जो ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न न हुआ हो और जब वह नशा, अवैध यौनाचार, मांसाहार तथा द्यूतक्रीड़ा से विरत रह कर ब्राह्मण-आचरण करता है तो उसे संन्यास प्रदान किया जा सकता है। सारे विश्व-भर में प्रचार करने वाले कृष्णभावनामृत के सारे संन्यासी नियमित ब्राह्मण

संन्यासी हैं। अतएव तथाकथित ब्राह्मण जाति में उत्पन्न लोगों को उनको नमस्कार करने में एतराज नहीं करना चाहिए। महाप्रभु ने जिस प्रकार के नमस्कार की संस्तुति की है, उस तरह से नमस्कार करने से उनके अपराध कम होंगे और स्वत: उनमें अपने भक्ति-पद का उदय होगा। जैसा कि कहा गया है—*नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम साध्य कभु नय*—कृष्ण-प्रेम शुद्ध हृदय में ही उदय हो सकता है। हम जितना ही संन्यासियों को नमस्कार करेंगे, उतने ही हमारे अपराध कम होंगे और हमारे हृदय शुद्ध बनेंगे। केवल शुद्ध हृदय में कृष्ण-प्रेम का उदय हो सकता है। यही श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय कृष्णभावनामृत-आन्दोलन की विधि है।

एसब पाषण्डीर तबे हइबे निस्तार।
आर कोन उपाय नाहि, एइ युक्ति सार॥२६७॥

अनुवाद

"इस संसार के सारे श्रद्धाविहीन धूर्तों (पाखण्डियों) का उद्धार इसी विधि से हो सकता है। दूसरा कोई विकल्प नहीं। तर्क का सार यही है।"

एइ दृढ़ युक्ति करि' प्रभु आछे घरे।
केशव भारती आइला नदीया-नगरे॥२६८॥

अनुवाद

इस दृढ़ निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद महाप्रभु घर पर ही रहे। तभी केशव भारती नदिया नगरी में आये।

प्रभु ताँरे नमस्करि' कैल निमन्त्रण।
भिक्षा कराइया ताँरे कैल निवेदन॥२६९॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उनको सादर नमस्कार किया और उन्हें अपने घर बुलाया। अच्छी तरह से खिलाने के बाद उनसे निवेदन किया।

तात्पर्य

वैदिक समाज की प्रथा के अनुसार जब कोई अज्ञात संन्यासी किसी ग्राम या नगर में आता है, तो कोई न कोई व्यक्ति उसे अपने घर प्रसाद लेने

के लिए आमन्त्रित करता है। सामान्यतया संन्यासीजन ब्राह्मण के घर में प्रसाद ग्रहण करते हैं, क्योंकि ब्राह्मण शालग्राम शिला को पूजता है, अतएव ऐसा प्रसाद मिलता है जिसे संन्यासी ग्रहण कर सके। केशव भारती ने श्री चैतन्य महाप्रभु को का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। अतएव महाप्रभु को अवसर प्राप्त हुआ कि उनसे संन्यास लेने की अपनी इच्छा बतला सकें।

तुमि त' ईश्वर बट,—साक्षात् नारायण।
कृपा करि' कर मोर संसार मोचन॥२७०॥

अनुवाद

"महोदय! आप साक्षात् नारायण हैं। अतएव मुझ पर कृपा करें। मुझे इस भवबन्धन से उबार लें।"

भारती कहेन,—तुमि ईश्वर, अन्तर्यामी।
ये कराह, से करिब,—स्वतन्त्र नहि आमि॥२७१॥

अनुवाद

केशव भारती ने महाप्रभु को उत्तर दिया, "आप परमात्मा हैं। मैं वहीं करूँगा जो आप मुझसे करायेंगे। मैं आपसे स्वतन्त्र नहीं।"

एत बलि' भारती गोसाञि काटोयाते गेला।
महाप्रभु ताहा याइ' संन्यास करिला॥२७२॥

अनुवाद

यह कह कर गुरु केशव भारती अपने गाँव कटवा वापस चले गये। महाप्रभु ने वहाँ जाकर संन्यास ले लिया।

तात्पर्य

चौबीस वर्ष की आयु पूरी होने पर और शुक्ल पक्ष समाप्त होने पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने नवद्वीप छोड़ा और निदयारा घाट नामक स्थान पर गंगा नदी पार की। ये कण्टक नगर या कोटाया (कटवा) पहुँचे जहाँ उन्होंने शांकर विधि से एकदण्ड-संन्यास स्वीकार कर लिया। चूँकि केशव भारती शंकर सम्प्रदाय के थे, अतएव वे वैष्णव संन्यास नहीं प्रदान कर सके जिसके सदस्य त्रिदण्ड धारण करते हैं।

जब महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण कर लिया तो उन्हें नैत्यिक कार्यों में चन्द्रशेखर

आचार्य सहायता करते रहे। महाप्रभु के आदेश से पूरे दिन कीर्तन चला और दिन डूबते ही महाप्रभु ने अपने बाल बनवा डाले। अगले दिन वे नियमित एकदण्ड-संन्यासी बन गये। उस दिन से उनका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य पड़ गया। इसके पूर्व वे निमाई पण्डित नाम से विख्यात थे। संन्यास ग्रहण करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे राढ़ देश की यात्रा की। यह वह प्रदेश है जहाँ गंगा नहीं दिखतीं। केशव भारती कुछ दूर तक उनके साथ गये।

सङ्गे नित्यानन्द, चन्द्रशेखर आचार्य।
मुकुन्ददत्त,—एइ तिन कैल सर्व कार्य॥२७३॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास स्वीकार किया तो सारे आवश्यक कार्य सम्पन्न करने के लिए उनके साथ तीन व्यक्ति थे नित्यानन्द प्रभु, चन्द्रशेखर आचार्य तथा मुकुन्द दत्त।

एइ आदि-लीलार कैल सूत्र गणन।
विस्तारि वर्णिला इहा दास वृन्दावन॥२७४॥

अनुवाद

इस तरह मैंने आदिलीला की घटनाओं का संक्षेप में वर्णन किया है। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने इनका विस्तृत वर्णन (चैतन्य-भागवत में) किया है।

यशोदानन्दन हैल शचीर नन्दन।
चतुर्विध भक्त-भाव करे आस्वादन॥२७५॥

अनुवाद

जो भगवान् माता यशोदा के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे, वे ही अब माता शची के पुत्र रूप में प्रकट होकर चार प्रकार के भक्ति भावों का आस्वादन कर रहे हैं।

तात्पर्य

भगवान् के प्रति चार प्रकार के भक्ति भाव हैं—दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। शान्त रस में कोई क्रिया नहीं होती। किन्तु शान्त रस से भी बढ़ कर दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस हैं, जो उच्च स्तर तक भक्ति

के क्रमिक विकास को प्रदर्शित करते हैं।

स्वमाधुर्य राधा-प्रेमरस आस्वादिते।
राधाभाव अङ्गी करियाछे भालमते॥२७६॥

अनुवाद

कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी के प्रेम के रस का आस्वादन करने तथा कृष्णरूप आनन्द के आगार को समझने के लिए ही स्वयं कृष्ण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में राधारानी के भाव को स्वीकार किया।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर *अनुभाष्य* में लिखते हैं, "श्री गौरसुन्दर श्रीमती राधारानी के भाव में साक्षात् कृष्ण हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी-भी गोपी-भाव नहीं त्यागा। वे सदैव कृष्ण को प्रधानता देते रहे और उन्होंने कभी भी किसी सामान्य स्त्री के साथ माधुर्य रस का अनुकरण करते हुए भोक्ता की भूमिका स्वीकार नहीं की, जैसा कि सामान्यतया सहजिये करते हैं। उन्होंने कभी-भी अपने को लम्पट नहीं बनने दिया। सहजिया सम्प्रदाय के सदस्य स्त्रियों के पीछे, यहाँ तक कि परस्त्रियों के पीछे दीवाना रहते हैं। किन्तु जब वे अपनी वासनामयी क्रियाओं को श्री चैतन्य महाप्रभु पर थोपने लगते हैं, तो वे स्वरूप दामोदर तथा श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के प्रति अपराधी बनते हैं। *श्री चैतन्य भागवत* आदि खण्ड के अध्याय १५ में कहा गया है—

सबे परस्त्रीर प्रति नाहि परिहास।
स्त्री देखिऽदूरे प्रभु हयेन एकपाश॥

'श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी परस्त्री से मजाक (परिहास) भी नहीं किया। ज्योंही वे किसी स्त्री को आते देखते तुरन्त इतना स्थान छोड़ देते कि बिना बात किये वह आसानी से चली जाय।" वे स्त्री-संगति के विषय में अत्यन्त कठोर थे। किन्तु सहजिये अपने को श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुगामी बताते हुए स्त्रियों के साथ कामवासना में निमग्न रहते हैं। अपनी युवावस्था में चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त मजाकिया (विनोदी) थे, किन्तु उन्होंने कभी किसी स्त्री के साथ मजाक नहीं किया। न ही अपने इस अवतार में उन्होंने किसी स्त्री से बातें भी कीं। गौरांगनागरी दल को श्री चैतन्य महाप्रभु या वृन्दावन दास

ठाकुर की स्वीकृति प्राप्त नहीं थी। श्री चैतन्य महाप्रभु की सभी प्रकार से स्तुति तो की जाय, किन्तु उन्हें गौरांगनागर के रूप में पूजने से बचा जाय। श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी आचरण से तथा श्री वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा रचित श्लोकों से गौरांगनागरियों की कामवासनाओं का पूरी तरह निराकरण होता है।"

गोपी-भाव ग्राते प्रभु धरियाछे एकान्त।
व्रजेरनन्दने माने आपनार कान्त॥२७७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन गोपियों का भाव स्वीकार किया, जो व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण को अपने प्रियतम के रूप में मानती हैं।

गोपिका-भावेर एइ सुदृढ निश्चय।
व्रजेन्द्रनन्दन विना अन्यत्र ना हय॥२७८॥

अनुवाद

यह सुदृढ़ निश्चय है कि गोपिकाओं का भाव कृष्ण के ही समक्ष सम्भव है, किसी अन्य के नहीं।

श्यामसुन्दर, शिखिपिच्छ-गुञ्जा विभूषण।
गोप-वेश, त्रिभङ्गिम, मुरली-वदन॥२७९॥

अनुवाद

उनका रंग श्यामल है, उनके सिर पर मोरपंख है, उनकी माला घुंघुंची की है और उनकी वेशभूषा ग्वालों जैसी है। उनका शरीर तीन स्थानों से मुड़ा है और उनके मुँह में बाँसुरी है।

इहा छाडि' कृष्ण ग्रदि हय अन्याकार।
गोपिकार भाव नाहि ग्रेय निकट ताहार॥२८०॥

अनुवाद

यदि भगवान् कृष्ण अपने आदि रूप को छोड़ कर कोई अन्य विष्णु-रूप धारण करते हैं तो उनके निकट जाने पर भी गोपी भाव जाग्रत नहीं होता।

गोपीनां पशुपेन्द्रनन्दनजुषो भावस्य कस्तां कृती
विज्ञातुं क्षमते दुरूहपदवीसञ्चारिण: प्रक्रियाम्।
आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन् भुजैर्जिष्णुभि-
र्यासां हन्त चतुर्भिरद्भुतरुचिं रागोदय: कुञ्चति॥२८१॥

अनुवाद

"एक बार भगवान् श्रीकृष्ण ने खेल-खेल में अपने को चार विजयी हाथों वाले तथा अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाले नारायण के रूप में प्रकट किया। किन्तु इस दिव्य रूप को देख कर गोपियों की दिव्य भावनाएँ कुंचित हो गईं। अतएव विद्वान् व्यक्ति उन गोपियों के भावों को नहीं समझ सकते जो नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण के आदि रूप पर लट्टू हैं। कृष्ण के परम रस में गोपियों के अद्भुत भाव आध्यात्मिक जीवन में सबसे बड़ी गुत्थी हैं।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रील रूप गोस्वामी-कृत *ललित माधव* से (६.१४) से लिया गया है।

वसन्तकाले रासलीला करे गोवर्धने।
अन्तर्धान कैला सङ्केते करि' राधा-सने॥२८२॥

अनुवाद

वसन्त ऋतु में जब रासनृत्य हो रहा था तो कृष्ण सहसा घटनास्थल से यह दिखाने के लिए अन्तर्धान हो गये कि वे श्रीमती राधारानी के साथ एकान्त वास चाहते हैं।

निभृतनिकुञ्जे वसि' देखे राधार बाट।
अन्वेषित आइला ताहाँ गोपिकार ठाट॥२८३॥

अनुवाद

कृष्ण एकान्त कुञ्ज में बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे कि श्रीमती राधारानी उधर आयें। किन्तु तभी गोपियाँ सैनिकों के व्यूह-सी वहाँ आ गईं।

दूर हैते कृष्णे देखि' बले गोपी-गण।
"एइ देख कुञ्जेर भीतर व्रजेन्द्रनन्दन॥"२८४॥

अनुवाद

दूर से कृष्ण को देख कर गोपियों ने कहा, "जरा देखो न! ये रहे कुञ्ज के भीतर नन्द महाराज के पुत्र श्रीकृष्ण।"

गोपीगण देखि' कृष्णेर हइल साध्वस।
लुकाइते नारिल, भये हैल विवश॥२८५॥

अनुवाद

ज्योंही कृष्ण ने गोपियों को देखा वे भावविह्वल हो उठे। इस तरह वे अपने को छिपा नहीं सके और भयवश वे जड़ हो गये।

चतुर्भुज मूर्ति धरि' आछेन रसिया।
कृष्ण देखि' गोपी कहे निकट आसिया॥२८६॥

अनुवाद

कृष्ण अपना चतुर्भुज रूप धारण करके वहाँ बैठ गये। जब सारी गोपियाँ आईं तो उन्हें देख कर इस प्रकार बोलीं।

'इहाँ कृष्ण नहे, इहों नारायण मूर्ति।'
एत बलि' ताँरे सभे करे नति-स्तुति॥२८७॥

अनुवाद

"यह कृष्ण नहीं, भगवान् नारायण हैं।" यह कह कर उन्होंने नमस्कार किया और उनकी सादर स्तुति की।

'नमो नारायण, देव करह प्रसाद।
कृष्णसङ्ग देह' मोर घुचाह विषाद॥"२८८॥

अनुवाद

"हे नारायण! हम आपको नमस्कार करती हैं। आप हम पर कृपालु हों। आप हमें कृष्ण का साथ प्रदान करें और हमारे शोक को दूर करें।"

तात्पर्य

गोपियाँ नारायण के चतुर्भुज रूप को देख कर भी आनन्दित नहीं हुईं। उन्होंने भगवान् को केवल नमस्कार किया और उनसे कृष्ण का साथ प्राप्त करने का वह माँगा। ऐसा है गोपियों का भाव।

एत बलि नमस्करि' गेला गोपीगण।
हेनकाले राधा आसि' दिला दरशन॥२८९॥

अनुवाद

यह कह कर तथा नमस्कार करके सारी गोपियाँ इधर-उधर चली गईं। तभी श्रीमती राधारानी आईं और भगवान् कृष्ण के समक्ष प्रकट हुईं।

राधा देखि' कृष्ण ताँरे हास्य करिते।
सेइ चतुर्भुज मूर्ति चाहेन राखिते॥२९०॥

अनुवाद

जब कृष्ण ने राधारानी को देखा तो वे उनके साथ परिहास करने के लिए अपना चतुर्भुज रूप बनाये रखना चाहा किन्तु वे वैसे कर नहीं पाये।

लुकैला दुइ भुज राधार अग्रेते।
बहु य़त्न कैला कृष्ण नारिला राखिते॥२९१॥

अनुवाद

राधारानी के सम्मुख श्रीकृष्ण ने अपनी दोनों भुजाएँ धिपाने का प्रयत्न किया। उनके सामने अपनी चारों भुजाएँ रखने का उन्होंने पूरा प्रयत्न किया, किन्तु वे बिल्कुल सफल नहीं हुए।

राधार विशुद्ध-भावेर अचिन्त्य प्रभाव।
य़े कृष्णेर कराइला द्विभुज-स्वभाव॥२९२॥

अनुवाद

राधारानी के शुद्ध भाव का प्रभाव अचिन्त्य रूप से इतना महान् है कि उसने कृष्ण को अपना आदि द्विभुज रूप धारण करने के लिए बाध्य कर दिया।

रासारम्भविधौ निलीय वसता कुञ्जे मृगाक्षीगणै-
र्दृष्टं गोपयितुं स्वमुद्धुरधिया या सुष्ठु सन्दर्शिता।
राधायाः प्रणयस्य हन्त महिमा यस्य श्रिया रक्षितुं
सा शक्या प्रभविष्णुनापि हरिणा नासीच्चतुर्बाहुता॥२९३॥

अनुवाद

"रासनृत्य प्रारम्भ होने के पूर्व भगवान् कृष्ण ने परिहासवश अपने आप को कुञ्ज में छिपा लिया। जब मृग के समान नेत्रों वाली गोपियाँ आयीं, तो अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा कृष्ण ने अपने को छिपाने के लिए अपना सुन्दर चतुर्भुज रूप प्रकट किया। किन्तु जब श्रीमती राधारानी आईं, तो वे उनके सामने अपना वह चतुर्भुज रूप नहीं रख पाये। यह श्रीमती राधा के प्रेम की अद्‌भुत महिमा है।

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रील रूप गोस्वामी-कृत *उज्ज्वल नीलमणि* का है।

सेइ व्रजेश्वर—इहँ जगन्नाथ पिता।
सेइ व्रजेश्वर—इहँ शचीदेवी माता॥२९४॥

अनुवाद

व्रजभूमि के राजा नन्द अब श्री चैतन्य महाप्रभु के पिता जगन्नाथ मिश्र हैं और व्रजभूमि की महारानी माता यशोदा ही चैतन्य महाप्रभु की माता शचीदेवी हैं।

सेइ नन्दसुत—इहँ चैतन्य-गोसाञि।
सेइ बलदेव—इहँ नित्यानन्द भाइ॥२९५॥

अनुवाद

नन्द महाराज के पहले के पुत्र ही अब श्री चैतन्य महाप्रभु हैं और कृष्ण के पहले के भाई बलदेव ही अब नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के भाई हैं।

वात्सल्य, दास्य, सख्य—तिन भावमय।
सेइ नित्यानन्द—कृष्णचैतन्य-सहाय॥२९६॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु को सदैव वात्सल्य, दास्य तथा सख्य भाव का अनुभव होता है। इस तरह वे श्री चैतन्य महाप्रभु की सदा सहायता करते हैं।

प्रेमभक्ति दिया तेँहो भासा'ल जगते।
ताँर चरित्र लोके ना पारे बुझिते॥२९७॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने दिव्य प्रेमाभक्ति का वितरण करके सारे जगत को आप्लावित कर दिया। उनके चरित्र तथा उनेक कार्यों को कोई नहीं समझ सकता।

अद्वैत आचार्य-गोसाञि भक्त-अवतार।
कृष्ण अवतारिया कैला भक्तिर प्रचार॥२९८॥

अनुवाद

श्रील अद्वैत आचार्य भक्त के अवतार-रूप में प्रकट हुए। वे कृष्ण की श्रेणी में हैं, किन्तु वे इस धरा पर भक्ति का प्रचार करने के लिए अवतरित हुए।

सख्य, दास्य,—दुइ भाव सहज ताँहार।
कभु प्रभु करेन ताँरे गुरु—व्यवहार॥२९९॥

अनुवाद

उनके सहज भाव सख्य तथा दास्य भाव स्तर पर थे, किन्तु कभी-कभी महाप्रभु उन्हें अपना गुरु मानते थे।

श्रीवासादि यत महाप्रभुर भक्तगण।
निज निज भावे करेन चैतन्य-सेवन॥३००॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तगण जिनमें श्रीवास ठाकुर प्रमुख हैं, अपने अपने भावों से महाप्रभु की सेवा करते हैं।

पण्डित-गोसाञि आदि य़ाँर य़ेइ रस।
सेइ सेइ रसे प्रभु हन ताँर वश।।३०१।।

अनुवाद

महाप्रभु के सारे निजी संगी यथा गदाधर, स्वरूप दामोदर, रामानन्द राय तथा रूप गोस्वामी समेत छहों गोस्वामी अपने-अपने दिव्य रस में स्थित हैं। इस तरह महाप्रभु विभिन्न दिव्य रसों के वश में होते रहते हैं।

तात्पर्य

श्लोक २९६ से ३०१ में श्री नित्यानन्द तथा श्री अद्वैत प्रभु के भक्तिभाव का पूर्ण वर्णन हुआ है। ऐसी पृथक-पृथक भक्ति का वर्णन *गौरगणोद्देश-दीपिका* में श्लोक ११-१६ में हुआ है जिसमें कहा गया है कि यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु भक्त-रूप में प्रकट हुए, किन्तु वे नन्द महाराज के पुत्र ही थे। इसी तरह श्री नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु चैतन्य के सहायक के रूप में उत्पन्न हुए, किन्तु वे हलधार बलदेव के अतिरिक्त अन्य कोई न थे। श्रीवास ठाकुर आदि जितने भक्तगण हैं, वे महाप्रभु की तटस्था शक्ति हैं, जबकि गदाधर पण्डित तथा अन्य भक्त उनकी अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु, अद्वैत प्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु *विष्णुतत्त्व* श्रेणी में आते हैं। चूँकि श्री चैतन्य करुणा के सागर हैं, अतएव उन्हें *महाप्रभु* कहा जाता है जबकि नित्यानन्द तथा अद्वैत को, जो महाप्रभु के सहायक दो महापुरुष हैं, *प्रभु* कहा जाता है। इस तरह दो *प्रभु* एक *महाप्रभु* हैं। गदाधर स्वामी पक्के ब्राह्मण-गुरु के प्रतिनिधि स्वरूप हैं और श्रीवास ठाकुर पक्के ब्राह्मण-भक्त हैं। ये पाँचो पञ्चतत्त्व कहे जाते हैं।

तिहँ श्याम,—वंशीमुख, गोपविलासी।
इहँ गौर—कभु द्विज, कभु त' संन्यासी।।३०२।।

अनुवाद

कृष्ण-लीला में भगवान् का रंग साँवला है। वे अपने मुख में वंशी लिए ग्वालबाल की तरह आनन्दमग्न रहते हैं। अब वही व्यक्ति गौरवर्ण धारण करके कभी ब्राह्मण के रूप में कार्य करता है और कभी संन्यासी का।

अतएव आपने प्रभु गोपीभाव धरि'।
व्रजेन्द्रनन्दने कहे 'प्राणनाथ' करि'॥३०३॥

अनुवाद

इसीलिए स्वयं भगवान् गोपी भाव धारण करके अब नन्द महाराज के पुत्र को "हे मेरे प्राणनाथ! हे मेरे प्रिय पति!" कह कर सम्बोधित करते हैं।

सेइ कृष्ण, सेइ गोपी—परम विरोध।
अचिन्त्य चरित्र प्रभुर अति सुदुर्बोध॥३०४॥

अनुवाद

वे कृष्ण हैं फिर भी उन्होंने गोपी-भाव धारण किया है। ऐसा क्यों है? यह तो महाप्रभु का अचिन्त्य चरित्र है, जिसे समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

तात्पर्य

कृष्ण द्वारा गोपियों की भूमिका स्वीकार किया जाना किसी भी सांसारिक अनुमान के विरुद्ध है, किन्तु महाप्रभु अपने अचिन्त्य चरित्र के कारण गोपियों की तरह कर्म कर सकते हैं और साक्षात् कृष्ण होते हुए भी कृष्ण-विरह का अनुभव करते हैं। ऐसे विरोध से भगवान् ही समझौता कर सकते हैं, क्योंकि उनकी शक्ति अचिन्त्य है जो असम्भव को भी सम्भव बनाती है (*अगतान् गतान् पतीयसि*)। ऐसे विरोधों को तब-तक समझ पाना कठिन है, जब-तक कोई भक्त गोस्वामियों के निर्देशन में वैष्णव-दर्शन का दृढ़ता से पालन न करे। इसीलिए कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रत्येक अध्याय की समाप्ति इस श्लोक से होती है—

श्रीरूपरघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥

"श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करके तथा उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए *श्रीचैतन्य-चरितामृत* का वर्णन करता हूँ।"

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है—

रूपरघुनाथ-पदे हइबे आकुति।
कबे हाम बुझब से युगल-प्रीति॥

राधा तथा कृष्ण का माधुर्य भाव, जो *युगल-प्रीति* कहलाता है, संसारी विद्वानों, कलाकारों या कवियों के लिए गम्य नहीं है। यह केवल उस भक्त की समझ में आता है जो छह गोस्वामियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है। कभी-कभी कलाकार तथा कविजन राधा-कृष्ण के प्रेम-व्यापार को समझने का प्रयास करते हैं और इस विषय पर कविता तथा चित्रों की सस्ती पुस्तकें छापते हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश वे राधा-कृष्ण के दिव्य प्रेम-व्यापार को तनिक भी नहीं समझ पाते। वे ऐसे विषय में अपनी नाक अड़ाते हैं, जिसमें वे प्रवेश करने के योग्य नहीं होते।

इथे तर्क करि' केह ना कर संशय।
कृष्णेर अचिन्त्यशक्ति एइ मत हय॥३०५॥

अनुवाद

संसारी तर्कों के द्वारा महाप्रभु के चरित्र के विरोधों को नहीं समझा जा सकता। फलस्वरूप किसी को इस सम्बन्ध में कोई संशय नहीं करना चाहिए। उसे केवल कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति को समझने का प्रयास करना चाहिए, अन्यथा वह यह नहीं समझ सकेगा कि ऐसे विरोध किस तरह सम्भव होते हैं।

अचिन्त्य, अद्भुत कृष्णचैतन्य-विहार।
चित्र भाव, चित्र गुन, चित्र व्यवहार॥३०६॥

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अचिन्त्य तथा अद्भुत हैं। उनका भाव अद्भुत है, उनके गुण अद्भुत हैं और उनका व्यवहार अद्भुत है।

तर्के इहा नाहि माने ग्रेइ दुराचार।
कुम्भीपाके पचे, तार नाहिक निस्तार॥३०७॥

अनुवाद

जो कोई केवल संसारी तर्कों में उलझाता है और उन्हें स्वीकार नहीं

करता वह कुम्भीपाक नरक में दग्ध होता है। उसका उद्धार नहीं होता।

तात्पर्य

कुम्भीपाक एक प्रकार का नरक है जिसका वर्णन *श्रीमद्भागवत* में (५.२६.११) मिलता है। उसमें कहा गया है कि जो व्यक्ति पक्षियों तथा जंगली जानवरों को मार कर जीभ का स्वाद पूरा करता है, वह मृत्यु के बाद यमराज के समक्ष लाया जाता है और उसे कुम्भीपाक नरक का दण्ड दिया जाता है। वहाँ उसे कुम्भीपाक नामक उबलते तेल में डाल दिया जाता है जिससे किसी को छुटकारा नहीं है। कुम्भीपाक उन व्यक्तियों के लिए है जो व्यर्थ ही ईर्ष्यालु हैं। जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु से ईर्ष्या करते हैं उन्हें इसी नरक का दण्ड मिलता है।

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥३०८॥

अनुवाद

भौतिक प्रकृति से परे कोई भी बात अचिन्त्य कहलाती है, जबकि सारे तर्क संसारी होते हैं। चूँकि संसारी तर्क दिव्य विषयों को छू भी नहीं पाते, अतएव संसारी तर्कों से दिव्य विषयों को समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

तात्पर्य

यह श्रील रूप गोस्वामी कृत *भक्तिरसामृत सिन्धु* से (२.५.९३) उद्धृत है।

अद्भुत चैतन्यलीलाय ग्राहार विश्वास।
सेइ जन ग्राय चैतन्येर पद पाश॥३०९॥

अनुवाद

जिस व्यक्ति की चैतन्य महाप्रभु की अद्भुत लीलाओं में दृढ़ निष्ठा है, वही उनके चरणकमलों तक पहुँच पाता है।

असङ्गो कहिल एइ सिद्धान्तेर सार।
इहा येइ शुने, शुद्धभक्ति हय तार॥३१०॥

अनुवाद

इस व्याख्यान में मैंने भक्ति के सार को बतलाया है। जो भी इसे सुनता है उसमें भगवान् की शुद्ध भक्ति उत्पन्न होती है।

लिखित ग्रन्थेर य़दि करि अनुवाद।
तबे से ग्रन्थेर अर्थ पाइय आस्वाद॥३११॥

अनुवाद

यदि मैं पहले से लिखी बातों का पिष्टपेषण करूँ तो इस शास्त्र के प्रयोजन का आस्वादन कर सकूँ।

देखि ग्रन्थे भागवते व्यासेर आचार।
कथा कहि' अनुवाद करे बार बार॥३१२॥

अनुवाद

हम श्रीमद्भागवत शास्त्र में इसके लेखक श्री व्यासदेव के आचरण को देख सकते हैं। वे कथा कह कर उसको फिर फिर दोहराते हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के बाहरवें अध्याय में ऐसे ५२ श्लोक हैं जिनमें श्री कृष्णद्वैपायन वेदव्यास *श्रीमद्भागवत* के समग्र विषय का पुनरावलोकन करते हैं। श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रीचैतन्य-चरितामृत की आदिलीला के सत्रहों अध्यायों का पुनरावलोकन करके श्रील वेदव्यास के चरणचिह्नों का अनुसरण करना चाहते हैं।

ताते आदिलीलार करि परिच्छेद गणन।
प्रथम परिच्छेदे कैलूँ 'मङ्गलाचरण'॥३१३॥

अनुवाद

अतएव मैं आदिलीला के अध्यायों की गणना करूँगा। पहले अध्याय में मैं गुरु को नमस्कार करता हूँ, क्योंकि यह शुभ लेखन की शुरुआत है।

द्वितीय परिच्छेदे 'चैतन्य-तत्त्व-निरूपण'।
स्वयं भगवान् य़ेर व्रजेन्द्रनन्दन॥३१४॥

अनुवाद

दूसरे अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु की व्याख्या है। वे महाराज नन्द के पुत्र भगवान् कृष्ण हैं।

तेंहो त' चैतन्य-कृष्ण—शचीरनन्दन।
तृतीय परिच्छेदे जन्मेर 'सामान्य' कारण॥३१५॥

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, जो साक्षात् कृष्ण हैं अब माता शची के पुत्र-रूप में प्रकट हुए हैं। तृतीय अध्याय में उनके प्राकट्य के सामान्य कारण का वर्णन है।

तहि' मध्ये प्रेमदान—'विशेष' कारण।
युगधर्म—कृष्णनाम-प्रेम-प्रचारण ॥३१६॥

अनुवाद

तृतीय अध्याय में भगवत्प्रेम के वितरण का विशेष वर्णन हुआ है। इसमें युग धर्म का भी वर्णन है, जो भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का वितरण और उनसे प्रेम करने की विधि का प्रचार करना है।

चतुर्थे कहिलूँ जन्मेर 'मूल' प्रयोजन।
स्वमाधुर्य-प्रेमानन्द रस-आस्वादन ॥३१७॥

अनुवाद

चतुर्थ अध्याय में उनके प्राकट्य के प्रमुख कारण का वर्णन है जो उन्हीं की दिव्य प्रेमाभक्ति तथा उनकी ही माधुरी के रस का आस्वादन कराने के लिए है।

पञ्चमे 'श्रीनित्यानन्द'-तत्त्व निरूपण।
नित्यानन्द हैला राम रोहिणीनन्दन॥३१८॥

अनुवाद

पाँचवे अध्याय में श्री नित्यानन्द प्रभु के तत्त्व का वर्णन हुआ है जो रोहिणी-पुत्र बलराम ही हैं।

षष्ठ परिच्छेदे 'अद्वैत-तत्त्वेर' विचार।
अद्वैत आचार्य—महाविष्णु-अवतार॥३१९॥

अनुवाद

छठे अध्याय में अद्वैत आचार्य तत्त्व पर विचार किया गया है। वे महाविष्णु के अवतार हैं।

सप्तम परिच्छेदे 'पञ्चतत्वेर' आख्यान।
पञ्चतत्व मिलि' यैछे कैला प्रेमदान॥३२०॥

अनुवाद

सातवें अध्याय में पञ्चतत्त्व—श्री चैतन्य, प्रभु नित्यानन्द, श्री अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास का वर्णन है। वे सभी भगवत्प्रेम का सर्वत्र प्रचार करने के लिए मिल कर एक हो गये।

अष्टमे 'चैतन्यलीला-वर्णन'-कारण।
एक कृष्णनामेर महा-महिमा-कथन॥३२१॥

अनुवाद

आठवें अध्याय में श्री चैतन्य की लीलाओं का वर्णन किये जाने का कारण दिया गया है। इसमें कृष्ण-नाम की महानता का भी वर्णन हुआ है।

नवमैते 'भक्तिकल्पवृक्षेर वर्णन'।
श्रीचैतन्य-माली कैला वृक्ष आरोपण॥३२२॥

अनुवाद

अध्याय में भक्तिरूपी कल्पवृक्ष का वर्णन है। श्री चैतन्य महाप्रभु मालीस्वरूप हैं, जिसने इसका वृक्षारोपण किया।

दशमेते मूल-स्कन्धेर 'शाखादि-गणन'।
सर्वशाखागणेर यैछे फल-वितरण॥३२३॥

अनुवाद

दसवें स्कंध में मुख्य तने की शाखाओं-उपशाखाओं एवं उनके फलों के वितरण का वर्णन हुआ है।

एकादशे 'नित्यानन्द शाखा-विवरण'।
द्वादशे 'अद्वैतस्कन्ध शाखार वर्णन'॥३२४॥

अनुवाद

ग्याहरवे स्कन्ध में श्री नित्यानन्द प्रभु की शाखा (वंश) का वर्णन है। बारहवें अध्याय में श्री अद्वैत प्रभु नामक शाखा का वर्णन है।

त्रयोदशे महाप्रभुर 'जन्म-विवरण'।
कृष्णनाम-सह ग्रैछे प्रभुर जनम॥३२५॥

अनुवाद

तेरहवें अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म का वर्णन है, जो कृष्ण-नाम कीर्तन चलते समय हुआ।

चतुर्दशे 'बाल्यलीलार' किछु विवरण।
पञ्चदशे 'पौगण्ड लीलार' संक्षेपे कथन॥३२६॥

अनुवाद

चौदहवें अध्याय में महाप्रभु की कुछ बाल-लीलाओं का वर्णन है। पंद्रहवे अध्याय में महाप्रभु की पौगण्ड-लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन हुआ है।

षोडश परिच्छेदे 'कैशोरलीलार' उद्देश।
सप्तदश 'ग्रौवनलीला' कहिलुँ विशेष॥३२७॥

अनुवाद

सोलहवें अध्याय में मैंने कैशोर अवस्था (युवावस्था के पूर्व) की लीलाओं का संकेत किया है। सत्रहवें अध्याय में विशेषतया यौवन-लीलाओं का वर्णन हुआ है।

एइ सप्तदश प्रकार आदि-लीलार प्रबन्ध।
द्वादश प्रबन्ध ताते ग्रन्थ-मुखबन्ध॥३२८॥

अनुवाद

इस तरह प्रथम स्कन्ध में सत्रह प्रकार के विषय हैं, जो आदिलीला के नाम से विख्यात हैं। इनमें से बारह इस ग्रंथ के प्राक्कथन रूप

में हैं।

पञ्चप्रबन्धे पञ्चरसेर चरित।
संक्षेपे कहिलूँ अति,—ना कैलूँ विस्तृत॥३२९॥

अनुवाद

मैंने प्राक्कथन के अध्यायों के पश्चात् पाँच अध्यायों में पाँच दिव्य रसों का वर्णन किया है। मैंने अपेक्षतया इनका संक्षिप्त वर्णन किया है।

वृन्दावनदास इहा 'चैतन्यमङ्गले'।
विस्तारि' वर्णिला नित्यानन्द-आज्ञा-बले॥३३०॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द के आदेश तथा बल पर श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने अपने ग्रंथ *चैतन्य-मंगल* में उन विषयों का विस्तार से वर्णन किया है, जिनका वर्णन मैंने नहीं किया।

श्रीकृष्णचैतन्य लीला—अद्भुत, अनन्त।
ब्रह्म-शिव-शेष य़ाँर नाहि पाय अन्त॥३३१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अद्भुत एवं अनन्त हैं। ब्रह्मा, शिव तथा शेषनाग जैसे महापुरुष भी उनका पार नहीं पा सकते।

य़े य़ेइ अंश कहे, शुने सेइ धन्य।
अचिरे मिलिबे तारे श्रीकृष्णचैतन्य॥३३२॥

अनुवाद

जो कोई भी इस विस्तृत विषय को कहता या सुनता है, उसे तुरन्त ही श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा प्राप्त होती है।

श्रीकृष्णचैतन्य, अद्वैत, नित्यानन्द।
श्रीवास-गदाधरादि य़त भक्तवृन्द॥३३३॥

अनुवाद

[प्रणेता पुनः पञ्चतत्त्व का वर्णन करता है] श्रीकृष्ण चैतन्य, प्रभु नित्यानन्द,

श्री अद्वैत, गदाधर, श्रीवास तथा महाप्रभु के सारे भक्तो!

> य़त य़त भक्तगण वैसे वृन्दावने।
> नम्र हञा शिवे धरों सबार चरणे॥३३४॥

अनुवाद

मैं वृन्दावन के समस्त वासियों को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं विनीत भाव से उनके चरणकमलों पर अपना शीश झुकाता हूँ।

> श्रीस्वरूप-श्रीरूप-श्रीसनातन ।
> श्रीरघुनाथदास, तार श्रीजीव-चरण॥३३५॥
> शिरे धरि वन्दों, नित्य करों तार आश।
> चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥३३६॥

अनुवाद

मैं गोस्वामियों के चरणकमलों को अपने सिर पर रखना चाहता हूँ। उनके नाम हैं श्री स्वरूप दामोदर, श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी तथा श्री जीव गोस्वामी। उनके चरणकमलों को सिर पर रख कर और सदा उनकी सेवा करने की आशा से मैं श्री कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चल कर श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के सत्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त-तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु की यौवन-लीलाओं का वर्णन हुआ है।

परिशिष्ट

लेखक-परिचय

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का जन्म १८९६ ई. में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम भेंट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म-तत्त्ववेत्ता एवं चौंसठ गौड़ीय मठों के संस्थापक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रसार के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई. में) प्रयाग (इलाहाबाद) में विधिवत् उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गये।

अपनी प्रथम भेंट, १९२२ में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने *श्रीमद्भगवद्गीता* पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका "बैक टु गौडहेड" आरम्भ की, इस पत्रिका को चलाना संघर्षपूर्ण था, किन्तु वे स्वयं ही उसके सम्पादन, पाण्डुलिपि के टंकण (टाइपिंग) और मुद्रण-सामग्री को देखते थे। उन्होंने एक-एक प्रति बाँटकर भी इसके प्रकाशन को बनाये रखने के लिए संघर्ष किया। एक बार आरम्भ होकर फिर यह पत्रिका कभी बन्द नहीं हुई; अब यह उनके शिष्यों द्वारा पश्चिमी देशों में भी चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर 'गौड़ीय वैष्णव-समाज' ने १९४७ में उन्हें 'भक्तिवेदान्त' की उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई. में चौवन वर्ष की अवस्था में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लिया और वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकें। श्रील प्रभुपाद ने तदनन्तर श्रीवृन्दावन-धाम की यात्रा की जहाँ वे बड़ी ही विनम्र परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधादामोदर मन्दिर में रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। १९५९ में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीराधादामोदर मन्दिर में श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण ग्रन्थ का आरम्भ किया था। वह ग्रन्थ था अठारह हजार श्लोक-संख्या के *श्रीमद्भागवत*

(भागवत पुराण) का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या। वहीं उन्होंने *अन्य लोकों की सुगम यात्रा* नामक पुस्तक भी लिखी थी।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद सितंबर १९६५ ई. में अपने गुरुदेव का धर्मानुष्ठान पूरा करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए। अन्ततः श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थ-रत्न प्रस्तुत किए।

जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयॉर्क नगर में आए तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था। इसके पश्चात् कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की। १४ नवम्बर १९७७ को, इस भौतिक संसार से प्रयाण करने के पूर्व तक श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन के कारण इस संघ को विश्वभर में सौ से अधिक मन्दिरों, आश्रमों, विद्यालयों, संस्थाओं और कृषि-क्षेत्रों का बृहद् संगठन बना दिया था।

१९६८ में श्रील प्रभुपाद ने प्रयोग के रूप में, वैदिक समाज के आधार पर पश्चिमी वर्जीनिया की पहाड़ियों में नव-वृन्दावन की स्थापना की। इस समय दो हजार एकड़ से भी अधिक के इस समृद्ध नव-वृन्दावन के कृषि-क्षेत्र की सफलता से प्रोत्साहित होकर उनके शिष्यों ने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशों में भी ऐसे अनेक समुदायों की स्थापना की है।

१९७२ ई. में श्रील प्रभुपाद ने डल्लास, टेक्सास में गुरुकुल विद्यालय की स्थापना द्वारा पश्चिमी देशों में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की वैदिक प्रणाली का सूत्रपात किया। तब से, उनके निर्देशन के अनुसार श्रील प्रभुपाद के शिष्यों ने सम्पूर्ण संयुक्त राज्य अमेरिका में तथा विश्व के शेष भागों में गुरुकुल खोले हैं। भक्तिवेदान्त स्वामी गुरुकुल, श्रीवृन्दावन धाम, इनमें सर्वप्रमुख है।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम-मायापुर, पश्चिम बंगाल, में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी है। यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले कतिपय वर्षों में पूर्ण हो जाएगी। इसी प्रकार श्रीवृन्दावन-धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि-भवन का निर्माण हुआ है। ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति का मूल रूप से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के लिए रह सकते हैं। बम्बई में भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में बारह अन्य महत्वपूर्ण स्थानों में हरे-कृष्ण-मन्दिर खोलने की योजना कार्याधीन है।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ अपनी प्रामाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण विद्वानों द्वारा अत्यन्त मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्य-ग्रन्थों के रूप में स्वीकृत हैं। श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ पचास भाषाओं में अनूदित हैं। १९७२ में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है। इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठारह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ *श्रीचैतन्य-चरितामृत* का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है।

बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए व्याख्यान-पर्यटन के रूप में श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं। इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी। उनकी रचनाएँ वैदिक-दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं।

बंगला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

य़=ज, यथा य़मुना को जमुना पढ़ें।

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (ISKCON)

संस्थापक-आचार्य: कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

१. इलाहाबाद, उ.प्र.—४०३, बाघम्बरी गृह संस्थान, भरद्वाजपुरम्, २११ ००३
२. ऊधमपुर, जम्मू व काश्मीर—श्रील प्रभुपाद आश्रम, श्रील प्रभुपाद मार्ग, १८२१०१/(०१९९) २९८
३. अगरतला, त्रिपुरा—हरे कृष्ण धाम, आसाम-अगरतला रोड, मारूप कार्यालय, बनमालीपुर, ७९९ ००१
४. अहमदाबाद, गुजरात—हरे कृष्ण धाम, सेटेलाइट रोड, गाँधी नगर, हाईवे क्रॉसिंग, ३८० ०५४/४४९९४५, ४०२८२७
५. इम्फाल, मणिपुर—हरे कृष्ण धाम, एयरपोर्ट रोड, ७९५ ००१/२१५८७
६. कलकत्ता, प. बंगाल—३-सी, अलबर्ट रोड, ७०० ०१७/२४७३७५७, २४७६०७५
७. कुरुक्षेत्र, हरियाणा—हरे कृष्ण धाम, ८०५, सेक्टर १३,
८. कोयम्बटुर, तामिलनाडु—३८७, 'पदम', बी. जी. आर. पुरम्, डॉ. अलगिसन रोड-१, ६४१ ०११/४५९७८
९. गुंटूर, आ. प्र—श्रीराधा-मदन-मोहन मन्दिर, शिवालयम के सामने, पेडककान्त, ५२२५०९
१०. गौहाटी, आसाम—श्री श्रीरुक्मिणी- कृष्ण मन्दिर, माउंट हरे कृष्ण, उलूबारी चाराली, ७८१ ००१/३१२०८
११. चंडीगढ़, पंजाब—हरे कृष्ण धाम, दक्षिण मार्ग, सेक्टर ३६-बी, १६० ०३६/५३३२३२
१२. चामोर्शी, महाराष्ट्र—७८, कृष्णनगर धाम, जिला: गढ़चिरोली, ४४२६०३
१३. तिरुपति, आ. प्र.—३७, बी टाइप, टी. टी. डी. क्वार्टर्स, विनायक नगर, के. टी. रोड, ५१७५०७/२०११४
१४. त्रिवेन्द्रम, केरल— टी. सी. २२४/१४८५, डब्ल्यू. सी. हॉस्पिटल रोड, थाइकाउड, ६९५०१४/६८१९७
१५. नागपुर, महाराष्ट्र—७०, हिल रोड, रामनगर, ४४००१०/५३३५१३
१६. नयी दिल्ली—संत नगर, मेन रोड, ईस्ट ऑफ कैलाश-११० ०६५/ ६४१९७०१
१७. नयी दिल्ली—१४/६३, पंजाबी बाग, ११० ०२६/५४१०७८२
१८. पंढरपुर, महाराष्ट्र—हरे कृष्ण आश्रम, चन्द्रभागा नदी के पार, जिला: सोलापुर, ४१३३०४
१९. पटना, बिहार—राजेन्द्र नगर, रोड नं. १२, ८०० ०१६/५०७६५
२०. पुना, महाराष्ट्र—४, तारापुर रोड, कैम्प, ४११ ००१/६६७२५४
२१. पुरी, उड़ीसा—इस्कॉन बलिया पंडा, बी. एच. बी/१, पुरी
२२. बंगलोर, कर्नाटक—हरे कृष्ण हिल १, 'आर' ब्लॉक, राजाजी नगर, सेकेंड स्टेज, कॉर्ड रोड, ५६० ०१०/३२१९५६
२३. बम्बई, महाराष्ट्र—हरे कृष्ण धाम, जुहू, ४०० ०४९/६२०६८६०
२४. बड़ौदा, गुजरात—हरे कृष्ण धाम, हरिनगर पानी टंकी के पीछे, गोत्री रोड, ३९००१५/३२६२९९
२५. बामनबोर, गुजरात—इस्कॉन, हरे कृष्ण आश्रम, नेशनल हाइवे नं. ८८, जिला: सुरेन्द्र नगर, (फोन ९७)
२६. भाईंदर (प.), महाराष्ट्र—१०१-१०३, वालचन्द शॉपिंग सेंटर, पहला माला, जिला: ठाणे, ४०११०१/८१९११२०
२७. भुवनेश्वर, उड़ीसा—नेशनल हाइवे नं.५, नयापल्ली, ७५१ ००१/५३१२५, ५५६१७
२८. मद्रास, तमिलनाडु—५९, बर्किट रोड, टी. नगर, ६०० ०१७/ ६६२२८५, ६६२२८६, ४४३२६६
२९. मायापुर, प. बंगाल—श्री मायापुर चन्द्रोदय मंदिर, पो. आ.: श्री मायापुर धाम, जिला: नदिया, ७१२४१३/ ३१, (०३४७३३) २१८ (स्वरूप गंज)
३०. मोइरंग, मणिपुर—नौंगबन, इंगखोन, टिडिम रोड, ७९५ १३३
३१. वृन्दावन, उ. प्र.—कृष्ण-बलराम मन्दिर, भक्तिवेदान्त स्वामी मार्ग, जिला: मथुरा, २८११२४/(०५६६४) ८२४७८
३२. वल्लभ विद्यानगर, गुजरात—गणेश भुवन, पॉलिटेक्निक कालेज के सामने, ३८८१२०/३०७९६
३३. सिकन्दराबाद, आ. प्र.—२७, सेंट जॉन'स रोड, ५०० ०२६/८२५२३२
३४. सिल्चर, आसाम—हरे कृष्ण धाम, महाप्रभु कॉलोनी, मालुग्राम, ७८८ ००४
३५. सिलीगुड़ी, प. बं.—गितालपाड़ा, जिला: दार्जिलिंग, ७३४४०१/२६६१९
३६. सूरत, गुजरात—श्रीराधा-कृष्ण मन्दिर, रैंडर रोड, जहाँगीरपुरा, ३९५ ००५/८४२१५
३७. हैदराबाद, आ. प्र—हरे कृष्ण धाम, नामपल्ली स्टेशन रोड, ५०० ००१/५५१०१८, ५५२९२४

कृषि फार्म:

१. कटवडा, गुजरात—हरे कृष्ण फार्म, जिला: अहमदाबाद (इस्कॉन अहमदाबाद से सम्पर्क करें)
२. करजत, महाराष्ट्र—(बम्बई मन्दिर से सम्पर्क करें)
३. डबिलपुर ग्राम, आ. प्र.—मेडचल तालुका, जिला: हैदराबाद, ५०१ ४०५
४. मायापुर, प. बंगाल—(श्री मायापुर मन्दिर से संपर्क स्थापित करें)
५. चामोर्शी, महाराष्ट्र—(चामोर्शी केन्द्र से सम्पर्क साधें)

रेस्तरां (भोजनालय):

१. बम्बई—'न्यू गोविन्दा' (हरे कृष्ण धाम में)
२. कलकत्ता—हरे कृष्ण कर्म फ्री कनफेक्शनरी, ६, रसेल स्ट्रीट, ७०० ०७१
३. वृन्दावन—कृष्ण-बलराम मन्दिर अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि-गृह में

सूचना: आब्लिक (/) के पूर्व पिनं कोड नम्बर है तथा आब्लिक (/) के बाद टेलीफोन नम्बर है (हैं)।